समभाव-समदृष्टि के

सबक

दिनांक 4 अक्टूबर 2015 - 10 अप्रैल 2016



एकता का प्रतीक

प्रकाशक
सतयुग दर्शन ट्रस्ट (रजि.)
"वसुन्धरा" ग्राम भूपानी–लालपुर रोड फरीदाबाद–121002 (हरियाणा)
ई–मेलः info@satyugdarshantrust.org
website: www.satyugdarshantrust.org
© सर्वाधिकार सुरक्षित सतयुग दर्शन ट्रस्ट (रजि.)
ISBN : 978-93-85423-05-5

प्रथम संस्करण
अप्रैल, 2016

समभाव-समदृष्टि के
सबक

दिनांक 28 सितम्बर 2015 - 10 अप्रैल 2016

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार

★ महामन्त्र★

साडा है सजन राम,
राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है।
उसी को जानो,
मानो और वैसे ही
गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु,
शरीर नहीं है।

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं,
ज्ञान को अपनाओ ।
निमित्त में नहीं,
नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

अनुक्रमणिका

क्रमांक	विवरण	पृष्ठ संख्या
1. दिनाँक 04	अक्टूबर 2015 का सबक	1
2. दिनाँक 11	अक्टूबर 2015 का सबक	20
3. दिनाँक 18	अक्टूबर 2015 का सबक	42
4. दिनाँक 25	अक्टूबर 2015 का सबक	55
5. दिनाँक 01	नवम्बर 2015 का सबक	69
6. दिनाँक 08	नवम्बर 2015 का सबक	85
7. दिनाँक 15	नवम्बर 2015 का सबक	99
8. दिनाँक 22	नवम्बर 2015 का सबक	118
9. दिनाँक 29	नवम्बर 2015 का सबक	136
10. दिनाँक 06	दिसम्बर 2015 का सबक	154
11. दिनाँक 13	दिसम्बर 2015 का सबक	174
12. दिनाँक 20	दिसम्बर 2015 का सबक	199
13. दिनाँक 27	दिसम्बर 2015 का सबक	242
14. दिनाँक 03	जनवरी 2015 का सबक	263
15. दिनाँक 10	जनवरी 2016 का सबक	287
16. दिनाँक 17	जनवरी 2016 का सबक	311
17. दिनाँक 24	जनवरी 2016 का सबक	329
18. दिनाँक 31	जनवरी 2016 का सबक	349
19. दिनाँक 07	फरवरी 2016 का सबक	367
20. दिनाँक 14	फरवरी 2016 का सबक	387
21. दिनाँक 21	फरवरी 2016 का सबक	410
22. दिनाँक 28	फरवरी 2016 का सबक	429
23. दिनाँक 06	मार्च 2016 का सबक	445
24. दिनाँक 13	मार्च 2016 का सबक	462
25. दिनाँक 20	मार्च 2016 का सबक	479
26. दिनाँक 27	मार्च 2016 का सबक	499
27. दिनाँक 03	अप्रैल 2016 का सबक	530
28. दिनाँक 10	अप्रैल 2016 का सबक	558

दिनाँक 4 अक्तूबर 2015 का सबक

कर्म
भाग - (1)
प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

सजनों ब्रह्म, जीव व जगत के विषय में विस्तृत विश्लेषण से अभी तक हमने जाना कि जीव का मानव शरीर धारण कर जगत में आने का मुख्य उद्देश्य है, सन्तोष, धैर्य धारण कर सच्चाई-धर्म के रास्ते पर निष्कामता से चलते हुए परोपकार कमाना व इस तरह अपने जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति कर, परमधाम पहुँच विश्राम प्राप्त करना। इसके अंतर्गत सबसे महत्त्वपूर्ण सन्तोष है। याद रखो यही सब कुछ सही ढ़ंग से व निष्काम भाव से करने का मुख्य आधार है। यदि सन्तोष

धारण कर लिया तो समझ लो कि सब कुछ प्राप्त कर लिया। जानते हो यह सन्तोष कैसे प्राप्त होता है।

आत्मज्ञान से जब आत्मबोध हो जाता है तो आत्मतुष्टि यानि सन्तोष प्राप्त होता है। इस प्रकार सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार सन्तोष प्राप्त कर निश्चित ही निष्काम कर्म द्वारा मानव, अपने जीवन के परम लक्ष्य यथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि कर, जीवन मुक्त हो सकता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार कहा गया है:-

आप कर्म करने वाले सच्चे योगी बनें,
निष्काम कर्म करें और।
अपने ज्ञान की अग्नि में अज्ञानता का नाश करें क्योंकि
जीवन उसी का सुखी है जो
मन-वचन-कर्म द्वारा सब कामों को
सच्चाई और निष्काम भावना से करता है,
वरना मनुष्य का तन मन सदा व्याकुल रहता है।

साथ ही सजनों यह कुदरती ग्रन्थ हमें यह भी संदेश दे रहा है कि-
संसार में सब कामों में लीन होते हुए भी जो निष्कामी है वही ब्रह्म है।

सजनों हम सब भी सब हालतों में अपने हृदय, दिमाग और शरीर को ठीक रखते हुए व अपने स्वरूप यानि अजर अमर आत्मा को इन भौतिक चीज़ों से निर्लेप अर्थात् अलग समझते हुए, ब्रह्म भाव में बने रह निर्वैर, निर्भय, निर्विकार, निरासक्त व निष्कलंक, विचारपूर्वक न्यायसंगत जीवन जीने के योग्य

बनें, इस हेतु आइए कर्म करने की अवधारणा को विस्तार से प्रश्नोत्तर के माध्यम से समझते हैं:-

प्रश्न- कर्म क्या है ?

उत्तर- कर्म से आशय किसी क्रिया के सम्पादन से है अर्थात् किया गया कार्य ही कर्म कहलाता है। अन्य शब्दों में मानव जो भी अच्छा-बुरा कार्य करता है उसे कर्म कहते हैं। अतः प्रत्येक क्रिया के महत्त्व व उसके सकारात्मक तथा नकारात्मक प्रभाव को समझ कर ही उसे सम्पन्न करना है।

प्रश्न- कर्म का अनिवार्य तत्व क्या है?

उत्तर- गति, चेष्टा या प्रयत्न को कर्म का अनिवार्य तत्व माना जाता है। कर्म करने की भावना और इस भावना का धारक अर्थात् कर्ता भी कर्म का अनिवार्य तत्व है।

प्रश्न- कर्म को जीव जगत की अनिवार्य प्रक्रिया क्यों माना गया है?

उत्तर- कर्म को जीव जगत की अनिवार्य प्रक्रिया इसलिए माना गया है क्योंकि कोई भी जीव-जंतु निष्क्रिय नहीं रह सकता। उदाहरण स्वरूप यदि शरीर को ही लें तो पलकों का संचालन, हृदय का स्पन्दन, साँस लेना आदि सभी स्वचलित क्रियाएँ यह प्रदर्शित करती हैं कि कर्म के बिना जीवन में मुक्ति संभव नहीं। जीव जाने-अनजाने, चाहे-अनचाहे, सोते-जागते प्रत्येक स्थिति में कर्मरत रहता है। जीवन कर्म से बँधा हुआ है इसलिए हम कह सकते हैं कि कर्म को जीवन की अनिवार्यता माना गया है। अतः इसके

प्रति सावधान होने की आवश्यकता है।

प्रश्न- जगत को कर्मक्षेत्र क्यों कहते हैं?

उत्तर- क्योंकि जीव जगत में आकर ही कर्म करता है अतः जगत को कर्मक्षेत्र कहते हैं।

प्रश्न- कर्म का सम्बन्ध किससे है?

उत्तर- प्रत्येक कर्म चाहे वह सायास यानि प्रयत्नपूर्वक किया जाए या अनायास, कर्मफल से जुड़ा हुआ है। निष्काम यानि अकर्ता भाव से किए हुए कर्म के अतिरिक्त प्रत्येक कर्म का फल अवश्य मिलता है।

प्रश्न- कर्म करने का प्रयोजन क्या है?

उत्तर- कर्म के संदर्भ में विविध-दृष्टि से विचार करने पर स्पष्ट होता है कि कर्म का स्वरूप भले ही भिन्न हो किन्तु उनका प्रयोजन जीवन को सुख-शांतिमय बनाना है। शुभ-अशुभ, कुकर्म-सुकर्म, वैध-अवैध आदि सभी रूप जीवन में सुख-विधान की दृष्टि से ही विवेचित हुए हैं। कर्म जीवन की अनिवार्य स्थिति है जो फल की दृष्टि से जन्म-जन्मांतर तक प्रभावशाली रहती है। इसलिए वर्तमान जीवन और भावी जन्मों में कल्याण की प्राप्ति के लिए किए गए मनुष्य के संयुक्त सत्प्रयत्नों को कर्म की संज्ञा दी जाती है।

प्रश्न- कर्मफल की प्राप्ति के उद्देश्य से किए जाने वाले कर्म के कौन-कौन से दो पक्ष हैं?

उत्तर- विधिपरक पक्ष। निषेधपरक पक्ष।

प्रश्न- विधिपरक व निषेधपरक पक्ष, ये क्या हैं?

कर्मफल की प्राप्ति हेतु कुछ कर्मों को करना कर्म का विधिपरक पक्ष तथा कुछ को न करना निषेधपरक पक्ष है। उदाहरण स्वरूप स्वास्थ्य लाभ के विशिष्ट फल की प्राप्ति हेतु पौष्टिक सात्विक भोजन करना, व्यायाम करना आदि विधिपरक कर्म है, इसके विपरीत मदिरा का सेवन करना, धूम्रपान करना आदि निषेधपरक कर्म है।

प्रश्न- कर्म के इन दोनों विधिपरक व निषेधपरक पक्ष के लिए अनिवार्य तत्व क्या है?

उत्तर- कर्म का विधिपरक व निषेधपरक पक्ष व्यापक रूप में लोक कल्याण से जुड़ा होना चाहिए। अपने विवेक व मानव सुलभ संवेदनशीलता के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति यह तय कर सकता है कि कौन सा कर्म ऐसा है जिससे दूसरों का अनिष्ट नहीं होता। निश्चित रूप से व्यक्ति सबसे पहले स्वार्थ की साधना करता है और जिस स्वार्थ साधना से दूसरों का अनिष्ट नहीं होता, उसके लिए प्रयास करना अनुचित भी नहीं है। अतः उसकी सिद्धि के लिए किए गए कर्म तथा परहित या लोक कल्याण के सभी कर्म विधिपरक कर्म की श्रेणी में आते हैं किन्तु जिस स्वार्थ साधना से परपीड़न होता है, उसकी पूर्ति के लिए किए जाने वाले कर्म निषेधपरक कर्म कहलाते हैं और उन्हें न करना ही व्यापक लोक कल्याण हेतु अभीष्ट हैं।

प्रश्न- फल के आधार पर कर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर- फल के आधार पर कर्म के दो भेद हैं-

1. शुभ कर्म 2. अशुभ कर्म

प्रश्न- शुभ कर्म क्या है?

उत्तर- शुभ कर्म वे हैं, जिनको करने पर कर्त्ता को शुभ फल मिलता है। 'परोपकार' शुभ कर्म है, क्योंकि इसके किए जाने पर कर्त्ता को यश, आत्मशांति और सुख मिलता है तथा जिस पर उपकार किया जाता है उसे भी प्रसन्नता मिलती है।

प्रश्न- अशुभ कर्म क्या है?

उत्तर- 'परपीड़न' अशुभ कर्म है। इससे कर्त्ता को अपयश और दण्ड मिलता है। साथ ही पीड़ित को भी कष्ट होता है।

प्रश्न- कर्म का शुभ-अशुभ निर्धारण किस पर निर्भर करता है?

उत्तर- कर्म का शुभ-अशुभ निर्धारण कर्त्ता के प्रयोजन और कर्मफल पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए यदि शरीर के किसी अंग की चीरफाड़ चिकित्सक द्वारा रोगी को लाभ पहुँचाने की दृष्टि से की जाती है, तो उसका यह कर्म शुभ होगा। यदि यह कार्य दुर्भावना वश किसी को पीड़ित करने के लिए किया जाय, तो इसे अशुभ कर्म कहेंगे। कर्म का शुभ-अशुभ निर्धारण लोक मान्यताओं पर भी निर्भर होता है।

प्रश्न- सामाजिक दृष्टि से कर्म कितने प्रकार के है?

उत्तर- सामाजिक दृष्टि से कर्म के दो रूप हैं- सुकर्म और कुकर्म।

प्रश्न- सुकर्म और कुकर्म में क्या अन्तर है?

उत्तर- सुकर्म समाजसम्मत और न्याय संगत होने के कारण प्रशंस्य माने जाते हैं, जबकि समाज विरोधी होने के कारण कुकर्म दण्डनीय समझे जाते हैं। न्याय व्यवस्था में कुकर्म करने वाले के लिए दण्ड का प्रावधान रहता है।

प्रश्न- धर्म के आधार पर कर्म कितने प्रकार के हैं?

उत्तर- धर्म-ग्रन्थों एवं दर्शन शास्त्रों के आधार पर कर्म तीन प्रकार के होते हैं–

1 नित्यकर्म 2 नैमित्तिक कर्म 3 काम्य कर्म

प्रश्न- 'नित्यकर्म' कौन से होते हैं?

उत्तर- 'नित्यकर्म' वे हैं जिनके न करने पर पाप लगता है और कर लेने पर मनः शांति के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता। स्नान, ध्यान, पूजन, सेवा आदि नित्यकर्म हैं।

प्रश्न- नैमित्तिक कर्म क्या है?

उत्तर- नैमित्तिक कर्म वे हैं जिनके करने से पुण्य और न करने से पाप होता है। दान नैमित्तिक कर्म है।

प्रश्न- काम्य कर्म क्या है?

उत्तर- किसी फल प्राप्ति की कामना से किए जाने वाले कर्मों की संज्ञा 'काम्य-कर्म' है। जीवन काम्य-कर्मों से ही गतिमान है। कृषि, व्यवसाय सब काम्य हैं, यहाँ तक कि अध्ययन, ज्ञान वर्द्धन, स्वर्णिम भविष्य आदि की कामना और अध्यापन यानि धनोपार्जन, यश आदि की कामना भी काम्य-कर्म हैं।

प्रश्न- कर्मफल क्या है?

उत्तर- पूर्व जन्मों में किए हुए अच्छे व बुरे कर्मों का सुख व दुःख रूप में फल ही कर्मफल या कर्मविपाक कहलाता है।

प्रश्न- कर्म फल के आधार पर कर्म के कितने प्रकार हैं?

उत्तर- कर्म फल के आधार पर कर्म के तीन प्रकार हैं -
1. क्रियमाण 2. संचित 3. प्रारब्ध

प्रश्न- क्रियमाण कर्म का मानव जीवन में क्या महत्त्व है?

उत्तर- क्रियमाण वर्तमान में किए जाने वाले वे कर्म हैं जिनका फल साथ ही भोगा जा रहा है। वर्तमान में किए जाने वाले इन क्रियमाण कर्मों को ही मनुष्य सकाम या निष्काम भाव से युक्त होकर करता है। जीवन-लक्ष्य प्राप्ति हेतु क्रियमाण कर्मों का विशेष महत्त्व है।

प्रश्न- संचित कर्मों से क्या तात्पर्य है?

उत्तर- जिन कर्मों का फल क्रिया के साथ नहीं मिल रहा, वे सब संचित कोटि के कर्म हैं। अन्य शब्दों में संचित कर्मों से तात्पर्य संस्कार के रूप में, सूक्ष्म शरीर में विद्यमान पूर्वजन्म के उन एकत्रित कर्मों से है जो वर्तमान जीवन में प्रारब्ध के रूप में प्राप्त होते हैं और जिनका फल कभी न कभी मनुष्य को भोगना पड़ता है।

प्रश्न- प्रालब्ध क्या है?

उत्तर- जिन पूर्वकृत संचित कर्मों का फल जीव वर्तमान में भोग रहा है, वे उसके प्रालब्ध कर्म हैं अर्थात् वे संचित कर्म

जिसका फल भोग आरम्भ हो चुका हो, प्रालब्ध कहलाता है। इस सन्दर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

प्रालब्ध ओही कुछ दस्से ओ सोहणियां,
जो कुछ जीव कमाई कमावे।
लिखण वाली लेखणी,
सब कुछ लिखदी जावे।।

इस विवेचना से सजनों यह स्पष्ट होता है कि इन्सान चाहे लुक कर करे या छुप कर करे, उसे अपने द्वारा किए कर्मों का भोग आज नहीं तो निश्चित रूप से कल भोगना पड़ता है। जिन कर्मों का फल उसे वर्त्तमान जीवन में नहीं मिलता वह अगले जन्म में मिलता ही मिलता है यानि शरीर छोड़ने के पश्चात्, पुनः शरीर धारण करने पर संस्कार रूप में संचित कर्म, प्रालब्ध के रूप में उसे प्राप्त हो जाते हैं। इस तरह प्रालब्ध अनुसार, अपने द्वारा किए कर्मों का दण्ड भोग उसे यदा-कदा, सुख-दुःख या कष्ट-क्लेशो के रूप में भुगतना पड़ता है। स्पष्ट है सजनों कि कर्मों के इसी लेखे-जोखे का भुगतान करने हेतु मानव, उन्ही पुण्य व पाप कर्मों के अधीकृत हो, निज कुदरत प्रदत्त व्यक्तित्व के विपरीत स्वतन्त्र जीवन जीने के स्थान पर, आजीवन गुलामों जैसा जीवन व्यतीत करता है। सजनों यह बड़ी गहराई से समझने की बात है, जिसे सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में इस प्रकार कहा गया हैः–

जो बोवो सो खावो मेरे सजनों,
अपना बीजया करो प्रवान।
साग नूं कड़ाह समझो मेरे सजनों,
हनुमान जी दे वचन करो प्रवान।

प्रश्न- कर्म-फल के संदर्भ में कौन से दो सिद्धान्त प्रसिद्ध है?

उत्तर- 1. कर्मयोग 2. कर्मवाद

प्रश्न- कर्मयोग क्या है?

उत्तर- कर्मयोग कर्मफल से मुक्ति का पथ दर्शाता हैं। इस सन्दर्भ में समझो कि जीव कर्मफल का भोग करता हुआ पुनः कर्मरत होता है और इस प्रकार कर्मफल का चक्र सतत् चालित रहता है। इसमें उलझे जीव को मुक्ति नहीं मिलती। कर्मयोग का सिद्धान्त कर्म करते हुए मुक्ति की युक्ति प्रतिपादित करता है। यह प्रत्येक व्यक्ति को चित्त शुद्धि हेतु शास्त्रविहित् निष्काम कर्म करने के लिए प्रेरित करता है। अन्य शब्दों में मनुष्य कर्मफल की इच्छा का पूरी तरह से त्याग कर, सिद्धि-असिद्धि में समान भाव रखते हुए, निर्लिप्तता से शुभ कर्म करने में प्रवृत्त हो, यही कर्मयोग है। इसका अनुकरण करने से मनुष्य को अभ्युदय यानि उन्नति/समृद्धि और निःश्रेयस यानि मोक्ष/कल्याण की प्राप्ति होती है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

चहुं प्रकारा दे कर्म बनाए, कुकर्म, कर्म, सुकर्म, धर्म नज़र आए।
निष्काम भक्ति है तूं ही तूं ही किस नूं पूजा ते किस नूं न पूजा।।

प्रश्न- कर्मवाद का सिद्धान्त क्या है?

उत्तर- कर्मवाद का सिद्धान्त सुकर्मों के करने से प्राप्त होने वाले शुभ फलों यानि सुखों व दुष्कर्मों से प्राप्त होने वाले अशुभ फलों यानि दुःखों का प्रतिपादन करता है। यह जगत की भौतिक एवं नैतिक व्यवस्था का आधार है। समाज की न्याय व्यवस्था सदा से कर्मवाद के सिद्धान्त पर ही रही है। इस सिद्धान्त के अनुसार

मनुष्य कर्मकाण्डों में उलझ, पूर्वकृत कर्मों से निर्मित प्रारब्ध से बँधा रहता है।

प्रश्न- कर्म-काण्ड क्या हैं? कर्मकाण्डों का व्यक्ति के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है?

उत्तर- धर्म सम्बन्धी कार्यों को कर्म-काण्ड कहते हैं। कर्मकाण्ड बाल अवस्था की भक्ति का प्रतीक हैं जिनके कारण व्यक्ति आजीवन द्वि-भाव से ग्रस्त रहता है और युवावस्था का भक्तिभाव अपनाकर अपने असलियत स्वरूप की पहचान करने में असमर्थ रहता है। तभी तो सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ समझा रहा है किः-

कर्मकाण्ड करो कई कई साधना, न पाए मन विश्राम, पकड़ो रस्ता निष्काम।

प्रश्न- कर्म-बन्धन क्या है?

उत्तर- अच्छे व बुरे कर्मों के अनुसार जन्म और मृत्यु का बन्धन कर्म-बन्धन कहलाता है।

प्रश्न- कर्मरेखा क्या है?

उत्तर- भाग्य या तकदीर, जो व्यक्ति को अपने कर्मों के फल के रूप में प्राप्त होती है।

प्रश्न- कर्मवीर की क्या विशेषता होती है?

उत्तर- एक कर्मवीर विघ्न-बाधाएँ आने पर भी अविचल भाव से कार्य करता है। कर्मवीर को पुरुषार्थी भी कहते हैं। सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में इंसान को पुरुषार्थ करने का ही आदेश दिया गया है।

प्रश्न- कर्म का चरित्र से क्या सम्बन्ध है?

उत्तर- कर्म का प्रभाव ही कर्म को करने वाले इंसान के व्यक्तित्व का निर्माण करता है और कर्ता के भाग्य को प्रभावित कर सँवारता या बिगाड़ता है जिससे मानव सच्चरित्र या दुष्चरित्र कहलाता है।

प्रश्न- कर्मक्षय कैसे होता है?

उत्तर- अतीत में किए हुए पाप कर्मों का विनाश, उनके विपरीत इस जन्म में पुण्य कर्म करने से होता है।

प्रश्न- यह सब जानने के बाद प्रश्न यह उठता है कि क्या मानव को पूर्व जन्मों का कर्म-फल भोगते हुए इस जन्म में अपना कर्म पथ चुनने की स्वतन्त्रता है?

उत्तर- धर्म ग्रन्थों के अनुसार ईश्वर ने प्रत्येक मानव को पूर्व जन्मों का कर्म-फल भोगते हुए इस जन्म में अपना कर्मपथ चुनने की स्वतन्त्रता प्रदान की है। इस सन्दर्भ में पूर्व कर्म मनुष्य के अन्दर विशेष प्रकार की प्रवृत्तियाँ उत्पन्न कर सकते हैं किन्तु उस कर्म विशेष को करने के लिए बाध्य नहीं कर सकते। मनुष्य अपने वर्तमान जीवन में अपने विवेक और रुचि के अनुसार कर्म करने के लिए स्वतन्त्र है। इसी कर्म स्वतन्त्रता के कारण जीव पूर्वकृत दुष्कर्मों का फल भोगता हुआ उनसे मुक्ति पा सकता है और वर्तमान जीवन में समभाव-समदृष्टि की युक्ति के अनुशीलन के अनुरूप अकर्त्ता भाव से निष्काम कर्म करते हुए, कर्मबन्धन से स्वतन्त्र हो सकता है।

प्रश्न- क्या हम इस स्वतन्त्रता का इस्तेमाल सर्वहित के लिए समभाव से करते हैं?

उत्तर- नहीं जी। याद रखो यदि हम ऐसा करने में सफल नहीं होते यानि इस स्वतन्त्रता का इस्तेमाल समभाव के विपरीत करते हैं तो हम उस स्वतन्त्रता का दुरूपयोग कर रहे होते हैं और अपने बच्चों का भी लालन-पालन तदनुरूप कर उन्हें भी वैसा बना रहे होते हैं। इस तरह न तो उन्हें स्वतन्त्रता से जीना सिखाते हैं और न ही खुद वैसे जीते हैं। जबकि चाहिए यह होता है कि आत्मिक ज्ञान प्राप्त कर बच्चों को भी उसके अमल में पारंगत बनाए। इस तरह उन्हें ठीक वैसे ही स्वतन्त्र छोड़ दें जैसे ईश्वर हमें छोड़ते हैं और हमारे प्रत्येक क्रियाक्लाप पर नज़र रखते हैं व समय आने पर आत्मा की आवाज़ के रूप में हमारा उचित मार्गदर्शन करते हैं।

प्रश्न- कर्ता और अकर्ता भाव में क्या अन्तर है और इसका मानव जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है?

उत्तर- कर्ता भाव में अहं प्रधान होता है जबकि अकर्ता भाव में संकल्परहित अवस्था में इंसान प्रत्येक कार्य ईश्वरीय हुक्म की पालना समझकर निर्लिप्तता से करता है और निर्विकारी व निरासक्त बना रहता है।

प्रश्न- जन्ममरण के चक्र से मुक्त होने के लिए इंसान को इस जगत में किस प्रकार के कर्म करने चाहिए?

उत्तर- निष्काम कर्म।

अतः जप-तप-संयम जैसे बाल अवस्था के भक्ति भाव को

त्याग कर केवल निष्काम कर्म करो। इस संदर्भ में याद रखो कि आत्मिक ज्ञान में विदित विचारधारा के अनुकूल आचार-व्यवहार अपनाने की योग्यता केवल सम, संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म, निष्काम व परोपकार के शब्दार्थों पर सुदृढ़ता से बने रहने पर ही प्राप्त हो सकती है। ऐसे योग्य धर्मज्ञ को इसके अतिरिक्त फिर कुछ और पढ़ने की आवश्यकता नहीं रहती। तभी तो ऐसे पुरूषार्थी सजन आत्मज्ञानी होने का प्रतीक होते हैं और इस जगत में निर्लिप्तता से आनन्दमय जीवन व्यतीत करने के उपरान्त जगत विजयी नाम कहाते हैं।

इसके विपरीत यदि हम विषय-विकारों में उलझ, ऐसे पुरूषार्थी बनने में कमज़ोर पड़ते हैं तो हमें पुनः शान्ति व सन्तोष प्राप्त करने हेतु, समय-समय पर लिखे गए धर्मग्रन्थों को पढ़ना पड़ता है। इस प्रकार शास्त्र के कनरस से हमें क्षणिक सुख का एहसास तो अवश्य होता है परन्तु हम जन्म-जन्मांतरों तक उन के सार को नहीं पा पाते। इस तरह हमारे लिए उन धर्म ग्रन्थों में वर्णित विचारधारा पर भक्ति-भाव से बने रहने की समझ नहीं पनपती और इसी नाकामयाबी के कारण हम जीवन हार बैठते हैं। सजनों यही कारण है कि हमारा सारा यत्न विफल हो जाता है।

इस समस्त चक्रव्यूह से बचने हेतु सब सजनों को सुझाव है कि संतोष, धैर्य अपनाकर, सच्चाई धर्म के रास्ते पर बने रह, निष्काम कर्म करो व परोपकार कमाओ। यही अपने सच्चे घर पहुँचने का सीधा रास्ता है। इसी रास्ते पर चलो व अपने बच्चों को भी चलाने का पराक्रम दिखाओ।

प्रश्न- क्या निष्काम कर्म संभव है?

उत्तर- जी हाँ यह संभव है।

प्रश्न- सकाम कर्म और निष्काम कर्म में क्या अन्तर है?

उत्तर- सकाम भाव से किए गए कर्मों का फल मनुष्य को भुगतना पड़ता है जबकि निष्काम भाव से किए हुए कर्मों से तात्पर्य कामना, आसक्ति या इच्छा से रहित हो कर किए गए उन कर्मों से हैं जिनसे न केवल उसका चित्त शुद्ध होता है अपितु कर्मबंधन से मुक्ति भी प्राप्त होती है।

प्रश्न- हमारे ग्रन्थों में निष्काम कर्म करने के सिद्धान्त को क्यों प्रतिपादित किया गया है?

उत्तर- याद रखो कि फलेच्छा इन्सान के अन्दर लोभ-लालसा व आशा-तृष्णा जाग्रत कर उसे स्वार्थी व विषयों का भोगी बना जन्म-मरण के चक्रव्यूह में फँसने का अधिकारी बनाती है। ऐसा स्वार्थी फिर यथार्थ को देख-समझ नहीं पाता और स्वार्थ पूर्त्ति हेतु मानवता के विपरीत कुछ भी अनुचित कर्म करता जाता है। इस तरह कर्म करता हुआ वह धीरे-धीरे कर्मफल की प्राप्ति के प्रति अत्यधिक लालायित हो जाता है और यह सत्य भूल जाता है कि फल प्राप्ति अनिश्चित होती है और उसकी केवल सम्भावना मात्र ही की जा सकती है। अब केवल सम्भावना मात्र को भ्रमवश निश्चय मान लेना कर्त्ता की भूल होती है। निष्काम कर्म का सिद्धान्त मनुष्य को इसी भूल से बचाने के लिए प्रतिपादित किया गया है। इस संदर्भ में मनुष्य के लिए कर्म के अभीष्ट फल की विफलता को भी ध्यान में रखना अनिवार्य है।

आशय यह है कि उसके लिए कर्मफल के प्रति अत्यधिक आग्रहवान होकर अनुचित साधनों जैसे छल-कपट, झूठ, चोरी आदि के प्रयोग की ओर आकृष्ट न होना भी अनिवार्य है अन्यथा वह उन साधनों में लिप्त हो कुकर्म-अधर्म, दुराचार कर सकता है अथवा विफल होने पर कर्म से पलायन भी कर सकता है। निष्काम कर्म की अवधारणा इन सब अवांछित स्थितियों का परिहार करती है, इसलिए निष्काम भाव से कर्म करने को महत्ता दी जाती है।

प्रश्न- कर्म की कसौटी क्या है?

उत्तर- लोक कल्याण कर्म का सर्वोत्तम निष्कर्ष है। जो कर्म लोक के लिए कल्याणकारी होंगे, वे निश्चित ही व्यक्ति के लिए भी शुभप्रद ही होंगे। अतः कर्म की कसौटी लोक-कल्याण को ही मानना चाहिए। याद रखो जिन कर्मों के निष्पादन से व्यक्ति और लोक का सच्चा हित साधन संभव नहीं, वे क्रिया फल की दृष्टि से भले ही कर्म कहलाएं, किन्तु करणीय न होने से कर्म कहे जाने के योग्य नहीं हो सकते यानि कुकर्म-अधर्म ही कहलाएंगे।

प्रश्न- कर्म करने का महत्त्व बताओ?

उत्तर- कर्म जीवन का मूल मन्त्र है। जीव जन्म से लेकर मृत्यु तक कर्म में व्यस्त रहता है। वास्तव में जीवन की सफलता और सार्थकता निष्काम कर्म करने से ही प्राप्त होती है। ऐसा कर्मठ लोक-परलोक में यशस्वी होता है, जबकि कर्महीन की कीर्ति, सुख और शांति सब नष्ट हो जाती हैं। स्पष्ट है कि मन लगाकर कर्मरत रहने से ही कर्म

में कौशल उत्पन्न होता है। यही कौशल कर्मफल के माधुर्य का आधार बनता है और जीवन प्रयोजन को सफल बनाता है। इतिहास में भी उन्हीं का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं, जिन्होंने निष्काम कर्म करने के महत्त्व को समझा है और जो इस प्रयोजन के निमित्त परोपकार प्रवृत्ति से आजीवन कर्मरत रहे हैं। इसी प्रकार कर्मण्य जीवन ही सच्चा जीवन है।

अंततः सजनों सारतः यह जान लो कि किसी भी मनुष्य के व्यक्तित्व की वास्तविक ऊर्जा, उसकी प्राण-शक्ति में ही निहित है, अतः व्यक्तित्व का अस्तित्व और उसका उदात्तिकरण यानि विशाल हृदयता कर्म से ही संभव है। कहा जाता है कि खाली दिमाग शैतान का घर होता है। तभी तो निष्क्रिय व्यक्ति आसुरी प्रवृत्तियों का शिकार होकर अपना नाश कर बैठता है। यही नहीं बड़ी से बड़ी उपलब्धियाँ भी कर्महीनता की अग्नि में जलकर समाप्त हो जाती हैं। अतः निश्चित है कि निष्काम कर्म का परित्याग सुख-आनंद का परित्याग है, जीवन का परित्याग है। दूसरी ओर भली-भांति निष्काम कर्म को अंगीकार करने वाला व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को निखार सकता है। 'कर्मकुशलता' से उसे सामाजिक स्वीकृति मिलती है। यह स्वीकृति उसमें आत्मसंतोष का भाव जाग्रत करती है। इसी आत्मसंतोष और आत्मविश्वास से व्यक्ति को आनंद की प्राप्ति होती है। यही आनंद तेज बनकर उसके मुखमंडल को दिव्य आभा प्रदान करता है। इस प्रकार शुभ निष्काम रास्ते पर चलकर व्यक्ति ईश्वरत्व को भी सहज ही पा लेता है यानि विचार ईश्वर अपना आप का सहज ही बोध कर सकता है। जान लो ईश्वरत्व यानि देव सुलभ वृत्तियों की प्राप्ति ही तो व्यक्ति के उदात्तीकरण यानि विशाल हृदयता का प्रतीक है। अंत में सजनों इस

संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कैसे हमें विशाल हृदय बन जीवन के परम लक्ष्य की ओर बढ़ने का संदेश दे रहा है, आओ इसे ध्यान से समझें:-

(शरीर रूपी बैटरी में राम नाम का मसाला भरो)

बैटरी विच मसाला पा।
तूं जग दा अंधेरा हटा।
जोति विच जोत हो जा।
तूं अपना आप बना।।

पिछले जन्म मसाला पाया।
इस दुनियां ते तां तूं आया।
हुन तूं ऐसा कर्म कमा।
बैटरी विच मसाला पा।।

हुण तूं ऐसा कर्म कमावीं।
अपना जन्म तूं सफल बनावीं।
महाबीर जी दा नाम ध्या।
बैटरी विच मसाला पा।।

सत् शास्त्र दे रस्ते जावीं।
तूं पिछे कदम न हटावीं।
हुन अग्गे कदम बढ़ा।
बैटरी विच मसाला पा।।

तूं स्वास स्वास नाम ध्याई।
समुद्रों पार हो जावीं।
तूं जग विच रोशनी बढ़ा।
बैटरी विच मसाला पा।।

बलधारी जी ए फ़रमाया।
दासी तुहानु आख सुनाया।
ब्रह्म नाल ब्रह्म हो जा।
तूं ब्रह्म नाल ब्रह्म हो जा।।

ध्वनिः- हे बली, हे बली, हे बली, हे बली, इक तूं, इक तूं, इक तूं, इक तूं।
हे प्रभु, हे प्रभु, हे प्रभु, हे प्रभु, तूं ही तूं, तूं ही तूं, तूं ही तूं, तूं ही तूं।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब **न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।**

शुभकामनाओं सहित।



कर्म
भाग - (2)
प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव कर एक अच्छे इन्सान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ सजनों हमें कर्म और किस्मत के खेल के विषय में किस तरह क्रमवार समझा रहा है, आओ उसे ध्यान से सुनें व समझें:-

महाबीर जी के मुख के शब्द
पिछली बात न फोल ओ बन्दे पिछली बात न फोल,
पिछली बात न फोल।
आयंदा अपना जीवन बना लै,
किस्मत तेरे कोल पिछली बात न फोल।।

अर्थात् निन्दा-चुगली के रूप में बुराई करना व पिछली बातें फोलना बंद कर दो। याद रखो हम जैसे भी अच्छे-बुरे कर्म करते हैं वैसी ही हमारी किस्मत की बनत बनती है। फिर इसी किस्मत का भोग भोगने के लिए हमें जन्म-मरण में आना पड़ता है। यह भोग किसी को भी न भोगना पड़े, इस हेतु आत्मनिरीक्षण करते हुए आत्मनियन्त्रण रखो। इस तरह सजन श्री शहनशाह महाबीर जी के वचनानुसार, आत्मसुधार कर खुद सम्भल जाओ व परिवारों को संभाल लो ताकि आगामी जीवन सुखमय व आनन्दमय व्यतीत हो और एकता, एक अवस्था में बने रह सारे सम अवस्था में आ जाएं। यही समदृष्टि हो निष्कामता व कुशलता से अपना कर्त्तव्य-कर्म समयबद्ध सम्पन्न करना कहलाता है। ऐसा सजन ही अपना व सब का सजन कहलाता है। इसके विपरीत जो अविचारी, कर्त्तव्य विमुख हो ऐसा करने से चूक जाता है वह सबसे बड़ा गुनाहगार कहलाता है।

किस्मत अपनी आप बनावे,
सो सो कलम लिखदी जावे।
जो जो कमाई खरीद लियावे,
सो सो प्रभु अग्गे रखदी जावे।
मिट्ठे बोलो बोल ओ बन्दे,
मिट्ठे बोलो बोल, पिछली बात न फोल।।

आगे दाता जी कहते हैं कि कुदरत का खेल बहुत कमाल है। उस ईश्वर ने इस ब्रह्माण्ड में स्वचलित ऐसी व्यवस्था की है कि इन्सान कर्मानुसार जो भी अच्छी-बुरी, खोटी-खरी कमाई करता है, स्वतः उसका वैसा ही भाग्य रेख अपने

आप लिखा जाता है और वही फिर उस परमेश्वर के सामने रखा जाता है। इस तरह उस अन्तर्यामी ईश्वर से कुछ भी छिप नहीं पाता और अपने कर्मों की सज़ा इन्सान को सुख-दुःख के रूप में भुगतनी पड़ती है।

सजनों हमारे साथ ऐसा न हो इस हेतु महाबीर जी कहते हैं कि सावधानी से जीवन जीओ। समभाव-समदृष्टि हो, सबके साथ एक जैसा, जी-जी का, मित्रतापूर्ण, मधुर व्यवहार करो व एकता में बने रहो। याद रखो जो सजन इसके विपरीत चलन अपनाते हैं और अपना सुधार करने में असमर्थ रहते हैं, हकीकत में वही किस्मत की मार का शिकार होते हैं। ऐसे सजन फिर अपनी अच्छी व बुरी करनी को कितना भी सुन्दर कपड़ों व मायावी झूठ-फरेब व मीठी-मीठी बातों के आडम्बरों से ढँकने का यत्न क्यों न करे उनकी खोटी खरीद नज़र आ ही जाती है। अतः हम ऐसे सजनों से प्रार्थना करते हैं कि पिछली बातें व मंदे भाव-स्वभाव अपनी सोच से ही हटा दो और आगे के लिए सम्भल जाओ। इस प्रकार सच्चाई-धर्म के रास्ते पर बने रह वर्त्तमान में जीना सुनिश्चित करो।

जो जो खरीद प्रभु पेश आवे,
सो सो किस्मत लिखे ते खोल सुनावे।
प्रभु कोल आवे पैग़ाम लिखत करो प्रवान जो जो लिखदी जावे।
न होवो डोल मडोल ओ बन्दे,
न होवो डोल मडोल, पिछली बात न फोल।।

सजन श्री शहनशाह महाबीर जी कहते हैं कि जब जीव की

अच्छी-बुरी खरीद ईश्वर के आगे रखी जाती है तो वहीं उनका फैसला न केवल किस्मत के रूप में सुना दिया जाता है अपितु जीव उसी के अधीन हो अपने मन-वचन व इन्द्रियों द्वारा तद्नुरूप कर्म करने के लिए बाध्य हो जाता है और अपनी करनी द्वारा किस्मत के फैसले को सदाचारिता व दुराचारिता के रूप में प्रदर्शित करता है। अतः अब जो भी आपकी किस्मत बन चुकी है उसे अपनी प्रारब्ध समझ कर खुशी से प्रवान करो और स्थिर बुद्धि हो सद्मार्ग अपनाकर इस बंधन से मुक्त हो जाओ। इस प्रकार जन्म-मरण के चक्रव्यूह से छुटकारा पाओ। दूसरों की देखा-देखी, प्रतिस्पर्धावश या अहंकारवश सजनों कदाचित् विचलित न होवो अपितु मानव-धर्म अनुकूल सत्यता से बने रहो। इस सन्दर्भ में उन समस्त युग पुरूषों की मिसाल अपने सामने रखो जो कठिनाईयों का सामना करते हुए भी समभाव-समदृष्टि पर अडिग बने रहे। अतः उन्हीं के विचारों अनुसार चलन अपनाकर, अपने मन-वचन-कर्म द्वारा उन्हें प्रदर्शित करते हुए, उनका उचित सम्मान करो।

जो जो दिने ओ कर्म कमावे,
सो सो जाँचदा तोलदा आवे।
ज्यों ज्यों प्रभु दे अग्गे चलदा आवे,
त्यों त्यों किस्मत खुलदी जावे।
सांवले चरणां दे राहवो कोल ओ बन्दे,
चरणां दे राहवो कोल पिछली बात न फोल।।

सजनों सदा अमर दाता महाबीर जी कहते हैं कि यदि अपना सोया भाग्य जगाना चाहते हो तो दिन में जो भी कर्म करते हो, रात को सोने से पूर्व उसकी जाँचना-तुलना करो अर्थात्

आत्मनिरीक्षण करो कि मैंने आज क्या अच्छा किया व क्या बुरा किया? इस तरह अपनी कमियों व बुराइयों को जानने के पश्चात् जो गलत या बुरा है, उसे न करने का दृढ़ निश्चय यह कहकर लो कि 'कल से मैं ऐसा नहीं करूँगा।' निश्चित ही इस प्रकार आत्मसंयम रखने से आत्मसुधार होने लगेगा और किस्मत के फंदे से स्वतन्त्र होने में आप सफल हो जाओगे। तात्पर्य यह है कि प्रभु के वचन प्रवान करने से जो किस्मत अभी कर्मों की मुट्ठी में बंद है, वह मुट्ठी धीरे-धीरे खुलती जाएगी और एक दिन खुलते-खुलते पूरी खुलकर किस्मत समाप्त हो जाएगी यानि मिट जाएगी। इस तरह किस्मत का भोग भोगने हेतु इस नश्वर शरीर रूपी पिंजरे में फँसा हुआ जीव मृत्तलोक से आज़ाद हो अपने रूप-रंग-रेखा रहित यथार्थ स्वरूप में स्थित हो जाएगा।

सजनों सजन श्री शहनशाह महाबीर जी कहते हैं कि इस हेतु अपनी सुरत को कंचन रखते हुए शब्द में जोड़े रखो। इसके लिए पिछली बातें ख़्याल में न दोहराओ। इस प्रकार मन को संकल्प रहित रखते हुए संतोषमय बने रहो। याद रखो यदि पिछली बातें दोहराओगे या यादगीरी में रखते हुए उन्हीं के विषयों में सोचते रहोगे तो वे बातें फुरने का रूप लेकर सुरत-शब्द के मिलन में बाधा उत्पन्न करेंगी। परिणामस्वरूप मन में भिन्नता का भाव उत्पन्न हो जाएगा और वड-छोट, तेरी-मेरी, अपना-पराया का सवाल खड़ा हो जाएगा। यह सुरत का शब्द से सम्बन्ध विच्छेदन होने की बात होगी जिसके प्रभाव से जीव के लिए इस जगत में एकभाव यानि आत्मभाव अनुसार, समभाव-समदृष्टि के चलन में बने रहना कठिन हो जाएगा। याद रखो इंसान के

लिए आत्मा और परमात्मा में भिन्नता का भाव अपनाने का अर्थ है काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार के हेतु द्वैत-भाव अनुरूप चलन अपनाना। यह परमार्थ के स्थान पर स्वार्थप्रद रास्ते पर चलने की अहितकारी बात है।

इस सन्दर्भ में सजनों याद रखो कि उस ईश्वर से अलग-थलग होकर, हम अपनी सर्वोत्तम परम अवस्था में नहीं विचर सकते। परिणामस्वरूप परमतत्व जो हमारा यथार्थ स्वरूप है, उस को भी नहीं जान सकते। फिर भला आत्मतुष्ट कैसे हो सकते हैं? हकीकत में निज परम तत्व का जानने में असक्षम होना ही मन की अशन्ति का कारण होता है। यह कमी जब मानव को खलती है तो उसे लगता है कि जैसे उसका कुछ खो गया है। हम तो यह कहेगें कि तब उसका केवल कुछ नहीं, अपितु सब कुछ खो जाता है क्योंकि इस परम तत्व से अलग-थलग पड़ने पर मानव आत्मिक शक्तियों व ज्ञान दोनों रूपों से ही कंगाल हो जाता है यानि उस के पास पुरूषार्थ करते हुए अपने जीवन का लक्ष्य प्राप्त करने हेतु कुछ नहीं रहता। इसीलिए तो इस रिक्तता के भाव से युक्त मानव, भौतिक सुख-साधनों से सम्पन्न होते हुए भी, चोरों, ठगों व भिखारियों की तरह जगत से सब कुछ ग्रहण करने व माँगने से भी नहीं सकुचाता। जगत भी फिर अपनी अधिकृत चीजों पर, किसी अन्य के हस्ताक्षेप या अधिकार करने पर, उस स्वार्थप्रद इंसान पर उलटा वार करता है। इस प्रकार वह इंसान की होश-हवास भुला, उसे रोते-झुखते हुए, मुर्दों की तरह, जीवन जीने के लिए मज़बूर कर देता है। अतः सजनों इस तथ्य को समझो व उबरो। इस अचेतन अवस्था से उबर पुनः चेतनता में

आओ और आत्मिक बल के रूप में अपनी चेतन शक्ति का प्रयोग करने के योग्य बनो। याद रखो यह मन को परमेश्वर में एकरस लीन रखने पर ही संभव हो पाएगा। इसलिए इस जगत में जो भी काम करो, इसके प्रति जाग्रत रहते हुए करो।

किस्मत दे हिन चार पहिए, काम, क्रोध, लोभ, मोह
पंजवां है अहंकार।
सिर ते है बोझ भारी है कुल नाशक कुल वैरी।
जन्म बैठा रोल ओ बन्दे, जन्म बैठा रोल, पिछली बात न फोल।

आगे सजन श्री शहनशाह महाबीर जी किस्मत कैसे बनती है इस विषय में बताते हुए कहते हैं, कि किस्मत के चार पहिए हैं यथा काम, क्रोध, लोभ व मोह। इन्हीं चार पहियों के रथ के ऊपर किस्मत सवार है। जान लो किस्मत के इस रथ का संचालन करने वाला सारथि अहंकार है। इसी अहंकार रूपी सारथि के कारण ही इन्सान छोटी-छोटी बातों पर अपमानित अनुभव कर, वैर-विरोध के भावाधीन हो जाता है और यकदम मरने-मारने पर उतारू हो जाता है यानि पल में सजन और पल में दुश्मन होने का चलन दर्शाता है। यह होता है मानव के हृदय में, एक दूसरे के प्रति सजनता के भाव के स्थान पर दुश्मनी के भाव का विकसित होना। इस प्रकार इन विषय-विकारों के अधीन हो इन्सान किस्मत का भोग भोगता है।

यहाँ हम सबसे पूछना चाहते हैं कि यदि काम, क्रोध, लोभ, मोह रूपी, यह चार पहिए न हों तो क्या कोई किस्मत का

वज़ूद बन सकता है?

नहीं जी।

तब क्या रथ के सारथी अहंकार को बैठने का कोई स्थान मिलेगा?

नहीं जी।

तो क्यों कुलनाशक इन विकार रूपी शत्रुओं को अपने अन्दर पनपने का अवसर प्रदान करते हो और कर्मानुसार अपनी किस्मत बना, सुख-दुःख भोगते हो?

याद रखो इन विकारों से मुक्त इन्सान ही निर्विकारी कहलाता है और वह प्रकाशित हृदय ही इस जगत में निर्दोष आत्मभाव अनुसार विचर पाता है। ऐसा इन्सान अमीरों का भी अमीर होता है व सदा चेतन अवस्था में बना रहता है। तभी तो वह कदाचित् काम-कामना के वशीभूत नहीं होता। इस संदर्भ में वह भली-भांति जानता है कि कामना की अपूर्त्ति-पूर्त्ति क्रमशः क्रोध व लोभ को आमंत्रित करती है और ऐसा इन्सान सहसा ही मोहवश हो छोटी-छोटी बातों पर वाद-विवाद व तर्क-वितर्क कर, यथार्थ को अपनाने से घबराता है। इस प्रकार मनमत के अधीन हो वह अहंकारी हो जाता है। इस प्रकार ईश्वरीय विचारधारा के विपरीत मनगढ़ंत चलन अपना बैठता है। याद रखो कि अहंकार इन्सान के सिर सवार हो, उसके दिल-दिमाग को सोच व तनाव से ग्रस्त कर इतना बोझिल बना देता है कि उसके लिए वह बोझ उठाकर स्वस्थता से जीवन का संचालन करना कठिन हो जाता है। तभी तो ऐसा इन्सान अपने जन्म

का घातक तो सिद्ध होता ही है, साथ ही कुलनाशक व कुलवैरी बन अन्य परिवारजनों व संगी-साथियों को भी ले डूबता है। यह होता है नेकी के रास्ते से हट बदी के रास्ते पर अग्रसर हो नरकों को प्राप्त होना। हममें से किसी के साथ ऐसा न हो और हम निष्कामता से सच्चाई-धर्म के रास्ते पर चलते हुए परोपकार कमा सकें उसके लिए सजनों हम हाथ जोड़ के सबसे प्रार्थना करते हैं कि अपने साथ ऐसा अनर्थ न होने दो। अपने व अपने परिवारजनों पर रहम करो और सजन श्री शहनशाह हनुमान जी के सुपुत्र बन उनकी बात मान लो व दिव्य दृष्टि का सबक लेकर अपने दिव्य स्वरूप का बोध करो। ध्यान से सुनो कि किस्मत के पंजे से बचने के लिए दाता महाबीर जी हम सजनों को क्या कह रहे हैं:-

ओ किस्मत मुकी पई ए, मुक गया अहंकार।
सम संतोष है धैर्य, सत शास्त्र दा विचार।।
मनुराज नूं छोड़ के, पावे असली सिंगार।

रहो चरणां दे कोल ओ बन्दे, रहो चरणां दे कोल, पिछली बात न फोल।।

अर्थात् सम, सन्तोष, धैर्य, सत् शास्त्र के विचार पर मज़बूत बने रहने से ख्याल मनुराज के पंजे से आज़ाद हो जाता है। इस तरह जो किस्मत लेकर इन्सान पैदा हुआ होता है, निष्काम कर्म करने से उस किस्मत का इसी जीवन में उसका वज़ूद मिट जाता है। इस प्रकार कर्म भोग समाप्त होने पर इन्सान जन्म-मरण के चक्रव्यूह से आज़ाद हो जाता है और अपने घर परमधाम पहुँच जगत पर राज़ करता है।

तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:–

ध्वनि:- किस्मत ओहदी खुल गई खुल गए किवाड़।
जन्म उसने जित लिया जैं पाया राम दीदार।।

कर्म के विषय में अब तक हुई बातचीत के उपरान्त सजनों आओ अब तक बताए सबक की पुनरावृति कर लेते हैं:-

सब जानते हैं कि जिस प्रकार हर पदार्थ का कोई न कोई मुख्य तत्व यानि सबसे अधिक उपयोगी अंश अर्थात् शक्ति होती है उसी प्रकार जीवधारियों के अन्दर आत्मा होती है। वही अंश उस वस्तु की सर्वोत्तमता का प्रतीक होता है। वही उसकी यथार्थ सत्ता या हस्ती होती है जिसके बलबूते पर मनुष्य किसी भी कार्य की सिद्धि हेतु एक शासक की तरह अपने मन व इन्द्रियों पर अपनी आज्ञापालन कराने का अधिकार रखता है। जानो कि मन व इन्द्रियों का इसके विरुद्ध मनमत अनुसार चलन अपनाना विद्रोह माना जाता है। एक समझदार इन्सान इसके प्रति ध्यान से सतर्क रहता है व ऐसा घटित होने से पहले ही उन उठते हुए विद्रोही भावों का दमन करने में ही अपना हित समझता है। इसलिए हमें अपनी सत्ता को पहचानना है और सत्तावान बनना है। याद रखो सत्तावान वही होता है जो अपनी ताकत का अनुभव कर उस ताकत का इस्तेमाल करना जानता है। अतः हमें अपना यथार्थ भूल कर, खुद को किसी अन्य के अधिकार में नहीं सौंपना।

ऐसा सुनिश्चित करने पर ही हम चैतन्य व कुदरत प्रदत्त मानवीय गुणों में बने रह, अपने चित्त को शुभ कर्मों में प्रवृत्त

कर सकेंगे और इस प्रकार ज्ञान, प्रकाश, शान्ति आदि जैसे सात्विक भाव अपनाकर, तमोगुण और रजोगुण से बचे रह सकेंगे। यह पुण्यात्मा, शक्तिशाली, सदाचारी, धर्मात्मा व विशुद्ध स्वभाव वाला इन्सान होने की बात है।

याद रखो ऐसा बनने पर ही इन्सान अपनी सर्वश्रेष्ठ प्रकृति में बने रह, सन्तोष व धैर्य अपनाकर, निष्कामता से, कर्त्तव्य पालन करने का श्रेष्ठतम आदर्श प्रस्तुत कर पाता है। इस प्रकार फिर सत्कर्म द्वारा वह सजन पुरुष, ईश्वर का सुपुत्र बन हर तरफ से आदर सत्कार प्राप्त करता है।

यहाँ हम सबसे यह पूछना चाहते हैं कि कर्म के विषय में हुई बातचीत से आपको क्या समझ में आया?

(मौन)

आओ अब इसके बारे में इस वार्त्तालाप द्वारा ध्यान से समझते हैं:-

पहला सजनः- सजन जी हमें समझ में आया कि इस जगत में आने के पश्चात् मानव मुख्यतः कुकर्म, अधर्म, सुकर्म व धर्म करता है। पर केवल निष्कामी ही परमेश्वर का भक्त कहलाता है। जहाँ कुकर्म व अधर्म पाप कर्म कहलाते हैं वहीं सुकर्म व धर्म पुण्य कर्म कहलाते हैं।

दूसरा सजनः- अनुचित या शास्त्र विरुद्ध बुरा काम कुकर्म कहलाता है। इससे अपयश की प्राप्ति होती है। यह मन की अत्यन्त वेगवान अवस्था होती है जिससे दुष्कर्म दोष पैदा होता है। बस फिर तो सब गड़बड़ा जाता है। ऐसे दोषयुक्त इन्सान का मन/विचार/इरादे दोषयुक्त होते हैं और फिर वह

बुरे चरित्र वाला दुराचारिता का चलन अपनाता है। इस प्रकार उसके मन में सजनता के भाव के स्थान पर द्वि-द्वेष का भाव घर कर जाता है। यह समभाव नज़रों से छूटने व आत्मीयता से परिपूर्ण समदृष्टि रूपा महान गुण से वंचित होने की बात होती है। ऐसे खोटे चित्त वाला दुष्प्रवृत्ति मनुष्य दूसरों का बुरा चाहता है और छल-कपट द्वारा अनुचित आचरण करता है। फिर वह मन में संकल्प-विकल्पों के रूप में उठने वाली अनेक बातों का सत्य-असत्य जानने में असमर्थ हो, किसी कार्य को सिद्ध करने के प्रति, उचित निश्चय नहीं ले पाता। इस प्रकार वह भ्रमित बुद्धि सदाचारिता में बने रहने के स्थान पर दुष्चरित्रता को प्राप्त होता है।

फलस्वरूप अस्वाभाविक चिंता रहने के कारण उत्पन्न मानसिक विकारों से उसके तन-मन दोनों बीमार हो जाते हैं। ऐसे रोगी की चिकित्सा कठिन या असंभव हो जाती है। इसी कमज़ोरी के कारण वह बुरी चेष्टा द्वारा शत्रुता के हेतु यानि अप्रिय लगने वाले काम करता है व अपने लिए व सबके लिए मुसीबत का कारण बनता है। इसके अतिरिक्त वह औरों को ऐसे पापपूर्ण उपदेश या परामर्श देने से भी नही सकुचाता जिनका परिणाम उत्पीड़न व हिंसा आदि हो। जब तक वह पापी इन दुष्कर्मों में फँसा रहता है वह जीवनकाल उसके जीवन का सबसे बुरा समय कहलाता है। जिस कुल में ऐसे पापकर्म करने वाले व्यक्तियों की अधिकता होती है वह नीच कुल कहलाता है। याद रखो ऐसे दुराचारी लोग जिस समाज व राष्ट्र में होते हैं वे नैतिक पतनता के प्रतीक कहलाते हैं।

तीसरा सजन- जिन कर्मों में धर्म का अभाव हो वे अधर्म कहलाते हैं। ये पाप, अन्याय व दुष्टता के प्रतीक होते हैं और ऐसे कर्म करने वाला इन्सान अधर्मी व दुष्ट कहलाता है। इसीलिए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में मनुष्यत्व अनुरूप व्यक्तित्व पर स्थिर बने रहने हेतु अधर्म का आचरण न करने व धर्म मार्ग पर चलने का निर्देश दिया गया है।

चौथा सजन- वे उत्तम कर्म जो सर्वहित को ध्यान में रख-कर किए जाएँ व सुन्दरता के प्रतीक हों सुकर्म कहलाते हैं। यही पुण्य कर्म मनुष्य के परिश्रमी, सदाचारी व धर्मात्मा होने के प्रतीक होते हैं। याद रखो धर्म और पुण्य के काम करने वाला बहादुर व बुद्धिमान व्यक्ति ही भाग्यशाली कहलाता है। उस दया व क्षमा के प्रतीक जितेन्द्रिय मनुष्य का मन शान्त रहता है। इस प्रकार वह विवेक बुद्धि द्वारा अंतर्निहित शक्तियों को संगठित रखते हुए अपने जीवन निर्वाह हेतु व जीवन लक्ष्य प्राप्ति हेतु आवश्यक यत्न करने का पराक्रम दिखा पाता है।

पाँचवा सजन- आत्मा और परमात्मा की शाश्वतता, शाश्वत जीवन और शाश्वत मूल्यों में विश्वास, नैतिक व्यवस्था को भौतिक व्यवस्था से उच्चतर मानने में विश्वास तथा इन विश्वासों के अनुसार आचार-व्यवहार अपनाना ही धर्म कार्यों का प्रतीक माना जाता है। यही व्यवहार-संहिता व्यक्ति के सत्य-कर्म करने व सदाचारी होने का हेतु होती है व इसके द्वारा व्यक्ति अपने जीवन का हर कर्त्तव्य नीतिनुसार, न्यायसंगत निभाने की योग्यता दर्शा पाता है। याद रखो धर्म-कर्म ही मनुष्य को जीवन में अभ्युदय (उन्नति) और मृत्यु के बाद कल्याण यानि मोक्ष की प्राप्ति का हेतु होता है। धर्म

शब्द का अर्थ या भाव प्रकट करते हुए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में स्पष्टतः कहा गया है 'धर्म है निष्काम रास्ता कामना से रहित'। धर्म शब्द की इस परिभाषा को समस्त शास्त्र हर मानव के लिए अपने जीवन-लक्ष्य प्राप्ति का सूचक मानते हैं। धर्म शब्द का यह स्पष्टीकरण या व्याख्या अपने आप में इतनी सहज व सरल है कि इस द्वारा धर्म की विशेषता व व्याप्ति पूर्णतः निश्चित व स्पष्ट हो जाती है।

छटा सजन- कर्म करने पर भी उसमें आसक्त न होना निष्कामभाव से कर्म करने की बात है। ऐसा इंसान कभी भी फल की कामना या भावना से कोई कर्म नहीं करता। ऐसा इन्सान संकल्परहित होता है और उसका हृदय शुद्ध होता है। ऐसे दोषरहित व्यक्ति का ही जीवनचरित्र निष्कलंक होता है और वह जन्म-मरण के चक्र से आज़ाद होकर अपने घर परमधाम पहुँच विश्राम पाता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में बार-बार कहा गया है कि-

रस्ता पकड़ो निष्काम, रस्ता पकड़ो निष्काम।

क्या इस संदर्भ में कोई और भी बताना चाहेगा कि उसे कर्म के विषय में अब तक क्या समझ में आया?

वार्त्तालाप (दो सजन)

पहला सजन- सजनों कर्म के विषय में हुई बातचीत से हमें यह समझ में आया कि प्रत्येक सकाम कर्म का फल मनुष्य को अवश्य भोगना पड़ता है। इस सन्दर्भ में बुद्धिमान व्यक्ति जब यह विचार करता है कि मनुष्य शरीर की प्राप्ति किस कारण से होती है तो ज्ञात होता है कि धर्म आचरण से। जब

वह यह विचार करता है कि मनुष्य व पशु-पक्षियों के शरीरों में क्या अन्तर है तो ज्ञात होता है कि मनुष्य शरीर में जो सुख-सुविधाएँ हैं वे पशु आदि के शरीर में नहीं हैं। इसलिए मनुष्य शरीर सुखप्रद है और पशु आदि का शरीर दुःखप्रद। यह जानकर वह विचार करता है कि यदि मैं धर्म आचरण करूँगा तो मुझे मनुष्य योनि मिलेगी और यदि मैं अधर्म आचरण करूँगा तो मुझे पशु-पक्षियों की योनि मिलेगी जिसमें बहुत दुःख भोगना पड़ेगा। इस प्रकार वह दुःखों से मुक्ति के लिए प्रयत्न करता है परन्तु मनुष्य देह मिलने मात्र से भी उसके दुःख की निवृत्ति नहीं हो पाती।

दूसरा सजन- यह तो आपने बिल्कुल ठीक कहा सजन जी। कर्मफ़ल के रूप में प्राप्त हुए दुःख की निवृत्ति कदापि सरलता से नहीं हो पाती। दुःखों से छुटकारा पाने के लिए तो दुःखों के कारण को जानना व उसका निवारण करना पड़ता है। दुःखों के कारण को जानने से पूर्व क्या आप हमें यह बताएंगे कि आखिर यह दुःख है क्या ?

पहला सजन- बाधा, पीड़ा, अशांति, बंधन व पराधीनता का नाम दुःख है यानि जिससे पीड़ित होकर मनुष्य उसका नाश करने का यत्न करते हैं वह दुःख कहलाता है।

दूसरा सजन- मनुष्य को दुःख क्यों होता है?

पहला सजन- जब सांसारिक पदार्थों को प्राप्त करने के प्रयत्न या इच्छापूर्ति में बाधा उत्पन्न होती है तब मनुष्य को दुःख होता है।

दूसरा सजन- दुःखों का कारण क्या है?

पहला सजन- प्रकृति और प्रकृति से उत्पन्न महतत्व आदि कार्य-कारण जगत के साथ जीवात्मा का अज्ञानपूर्वक संयोग ही दुःख का कारण है। ध्यान से समझो कि बुद्धि में जो सांसारिक पदार्थों के चित्र उतरते हैं, उनका अनुभव करने वाला जीवात्मा है। जिन पदार्थों का बुद्धि में चित्र उतरता है, उनको 'दृश्य' कहते हैं। प्रकृति को भी दृश्य कहते हैं क्योंकि इसी से बुद्धि, अहंकार आदि समस्त दृश्य जगत् उत्पन्न होता है। इन दृश्यों से अज्ञान के कारण जीवात्मा का संयोग होता है। उसी संयोग से दुःख की उत्पति होती है।

दूसरा सजन- कार्य-कारण जगत के दृश्यों में ऐसा क्या होता है जो वह इतनी शक्तिशाली जीवात्मा को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है?

पहला सजन- जानो कि ये दृश्य अयस्कान्तमणि यानि चुंबक के समान होते हैं। जिस प्रकार अयस्कान्तमणि (चुंबक) समीपता के कारण लोहे को अपनी ओर खींच लेती है वैसे ही ये दृश्य भी जीवात्मा को परमात्मा से विमुख कर अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। दृश्यों के सम्पर्क में आने पर जो जीवात्मा उनमें लिप्त हो जाता है वह भोग को प्राप्त होता है व जो उन में विचरते हुए भी उनसे निर्लिप्त रहता है, वह अपवर्ग यानि मोक्ष को प्राप्त करता है।

स्पष्टतः जब जीवात्मा इन दृश्यों की सुंदरता की ओर आकर्षित हो उन्हें अपना लेता है तो वे दृश्य जीवात्मा का स्व यानि अपने बन जाते हैं। इसी प्रक्रिया में जब जीवात्मा उन दृश्यों के रूप में उपस्थित वस्तुओं को प्राप्त करने की होड़ में उसके साथ स्वस्वामि संबंध बना लेता है तो यह दृश्य

इसके बंधन का कारण बनते हैं।

दूसरा सजन- इस प्रक्रिया में बुद्धि की क्या भूमिका होती है?

पहला सजन- बुद्धि जीवात्मा के अनुभव का विषय बनती है अर्थात् जीवात्मा अनुभव करने वाला कर्ता और बुद्धि अनुभव क्रिया का कर्म बनती है। चेतन पुरुष के सानिध्य (समीपता) से बुद्धि चेतनसदृश स्वरूप को प्राप्त कर लेती है। इस विषय में जान लो कि वास्तव में बुद्धि जड़ पदार्थ है। बुद्धि का उपादान कारण प्रकृति है इसलिए वह एक स्वतन्त्र पदार्थ है। परन्तु जीवात्मा के भोग और अपवर्ग (मोक्ष) को सिद्ध करने वाली होने के कारण वह परतन्त्र है। जीवात्मा दृक्शक्ति यानि प्रकाशस्वरूप चैतन्य आत्मा और बुद्धि दर्शन यानि साक्षात्कार व अवलोकन करने की शक्ति है। इन दोनों का प्रयोजनकृत एवं प्रवाह ही अनादि संयोग बन्धन का कारण है।

दूसरा सजन- इसका अर्थ तो यह हुआ कि दृश्यों के साथ जीवात्मा का संयोग ही बन्धन यानि दुःख का कारण है।

पहला सजन- यह बात ध्यान से समझो कि अज्ञान के कारण आत्मा और दृश्य का संयोग ही बन्धन का कारण है। इसके विपरीत ज्ञानपूर्वक संयोग बन्धन का कारण नहीं है। यदि सम्बन्ध मात्र से बन्धन का कारण माना जाए तो ईश्वर का भी बन्धन होना चाहिए क्योंकि दृश्य का सम्बन्ध ईश्वर से भी है। अतः याद रखो कि संयोग के हेतु को दूर कर देने से दुःख की निवृत्ति हो जाती है। क्योंकि कारण का अभाव होने से कार्य का अभाव हो जाता है। उदाहरणस्वरूप जो व्यक्ति यह

जानता है कि कांटे के द्वारा पैर के तल भाग में आघात होने से दुःख होता है तो वह उस काँटे पर पैर भी नहीं रखता। यदि रखता भी है तो जूते धारण करके रखता है। इससे उसको काँटे से उत्पन्न होने वाला दुःख सन्तप्त नहीं करता। जो भेद्धता, भेदकत्व और उसके परिहार के साधन को जानता है, वह दुःख को प्राप्त नहीं होता।

दूसरा सजन- भेद्धता, भेदकत्व और उसके परिहार के साधन से क्या तात्पर्य है?

पहला सजन- इस सन्दर्भ में जानो कि वास्तव में सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण इन तीन सूक्ष्म द्रव्यों से समस्त संसार की उत्पति होती है। सत्वगुण भेद्य यानि भेदन करने योग्य है। रजोगुण भेद्यक यानि भेद करने वाला है और तत्वज्ञान परिहार यानि दोष आदि के निवारण का साधन है। यहाँ रजोगुण तपाने वाला है अर्थात् दुःख देने वाला है। सत्वगुण तपने वाला अर्थात् तपनक्रिया वाला है। सत्त्वगुण के तपने पर बुद्धि के माध्यम से विषयों का अनुभव करने वाला जीवात्मा अज्ञानता के कारण उस तपनक्रिया को अपने अन्दर मान लेता है, इसलिए सुख-दुःख में फँसता है।

दूसरा सजन- अच्छा अब समझ में आया कि संसार में जो सुख है वह सत्त्वगुण का धर्म है। दुःख रजोगुण का और मोह तमोगुण का। अज्ञानता के कारण जीवात्मा सुख-दुःख व मोह को अपना गुण मान लेता है। परन्तु जब जीवात्मा ज्ञानपूर्वक निष्काम भाव से दृश्य के रूप में उपस्थित पदार्थों का प्रयोग करता है तब वह समस्त बन्धनों से छूट कर मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

पहला सजन- तभी तो कहा गया है कि ये दृश्य भोग और अपवर्ग (मोक्ष, मुक्ति) की प्राप्ति के लिए है। जो अज्ञानयुक्त हैं, वे भोगों में भी सुख देखते हैं और जो तत्ववेता हैं वे भोगों में दुःख देखकर उनका परित्याग कर देते हैं और मोक्ष को प्राप्त करते हैं। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को यह जानना चाहिए कि अज्ञानपूर्वक प्रयोग करने से संसार के पदार्थ बन्धन का कारण बनते हैं और ज्ञानपूर्वक प्रयोग करने से मोक्ष का कारण बनते हैं।

याद रखो कि अविद्या, अन्याय, अशुभ उपासना, कुसंस्कार, कुसंग और आलस्य आदि दुःखों के कारण हैं अतः इनका नाश करने का प्रयास करो। वेद में भी यह बात कही है कि जो व्यक्ति कारण और कार्य को ठीक प्रकार से जानता है, वह ही अमरतत्व को प्राप्त होता है। अतः विचारो कि मैं इस जगत में क्यों और क्या करने आया हूँ। निःसंदेह इस हेतु आत्मज्ञान की आवश्यकता है। आत्मज्ञान से ही हम परमतत्व अर्थात् निज असलियत ज्योति स्वरूप का बोध कर सकते हैं और एक रस चेतन अवस्था में बने रह, निष्कामता से सब काम कर सकते हैं।

सजनों अभी हमने जाना कि जनचर-बनचर, जड़-चेतन से युक्त जगत, प्राकृतिक नियमों से ही संचालित है। प्रत्येक प्राणी के सुख-दुःख अपने-अपने कर्म संस्कार के ऊपर निर्भर हैं। यहाँ हमारे लिए यह भी जानना ज़रूरी है कि संसार का सम्बन्ध कर्म सम्बन्ध के अधीन है और कर्म का सम्बन्ध राग, द्वेष और मोह के अधीन है। जानो कि तृष्णा, राग, द्वेष और मोह आदि संसार की जड़ हैं और मन को

चंचल यानि अशान्त बनाने के कारण हैं जिनसे मनुष्य विविध प्रकार के कर्म करता है परन्तु राग व द्वेष आदि को समाप्त कर देने से दुःख की अनुभूति नहीं होती। इन्द्रियों व काल आदि से परे और मन द्वारा जानी जा सकने वाली यह स्थिति आनन्द की पराकाष्ठा है।

जानो यह इन्सानों में, सामान्य मनुष्यों के समान राग और भोग में रुचिशील जीवन जीने के स्थान पर, वैराग्य और त्याग में प्रवृत्त कर, आत्मा और परमात्मा के स्वरूप के सम्बन्ध का विचार भरने की बात है। यह उन्हें लौकिकता और भौतिकता से भिन्न उन्नति के साधनों का विवेचन कर आत्मा और परमात्मा से सम्बन्धित उन्नति करने के प्रति जाग्रत व प्रयत्नशील करने की बात है।

हमें ऐसा सुनिश्चित करने की आवश्यकता को समझना होगा ताकि हम मिथ्या ज्ञान से उत्पन्न होने वाले प्रभावों के कारण, भ्रमयुक्त कल्पित जीवन जीने की भूल न कर बैठें और अज्ञान के अंधकार में रस्सी को भी साँप समझ कर, जीवन की परिस्थितियों व मौत से भयभीत हो उनका आधिपत्य न स्वीकार कर बैठें। याद रखो अगर ऐसा होता है तो हम आध्यात्मिक महापुरुष नहीं बन सकते और हमारे द्वारा सर्वोत्कृष्ट मानव होने की मर्यादा का उल्लंघन होना सुनिश्चित ही है। मानो अगर हमसे ऐसी भूल होती है तो हमें इस जगत में सम्मान के स्थान पर हर क्षण त्रास का सामना करने के लिए तैयार रहना होगा।

अतः सजनों यदि हम कर्मबन्धन से मुक्त होना चाहते हैं तो हमें पहले राग-द्वेष को समाप्त करना होगा। जिस प्रकार

बीज सर्वथा जल जाने पर उसमें से पुनः अंकुर उत्पन्न नहीं होता उसी प्रकार कर्म रूपी बीज सर्वथा जल जाने पर संसार रूपी अंकुर पुनः उत्पन्न नहीं होता। इस प्रकार सर्वथा निष्कलंक आत्मा पुनः कर्म में नहीं बँधती और जीव जन्म-मरण से आज़ाद हो जाता है। इसलिए कर्मबन्धन से मुक्ति प्राप्त करने के लिए एकता एक अवस्था में स्थित होकर निष्काम कर्म करना आवश्यक है। यही अहंकार रहित अवस्था है जिसमें व्यक्ति अकर्ता भाव से कार्य करने में कुशल हो जाता है। निष्काम कर्म की पूर्णता कर्ता भाव के त्याग में है, यही मोक्ष है।

इस सन्दर्भ में याद रखो कि वेद-शास्त्र भी निष्काम कर्म करने की शिक्षा देते हैं। इसलिए आवश्यक है कि निष्काम रास्ते पर चलते समय राह में आने वाली बाधाओं की चिन्ता न करते हुए, साहस से कर्त्तव्य पालन करने वाले परिश्रमी कर्मवीर बनो और बुद्धि को भ्रमित करनेवाले कर्मकाण्डों का त्याग करने से न सकुचाओ। सच्चाई-धर्म की भक्ति धारण कर शक्तिशाली बनो व समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार निष्काम कर्म करते हुए नीतिसंगत सजनभाव का व्यवहार करने में पारंगत बनो।

ऐसा सुनिश्चित करने के लिए अपनी ज्ञानेन्द्रियों कर्मेन्द्रियों व मन को वश में रखने में ही अपना मंगल मानो और फल प्राप्ति की इच्छा से रहित होकर हर कर्म ईश्वर के निमित्त करो। याद रखो केवल निष्कामी ही परमेश्वर का भक्त कहलाता है। इस तरह समर्पित भाव से एक साधक की तरह निष्काम भाव से सभी कर्म करने के सिद्धान्त को

परिवारजनों सहित सहर्ष अपना लो और सार्वजनिक हित यानि परोपकार हेतु समस्त मानवजाति को भी निष्कामभाव से कर्म करने के लिए प्रेरित करो। इस हेतु हिम्मत दिखाओ, हिम्मत दिखाओ, हिम्मत दिखाओ।

अन्ततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।



प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

किस्मत पर विजय पाने के लिए सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें क्या संदेश दे रहा है, आओ इसे ध्यान से सुनते व समझते हुए, इस शुभ कार्य को इसी जीवन में करना सुनिश्चित करें:-

(श्री साजन जी के मुख के शब्द)

अपनी किस्मत जितनी जे, हिम्मत इन्सानों हारो न,
अपनी किस्मत जितनी जे।
हनुमान जी दे वचनां दी पालना करो,
दिलबर नूं दिलों विसारों न।।

अपनी किस्मत जितनी जे हिम्मत इन्सानों हारो न,
अपनी किस्मत जितनी जे।।

इक वारी बाजी जित लई अपनी,
फिर जित सदा ही तुम्हारी है।
फिर जित सदा ही तुम्हारी है,
फिर जित सदा ही तुम्हारी है।।

क्या दुनियां क्या नगर निवासी,
क्या कर सके मौत विचारी है।
क्या कर सके मौत विचारी है,
क्या कर सके मौत विचारी है।।

जनता सुन हैरान हुई जनता सुन बात परेशान हुई,
जनता सुन परेशान हुई।
क्या करने आये क्या कर बैठे सजनों,
समझ गई सावधान हुई।
समझ गई सावधान हुई,
समझ गई सावधान हुई।।

ओ इन्सानों किस्मत दा मुकाबला हुण होना जे,
मुकाबला हुण होना जे।
किस्मत जैं जित लई उस हसना ते कदे न रोना जे।
उस हसना ते कदे न रोना जे,
उस हसना ते कदे न रोना जे।।

किस्मत जुदा बनाई जो जो कीती किसे कमाई,
जो जो कीती किसे कमाई।

किस्मत दी बाज़ी जित लई,
ओ रौशन नाल होया रौशनाई।
ओ रौशन नाल होया रौशनाई,
ओ रौशन नाल होया रौशनाई।।

किस्मत मुकी किस्मत झुकी किस्मत दा विस्तार गया,
किस्मत दा विस्तार गया।
ओ उदर विच न आवे किस्मत लिखी न जावे,
किस्मत दा भान्डा फोड़ दिया।
किस्मत दा भान्डा फोड़ दिया,
किस्मत दा भान्डा फोड़ दिया।।

शब्दः- अच्छी खरीद करो इन्सानों, मन्दी खरीद न करनी जे।
जे मन्दी खरीद कर बैठे हो, तां नतीजा बुरा निकलना जे।।

(श्री रामचन्द्र जी के मुख के शब्द)

फ़िकर न करो मेरे साजना न होवो फ़िकरवन्द,
फ़िकर किस दा ही करो, तुसां हो मेरे फरज़न्द।

स्पष्ट है कि अगर इन्सान जीवन में मंदी खरीद करता है तो उसका नतीजा बुरा निकलता है।

तो आप क्या चाहते हो, जीवन का नतीजा बुरा निकले या अच्छा निकले?

अच्छा।

अच्छा, नतीजा प्राप्त करने के लिए क्या करना होगा?

अच्छी खरीद करनी होगी और बुरे कर्म करने बंद करने होंगे।

हम भी यही चाहते हैं कि निष्काम कर्म करते हुए आप अपनी किस्मत का भांडा फोड़ दो अर्थात् रेखा मिट जाए और किस्मत का खेल समाप्त हो जाए। जानते हो कि जब रेखा मिट जाती है तो उस रेखा की देन यह रूप-रंग भी मिट जाता है। इस प्रकार रेखा रहित होने से आशय रूप-रंग-रहित अपने असलियत ज्योति स्वरूप में बने रह, जीव के लिए जगत में विचरते हुए, निष्कामपूर्वक प्रत्येक कर्म करने से है। याद रखो जिसका मन संकल्प रहित होता है वह आत्मस्वरूप में बना रह अपने जीवन के समस्त कर्त्तव्य कुशलता से सम्पादित कर पाता है।

संक्षेपतः सजनों कर्म के विषय में अभी तक हमने जाना कि कर्म जीवन का दूसरा नाम है, इसीलिए जब तक जीवन रहता है, व्यक्ति जाने-अनजाने किसी न किसी कर्म में रत रहता है अर्थात् मनुष्य बिना कर्म किए नहीं रह पाता। सांस लेना, सोना, भोजन ग्रहण करना, चलना-फिरना आदि कुछ ऐसे कर्म हैं, जिन्हें मनुष्य अपने जीवन में अत्यंत सहजता से करता रहता है किन्तु कर्म के इस अति सामान्य रूप का संपादन तो पशु-पक्षी भी कर लेते हैं। मानव जीवन में मात्र इतने कर्मों तक सीमित रहने वाले व्यक्ति को कर्महीन, आलसी, कायर या कामचोर ही कहा जाता है। अतः मानवीय दृष्टि से कर्मठ बनने के लिए साधना करनी पड़ती है।

कर्मठता से आशय कर्म में कुशलता, निपुणता व वीरता है। ऐसे वीर रण क्षेत्र में विजय प्राप्त करने हेतु मरने से भी नहीं घबराते। अतः कायर, बुज़दिल और कामचोर न बनो अपितु रणधीर बनो। वीरों की भांति निष्कामता से इस कर्मभूमि पर विचरो व विजय प्राप्त करो। याद रखो मनुष्य अपने चारों

पुरूषार्थों यथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि भी कर्मठ बन कर ही करता है। कर्मठ बनने के लिए अनिवार्य है कि मानव को अपने कर्म की यानि अपने गंतव्य, लक्ष्य, उद्देश्य की भली-भांति पहचान हो। यदि उद्देश्य की पहचान होगी तो रास्ते में जो भी आएगा वह तुच्छ प्रतीत होगा और ध्यान अपने लक्ष्य से नहीं हटेगा। इस तरह उद्देश्य सुनिश्चित कर, उस दिशा में प्रयास करना आवश्यक है। हम कह सकते हैं कि कर्मतत्परता, निष्ठा और निरन्तर कर्मशीलता, अपने कर्म में निपुणता यानि विशेषज्ञता प्राप्त करना तथा कार्य सिद्धि के लिए प्राणों की बलि देने के लिए भी तत्पर रहना कर्मठ बनने के लिए अनिवार्य है।

सजनों कर्मठता के इस गुण को क्रमशः बाल्यावस्था से ही विकसित करना पड़ता है। विकसित करने का पहला साधन है काम करने में रुचि यानि मन का झुकाव, लगन, उत्साह, प्रतिभा, आनंद और रस। यही नहीं कर्मठ बनने के लिए उस कार्य विशेष में विशेषज्ञता, निष्ठा, तन्मयता और समर्पण भाव भी अति आवश्यक है। इस विकास के निमित्त सबसे महत्त्वपूर्ण साधन होता है - अभ्यास। निःसंदेह बचपन में बालक अनुकरण द्वारा सीखता है, अतः जब बालक के सम्मुख इस प्रकार के उदाहरण बड़ों द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं, जिनमें वे निरंतर कर्मरत रहते हैं, अभ्यास करते हैं और कर्म में कुशलता प्राप्त करते हैं, तो ऐसे उदाहरणों को देखकर बालक भी उनका अनुकरण करने लगता है। वह भी आलस्य का त्याग कर कर्मशील बनता है। प्रेरणा, पुरस्कार, प्रशंसा आदि भी कर्म को विकसित करने के विधायक साधन होते हैं। कभी-कभी भय या लोभ का सहारा लेकर किसी

जड़ बुद्धि को कर्मठता का पाठ पढ़ाया जा सकता है। परन्तु अंतिम लक्ष्य यही होना चाहिए कि कर्म करने की आदत बन जाए क्योंकि विवशतावश कर्म करने से न तो कार्य में कुशलता आती है और न ही आनंद की प्राप्ति होती है। अतः कर्म के प्रति एक भीतरी ललक एक उत्साह की भावना का विकास होना आवश्यक है। आओ अब कर्म के बारे में संक्षेपतः जानते हैं

संक्षेपतः सजनों हम यह कह सकते हैं कि कर्म यदि जीवन की अनिवार्य स्थिति है और मनुष्य के समस्त सत्प्रयत्नों की संज्ञा है तो इन समस्त सत्प्रयत्नों को कुशलता, निपुणता, निष्ठा और समर्पण से संयुक्त करने का नाम कर्मठता है। एक कर्मठ व्यक्ति कर्म का कुशल, नैपुण्यपूर्ण और निष्ठा से संपादन करता है जबकि पलायनवादी, कायर, आलसी, कामचोर कर्म की कठोरता से जी चुराता है। अतः याद रखो कि कर्मठ के लिए संसार में कुछ भी असंभव नहीं है। कर्मठ कभी भी मार्ग में आने वाली विघ्न-बाधाओं से घबराता नहीं है वह कर्मवीर तो बहादुरों की तरह जीवन की हर ऊँच-नीच यानि सुख-दुःख व विपत्तियों का सामना साहस से करते हुए सदा सत्कर्म ही करता है। इस प्रकार उत्साह, साहस और धैर्य कर्मवीर की विशेषताएँ होती हैं। इस के निमित्त यदि कर्मवीर को अपने व्यक्तिगत व पारिवारिक सुखों का त्याग भी करना पड़ता है तो वह कदापि उसे त्यागने से नहीं सकुचाता। यहाँ तक कि कई बार इसके लिए वह अपने परिजनों और प्राणों तक की बाज़ी भी लगा देता है।

इस प्रकार सजनों कर्त्तव्य कर्मों को उत्साहपूर्वक करने वाला

व्यक्ति ही कर्मवीर होता है। इस संदर्भ में जिन कर्मों में व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, मानव जाति का हित और विकास होता है, वे कर्त्तव्य कर्म या करने योग्य कर्म कहे जाते हैं। कर्मवीर संयमपूर्वक इन सबके प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन बड़ी कुशलता व निष्ठा से करते हुए सदा महापुरुषों की आचारण-पद्धति का अनुगमन कर शास्त्रविहित उचित कर्म ही करता है। इससे कर्मवीरता की सच्ची भावना उसकी अन्तःप्रवृत्ति में प्रस्फुटित होती है और वह उससे प्रेरित हो अहंकार व स्वार्थ भावना से रहित, अकर्त्ता भाव से निष्काम कर्म ही करता है। यह ईश्वर के प्रति उसके मन-वचन-कर्म से समर्पित होने की भावना को दर्शाता है। इससे उसकी चित्तवृत्तियाँ केन्द्रित हो जाती हैं। मन चंचल नहीं होता। परिणामस्वरूप अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए वह ध्यान स्थिर हो यानि एकाग्रता से सचेष्ट रह पाता है और अंततः तेज, बल, वैभव व पुरूषार्थ द्वारा उसे सिद्ध कर पराक्रमी कहलाता है। याद रखो ऐसा बहादुर ही अनुष्टित कर्मों के मार्ग में आने वाली बाधाओं और कष्टपूर्ण स्थितियों में अविचलित रह, उनका सामना हर्षपूर्वक करता हुआ, अपने ध्येय को पूरा करता है।

कर्म के विषय में कर्मठता व कर्मवीर की विशेषताओं को जानने के पश्चात् सजनों मानव होने के नाते हमारा कर्त्तव्य बनता है कि हम विचारपूर्वक कुशलता से कर्म करते हुए मानवता की मर्यादा में बने रहें। तात्पर्य यह है कि किसी के बहकावे में आकर या देखा-देखी भी हम दुर्भाव, द्वि-भाव के प्रतीक, मानवता के विपरीत चलन जैसे वड-छोट, तेरी-मेरी, ईर्ष्या-द्वेष, वैर-विरोध इत्यादि में न फँसें। ऐसा इसलिए कह

रहे हैं क्योंकि इन कलुषित भावों के वशीभूत होकर बदनीयत इंसान चोरी, डकैती, लूटमार, शोषण, अत्याचार जैसे निंदनीय, कुत्सित व घृणित कर्म कर बैठता है। यहाँ तक कि ऐसा स्वार्थी व अपराधिक प्रवृत्ति मानव, पशु पक्षियों की ही नहीं मानवों की हत्या जैसा जघन्य अपराध तक कर बैठता है। ऐसा अधम व पतित मानव वर्षों तक यातनाएँ भुगतता है और कलंकित जीवन यापन करता है।

इस सन्दर्भ में यह भी याद रखो कि सांसारिक वस्तुओं का प्रलोभन व्यक्ति को कुकर्म और अधर्म की राह पर ले जाता है और इंसान सद्मार्ग से भटक जाता है। फलतः अंतःकरण पर अज्ञान के बादल छाने प्रारम्भ हो जाते हैं और संकल्प कुसंगी हो जाता है। इस प्रकार भ्रमित बुद्धि इंसान मनमत पर चलना शुरू कर देता है। जहाँ आशा-तृष्णा मनुष्य को छल-कपट करने के लिए उकसाती है, वहीं द्वि-द्वेष के वशीभूत होकर मानव अविचार युक्त कुकर्म करता है। काम-वासना उसे व्यभिचारी व अत्याचारी बना देती है। काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार जैसी विकार वृत्तियों के अधीन हुआ अभिमानी इंसान अपने परम कर्त्तव्य यानि जीवन लक्ष्य को ही भूल जाता है और अमीरों का अमीर होकर जगत में स्वतन्त्रता से विचरने के स्थान पर सदा कटुता, भय, दुश्चिंता, असुरक्षा व पराधीनता की भावना से ग्रस्त होकर कंगालों सा निरर्थक जीवन व्यतीत करता है।

इसके विपरीत सजनों अमर है मेरी आत्मा, आत्मा विच परमात्मा इस सत्य पर दृढ़ विश्वास रखने वाला आत्मज्ञानी, आत्मतुष्ट व धीर मनुष्य सदा सत्य-धर्म का पालन कर सुकर्म ही करता है। ऐसा विशुद्ध अन्तःकरण वाला, विवेक

बुद्धि मानव सदा निर्विकार अवस्था में बना रहता है। वह विचारवान समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार जनचर-बनचर जड़-चेतन सबके साथ, निष्पक्षता से आत्मभाव अनुरूप, सजनता का व्यवहार करता है। जानो कि सज्जनता, मित्रता, क्षमा, करुणा, दया, अहिंसा और सहृदयता जैसे श्रेष्ठ गुण आत्मभाव और एकता के प्रतीक हैं। ऐसा सभ्य और शीलवान मनुष्य ही नीतियों का पालन करने में समर्थ होता है। वह सृष्टि के प्रति अपने फर्ज़ अदा को भली-भाँति समझता है इसलिए अपना दायित्व हँस कर निभाता है। सबके प्रति आत्मीयता का भाव होने के कारण उसका कोई शत्रु नहीं होता, कोई वैरी नहीं होता। वह अजातशत्रु बेख़ौफ़ा-बेख़तरा इस जगत में निर्भयता से विचरण करता है। ऐसा नेकनीयत व समदर्शी इन्सान ईश्वरीय आदेशों का श्रद्धापूर्वक पालन करता है। वह अपनी असीम शक्ति का प्रयोग सृष्टि के कल्याण व सुख के लिए ही करता है तथा मानवीय आदर्शों के अनुरूप निष्कामतापूर्वक निरन्तर परमार्थ की राह पर चलते हुए सत्कर्मों द्वारा अपना जीवन कृतार्थ कर लेता है। इस सन्दर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है:-

इक नूँ भैणां भुलियाँ, कर्मां कष्ट दिखाए हज़ार।
इको रूप पछान लवो, कर्म न सकन कुछ बिगाड़।।
छोटी उमर कर्म करने लगे, जन्म बैठे बिगाड़।
महाबीर जी दे चरणां उत्ते डिग पवो, कर्म कटन बलधार।
जो भैणां कर्म कटने चाहो, जपो महाबीर जी दा नाम।

कर्म के सम्बन्ध में सजनों यह भी जानो कि ज्ञान और भक्ति से भिन्न यज्ञ, संस्कार आदि बाह्य धार्मिक विधान अनुसार

चलन अपनाना कर्मकाण्डी बनने की बात होती है। ऐसे कर्मकाण्डी यह विश्वास रखते हैं कि धार्मिक कर्मकाण्डों से अभीष्ट/वांछित फल प्राप्त हो जाता है। इस तरह कर्मकांड व आडम्बर युक्त भक्ति-भाव अपनाना, कामनाओं में और अधिक उलझते जाने का संकेत होता है। ऐसे कामी भक्त धीरे-धीरे माँग कर या किसी अन्य साधन द्वारा केवल सदा कुछ न कुछ प्राप्त करने के स्वभाव में फँस अंततः स्वार्थपरता की राह पर अग्रसर हो जाते हैं।

जान लो सजनों हकीकत में ऐसे इंसान कर्म करने की समुचित विधि नहीं जानते इसी कारण निष्कामता की राह नहीं अपना पाते। परन्तु विडम्बना यह है कि आज के समयकाल में परमार्थ की राह से विमुख हुआ प्रत्येक स्वार्थी इन्सान, ज्ञान और भक्ति की अपेक्षा कर्मकाण्ड को अधिक महत्त्व देता है। फलतः जगत में कर्मकाण्ड के विद्वानों यानि पुरोहितों का बोलबाला है। यह अपने आप में कवलड़ा यानि ठोकरों भरा कठिन रास्ता है। हम कह सकते हैं कि यह अज्ञान व वासना दोष से उत्पन्न कर्मों की ऐसी गाँठ या बन्धन है जिसके कारण बार-बार जन्म-मरण होता रहता है। जानो कि इन कर्मों का कभी नाश नहीं होता। ऐसा शक्तिहीन व्यक्ति अपने आप को निष्काम भक्ति भाव से सच्चाई-धर्म के रास्ते पर बने रहने में असमर्थ पाता है और इसी कमजोरी के कारण वह कृतघ्न व अत्यन्त क्रोधी इंसान चुगलखोरी, परनिंदा व हिंसा इत्यादि जैसे नीच कर्म करने वाला चंडाल कहलाता है। उसमें मनुष्यता अनुरूप कर्मठ होने के गुण यानि कर्मकुशलता का अभाव हो जाता है। इसीलिए शास्त्रविहित परोपकार के कर्म करने में असक्षम वह दुर्बुद्धि

इंसान, नेकी की राह पर नहीं बना रह पाता और इन्सानियत से भटक, बदी का रास्ता अपना बैठता है।

इस संदर्भ में सजनों संक्षेपतः यह याद रखो कि वे कार्य जो नैतिक या धार्मिक दृष्टि से शास्त्रीय विधि-विधान अनुसार कर्त्तव्य समझकर करने होते हैं, उन्हें ही कर्म कहते हैं। इन्हें स्वाभाविक कार्य भी कहते हैं। स्वाभाविक रूप से मनुष्य सकाम कर्म ही करता है। इन कर्मों का आशय यानि वासना या इच्छा के रहने का स्थान हृदय या मन होता है और वहीं से ही उन्हें पूरा करने व उनका फल प्राप्त करने की क्रिया चलती है। फल की कामना से कर्म करने वाला व्यक्ति भले ही सफल होकर कुछ विषय सुख प्राप्त कर ले किन्तु साथ ही साथ वह नई वासनाएँ भी अर्जित करता जाता है। ये वासनाएँ ही अनुकूल अवसर आने पर इंसान को पुनः कर्म करने के लिए प्रेरित करती हैं और इन्सान इन्हीं सकाम कर्मों से उत्पन्न संस्कारों के अनुसार दुःख-सुख के कारण रूप, पाप-पुण्य कमाता है। जहाँ ज्ञान और भक्ति से युक्त प्रशंसनीय कार्यों से फल के रूप में यश-कीर्ति प्राप्त होती है व अच्छे भाग्य का निर्माण होता है वहीं दुष्कर्मों के परिणाम स्वरूप उसके मन में अशान्ति पैदा करती हैं, व्यक्ति को अपयश प्राप्त होता है व उसके दुर्भाग्य का निर्माण होता है।

याद रखो कि हमारे इस मानव जीवन का कारण पूर्व जन्म की एकत्रित वासनाएँ ही हैं और उन वासनाओं का कारण पूर्व जन्म में हमारे द्वारा किए हुए कर्म थे। इसी तरह इस जन्म में किए हुए सकाम कर्म, वासना बनकर हमारे अगले जीवन को निर्धारित करेंगे। इस प्रकार जीव पूर्व जन्मों में व इस जन्म में किए हुए सकाम कर्मों के फल भोगते हुए

निरन्तर भूलोक में आवागमन के चक्र में बन्धनमान रहता है और जीवन के सर्वोत्तम पद मोक्ष को प्राप्त नहीं कर पाता। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

कर्मां दा तूं कोट उसारें, कोट पवे तां चीकां मारें।

हमारे साथ ऐसा न हो इसलिए आवश्यक है कि हम ध्यान साधना द्वारा मन, वचन और कर्म से सच-धर्म की भक्ति करें व सुदृढ़ता से निष्काम रास्ते पर बने रहें। हम संकल्परहित हो, निष्काम भाव से कर्म करने के साधन-मार्ग, युवावस्था के भक्ति-भाव को ही कर्मयोग मानें व समभाव-समदृष्टि की युक्ति का विधिवत् अनुशीलन करने में कुशलता प्राप्त करने हेतु प्रसन्नचित्तता से इसके प्रति यत्नशील बने रहना सुनिश्चित करें। इस प्रकार कर्तापन के अभिमान से रहित हो, निष्कामतापूर्वक कर्म करने वाला व्यक्ति बन, कर्मफल की अधीनता से स्वतन्त्र रहें यानि किस्मत का भांडा फोड़ दो।

इस सन्दर्भ में सजनों हमें याद रखना है कि भगवान का आदेश केवल साधारण कर्म ही नहीं अपितु श्रेष्ठतम कर्मों का प्रतिपादक है। इसलिए हमारे लिए बनता है कि हम आत्मज्ञानी बनने हेतु, उस सर्व विश्व के रचनाकार ईश्वर से सत्य ज्ञान व आत्मिक बल प्राप्ति हेतु खुद को प्रेरित करें। इस प्रकार उसी निज ज्ञानस्वरूप में स्थित रह ओजस्वी व तेजस्वी बन यानि मन में दीप्ति, वीरता, उत्साह और आवेग का भाव/गुण उत्पन्न कर जीवन में आने वाले हर आघात यानि कष्ट-क्लेश से अप्रभावित यथा उसी ओज से युक्त रहें। याद रखो यही ओज एक मानव के पराक्रमी होने की आध्यात्मिक शक्ति होती है जो जीवन के आनन्दमय मार्ग में विघ्न-बाधाएँ पैदा करने वाले लोगों को परास्त करने व हृदय को सचखण्ड

अवस्था में साधे रखने में सक्षम है और एक मानव के तेजस्वी होने का सूचक है। ऐसे मानव का आभामण्डल प्रकाशित रहता है और वह निज ज्योतिर्मय परमात्मा स्वरूप को जानने वाला तेजधारी होता है। ऐसा कान्तियुक्त शक्तिशाली मानव ही वीर, प्रतापी प्रभावशाली और कुलीन होता है। तभी तो ऐसे ओजस्वी व तेजस्वी युग पुरुषों के नाम आज भी प्रसिद्ध हैं।

अंततः सजनों वेदों में कहा गया है कि सम्पूर्ण विश्व के रचनाकार भगवान, सबको श्रेष्ठतम कर्म करने हेतु बल प्रदान करें ताकि रोगों से होने वाली शारीरिक पीड़ा से बचे रह तथा बलवान होकर सब उत्तम सन्तान युक्त तथा शारीरिक व मानसिक रोगों से रहित होकर ऐश्वर्यशाली बनें। इस संदर्भ में सजनों हम भी ऐसे बनकर इस जगत में निष्काम कर्म करते हुए कर्मफल से बचे रह सकें इस हेतु आओ जगत को उत्पन्न करने वाले उस सर्व शक्तिमान भगवान से प्रार्थना करते हैं कि वह हमें श्रेष्ठतम कर्म करने के लिए पर्याप्त ज्ञान, बल व बुद्धि प्रदान करें ताकि हम अहिंसनीय होकर निष्काम कर्म करें।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 25 अक्तूबर 2015 का सबक

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

सजनों हम प्रति रविवार यह प्रार्थना करते हैं। हमारी यह प्रार्थना स्वीकार हो, इस हेतु विचारने की बात यह है कि हम इस प्रार्थना के अनुकूल अपने आप को ढ़ालने के यत्न में कितने सफल हुए हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि कही यह प्रार्थना करना-करवाना मात्र शपथ क्रिया की भांति एक औपचारिकता यानि दुनियावी नीति-नियम तो नहीं बनकर रह गया। यदि ऐसा ही है तो हम सबसे निवेदन करते हैं कि फुरनों में गलतान होकर वांछित परिणाम प्राप्त करने के प्रति बेपरवाह मत होवो। इसके स्थान पर जो भी अपना घर सतयुग बनाने व परमपद पाने हेतु करना उचित है, वह दिल

से करो यानि पूरे भाव में आकर निर्मल हदय से युक्तिसंगत करो। इस हेतु कुछ अनुचित भाव-स्वभाव त्यागने भी पड़े तो वह त्याग दिखाने से न सकुचाओ। इस तरह व्यक्तिगत रूप से अपना सुधार करके अपना नतीजा आप लो। इसी में सजनों हम सबकी भलाई है। आओ अब कर्म के विषय में आगे समझते हैं:-

सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कर्म के सम्बन्ध में हमें समझा रहा है कि:-

उत्तम दा सीस ताज सुकर्म,
उत्तम दा अटल राज सुकर्म।।
सुकर्मों में उत्तम जकडता है दुःख क्लेश-कष्ट में आवे।
तो भी सुकर्म वह छोडता नहीं।।
सच वर्त्ते सच वर्त्त वर्त्तावे,
सुकर्मां नूं धारण कर, फिर किसी से ओ डरता नहीं।

अर्थात् तीन प्रकार के इन्सान होते हैं। एक उत्तम, दूसरा मध्यम, तीसरा मन्द अधम। जो मन्द अधम होता है वह तो सुकर्म करता ही नहीं, जो मध्यम होता है वह सुकर्म तो पकड़ लेता है मगर कष्ट-क्लेश तथा दुःख आने पर छोड़ देता है। उत्तम वह है जो कष्ट-क्लेश, दुःख-सुख में भी सुकर्मों को नहीं छोड़ता यानि सच्चाई-धर्म में स्थिर रहता है और आत्मतुष्टता से अपने फ़र्ज़ अदा को धीरता से हँस कर निभाता है। दुनियां वाले उस पर कितना ही घेरा क्यों न डाले वह किसी के घेरे में नहीं आता। हकीकत में ऐसा बहादुर इन्सान ही भूत-भविष्य की चिंता से मुक्त रह, वर्त्तमान में जीवन जी पाता है। इस तरह एकता व एक

अवस्था में स्थिरता से बने रह वह आत्मज्ञान अनुसार निष्काम कर्म करता है और हर समय मन को परमेश्वर में लीन रखते हुए इन्द्रियों सहित मन पर कुशलता से हकुमत चलाता है। इस तरह थोड़े दिनों में परमेश्वर के साथ मेल खाकर तीनों कालों की पहचान करके त्रिकालदर्शी हो जाता है और आनन्दमय जीवन व्यतीत करता है।

इस सन्दर्भ में सजनों जगत की रचना, पालन-पोषण व कल्याण/संहार करने वाले ब्रह्मा, विष्णु व महेश का सर्वोत्तम उदाहरण हमारे समक्ष ही है जो सृष्टि के आरम्भिक काल से ही अपने-अपने उत्तरदायित्वों को निर्विघ्न निष्कामता से धर्मसंगत सम्पन्न करते आ रहे हैं। किंचित् मात्र भी परिवर्त्तनशील सृष्टि के प्रभावों से प्रभावित हो उनकी वृत्ति डगमगाती नहीं यानि परिपूर्ण सम अवस्था में बने रह वह निर्विकारता व निर्लिप्तता से अपना कार्य दक्षता से करते आ रहे हैं। क्या आप जानना चाहते हैं वह अपना यह महान कार्य निर्विकारता व कुशलता से कैसे कर पाते हैं?

हाँ जी।

तो जानो कि अपने कर्त्तव्यों का कुशलता से सम्पादन करने हेतु ये त्रिदेव यानि ब्रह्मा, विष्णु, महेश सर्वश्रेष्ठ युवावस्था की भक्ति यानि समभाव-समदृष्टि की युक्ति का अनुशीलन कर, जगत के प्रति अपना हर क्रियाकलाप निज परमात्म स्वरूप में स्थित रहकर निष्कामता व अकर्त्ता भाव से सम्पन्न करते हैं। अन्य शब्दों में इस युक्ति की प्रवानगी द्वारा ही वे समभाव नजरों में कर, सजन वृत्ति अनुसार इस ब्रह्माण्ड को रचते, पालना करते व उसका कल्याण तथा संहार करते

समय, सदैव अपने नित्य स्वरूप यानि एकता व एक अवस्था में बने रह पाते हैं। यह अपने आप में मन को संकल्प रहित व ख़्याल को अफुर अवस्था में ध्यान से साधे रखने की बात है। याद रखो तभी वे निष्पाप, निर्वैर, निर्भय, व निरासक्त होकर कर्त्तव्यपरायणता का श्रेष्ठतम उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इसीलिए तो ये परमात्मा के प्रतीक भगवान स्वरूप व गुरु के समान आदरणीय माने जाते हैं।

इस विवेचना से सजनों यह स्पष्ट होता है कि त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी युवावस्था की भक्ति यानि समभाव-समदृष्टि की महान युक्ति के अनुसार, रूप-रंग-रेखा रहित परमेश्वर के शब्द विचार अनुसार, 'ईश्वर है अपना आप' यानि आत्मा में परमात्मा की अनुभूति कर, अपने असलियत ज्योति स्वरूप में स्थित रह, निष्कामता से अपना कर्त्तव्य कर्म करने का धर्म, पूर्ण निष्ठा से निभाते हैं। इसीलिए 'विचार ईश्वर है अपना आप' के ब्रह्म भाव पर स्थिर बने रहने के लिए शब्दों के अर्थों की प्रतीति कराने वाली वृत्ति को ही, मनुष्यों की विवेक बुद्धि व उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल होकर इस जगत में आत्मीयता व निर्लिप्तता से निर्भय, निर्वैर, निरासक्त, निष्कलंक विचरने का हेतु माना जाता है। अतः सजनों यह मान लो कि इन त्रिदेवों के शब्द गुरु से प्राप्त विचारों को धारण कर, आजीवन उसी विचारधारा में स्थिर बने रहने में ही हर जीव का कल्याण है। इसलिए तो सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ रूप, रंग युक्त स्वरूपों के स्थान पर, उन द्वारा शब्द विचार अनुरूप जीवन जीने के सिद्धान्तों की, ध्यान से साधना करते हुए, वैसा ही नेकी का जीवन जीने के लिए प्रेरित कर रहा है। याद रखो सजनों जो इन्सान शब्द विचार

पर सुदृढ़ता से स्थिर रहता है वह जीवन में प्राप्त होने वाले सुखों व दुःखों के स्वरूप को प्रभाव सहित, सूक्ष्मता से जान लेता है और उसे शीघ्र ही इस नश्वर जगत से वैराग्य हो जाता है। तभी तो फिर वह न दुःख में फँसता है न सुख में। ऐसा विवेकी ही समाधि अवस्था को प्राप्त करता है। इसलिए सजनों शब्द विचार पर सुदृढ़ता से खड़े रह शान्ति व आनन्द से जीवन जीने की इस कुदरती कला को सीखो। इस हेतु समभाव-समदृष्टि के सबक की विधिवत् पढ़ाई व गुढ़ाई करते हुए आवश्यक योग्यता प्राप्त करो। जान लो सजनों यही युवावस्था के भक्ति भाव में बने रहने की बात है और यही इस जगत में अपने कर्त्तव्यों का यथा पालन करते हुए, कर्मभोग व कर्मरेखा दोनों से बचे रह, अपने जीवन के उद्देश्य को प्राप्त करने का एकमात्र अचूक तरीका है।

इस तरह समभाव-समदृष्टि की युक्ति की, जीवन उद्धार हेतु महत्ता को समझते हुए, हम मानवों के लिए बनता है कि, इन त्रिदेवों को जीवन निर्माण, पालना व कल्याण का आदर्श रूप मान, उन्हीं की तरह समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार, परस्पर सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव करते हुए, निज परमात्म स्वरूप में स्थिर बने रहे। इस तरह अपने जीवन के कर्त्तव्यों का पालन, स्थिर बुद्धि होकर, अपने बलशाली मन, ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों द्वारा, सम्पूर्ण ब्रह्मांड यानि जनचर, बनचर, जड़-चेतन के सुख के निमित्त, निष्कामता से सम्पन्न करना सुनिश्चित करें। सजनों यही जीवन लक्ष्य को सरलता व सहजता से प्राप्त करने का एकमात्र तरीका है। सभी को इसके प्रति प्रेरित करने के लिए हम सबको बताना चाहते हैं कि-

1. ब्रह्मविद्या के विद्वान, अपने वास्तविक परमात्म स्वरूप को जानने वाले, ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मा, तत्वज्ञान यानि ब्रह्म, आत्मा और जगत संबंधी यथार्थ ज्ञान के प्रयोग द्वारा, ठीक विधि के विधान अनुसार, सुन्दरता के प्रतीक इस ब्रह्ममय ब्रह्मांड का, परिपूर्णता से निर्माण करते हैं। अतः आप भी संतोष-धैर्य पर समरसता से बने रह, सच्चाई-धर्म के रास्ते पर स्थिर बने रहने हेतु, समभाव-समदृष्टि के सबक को आत्मसात् करो। इस प्रकार स्थिर बुद्धि हो, अपने मन को मोह-माया से मुक्त व चित्त को प्रसन्न रखते हुए, उसी विधि के विधान अनुसार निष्काम भाव से परोपकार करते हुए, अपने व्यक्तित्व व जीवन का सुन्दर निर्माण करना सुनिश्चित करो।

2 परमात्म स्वरूप, सर्वव्यापी परमतत्व, शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी श्री विष्णु भगवान जैसे जगत की पालना करते हैं वैसे ही पलो, फलो-फूलो व एकता एक अवस्था में बने रहो। इस हेतु युवावस्था के भक्ति भाव की ताकत से, ध्यान को स्थिरता से आत्मतत्व यानि परमात्म-स्वरूप में साधे रख, आत्मज्ञान प्राप्त कर, आत्मतुष्ट बने रहो व परोपकार प्रवृत्ति में ढलने हेतु स्वार्थ त्याग दो। इस तरह निष्काम रास्ते पर चलते हुए, अपना हर कदम सच्चे घर की तरफ धीरता से बढ़ाते चलो। इस प्रकार ब्रह्मज्ञानियों की तरह, ईश्वर के हुक्मानुसार, उसी के निमित्त, इस जगत में सब कुछ अकर्त्ता भाव से करते हुए, तीनों तापों से मुक्त रह, शांति शक्ति के हथियार को थामे रखना का पुरूषार्थ दिखाओ। याद रखो यह सतवस्तु की रमज़ समझ कर, निर्भयता व निर्विकारता से जीवन जीने की बात है।

ओ३म् परमात्म स्वरूप महेश जिस प्रकार जीवों का कल्याण कर उन्हें मुक्ति प्रदान करते हैं, उसी प्रकार समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार, कलियुग में तीनों तापों से संतप्त मानवों को, इन तापों के दुष्प्रभावों से उत्पन्न होने वाले, अन्तर्द्वन्द्व व बहिर्द्वन्द्व से मुक्ति प्रदान करने का, परिश्रम दिखाओ ताकि वे भी जीवन उद्धार कर जन्म-मरण के चक्रव्यूह से छुटकारा पाएं। इस हेतु उनके अन्दर समभाव-समदृष्टि की युक्ति को अपनाने के प्रति रूचि उत्पन्न करने का पुरूषार्थ दिखाओ व उस सबक को पढ़ने-सुनने, समझने व उसी विचारधारा अनुसार चलन अपनाने के लिए प्रेरित करो। याद रखो यह अपने आप में सबसे उत्तम परोपकार है। यह सद्प्रेरणा द्वारा अपनी वीरता और पराक्रम से उन्हें परिचित करा, महान आत्मा बनाने की बात है।

इस संदर्भ में सजनों याद रखो कि यदि हम इन त्रिदेवों के चलन के अनुसार, अपना विधिवत् निर्माण, पालना व कल्याण चाहते हैं, तो हमें आत्मज्ञान प्राप्त कर, उसी सत्यज्ञान अनुसार, सदाचारिता का जीवन जीने में ही संतोष रखना होगा। तभी हम अपने मन पर वश रखते हुए, व हृदय की पावनता सुनिश्चित करते हुए, उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल हो, वेद विदित जीवन शैली पर अडिग बने रहने का, सामर्थ्य जुटा पाएंगे। जानो यही सत्य-धर्म के रास्ते पर धीरता से बने रह, निष्काम कर्म करते हुए, जगत से निर्लिप्त, निज स्वरूप में स्थिर बने रहने की शुभ बात है।

जान लो कि इसके विपरीत, तीनों तापों से ग्रस्त मानव, अज्ञान के कारण अहंकार व सांसारिकता में उलझ, कुकर्म-

अधर्म के रास्ते पर चलते हुए, रोता झुखता रहता है और अपने ही हाथों अपना संहार कर बैठता है। यह अनमोल मानव जीवन गँवा, मौत को अंग-संग देखते हुए, भयावह परिस्थितियों में जीवन जीने व अन्ततः मौत को प्राप्त हो, मृतलोक में ही अटकने की बात है। याद रखो इसी कारण ही ऐसे मानव न तो अपने जीवनकाल में नेक इन्सान बन घर सतयुग बना सकते है और न ही अपना जीवन लक्ष्य यानि परमपद को प्राप्त कर सकते हैं। यह जीवन हारने की बात होती है।

अतः सजनों इन परमात्व स्वरूप त्रिदेवों से शिक्षा लेते हुए, आत्मतुष्ट बने रह, धीरता व निपुणता से अपने जीवन लक्ष्य सिद्ध करने हेतु, समभाव-समदृष्टि के सबक को भली भाँति पढ़ो-समझो व निष्काम कर्म प्रणाली अनुसार जीवन जीना सीखो। तभी वांछित परिणाम प्राप्त कर सकोगे और परमानन्द की अनुभूति होगी। इस शुभ कार्य हेतु अविलम्ब, अविचार छोड़, शब्द विचार पकड़ लो और ख़्याल ध्यान वल व ध्यान प्रकाश वल रखते हुए, दिव्य दृष्टि व समदृष्टि के सबक अनुसार आचार, व्यवहार अपनाकर उस पर समभाव से बने रहना सुनिश्चित करो।

इस सन्दर्भ में सजनों यह जान लो कि समभाव-समदृष्टि का सबक अपने आप में वह सत्यज्ञान है जो एक मनुष्य को जगत में विचरते हुए तीनों तापों यथा अध्यात्मिक, अधिभौतिक व अधिदैविक से मुक्त रहने की युक्तिसंगत दिशा व सामर्थ्य प्रदान करता है। सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार सजनों जिनको इन तीनों तापों में से कोई ताप सताता है, वे विश्राम नहीं पा सकते। अतः जिनको तीनों ताप

सताते हैं उन्हें यह विचार करना होता है किः-

1. अध्यात्मिक ताप यानि जन्म का रोग किस तरह मिट सकता है व जीवन किस तरह बन सकता है।

2. अधिभौतिक ताप यानि मन की अशान्ति किस तरह मिट सकती है और वह पुनः किस तरह शान्ति को प्राप्त हो सकता है।

3. अधिदैविक ताप अर्थात् देवताओं को पूजना और आज यह व्रत रखना, कल वह व्रत रखना, इस बाल अवस्था के भक्तिभाव से मुक्ति प्राप्त कर जीव को किस तरह विश्राम मिल सकता है।

याद रखो सजनों ये तीनों ताप इन्सान को शारीरिक व मानसिक तौर पर रोगी बना, उनका आत्मबल व आत्मविश्वास तोड़ देते हैं। फलतः ऐसा मानव फुरनों व संसारी बातों के कनरस में फँस अपने मन को ईश्वर में लीन नहीं रख पाता। इस परिस्थिति में जीव की विश्राम अवस्था भंग हो जाती है और इसी परेशानी के कारण वह अचेतन अवस्था को प्राप्त होता है। जान लो ऐसा इन्सान ही द्वि-द्वेष, निंदा-चुगली व मनगढंत कर्मकांडो आदि के नकारात्मक अविचारी रास्ते पर अग्रसर होता है। इसी परेशानी से बचने हेतु फिर वह शास्त्रों को पढ़ने व उन्हें सुनने के कनरस में जा फँसता है। परन्तु इन तीनों तापों के कारण उत्पन्न विकृतियों से बचने का समाधान लेने में फिर भी कामयाब नहीं हो पाता। इस प्रकार वह तमाम यत्नों के बावजूद भी विश्राम नहीं पा सकता।

याद रखो सजनों इन तीनों तापों रूपी शूलों की चुभन अति कष्टदायक व हृदय में तीव्र वेदना उत्पन्न करने वाली होती है। इन तीनों शूलों का प्रभाव ही जीवन लक्ष्य प्राप्ति का कार्य सिद्ध करने में बाधक सिद्ध होता हैं और इन्सान को अन्तर्द्वन्द्व में फँसा आशंकाओं और दुःखों में उलझा कमजोर बना देता हैं। यह संतोष व धैर्य छूटने पर, कायरों की भांति, दुष्ट भाव-स्वभावों के कारण किए हुए दुष्कर्मों के फलस्वरूप, सूली पर चढ़ कर मरने की बात होती है। सब मानेंगे कि यह अपने आप में अपना व सबका अशुभ करने का संस्कार होता है जो धारण करने योग्य नहीं है। इन तीनों तापों की चुभन से बचे रहने हेतु ही तो वेद शास्त्र अनुसार ब्रह्मचर्य आश्रम के दौरान ही बच्चों को आत्मिक ज्ञान प्रदान करने का प्रावधान है ताकि युवावस्था आने तक यानि गृहस्थाश्रम में प्रवेश से पहले ही वे आध्यात्मिक, भौतिक व दैविक ज्ञान धारण कर इतने विद्वान हो जाएँ कि आधि-व्याधि के रोग उन्हें इन तापों के रूप में न सता सकें।

सजनों यह तीनों तापों के शूलों के प्रभावो से मुक्त रह अपना व सबका कल्याण करने की सामर्थ्य प्राप्त करने हेतु आवश्यक है। जानो कि युवावस्था के इसी भक्ति भाव यानि समभाव-समदृष्टि की युक्ति को अपना कर तद्नुरूप बने रहने वाला सजन ही अपना जीवन सर्वकल्याण के निमित्त लगा, मोक्ष पद को प्राप्त होता है। यह ही एक मनुष्य के लिए निष्पाप जीवन जीने का कुदरती विधान है। अतः सजनों जिस आधार पर सतयुग की संस्कृति स्थापित हुई, विष्णु भगवान की उसी विचारधारा को अपनी व जगत के निर्माण,

पालना व कल्याण हेतु अपनाओ। इस संदर्भ में अब सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ अनुसार ध्यान से सुनो कि सतवस्तु में क्या होता है-

सजन दयालु श्री रामचंद्र जी के मुख के शब्द

हम है कलाधारी, हम हैं खेल-खिलाड़ी,
हम है लीलाधारी कुल सगली जोत हमारी।
कुल सगली जोत हमारी, कुल सगली जोत हमारी।
हम है लीलाधारी कुल सगली जोत हमारी।।

सतवस्तु में हम प्रगटेंगे, सतवस्तु में हम प्रगटेंगे।
प्रगटेंगे कलाधारी, हम प्रगटेंगे, हम प्रगटेंगे, हम प्रगटेंगे।
प्रगटेंगे कलाधारी, प्रगटेंगे कलाधारी,
प्रगटेंगे कलाधारी, हम प्रगटेंगे।।

हम नेहकलंक लक्ष्मी नारायण प्रगटेंगे,
प्रगटेंगे चतुर्भुजधारी, हम है कलाधारी।
हम है कलाधारी हम है कलाधारी,
प्रगटेंगे चतुर्भुजधारी, हम है कलाधारी।।

सतवस्तु में सत बोलचाल,
सत बातचीत करनगे सजन नर नारी, हम है कलाधारी।
हम है कलाधारी हम है कलाधारी,
सत बातचीत करनगे सजन नर नारी, हम है कलाधारी।।

हमारी कला नाल हर वस्तु उपजेगी,
कला नाल उपजेगी फुलवाड़ी, हम हैं कलाधारी।
हम है कलाधारी हम है कलाधारी,
कला नाल उपजेगी फुलवाड़ी, हम है कलाधारी।।

कला हमारी हम ही जाने,
हमरी रमज़ कोई विरला पहचाणे।
पहचाणे ओ सजन जैं उमरां हमारे संग गुज़ारी,
हम हैं कलाधारी।
हम है कलाधारी हम है कलाधारी,
पहचाणे ओ सजन जैं उमरां हमारे संग गुज़ारी,
हम है कलाधारी।।

इको दी है मानता इको दी है पूजा करेगी ओ नगरी सारी,
हम है कलाधारी।
हमरी कला जगत तों है न्यारी, हम हैं कलाधारी।
हम है कलाधारी हम है कलाधारी,
हमरी कला जगत तों है न्यारी, हम है कलाधारी।।

हमरी कला नाल सतवस्तु दा बगीचा प्रफुल्लत रहेगा।
हमरी कला दिखाएगी युवावस्था नर नारी,
हम हैं कलाधारी।
हम हैं कलाधारी, हम हैं कलाधारी,
हमरी कला दिखाएगी युवा अवस्था नर नारी,
हम हैं कलाधारी।।

आद् अन्त प्रकाश रहा हूँ,
प्रकाशूं कुल नगरी सारी, हम हैं कलाधारी।
हम है कलाधारी हम है कलाधारी,
प्रकाशूं कुल नगरी सारी, हम हैं कलाधारी।।

हमरी कला नाल खेती बाड़ी उपजेगी,
हमरी कला नाल उपजेगी फुलवाड़ी, हम हैं कलाधारी
हम है कलाधारी हम है कलाधारी,
हमरी कला नाल उपजेगी फुलवाड़ी, हम हैं कलाधारी।।

ध्वनिः- चन चढ़या सूरज होया जे उदय, सजनों चन चढ़या। चन चढ़या कुल आलम देखे, समभाव दी होसवे फ़तह, सजनों चन चढ़या।

जैसे कि अभी सुना है, ठीक उसी विधि के विधान अनुसार जब प्रत्येक नर-नारी ने जीवन-प्रणाली अपनाई और उन्हीं विचारों को ध्यान से अपने आचार-व्यवहार में साधे रखते हुए, आत्मीयता के भाव से जीवन जीने का पराक्रम दिखाया वही समयकाल सतयुग कहलाया। हमें भी उन्ही की तरह, सच्चाई-धर्म के दो मन्त्र रटते हुए, इस शरीर रूपी घर को सतयुग बनाना है व उसी व्यवस्था में यथा बने रहने हेतु अपने मन, बुद्धि व चित्त को निर्मल रखते हुए, अंतःकरण की स्वच्छता सुनिश्चित करते हुए बाल अवस्था के भक्ति-भावों के अनुसार दोषपूर्ण क्रियाकलाप करने से बचे रहना है। याद रखो ऐसा सुनिश्चित करने पर ही सतयुगियों की तरह हम भी विचार, सत् ज़बान रखते हुए एक दृष्टि व एकता महान के प्रतीक बन सकते हैं।

इस प्रकार एक अवस्था से जगत जहान में अकर्त्ता भाव से निष्काम कर्म करते हुए निज यथार्थ निर्विकारी स्वरूप में स्थित रह बाल अवस्था के भक्ति भावों जैसे जप-तप, सिमरन, भजन व बन्दगी आदि जैसे कठिन और स्वार्थप्रद रास्ते से बचे रह युवावस्था के भक्ति-भाव से अपने हृदय को प्रकाशित रख परमेश्वर की कला को समझने के साथ-साथ सतवस्तु की रमज़ भी जान सकते हैं। इस प्रकार दिव्य दृष्टि का सबक प्राप्त कर व अपनी असलियत को पहचान, निज के सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान व सर्वज्ञ होने का बोध करते हुए, जनचर-बनचर व जड़-चेतन में उसी दर्शन का अनुभव करते हुए परिपूर्णता से समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार

अपने जीवन कर्त्तव्य निभाते हुए निर्भय, निर्वैर, निर्विकार, निरासक्त व निष्कलंक बने रह, सुरत को शब्द में लीन रख, परोपकार जैसी नेक कमाई कमा सकते हैं। हमें ऐसा बनने में सफलता प्राप्त हो उसके लिए हमें संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म, सम, निष्कामता व परोपकारता के शब्दिक अर्थों को सूक्ष्मतः यादगीरी में रखते हुए अपने आज तक अपनाए स्वभावों के टेम्प्रेचर को सम अवस्था में रखने का पुरूषार्थ दिखाना होगा। यह उत्तम कार्य कैसे सिद्ध करना है, उसके बारे में आवश्यक मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए आगामी कक्षाओं में तत्पर रहें।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।



सन्तोष -(1)

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव कर एक अच्छे इन्सान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

आज हम सब को प्रसन्नचित्त होकर बैठना है क्योंकि आज के शुभ दिन मानवीय मूल्यों के मुख्य आधार–संतोष के विषय में बातचीत होनी है। संतोष अपनाने से सजनों शान्ति और शक्ति तो मिलती ही है, साथ ही सुमति भी प्राप्त होती है। फलस्वरूप इन्सान अपने आत्मिक, मानसिक व शारीरिक बल के प्रभाव से, इन्सानियत में मज़बूत बना रह पाता है यानि किसी भी कारण व परिस्थितिवश वह मानवता-धर्म से नहीं गिरता। अतःसद्चरित्र बनने हेतु नेकनीयती से संतोष का प्रतीक बनने के इस कार्य का शुभ आरम्भ करो। अब सब

सावधान हो जाओ-

सन्तोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म यह चार स्तंभ हैं। सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार आज के कलुषित वातावरण के प्रभाव से अधिकतर मानवों के मन में काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि जैसे विकारों के पनपने से जो मानवता के चार आधार स्तंभ यथा सन्तोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म, सवाल बन कर रह गए हैं, अब उन्हें हल करने का पुरुषार्थ दिखाना है। याद रखो अगर ये चार सवाल हल हो जाते हैं तो फिर सम का कोई सवाल नहीं रहता। सम तो वह मानसिक अवस्था है जिससे समभाव स्वतः नज़रों में रहता है व इन्सान के अन्दर समदृष्टि का गुण विकसित होता है। इसलिए इन चार सवालों को हल कर, विधि के विधान अनुसार इस व्यवस्था पर स्थिर बने रहो और निष्कामता के रास्ते पर चलते हुए परोपकार कमा आनन्दमय जीवन व्यतीत करना सीखो व सबको सिखाओ।

अभी तक सजनों हमने क्रमानुसार ब्रह्म, प्रकृति, जीव, जगत व कर्म के विषय में सविस्तार जाना। अब एक जीव को इस जगत में आने के पश्चात् अपने असलियत ब्रह्म स्वरूप में बने रह, निस्वार्थता से अपने कर्त्तव्य-कर्म सम्पादितकरने के लिए किन दिव्य गुणों को अपनाने व उनका वर्त्त-वर्ताव करने की आवश्यकता पड़ती है इस विषय में जानेंगे। सबकी जानकारी के लिए ये दिव्य गुण हैं संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म, सम, निष्कामता व परोपकार। क्रमानुसार इस श्रृंखला में सर्वप्रथम आता है संतोष। आज इसी के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। अतः अब सब सतर्क होकर सुनें व समझें।

सजनों इस संसार में असंख्य पदार्थ यानि वस्तुएँ हैं। ज्ञानेन्द्रियों के उन वस्तुओं के सम्पर्क में आने पर उन की प्राप्ति की इच्छा हमारे मन में स्वभावतः उठती है क्योंकि हम सब उनका सुख भोगना चाहते हैं। वह सुख फिर रस में बदल जाता है और इंसान को अपने अधीन कर स्वार्थपर बनाता है।

यहाँ हमें समझना है कि वस्तु विशेष को प्राप्त करने की इच्छा हमारे अन्दर तरह-तरह की कामनाएँ जाग्रत कर उन की पूर्ति के साधन जुटाने के लिए उकसाती रहती है। उकसाहट में आने वाला इन्सान हर तरह से कमजोर होता है। यह सिलसिला उस वस्तु विशेष को प्राप्त करने तक ही सीमित नहीं रहता। एक इच्छा की पूर्ति होते ही दूसरी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा हमें सताने लगती है। हम भूल जाते हैं कि इन अनन्त पदार्थों को प्राप्त करने की चेष्टा में हमारी जीवनलीला समाप्त हो जाती है पर इच्छाएँ यानि कामनाएँ कभी समाप्त नहीं होती।

तभी तो अपूर्ण इच्छाओं की पूर्ति न केवल इस जन्म में बल्कि जन्म-जन्मांतरों तक मन में छिपी बुरी वाशनाओं व संस्कारों के रूप में हमें सताती रहती है। वर्तमान परिस्थिति ही असन्तोष है जो अतृप्ति, अप्रसन्नता, अधीरता, झूठ, चोरी, प्रतिस्पर्धा, हीन भावना, निराशा, चिंता, तनाव आदि विकारों को मन में पनपने का अवसर प्रदान करती है। वास्तव में असंतोषी व्यक्ति यह भूल जाता है कि सुख की प्राप्ति, कामना की पूर्ति में नहीं अपितु सच्चे सन्तोष की प्राप्ति में है। अतः मानवता में बने रहने हेतु सन्तोष के महत्त्व को हर पहलू से समझना है। हम कह सकते हैं कि अपने जीवन के

मूल लक्ष्य से भटक कर दिशाहीन इच्छाओं की पूर्ति के पीछे भागना असंतोष के पनपने व बढ़ने का मूल कारण है। ऐसा असन्तोषी इन्सान अपनी विवेकशक्ति का इस्तेमाल ठीक से नहीं कर पाता। इसी कारण कभी भी परितृप्त व शान्त नहीं हो पाता। इस संदर्भ में आओ अब संतोष को समझते हैं।

प्रश्न- सन्तोष का शाब्दिक अर्थ क्या है?

उत्तर- संधिविच्छेद करने पर ज्ञात होता है कि सन्तोष शब्द की उत्पत्ति 'सम्' उपसर्ग में तुष् धातु व घञ प्रत्यय के योग से हुई है। अर्थात् सन्तोष उ सम् अ तुष् अ घञ प्रत्यय।

यहाँ सम् उपसर्ग का अर्थ है भली-भाँति, पूर्ण, अत्यन्त, समान, एक जैसा और
तुष् धातु का अर्थ है तुष्ट, प्रसन्न, शांत व परितृप्त।

यदि ध्यान से समझें तो स्पष्ट होता है कि सन्तोष शब्द में तुष् धातु के साथ सम् उपसर्ग के लगे होने का विशेष महत्त्व है। यह सम्यक्, भली-भाँति, पूर्णतया व अच्छी प्रकार से आदि अनेक अर्थों के साथ-साथ आत्मा में परमात्मा को व्यक्त करता है। इस सन्दर्भ में जो सत्य या शाश्वत होता है, वही पूर्ण होता है। इस प्रकार सन्तोष से एक तो उस मनः स्थिति का परिचय मिलता है, जो पूर्ण काम होने पर प्राप्त होती है दूसरा यह हर हालत में प्रारब्ध अनुसार जो प्राप्त हुआ है, अपनी उसी हैसियत में पूर्णतः तुष्ट, प्रसन्न, शान्त व एकरस बने रहने के भाव की अभिव्यक्ति करता है। तभी तो ऐसा इन्सान अपनी विवेकशक्ति का ठीक से इस्तेमाल कर पाता है यानि सदा शान्त व परितृप्त रहता है।

प्रश्न- सामान्य अर्थों में सन्तोष की परिभाषा क्या है?

उत्तर- सामान्य अर्थों में, भौतिक सम्पन्नता, ठाट-बाट के प्रदर्शन की वासना को त्याग कर अपनी आवश्यकताओं को सीमित रखते हुए सुखी जीवन जीना ही संतोष है। संतोषी व्यक्ति न तो किसी बात की कामना करता है और न ही शिकायत अपितु हर हालत में प्रसन्न बना रहता है। पुराणानुसार धर्मानुष्ठान से सदा प्रसन्न रहना और सुख-दुःख में भी आतुर न होना संतोष कहलाता है। इस तथ्य को सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में भी इस प्रकार कहा गया हैः-

'दुःख-सुख जेहड़ा सम कर जाणे,
असलियत अपनी ओ पहचाणे।
असलियत अपनी जो पहचाण गया,
हां, हां, हां, हां, हां, हां।
ओही परमधाम दियां मौजां माणे' ।।

अतः याद रखो सजनों संतोष में बने रहने से ही आत्मसंतोष उत्पन्न होता है।

प्रश्न- आत्मसंतोष से क्या अभिप्राय है?

उत्तर- आत्मसंतोष से तात्पर्य मन की उस वृत्ति या अवस्था से है जिसमें मनुष्य देश, काल, और परिस्थिति से प्रभावहीन रह, वर्तमान दशा में ही पूर्ण सुख का अनुभव करता है। आत्मसंतोष सर्वोपरि है और नितान्त व्यक्तिगत यानि स्व पर केन्द्रित है। यह संतृप्ति (Saturation) की अवस्था है, जहाँ घुल्य घोल में एक सीमा के बाद नहीं घुलता। जैसे जल में चीनी घोलकर शर्बत बनाया जाए तो एक सीमा पर चीनी घुलना बंद कर देती है, जीव की भी वैसी ही अवस्था जब वह

कुछ न चाहे और संतृप्त हो जाए, आत्मसंतोष कहलाता है। सरल शब्दों में अपनी योग्यता, सामर्थ्य और आवश्यकता के अनुसार सामान, धन, पद व अधिकार की प्राप्ति से व्यक्ति का मनः+तोष ही आत्मसंतोष कहलाता है।

प्रश्न- संतोष की उत्पत्ति कैसे होती है व इसके उत्पन्न होने पर मानव को क्या प्राप्त होता है?

उत्तर- वेद-शास्त्रों के अनुसार संतोष की उत्पत्ति सात्विक यानि पवित्र व निर्मल वृत्ति से होती है और इसके पैदा हो जाने पर मनुष्य को अनंत और अखंड सुख मिलता है।

प्रश्न- संतोष के लिए अनिवार्य तत्व क्या हैं?'

उत्तर-1. सन्तोष का आधार देह नहीं मन है। अतः मानसिक संतुष्टि अनिवार्य है।

2. संतोष नश्वर भौतिक वस्तुओं पर आश्रित नहीं वरन् इनकी वासना के त्याग पर या यथा सम्भव कम करने से प्राप्त होता है।

3. संतोष साधनों की अल्पता के मार्ग की सहर्ष स्वीकृति है। यह भावना स्वयंभू यानि अपने आप उत्पन्न होती है। किसी के दबाव या समझाने से कभी नहीं विकसित होती।

4. सन्तोष आरामपरस्ती और विलासिता से नहीं अपितु कड़ी मेहनत व तपस्या से प्राप्त होता है। तभी तो कठिन श्रम करने वाले सुखी और प्रफुल्लित दिखायी देते हैं जबकि आराम का जीवन जीने वाले अवसाद (Depression) जनित अनेक रोगों से घिरे रहते हैं।

5. जीवन के प्रति सकारात्मक या आशावादी दृष्टिकोण से संतोष का अस्तित्व सुरक्षित रहता है। विपरीत परिस्थितियों से पलायन संतोष का कार्य नहीं। इसका कार्य है प्रत्येक परिस्थिति को सहजता से स्वीकार करके उसका सामना करना।

प्रश्न- संतोष का विधि परक यानि करणीय रूप क्या हैं?

उत्तर- सीमित साधनों में प्रसन्नतापूर्वक जीवनयापन करना, भोग से अधिक त्याग में सुख का अनुभव करना, यदृच्छा यानि किस्मत अनुसार जो प्राप्त हुआ है, उसी में संतुष्ट रहना, अधिक परिश्रम से स्वल्प यानि बहुत कम लाभ मिलने या न मिलने पर भी प्रसन्न रहना, पूर्ण निष्ठा से कर्म करने में सुख का अनुभव करना आदि संतोष के विधिपरक रूप हैं।

प्रश्न- संतोष के निषेधपरक यानि अकरणीय रूप को भी स्पष्ट करो?

उत्तर- अल्प यानि कम परिश्रम से मिली आंशिक सफलता में संतुष्ट हो जाना, कर्म से विमुख होकर यदृच्छा लाभ यानि यही मेरी किस्मत है, ऐसा कहकर संतोष का आवरण धारण करना— ये संतोष के निषेधपरक रूप हैं। जनमत को अपने पक्ष में करने के लिए उचित-अनुचित का भाव त्याग कर किसी प्रकार के उपाय अपनाना, मिथ्या आश्वासन देना, किसी व्यक्ति को अवांछित रूप से लाभान्वित करना जैसे संतुष्टीकरण के उपाय भी संतोष को निषिद्ध रूप प्रदान करते हैं।

प्रश्न- संतोष के कितने भेद हैं?

उत्तर- संतोष के मुख्यतयः तीन भेद हैं भौतिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक।

प्रश्न- भौतिक संतोष से क्या तात्पर्य है?

उत्तर- भौतिक संतोष दो प्रकार का होता है यथा दैहिक व सांसारिक।

अन्न, धन, वस्त्र व भवन आदि जितने भी साधन शरीर रक्षा के लिए अनिवार्य हैं, उससे अधिक का संग्रह न करना दैहिक संतोष का स्वरूप है।

सांसारिक संतोष में धन-दौलत, जीवन स्तर की ऊँचाई के मापक सभी भौतिक साधनों का संतोष आ जाता है।

प्रश्न- भावनात्मक संतोष से क्या तात्पर्य है?

उत्तर- भावनात्मक संतोष मनुष्य के मन मे रहता है। यह सुख के साधनों, लाभ के अवसरों आदि में नहीं बसता। सेवा कराने से अधिक सेवा करने में व भोग से अधिक त्याग में सुख का अनुभव करना भावनात्मक संतोष है। पुरस्कार के बदले मे दंड मिलने पर भी, स्तुति के स्थान पर निंदा मिलने पर भी, मात्र कर्त्तव्यपूर्त्ति जनित सुख से संतुष्ट रहना भावनात्मक संतोष है।

प्रश्न- आध्यात्मिक संतोष को भी स्पष्ट कीजिए?

उत्तर- भोगों के प्रति विरक्ति, तृष्णा के प्रति वितृष्णा, ईश्वरीय अनुरक्ति में तृप्ति का अनुभव करना, सुख-दुःख दोनों को ईश्वरीय देन मान कर उसे सहज भाव से स्वीकार करना, यदृच्छालाभ यानि जो प्रारब्ध अनुसार प्राप्त हुआ है उसी में

संतुष्टि, संत स्वभाव ग्रहण करना आदि आध्यात्मिक संतोष के उदाहरण हैं। यह संतोष आत्मज्ञान से प्राप्त होता है

प्रश्न- मात्रा के आधार पर संतोष के कितने भेद हैं?

उत्तर- मात्रा के आधार पर सामान्य और परम संतोष के ये दो भेद हैं।

जीवन की सभी आवश्यकताओं को सीमित रूप में भोगना सामान्य संतोष का उदाहरण है। पूर्णतया अपरिग्रही बन जाना यानि शारीरिक आवश्यकता से अधिक धन का त्याग करना परम संतोष का स्वरूप है। यही संतोष की उत्तम दिशा है। इस दिशा की ओर चलने वाले व्यक्ति पूर्णतया अपरिग्रही बन, लोक कल्याण को ही अपने जीवन का लक्ष्य बना लेते हैं। जैसे महात्मा बुद्ध, भगवान महाबीर, राम कृष्ण परमहंस, स्वामी रामतीर्थ एवं महात्मा गाँधी आदि।

प्रश्न- संतोष को विकसित करने का साधन बताइए?

उत्तर- 1. सादा जीवन, उच्च विचार वाली जीवन शैली, भौतिक वस्तुओं की स्पर्धा पर नियंत्रण, तृष्णाओं के दुष्परिणामों के प्रति जागरूकता, अपरिग्रह यानि आवश्यकता से अधिक इकट्ठा न करने में सुख की अनुभूति, अतीत का शोक व भविष्य की चिंता से मुक्त रहना, वर्तमान के प्रत्येक क्षण का सार्थक उपयोग करना, सुख और आराम के मार्ग को छोड़कर कठिन संघर्ष के मार्ग को सहर्ष स्वीकार करना, ऊर्ध्वमुखी यानि परमार्थ की ओर प्रवृत्ति तथा संसार के अनंत साधनों में त्याज्य-ग्राह्य यानि क्या छोड़ने और क्या ग्रहण करने योग्य है उस का विवेक आदि संतोष को विकसित करते हैं।

2. अपनी आवश्यकताओं की पूर्त्ति से पहले औरों की आवश्यकताओं का ध्यान रखना व भौतिक सम्पदा का भागीदार केवल अपने को नहीं, सबको मानना जैसी भावनाओं से भी संतोष का विकास होता है।

प्रश्न- संतोष की एकमात्र कसौटी क्या है ?

उत्तर- संतोष की एकमात्र कसौटी है आत्मिक सुख। यह आराम के साधनों, स्तुति, लाभ, यश, पुरस्कार, प्रत्युपकार यानि उपकार के बदले में किए गए उपकार जैसी भौतिक वृत्तियों पर आश्रित नहीं होता। कर्त्तव्य निष्ठा, निष्काम कर्म, स्वत्व यानि अपने हक व अधिकार का परकल्याण हेतु त्याग, अपरिग्रह यानि आवश्यकता से अधिक का संचय न करना, भोगों के प्रति अरुचि, सद्भावों की ओर झुकाव, आध्यात्मिक चेतना व सात्विकता जैसी पवित्र वृत्तियों द्वारा ही संतोषजनित आत्मिक सुख की प्राप्ति होती है।

प्रश्न- मानव जीवन में सन्तोष का क्या महत्त्व है ?

उत्तर- संतोष ही अपने में पूर्ण सुख है। जहाँ यह है, वहाँ सुख के किसी साधन की आवश्यकता नहीं। संतोषी न तो अपने से अच्छी स्थिति वालों को देख ईर्ष्या करता है न ही अपनी हीन अवस्था पर उसके अन्दर कुंठा उत्पन्न होती है। उसे किसी वस्तु के नष्ट हो जाने का भय नहीं सताता क्योंकि वस्तुओं के अभाव में भी उसकी नित्यतृप्ति में कोई कमी नहीं आती। इस प्रकार संतोष एक ऐसा लाभ है, जिससे किसी हानि की आशंका नहीं होती है।

संतोष से मितव्ययता का गुण विकसित होता है। इसके

अंतर्गत कम से कम साधनों का अधिक से अधिक उपयोग करने व अनावश्यक साधनों के संग्रह से बचने की प्रेरणा, मनुष्य को अंतःकरण से प्राप्त होती है। इस प्रवृत्ति के कारण किसी वस्तु का आकस्मिक अभाव समाज को नहीं सहना पड़ता। इसी के साथ समाज में जमाखोरी, भ्रष्टाचार, छीना-झपटी, विषमता, विद्रोह, विद्वेष, अशांति, अराजकता आदि नहीं पनपते। इस तरह समाज में जिओ और जीने दो के सिद्धांत की अनुपालना अपने-आप हो जाती है। यही नहीं संतोष अपनाने से व्यक्ति की ऊर्जा अनावश्यक नश्वर वस्तुओं के संग्रह में व्यर्थ होने से बच जाती है और वह अपनी ऊर्जा का उपयोग सामाजिक विकास के कार्यों में कर पाता है। इसके अतिरिक्त इससे विकृत मनोवृत्तियों को पनपने का अवसर नहीं मिलता। परिष्कृत यानि संशोधित व सुधार की हुई अभिरुचियाँ ही विकसित होती हैं। इस तरह सच्चरित्र, संस्कारवान, सुशील व परकल्याण को ही अपना धर्म मानने वाले व्यक्तियों से युक्त समाज की रचना होती है, जिनका लक्ष्य सबको सुख पहुँचाना होता है।

प्रश्न- संतोष के सन्दर्भ में तृप्ति शब्द का प्रयोग भी किया जाता है, इससे क्या आशय है?

उत्तर- इन्द्रियों के विभिन्न विषयों के उपभोग से होने वाली मन की संतुष्टि ही तृप्ति है यानि यह इच्छा पूर्ति या आवश्यकता पूर्ति हो जाने से मिलने वाला आन्तरिक आनन्द है।

प्रश्न- क्या आपके कहने का अर्थ यह है कि तृप्ति का संबंध इन्द्रियों से है?

उत्तर- बिल्कुल ठीक समझा। तृप्ति का संबंध पाँच प्रकार के इन्द्रिय-विषयों यथा शब्द, रूप, रस, स्पर्श एवं गंध से है। विशिष्ट ज्ञानेन्द्रियाँ श्रवण, चक्षु आदि सर्वप्रथम अपने-अपने विषयों से संबंधित आलंबन (सहारे, आश्रय) का उपभोग करती हैं। जैसे नेत्रेन्द्रिय रूप से सम्बद्ध होती है और रूप दर्शन से उसे तृप्ति या अतृप्ति हो सकती है।

प्रश्न- तृप्ति का निषेधपरक रूप क्या है?

उत्तर- तृप्ति की अनुभूति मानवमूल्य है, जबकि अतृप्ति इसका विपर्यय यानि विपरीत है। अतृप्ति दानवता यानि दुर्गुणों का प्रतीक है। यह तृप्ति का निषेधात्मक रूप है। जो साधक अतृप्ति के परिहार पूर्वक यानि दोष आदि का निवारण कर तृप्ति लाभ प्राप्त करता है, वह सुखानुभूति करता है। रावण की अतृप्त कामवृत्ति तृप्ति के निषेध रूप की परिचायिका है।

प्रश्न- तृप्ति मानवमूल्य के रूप में स्वीकारणीय है, कैसे?

उत्तर- तृप्ति मानव की सहज अपेक्षा है। सर्वविध तृप्ति में संतुष्टि निहित है जो आरोग्य लाभ के लिए आवश्यक है। इसकी अनुभूति से व्यक्ति मानव की कोटि में अधिष्ठित यानि सम्मिलित हो जाता है जबकि इसके अभाव में अनेक प्रकार के मानसिक रोगों से ग्रस्त हो जाता है। शास्त्र की दृष्टि से मनुष्य का उतने ही संग्रह पर अधिकार है, जितने से उसकी उदर तृप्ति हो जाए। अतृप्त होने वाला या अधिक संग्रही चोर की कोटि में आता है जो दण्डनीय है। तृप्ति का न होना मानवता के लिए घातक है। जिस व्यक्ति में तृप्ति का अभाव है वह कदापि उदार होकर जीवन नहीं जी सकता। ऐसा

व्यक्ति मनुष्यता से पतनोन्मुख होता हुआ दानवता की ओर बढ़ने लगता है। इसके विपरीत मनुष्य की धर्मानुकूल विषय-तृप्ति उसे उदार बना कर रजोगुण प्रवृत्ति से बचाती है। वह पुनः भौतिक उपभोग या उपयोग से तृप्ति हो जाने पर अध्यात्म की ओर प्रवृत्त होने लगता है और इस व्यष्टि यानि व्यक्तिगत भाव से समाज को प्रभावित कर उसे भी अनुप्राणित यानि प्राणों का संचार करता है। इस प्रकार वह अपने व्यक्तित्व में मैत्री, प्रसन्नता और उपेक्षा के भावों को जाग्रत करता है, जो अंततः आत्मसाक्षात्कार में सहायक होते हैं। इन्हीं मानवीय गुणों के विकास का अनिवार्य अंग मानकर ही तृप्ति को मानवमूल्य के रूप में स्वीकारा गया है।

प्रश्न- तृप्ति की कसौटी क्या है?

उत्तर- जान लो कि सामान्यतः व्यक्ति का मन काम, क्रोध, लोभ आदि संवेगों के द्वारा परिचालित होता है। यदि इन विकारों से मन अभिभूत या प्रभावित नहीं होता तो इसे ही तृप्ति की कसौटी मानना चाहिए। ऐसा होने पर मानव, मानव ही नहीं अपितु महामानव की कोटि में परिगणित हो जाता है।

प्रश्न- तृप्ति की मानव जीवन में क्या भूमिका है, स्पष्ट कीजिए?

उत्तर- तृप्ति नामक भाव वस्तुतः मानसिक है, जो पूर्वकृत भोग का आंतरिक पक्ष है। यदि यह मानसिक तृप्ति न हो तो भौतिक तृप्ति भी अतृप्ति ही बनकर रह जाती है। भौतिक तृप्ति से व्यक्ति संत बनता है, उदारता का आश्रय बन जाता है तथा निर्द्वन्द्व, शान्त, अनपेक्ष यानि अपेक्षा रहित, उदासीन

और अनासक्त हो जाता है। उसे मिट्टी और सोने के सिक्के में कोई अंतर प्रतीत नहीं होता। इस प्रकार इन दिव्य गुणों के बलबूते पर मानव और अधिक परिष्कृत, निर्लेप, तटस्थ और साक्षी बनता है। यही स्थिति जब और बढ़ जाती है, तब अलौकिक तृप्ति का आविर्भाव होता है और साधक सिद्ध, सर्वसह अर्थात् सब कुछ सहने योग्य बन, योगी के रुप में असाधारण कृतित्त्व यानि कर्मवीर होने का परिचय देता है।

प्रश्न- संतोष को परितोष नाम से भी संबोधित किया जाता है, परितोष का क्या अर्थ है?

उत्तर- परितोष का अर्थ है पूर्ण तुष्टि अथवा सर्वविध संतोष जिसमें सभी प्रकार की इच्छाओं का अभाव होता है। अन्य शब्दों में जीवन में प्रत्येक चुनौती का विवेकपूर्ण सामना करते हुए दुःख अथवा सुख का सामान रूप से स्वागत करते हुए मन में अनुभूतपूर्ण तृप्ति शान्ति एवं आनन्द के भाव को परितोष कहते हैं।

लोक कल्याणकारी कार्य, जो मन को प्रिय लगे, निस्वार्थ भाव से सम्पादित किए जाने पर परितोष प्राप्त होता है। परितोष में तृष्णा का सर्वथा अभाव निहित है। परितोष में अपनी आवश्यकताओं से अधिक प्राप्त करने अथवा संचित करने का सर्वथा निषेध है।

प्रश्न- परितोष और संतोष में क्या अन्तर है?

उत्तर- परितोष और संतोष समानार्थक शब्द जैसे प्रतीत होते हैं, जबकि दोनों के बीच पर्याप्त अन्तर है। संतोष में विवशता का भाव अन्तर्निहित है जबकि परितोष में कामनाओं पर

विजय की अभिव्यक्ति है। उसमें इच्छाओं का अवसान (समाप्ति) है। परितोष जीवन में उदार उपलब्धि की परम परिणति है। उसमें चिन्ता का अवसान (समाप्ति) है। परितोष में दीनता का सर्वथा अभाव है। सन्तोष लौकिक है जबकि परितोष लोकोत्तर यानि आलौकिक उपलब्धि है, जिसमें अध्यात्म के प्रति प्रवृत्ति का मार्ग प्रशस्त होता है। संतोष में सुख मिलता है किन्तु परितोष में मनः प्रसाद परमानन्द की उपलब्धि है। परितोष की स्थिति में ईर्ष्या, राग, द्वेष, शत्रु भाव आदि सभी विपरीत विकार समाप्त हो जाते हैं। जीवन में लोक मंगलकारी कार्य सम्पादित करने के बाद मन में परितोष की भावना सहज रूप से उदित हो जाती है और फिर मन को परमशांति मिलती है।

प्रश्न- परितोष के लिए आवश्यक अनिवार्य तत्व क्या है?

उत्तर- परितोष अलौकिक आत्मिक उपलब्धि है। इसमें मन की दृढ़ता परम आवश्यक तत्व है। मन के अचंचल होने पर ही कोई भी सांसारिक घटक अपनी ओर उसे आकृष्ट नहीं कर पाता। उससे मन 'स्व' में ही प्रसन्न रहेगा तथा 'परस्व' यानि दूसरों का कुछ प्राप्त करने के अवांछनीय कर्म से विरत यानि दूर रहेगा। इस प्रकार लौकिक आकर्षणों से विमुक्त मन सर्वथा अखिन्न रहते हुए परितोष भाव को प्राप्त होगा। परितोष में कामना का निषेध तथा सहज प्राप्ति के प्रति पूर्ण संतुष्टि ये दो अनिवार्य तत्व हैं तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर ये छः परितोष के विपरीत तत्व हैं। याद रखो परितोष मानव के नैतिक विकास का उच्चतम सोपान है एवं मानवीय कमज़ोरियों पर विजय प्राप्ति का द्योतक है, जो समस्त प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच उसके अविचलित

भाव को प्रकट करता है तथा उसकी संतुष्ट मनः स्थिति का अभिव्यंजक यानि प्रदर्शक है।

इस सन्दर्भ में सजनों मत भूलो कि हमारी इच्छाओं की अनंतता, बहुगुणात्मकता (Multiplicity) ही हमारे दुःखों का मूल कारण है। अतएव इच्छाओं से मुक्ति को दुःखों से मुक्ति मानो। दुःख निवारण की यात्रा इच्छा के उत्तरोत्तर न्यून करने से होगी, जिसका बड़ा विश्वासी संबल है आत्मसंतोष। यह ही मनुष्य की मनुष्यता जागरण एवं एकता,एक अवस्था में बने रहने के लिए महत्त्वपूर्ण कारक है। इसी से व्यक्ति की लोभ, मोह आदि की वृत्ति कम होती है। ऐसी अवस्था में उसके मन में शान्ति का प्रसार होता है और यह शान्ति ही व्यक्ति को और अधिक उदात्त बनाती है। इसी तरह उसका अन्तर्मन आनन्द का पथिक बन सकता है। अतः हम चाहते हैं कि आप सब भी इसी आनन्द के पथिक बनो।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरांत सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियंत्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 8 नवम्बर 2015 का सबक

सन्तोष - (2)

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

क्या हम इस प्रार्थना के अनुसार अपने सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण करने के प्रति सही तरीके से यत्नशील है यानि जागरूक है?

मौन।

अगर नहीं हैं तो यह जान लो कि सन्तोष को अपने स्वभावों के अंतर्गत करना नामुमकिन है। ऐसे सजन पुनर्विचार करो और समझ लो कि यदि आप अभी भी न सुधरे तो जीवन हार बैठोगे। अब सर्तक हो जाओ। आओ अब संतोष के विषय में

आगे जानते है-

सजनों हमने जाना कि संतोष सर्वोत्तम गुणों का स्रोत है। व्यक्तिगत सुखों का त्याग और लोक सेवा के मार्ग का वरण यानि चयन संतोष द्वारा ही होता है। मनुष्य में यह प्रवृत्ति जितनी गहराई से प्रविष्ट (Enter) होती जाती है वह निजी जीवन मे अधिकाधिक वैरागी, अनासक्त, उदासीन (सांसारिक मोह आदि से निर्लिप्त) और अपरिग्रही यानि संग्रह करने की वृत्ति का त्याग करता जाता है। दया, करूणा, अहिंसा, शांति, विश्वमैत्री आदि देवदुर्लभ गुण उसकी ओर खिंचे चले आते हैं। इन्हीं प्रवृत्तियों के प्रति समर्पित होने में उसे सच्ची शांति मिलती है। यही कारण है कि महात्माओं ने लोक कल्याण के सुख को पाने के लिए मुकुट और सिंहासन को भी त्याग दिया। वैभव विलास को छोड़ कर अभाव औंर संघर्ष के मार्ग को चुना।

महात्मा बुद्ध, भगवान महाबीर, महात्मा गांधी में विद्यमान देवत्व संतोषजनित था। इनकी अजात शत्रुता से इनका ही जीवन सुखमय नहीं हुआ वरन् मानवता का भी कल्याण हुआ। इनके संपर्क में आने से अनेक पथभ्रष्ट सुमार्ग पर चलने लगे। हिंसक भी करूणा के अवतार बन गए। विरोधी भी अनुयायी हो गए। निंदनीय भी विश्व वंदनीय हो गए। इसीलिए तो आज तक ऐसे महापुरूषों का सम्मान किया जाता है। स्पष्ट ही है कि संतोषी ही सच्चा सार्वभौम यानि समस्त भूमि पर शासन करने वाला सम्राट होता है। उसका शासन क्षेत्र प्राणिमात्र का हृदय पटल होता है। संतोषी जितना प्राणि मात्र को प्रिय होता है, उतना ही परमात्मा को भी। उस के वशीकरण से परमात्मा भी अपने को मुक्त नहीं

रख सकता। तभी तो श्री कृष्ण ने गीता में कहा है, 'जो संतुष्ट, नित्य योगी, यतात्मा यानि संयमी, दृढ़ निश्चय है, जिसकी मन बुद्धि मुझे अर्पित है, जो मेरा भक्त है, वह मुझे प्रिय है।'

यहाँ संतोष के संदर्भ में हम यह भी बताना चाहते हैं कि चाहे सन्तोष, जो है, जैसा है वैसे ही अपने वर्त्तमान हालातों में सदा प्रसन्न बने रहने का नाम है परन्तु इसका अर्थ कदाचित् यह नहीं कि मनुष्य जीवन की आधारभूत निधियों के लिए यत्नशील होना अर्थात् कर्म करना ही छोड़ दे। कहने का आशय यह है कि अपनी आवश्यकता अनुसार अपनी हैसियत बनाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील तो रहो पर उस प्रयत्नशीलता में अपने आप को लिप्त कर अनर्थकारी यानि अवैध क्रियाओं के द्वारा अधिकाधिक विषय भोग के साधन जोड़ने का लोभ न करो। इस हेतु अपनी आवश्यकताओं और इच्छाओं के मध्य सूक्ष्म अंतर को भली-भाँति समझो।

गत सप्ताह संतोष के विषय में हुई चर्चा पर विस्तार से विवेचना करने पर कुछ और भी प्रश्न सामने आए। आइए इन प्रश्नों के उत्तर भी जानें-

प्रश्न- प्राणी की मूल प्रकृति में विकृति किस प्रकार असंतोष को जन्म देती है?

उत्तर- जान लो कि प्रकृति की विकृति ही जगत है और प्राणी का जगत के दृश्यों के साथ जुड़ना उसमें विकारों का बीजारोपण कहलाता है। फलस्वरूप सब कुछ मिलने के उपरांत भी व्यक्ति का मन नहीं भरता और वह सदा असंतुष्ट हो अतृप्त, अधीर व अप्रसन्न बना रहता है।

प्रश्न- कहते हैं जैसे-जैसे भौतिक साधनों का कोष बढ़ता जाता है वैसे-वैसे सन्तोष जनित सुख कम होता जाता है, ऐसा क्यों ?

उत्तर- ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि भौतिक पदार्थों को जुटाने के लिए अर्थोपार्जन यानि धन कमाने की चिंता सताती है। अर्थोपार्जन के लिए भाग-दौड़ करने में जीवन का सुख समाप्त होता है। अधिकाधिक धन संग्रह हेतु अनुचित साधनों का उपयोग करने से मन का चैन छिन जाता है। अंत में, कष्ट से अर्जित वस्तु के क्षय यानि नष्ट हो जाने का भय सताता है। इन्हीं तमाम झंझटों व चिंता व भयग्रस्त मानव को भला संतोषजनित सुख का अनुभव कैसे हो सकता है? यही कारण है कि आज साधनसम्पन्न लोगों की अपेक्षा वे लोग अधिक सुखी दिखाई देते हैं जिनके पास इनका अभाव है।

प्रश्न- संसारी विषयों को भोगने से भी तो तृप्ति प्राप्त होती है। मानव उन्हीं से संतुष्ट हो सदा के लिए आनंदित क्यों नहीं हो जाता?

उत्तर- क्योंकि विषयों के भोगने से प्राप्त होने वाली संतुष्टि क्षणिक होती है और कुछ ही समय पश्चात् नई इच्छा का रूप ले जाग्रत हो जाती है अतः इनसे प्राप्त होने वाली संतुष्टि स्थाई नहीं होती। यह कुछ पलों की प्रसन्नता तो अवश्य प्रदान कर सकती है पर चित्त को शाश्वत शांति प्रदान कर आनंदित नहीं कर सकती। इनके भोग से मानव की क्षुधा यानि भूख कभी नहीं मिटती। सब कुछ प्राप्त हो जाने पर भी मानव और-और की तलाश में भटकता रहता है और आशा-तृष्णा के चक्रव्यूह में फँस सांसारिक भोगों की

प्राप्ति को ही असली तुष्टि समझ बैठता है और आजीवन उन्हीं के पीछे मृगतृष्णा की भांति भटकता रहता है।

प्रश्न- क्या दूसरों को भौतिक सुखों का उपभोग करते हुए देखकर भी संतोषी के अन्दर उन्हें प्राप्त करने की कोई इच्छा जाग्रत नहीं होती ?

उत्तर- चूँकि संतोषी मनुष्य यह जानता है कि इच्छा यानि कामना मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्ति है जो शांत मन में क्षोभ उत्पन्न कर यानि संकल्प-विकल्प से तरंगित कर उसे अस्तित्व में लाने की क्षमता रखती है इसीलिए उस इच्छा को समस्त बुराईयों, अनिष्ट, विपत्ति, पाप, भ्रष्टता, कुकर्म, अमर्यादित आचरण, चरित्रहीनता व पतन की जड़ मानते हुए वह संतोष के बल पर अपने अजर-अमर भरपूर पद पर आसीन रह चलायमान क्षणभंगुर सांसारिक सुख भोगों के प्रति आकर्षित नहीं होता यानि उन तुच्छ सुखों के प्रति सदैव उसके मन में रुचि या इच्छा का अभाव बना रहता है और वह अपनी हैसियत अनुसार विचरने में ही आनंद मानता है।

प्रश्न- संतोषी को अमीरों का भी अमीर यानि सब से धनवान क्यों कहा जाता है?

उत्तर- क्योंकि उसके लिए रत्नों की खान भी धूरि के समान होती है।

प्रश्न- संसारी सुख भोगों के प्रति इस विरक्ति से उसे क्या प्राप्त होता है ?

उत्तर- संसारी सुख भोगों के प्रति उसकी यह विरक्ति ही वास्तव में उसे निरन्तर प्रसन्न यानि स्वच्छ, शुद्ध, उज्ज्वल,

निर्मल, पवित्र, हर्षित, सरल, स्पष्ट व सुबोध अवस्था में बनाए रखती है। परिणामस्वरूप जीवन का यथार्थ सदैव उसके दृष्टिपटल में उजागर रहता है और पूर्ण शांत अवस्था बनी रहती है। याद रखो जहाँ पूर्ण शांत अवस्था बनी रहती है वहाँ मन का अस्तित्व उजागर नहीं होता अर्थात् प्राणी संकल्प-विकल्प से रहित शुद्ध चैतन्यमय अवस्था में निर्विकार स्थिर बना रहता है।

स्पष्ट है सजनों कि अगर हम यह चाहते हैं कि संतोष रूपी महान गुण हमारे अन्दर पनपे तो इस हेतु हमें अपने अन्दर संवेदनशीलता, करूणा, सहृदयता, सर्वजन हितकारी वृत्तियों का विकास करना होगा तथा दम्भ यानि अहंकार, अनुचित स्पर्धा, भौतिकवादिता, ईर्ष्या आदि वृत्तियों का दमन करना होगा।

इस सन्दर्भ में जानो कि शाश्वत आनन्द परितोष प्राप्ति में ही है यानि यदि परितोष नहीं तो दुःखों का अन्त नहीं। परितोष ही वास्तव में अपनी दुर्बलताओं पर फतह पा, आत्मोत्कर्ष (अपनी उन्नति) तथा किसी अन्य की भलाई व सहायता करने का निमित्त साधन है। यह मन के नियन्त्रण की उदार स्थिति है। इस स्थिति में तो मन केवल परमानन्द की अनुभूति करता है। न शोक न विषाद (निराशा), न ईर्ष्या और न द्वेष। घर में है तो भी आनन्द और जंगल में है तो भी आनन्द। षड् रस (छह प्रकार के) व्यंजन हो तो भी आनन्द और यदि रूखी रोटी मिले तो भी आनन्द। मन की ऐसी स्थिति मन पर पूर्ण विजय के बाद ही बनती है। वास्तव में तो यह एक निष्काम मन के मन की स्थिति होती है। तभी तो कहा गया है कि परितोष में सभी नकारात्मक वृत्तियों पर

विजय प्राप्त हो जाती है। इसके विपरीत यदि जीवन में नकारात्मक वृत्तियाँ हैं तो कहरो का अन्त नहीं। विषयों के ध्यान से उनके प्रति आसक्ति, आसक्ति से उनकी कामना, कामनाओं की पूर्त्ति न होने पर क्रोध व पूर्त्ति होने पर लोभ व मोह, क्रोध-लोभ-मोह से भेदभाव, मूढ़ता व स्मृतिनाश, स्मृतिनाश से बुद्धि का सर्वनाश यानि विनाश हो जाता है और अत्यन्त दुःख की प्राप्ति होती है।

प्रश्न- परितोष के भाव को कैसे विकसित किया जा सकता है?

उत्तर- परितोष के भाव को विकसित करने के लिए आवश्यक है कि हमारा मन उदार भावों से युक्त हो। जीवन में चाहे दुःख आए अथवा सुख, हम दोनों का समान भाव से स्वागत करें और उन्हें प्रभु की इच्छा समझ कर स्वीकार करें व इस प्रकार सदा समरस बने रहें। आशय यह है कि न हम राग से ग्रस्त हों, न द्वेष से, न हर्ष से न विषाद (शोक, निराशा) से। हर परिस्थिति में हमारा चित्त निर्मल एवं अविचल रहे तथा द्वंद्व विमुक्त रहते हुए परमानन्द का अनुभव करें।

प्रश्न- परितोष की कसौटी क्या है?

उत्तर- परितोष की कसौटी है कि हमारा मन किसी भी परिस्थिति में विचलित तो नहीं होता। उसमें किसी प्रकार का विकार तो नहीं उत्पन्न होता। हर्ष-शोक अथवा राग-द्वेष उसे प्रभावित तो नहीं करते। आनन्द की सर्वोच्च स्थिति को प्राप्त कर लेने पर मन किसी क्षुद्र यानि छोटे से कारण ही पुनः डगमगाने तो नहीं लगता। इन बिन्दुओं पर अपने आप

को जाँचो-तोलो और तुल खड़ोवो। इस तरह परितोष की कसौटी पर खरे उतरो।

प्रश्न- परितोष के भाव को अपनाने में ही मानव जीवन की सार्थकता है, स्पष्ट कीजिए?

उत्तर- मानव में परितोष भाव का जागरण उसकी उदात्तवृत्ति का परिचायक है। ऐसा व्यक्ति संसारी विषयों से विमुक्त रहता है। संसार में सबके साथ समभाव-समदृष्टि के सबक अनुसार सजन-भाव से विचरता है तथा सत् पथ से कभी भी विचलित नहीं होता। स्वार्थ से ऊपर उठकर उसकी व्यापक एवं उदार वृत्ति विपत्ति एवं अभावग्रस्तों की सहायता करने तथा उन्हें ऊपर उठाने का प्रयत्न करती है। इन कार्यों में उसे परमानंद की अनुभूति होती है। संसार के प्रति उसकी दृष्टि सर्वथा भिन्न हो जाती है। अनासक्ति में ही उसे आनन्द प्राप्त होता है। उसका जीवन उत्तरोत्तर यानि निरंतर उदात्तता (बड़प्पन) की ओर प्रवृत्त होता है। यही मानव जीवन की सार्थकता है।

प्रश्न- संतोष अपनाने से एक मानव का हृदय कैसे विशाल हृदय बन जाता है, ज़रा विस्तार से समझाइए?

उत्तर- संतोष के कारण मानव मन में कोई भी ऐसी निषिद्ध मनोवृत्ति नहीं पनपती, जो उसके तन-मन के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो। संतोष और सुख के बिना अच्छा स्वास्थ्य असंभव होता है। विलासिता (वैभवपूर्ण जीवन) जो अनेक रोगों की जननी है, संतोष के कारण समाप्त हो जाती है। कठिन परिश्रम की ओर मन प्रवृत्त होता है। परिणाम स्वरूप पाचन शक्ति का ह्रास नहीं होता, रूखे सूखे भोजन में भी भरपूर स्वाद मिलता है।

शरीर बलिष्ठ, कर्मठ और ओजस्वी हो जाता है। मन में उत्साह होता है। चेहरे पर चमक दिखायी देती है। संतोषी उपलब्ध को पर्याप्त मानता है। ऐसी मानसिकता वाले व्यक्ति सदा सुखी रहते हैं। असंतोषी जितना दरिद्र और दयनीय है, संतोषी उतना ही समृद्ध और धारणीय है। संतों के जीवन का लक्ष्य संतोष सुख की प्राप्ति रहा है। इसे उन्होंने अध्यात्मिक आनंद का पर्यायवाची माना है।

प्रश्न- आधुनिक भौतिकवादी युग में आत्मसंतोष अपनाने की महत्ता को स्पष्टता से व्यक्त कीजिए?

उत्तर- आज के भौतिकवादी युग में प्रत्येक मानव आधुनिकता से संतापित (मानसिक रोग जो मन/शरीर को जलाता) है। छल-कपट से भरी क्रूर आधुनिकता और आदिम बर्बरता (प्रारम्भिक जंगलीपन) में कोई अन्तर नहीं है। हम परमार्थ का हरा-भरा खुशहाल रास्ता छोड़ ऐसी बाँझ और बंजर आधुनिकता की ओर भागे जा रहे हैं। जहाँ कुछ भी पनप नहीं सकता। चारो और सूखा ही सूखा है। जब सुख-दुःख दोनों का स्वादन करते हैं तभी जीने का मज़ा आता है। जीवन रस का सम्पूर्णता आनन्द लेते हुए उसमें समरस बने रहना व एकजुट होकर मुक्ति के मार्ग पर प्रशस्त होना भारतीय आद् संस्कृति की विशेषता है। अन्य शब्दों में भारतीयता सबको साथ लेकर उद्धार के मार्ग पर चलने की द्योतक है। ऐसा होने पर व्यक्ति एक अदद इकाई मात्र नहीं रह जाता। व्यापक होकर पूरे समाज में व्याप्त हो जाता है। व्यक्तिगत चेतना को सर्वगत चेतना के साथ जोड़ना, अनंत संकल्प के समक्ष आत्मसत्ता को समर्पित करके जीवन को

परिपूर्णता से आनन्दमय बनाने की कामना हमारी संस्कृति की मूल चेतना है जो कि मात्र आत्मसंतोष अपनाने से ही सिद्ध हो सकती है।

हमारी उपभोगवादी सभ्यता संग्रह रूपी राक्षस को बढ़ावा दे रही है। प्रवृत्ति (सांसारिक विषयों में अनुराग) हो या निवृत्ति (सांसारिक वासनाओं से रहित) दोनों की अति, हानिकारक ही नहीं अपितु व्यक्ति और समाज के विनाश की जड़ है। एक की अति राक्षसी प्रवृत्ति को बढ़ाती है और दूसरे की अति पलायन सिखाती है, सन्यास के रास्ते पर चढ़ाती है और जीवन की विषमता पूर्ण परिस्थितियों यानि विपरीतता से कतराना सिखाती है। अतएव मानव आत्मसंतोष रखे, जितना है उसी में प्रसन्न रहे, यही गुण-प्रवृत्ति और निवृत्ति के मध्य संतुलन स्थापित कर पाएगा। जीवन की बुनियादी जरूरतें न्यूनतम साधन में पूरा करने का संकल्प और फलस्वरूप आत्मतुष्टि। यही दोनों के संतुलन की कुंजी है।

अंततः सजनों यह जान लो कि संतोषी मनुष्य की प्रकृति अर्थात् स्वाभाविक या मूल गुण सदा समान बनी रहती है अर्थात् विकृत नहीं होती। इससे स्पष्ट होता है कि संतोष मनुष्य के मूल आवश्यक गुण समभाव-समदृष्टि को न केवल उन्नत करता है वरन् श्रृंगारता भी है। मनुष्य के अंदर मनुष्यता का भाव विकसित करने एवं उस भाव को स्थित करने के लिए संतोष अपने आप में परिपूर्ण है क्योंकि संतोष द्वारा ही मनुष्य के अंदर सजन-भाव, दया-भाव, चित्त की कोमलता, धीरता, शीलता, सभ्यता, शिष्टता, व्यवहार ज्ञान आदि सद्गुणों का उद्भव होता है अर्थात् संतोषी सजनता

का प्रतीक बन जाता है। संतोषी का संकल्प सजन हो जाने के कारण उसकी दृष्टि अपने आप ठीक हो जाती है तदुपरांत उसका संतोष का सवाल हल हो जाता है।

अतः सजनों सदा निज सर्वशक्तिमान व सर्व प्रकाशित ज्ञान स्वरूप में स्थित बने रह, 'विचार ईश्वर है अपना आप' के ब्रह्म भाव अनुसार, इस जगत में विचरने हेतु, संतोष की इसी अद्वितीय महत्ता को समझ, इस भाव को अपने स्वभाव के अंतर्गत कर लो। याद रखो मात्र यदि यह मूल भाव जो अपने आप में अन्य सभी दैवीय गुणों का आधार है, आपके स्वभाव के अंतर्गत हो गया तो पूरी मनुष्यता यानि मानवता आपके स्वभाव के अंतर्गत हो जाएगी। फिर भौतिकवादी मिथ्या सभ्यता से कुछ भी नहीं लेना पड़ेगा। बुद्धि स्वतः ही आत्मिक ज्ञान प्राप्त कर विकसित हो जाएगी और विवेकशक्ति द्वारा सर्वव्यापक भगवान का सत्य स्पष्ट हो जाएगा।

याद रखो संतोष की पराकाष्ठा (चरम सीमा) मनुष्य को जितनी ऊँचाई की ओर ले जाती है, उतनी ही असंतोष की चरम सीमा मानवता के घोर पतन का कारण बनती है। असंतोष मानव को दम्भी, अंहकारी और अवांछनीय रूप से महत्त्वाकांक्षी (बड़ा बनने की आकांक्षा) बना देता है। ऐसे लोगों ने निष्ठुरता, अत्याचार, हिंसा, रक्तपात, यंत्रणाओं (घोर पीड़ा) के न भूलने योग्य लोमहर्षक (रोंगटे खड़े करने वाले) जघन्य (निन्दनीय) कर्म कर दिखाये हैं। हिटलर तानाशाही का तथा नीरो अमानवीय भयंकर कृत्यों का पर्याय बन गया है। इन का अन्त भी उतना ही दारूण (भयानक) हुआ, जैसा ये औरों को देते रहे, दूसरों का सुख-चैन

छीनकर स्वयं भी कम दुखी नहीं हुए। अतः मानवता की दृष्टि से संतोष जितना स्तुत्य और वरेण्य (स्तुति और वरण करने योग्य) है, असंतोष उतना ही गर्हित यानि त्याज्य है।

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार सारतः सजनों जान लो कि इस मायावी जगत में आने के पश्चात् ईश्वर प्रदत्त असलियत सत्-चित्त-आनंद ब्रह्म स्वरूप को भरपूर मानते व जानते हुए उसी में सदा तृप्त यानि सदा आनंदित व शांत बने रहने का नाम ही वास्तविक संतोष है। इस अवस्था में बने रहने वाले व्यक्ति का ख़्याल अन्दरूनी व बैहरूनी दोनों वृत्तियों में विचरते हुए ध्यान द्वारा सदा अपने असलियत स्वरूप अर्थात् सर्वव्यापक भगवान के आनंद में ही मग्न बना रहता है। तात्पर्य यह है कि हर रूप में, हर रंग में, हर अवस्था में, हर खेल में उसी एक आत्मेश्वर की अनुभूति कर उसका मन सदा आत्मतुष्ट बना रहता है और इस प्रकार संकल्प सजन व संगी बना रहता है। यही कारण है कि लौकिक व पारलौकिक सुख-सम्पदाओं को देखते हुए भी उसके अन्दर उन क्षणभंगुर अर्थात् नश्वर भोग्य पदार्थों को प्राप्त करने की इच्छा ही नहीं जाग्रत होती और वह सदा उनके प्रति उदासीन (संसारी कामना से रहित व निर्लिप्त) बना रह अनंत और अखंड सुख व शांति की प्राप्ति करता है। यहाँ समझने की बात यह है कि जब मनुष्य का यह आत्मतुष्टि का भाव खंडित होता है और वह सर्वत्र अपने अलौकिक स्वरूप के सौंदर्य के स्थान पर मायावी बनत के सौंदर्य को निहारते हुए उसमें जा फँसता है, तभी उसकी प्राप्ति की कामना के कारण उसके अंदर असंतोष उत्पन्न होता है और कामनाओं के दुष्चक्रव्यूह में फँस उसका

संकल्प कुसंगी हो जाता है।

इसके विपरीत संतोष से मन में शांति शक्ति व प्रसन्नता का अनुभव निरन्तर बना रहता है। यही मन की संकल्प रहित अवस्था होती है जिसमें इन्सान इन्द्रियनिग्रह द्वारा एकाग्रचित्तता से सब कुछ ठीक तरीके से सिद्ध करने का पुरूषार्थ दिखा पाता है। इस अवस्था को निरन्तर एकरस साधे रखने के लिए अपने मन को आत्मतत्व में लीन रखते हुए, चेतन शक्ति का विवेक बुद्धि द्वारा अति ध्यानपूर्वक प्रयोग करने में दक्ष होना होता है ताकि काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार रूपी विकार वृत्तियों में उलझे हुए इन्सानों के साथ सम्बन्ध निभाते हुए, कोई बाहरी प्रभाव अन्दर घुस कर, किसी भी विकार का मन में बीजारोपण न कर दे।

याद रखो यदि इस चूक के कारण मन में किसी भी विकार का बीजारोपण हो जाता है तो उस विकार से सम्बन्धित अन्य विकार स्वतः अनचाहे मन में प्रवेश कर जाते हैं। याद रखो ऐसा घटित होने की खबर न होने के कारण उन बीजों के प्रस्फुटित होने वाले संसारी दरखत पर भाव-स्वभावों के रूप में जो फल-पत्र-पुष्प लगते हैं उनके दुष्प्रभाव से उत्पन्न होने वाले विकारी मनोभाव मस्तिष्क को इस तरह से हिला कर तनावयुक्त कर देते हैं कि अचेतन अवस्था को प्राप्त हो जीवन का सारा खेल ही बिगड़ जाता है। इस तरह मनः सन्तोष प्राप्त करना, अपने आप में एक बहुत बड़ा सवाल बन जाता है। याद रखो संतोष पर परिपूर्णता से स्थिर बने रहने हेतु अत्यन्त समझदारी से आत्मनिरीक्षण करते हुए मन की आवश्यकता अनुसार, धीरता से सफाई करते रहने का विधान है। आपकी जानकारी के लिए आगामी कक्षाओं में

इसी धीरता यानि धैर्य के विषय में सविस्तार समझाया जाएगा।

अंत में सजनों हम सबसे प्रार्थना करते है कि बाँझ और बन्जर अपने हृदय पटल पर आत्मज्ञान की वर्षा कर उसे उन्हीं सद्-विचारों से सींच, फिर से हरा-भरा कर दो ताकि आप सुखी, आपका परिवार सुखी व कुल संसार सुखी हो जाए।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरांत सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।



दिनाँक 15 नवम्बर 2015 का सबक

धैर्य-(1)
प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

अभी तक हमने जाना कि संतोषी मनुष्य अपनी वर्तमान दशा में ही पूर्ण आनंद का अनुभव करता है। इससे उसका मन शांत यानि संकल्प रहित, ख़्याल स्वच्छ, बुद्धि-वृत्ति-स्मृति निर्मल व वर्त्त-वर्त्ताव यानि आचरण व जीवन चरित्र पवित्रता को प्राप्त रहते हैं। इस प्रकार उसके जीवन में किसी प्रकार के अभाव व विकृति के लिए कोई स्थान नहीं रहता। यहाँ तक कि दूसरों को भौतिक सुखों का उपभोग करते हुए देखकर भी उसके अन्दर उन्हें प्राप्त करने की तृष्णा जाग्रत नहीं होती। जानते हो इस तृष्णा के जाग्रत न होने के पीछे

कुदरत प्रदत्त ताकत क्या होती है?

मौन।

धैर्य,-हाँ धैर्य, के बल पर ही संतोषी व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं और इच्छाओं के मध्य की सीमा रेखा की परख कर उनमें भेद कर पाता है और उसी आधार पर अपनी इच्छाओं को आवश्यकता के स्तर तक सीमित रख, अपने समस्त शारीरिक, मानसिक, आत्मिक बल व नैसर्गिक (कुदरती) क्षमताओं का भरपूर इस्तेमाल कर पाता है। इस प्रकार उसके मन में कामनाओं यानि इच्छाओं का अभाव रहता है और वह इन्सान दोष रहित पूर्ण चेतन अवस्था में एक रस बना रहता है। तभी तो वह अपने जीवन चरित्र को पावन रखते हुए विशुद्धता के सर्वोत्तम शिखर तक उठा पाता है।

याद रखो यह शाश्वत धर्म पर, सत्यनिष्ठा से मज़बूत बने रहने हेतु, आत्मतुष्टता द्वारा धीरता से मन को वश में रखते हुए, कामनामुक्त बने रह, निर्विकारता से यथार्थ स्वरूप में बने रहने की बात है। ऐसे मनुष्य के चित्त में किसी कारण भी व्यग्रता, क्षोभ यानि व्याकुलता उत्पन्न नहीं हो पाती और व्यक्ति हर परिस्थिति में धीरता से, सदा सजन भाव अनुसार विनीत, नम्र, गंभीर व ताकतवर बना रहता है। यहाँ तक कि जीवन की कोई भी ऊँच-नीच, यानि जन्म-मरण, रोग-सोग, खुशी-ग़मी, मान-अपमान, अमीरी-गरीबी उसको अविचार में उलझा, संतोष के स्वभाव से विचलित कर, सच्चाई-धर्म के निष्काम रास्ते पर, धीरता से बने रहने का पराक्रम दिखाने के प्रति, कमज़ोर नहीं कर सकती। यह मन में संतोष प्राप्त रहने व ताप-संताप से मुक्त रहने की अवस्था है। यहाँ ताप-संताप से

तात्पर्य उस मानसिक दुःख से है जो मन व शरीर को जलाता है। इस जलन के दुष्प्रभाव से न केवल मन की शांति भंग होती है वरन् आत्मीयता अनुरूप इन्सानियत युक्त भाव-स्वभावों का ताना-बाना भी बिगड़ जाता है। फलतः अन्दर आसुरी वृत्तियाँ जाग्रत होती हैं और इन्सान दुराचार करने लगता है।

इस संदर्भ में हम सबसे पूछना चाहते हैं कि इन आसुरी शक्तियों के प्रभाववश क्या आपने किसी को दुराचार करते हुए देखा है?

हाँ जी।

तो कही इन दुराचारियों में खुद शामिल हो दुराचार तो नहीं करने लग जाते?

मौन।

इस संदर्भ में सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है-

इक पासे बली जी ने रचना रचाई,
दूजे पासे कीती चढ़ाई।।
हुण हो रहे साडे इम्तहान,
तेरी रचना तों हैरान।।
इम्तहान न देवां निष्काम हो जावां,
शान्ति दी तलवार उठावां।।
साडे अंग संग हिन हनुमान, तेरी रचना तो हैरान।।

अर्थात् परमार्थ के रास्ते पर जब भी कोई आगे बढ़ता है तो उसके मार्ग में असंख्य विघ्न-बाधाओं का आना सहज ही होता

है। हैरानी की बात तो यह होती है कि ये विघ्न-बाधाएँ व कठिनाईयाँ उत्पन्न करने वाला और कोई नहीं अपितु उसके चारों तरफ फैले पारिवारिक सदस्यों व मित्रों के रूप में विचरने वाले संगी-साथी ही होते हैं।

निःसंदेह इस कलियुगी वातावरण में इन मित्र-सखाओं व भाई-बन्धुओं के रूप में मौजूद दुराचारियों के साथ विचरते हुए उनके प्रति अपने कर्त्तव्य निभाना इंसान की मजबूरी होती है परन्तु उनके दुराचार से प्रभावित हो खुद को उस चलन में फँसाने से बचाए रखना भी अति आवश्यक होता है। इसके लिए अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता होती है। यह सतर्कता आती है सजन श्री शहनशाह हनुमान जी की कुदरती विचारधारा को युक्तिसंगत अपना कर, अत्यन्त धीरता व निष्कामता से उस युक्ति की यथा प्रवानगी करते हुए, अफुरता से अपने असलियत स्वरूप में स्थिर बने रहने से। तभी इंसान आसुरी शक्तियों का विनाश कर, अंतर्निहित दैवी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, परोपकार प्रवृत्ति कहलाने में सफलता प्राप्त कर पाता है।

अतः सजनों हमारे साथ ऐसा न हो उसके लिए हमें समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार संतोष-धैर्य अपनाकर, संकल्प पर फ़तह पानी है और इस प्रकार ताकतवर नौजवान युवावस्था धारण कर, सतवस्तु के चलन में मज़बूती से बने रहना है।

सजनों इस सारी बातचीत से यह स्पष्ट होता है कि संतोष और धैर्य अपने आप में चित्त की स्वस्थता व स्वच्छता का परिचायक है। यह वह स्थिति है जिसके द्वारा मन में कोई

राग-द्वेष, क्षोभ, चिन्ता, दुःख व उद्वेग यानि व्याकुलता आदि उत्पन्न नहीं होती अर्थात मन, वेग, गति व क्रिया आदि से रहित हो निश्चल बना रहता है। अन्य शब्दों में इस अवस्था में बने रहने से किसी प्रकार का कोई उपद्रव (संकट), आन्दोलन, झगड़ा-बखेड़ा व दुष्ट विकार आदि मन में उत्पन्न नहीं हो पाता।

इस प्रकार संतोष द्वारा मन उपशम (इच्छाओं व तृष्णा से निवृत्त) बना रहता है एवं चित्त सभी विघ्न बाधाओं से रहित धीर, सौम्य व अप्रभावित अवस्था में बना रहता है। यही जीव की विश्राम अवस्था होती है। इस विश्राममय अवस्था में संसार की असारता व निज असलियत स्वरूप का ज्ञान यानि विचार ईश्वर अपना आप का बोध प्राणी में सहज ही बना रहता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अपने आप को निष्कलंक, निर्विकार अवस्था में सहज भाव से साधे रखने की एक मात्र पूर्ण युक्ति संतोष और धैर्य है जिसके प्रभाव से हृदय आकाश में निःशब्दता यानि अफुरता/मौन व प्रशान्तता (निश्चलता और शांति) छाई रहती है और सच्चाई-धर्म के पथ पर सुगमता से चलते हुए चरित्र श्रेष्ठता को प्राप्त हो जाता है।

क्या यह सब जानने के पश्चात् आपके अन्दर भी संतोष-धैर्य जैसे महान गुण को अपनाने की इच्छा जाग्रत हुई है?

हाँ जी।

तो फिर आओ आज संतोष के बाद अब धैर्य के हर पहलू को गहराई से समझते हैं-

धैर्य शब्द का शब्दिक अर्थ क्या है?

इसके मुख्य अर्थ हैं:-

1. संकट, बाधा या कठिनाई और विपत्ति आने पर भी चित्त के विकृत न होने का भाव।

2. चंचलता से हीन और अहंकार शून्य सहज मानसिक स्थिति यानि मन की दृढ़ता ।

3. चित्त में उद्वेग यानि व्याकुलता न उत्पन्न होने देने का भाव यानि चित्त की स्थिरता, निर्विकारचित्तता।

4. घबराहट या हड़बड़ी न मचाने का भाव।

5. धीरता, अव्यग्रता, अव्याकुलता, धीरज, सब्र, सामर्थ्य, साहस, ठोसपन, स्थायित्व यानि स्थिरता।

सरल शब्दों में धैर्य का अर्थ स्पष्ट कीजिए?

1. धैर्य मन का वह विशेष गुण अथवा शक्ति है जिसकी सहायता से मनुष्य कष्ट अथवा विपत्ति आने पर भी किसी प्रकार व्यग्र यानि बेचैन, विचलित या अशांत नहीं होता।

2. धैर्य वह गुरुत्वाकर्षण शक्ति है जो कठिन से कठिन समय आने पर भी व्यक्ति में अडिग विश्वास उत्पन्न कर उसे सहनशील, सामर्थ्यवान, प्रशान्त, गंभीर, प्रतिभाशाली, दूरदर्शी, चतुर, बुद्धिमान तथा सौम्य और बलवान बनाती है।

3. धैर्य हृदय विदारक व दुःखों का निवारण करने वाला है।

4. धैर्यवान बड़े से बड़े विघ्न के भी उपस्थित होने पर अपने काम में अडिग बना रहता है।

संक्षेपतः ऐसे कारण विशेष जिनसे दुष्कर परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं और व्यक्ति में निहित विश्वास और दृढ़ भाव उनसे जूझने और उबरने में सहायक होते हैं, धैर्य अथवा धीरज जैसे गुण कहे जाते हैं।

धैर्य किस मनोवृत्ति का द्योतक है?

यह एक सात्विक गुण है, इसीलिए सात्विक मनोवृत्ति का द्योतक है। सात्विक विचारों के होने के कारण ही धैर्य, मन में उठने वाले संदेह, शंकाओं और व्यग्रताओं को दूर करता हुआ चित्त को दृढ़ भावभूमि पर लाने का संकेत देता है। याद रखो चित्त की संपूर्ण अस्थिरता और डगमगाहट जैसे विकृत विकार को तत्काल लुप्त करने की क्षमता धैर्य जैसे स्थिर सात्विक भाव से ही संभव है।

धैर्य के लिए अनिवार्य घटक क्या हैं?

धैर्य के तीन अनिवार्य घटक हैं यथा पहला स्वयं व्यक्ति-आलंबन यानि आधार स्वरूप कारण दूसरा उससे उत्पन्न परिस्थितियाँ तथा तीसरा वह विशेष दशा अथवा वस्तु या तथ्य विशेष जिसमें धैर्य धारण करने की आवश्यकता पड़ती है।

इस सदंर्भ में समझो कि कभी-कभी सामान्य व्यक्ति को अचानक भयावह परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। तब उसका एक मात्र सहायक धैर्य बनता है जो विकट स्थिति आ जाने पर, सब्र बँधाकर आंतरिक रूप से उसे सबल और शक्तिशाली बनने की प्रेरणा देता है और इस प्रकार स्थितियों से उबरने का सहज मार्गदर्शन करता है।

धैर्य के विधि एवं निषेधपरक प्रयोग के बारे में बताओ?

दृढ़ और स्थिर मनोबल लाने वाला धैर्य, यदि वास्तविक रूप में व्यक्ति को आपत्तिमुक्त करने अथवा अडिग विश्वास भरने वाला विशेष गुण अथवा भाव है, तो वह अवश्य ही विधिपरक कहा जाएगा। किन्तु यदि यह कुछ क्षणों के लिए मात्र दिखावा या प्रदर्शनजन्य हो, तो वह निषेधपरक माना जाएगा क्योंकि उससे वह कठिन अथवा विषम परिस्थिति सुलझने अथवा दूर होने के बदले उलझने और कभी न समाप्त होने वाली स्थिति उत्पन्न करेगी।

इस संदर्भ में चूँकि धैर्य सात्त्विक मनोवृत्ति का सूचक है, अतः इससे उत्पन्न भावों में व्यग्रता और व्याकुलता उत्पन्न होना अस्वाभाविक है। यह क्षणिक मनोवृति का द्योतक भी नहीं है। अतः यह सदैव विधिपरक कार्य करने के अर्थ में ही ग्रहण होगा।

क्या हम धैर्य को हठधर्मी भी कह सकते हैं?

कदाचित् नहीं। हठधर्मिता और धैर्य में किंचित मात्र भी साम्य नहीं है। धैर्य में विवेक और हठ में अविवेक रहता है। यदि हठ को धैर्य मान लिया जाए, तो यह धैर्य का निषेधपरक रूप होगा, हठ या जिद्दीपन कायर में भी संभव है, जबकि धैर्य सर्वथा बलवान् और विवेकवान् का ही गुण है।

धैर्य की कितनी श्रेणियाँ हैं?

धैर्य की तीन श्रेणियाँ हैं- उत्तम, मध्यम, तथा निम्न।

निम्न श्रेणी के धैर्य को स्पष्ट कीजिए ?

किन्हीं कारणों से कार्य संपादित करने की अवस्था में, चित्त की उद्विग्नता यानि बेचैनी संशय की स्थिति उत्पन्न करने वाली होती है। ऐसी नैराश्य यानि निराशा की घड़ी में व्यक्ति का आत्मबल सहायक बनता है और उसे ढाढस यानि हिम्मत बँधाकर कठिन घड़ी से मुक्त होने का भाव भरता है। यह एक प्रकार से आत्मिक उपकार में सहायक होता है। अतः यह धैर्य की निम्न श्रेणी के अंतर्गत स्वीकृत होता है।

मध्यम श्रेणी के धैर्य के विषय में बताइए ?

कभी-कभी व्यक्ति ऐसे लोगों के साथ कार्य करने की स्थिति में होता है, जब व्यक्ति को न तो कार्यविधि का ज्ञान होता है और न ही अन्य लोगों का परिचय ही। ऐसी विकट स्थिति के उत्पन्न होने पर धैर्यवान् व्यक्ति मन में अटल विश्वास के सहारे परिस्थितियों से उबरता है और धैर्यवान् होने की संज्ञा प्राप्त करता है। अर्थात् समय-कुसमय की जाने वाली आंशिक सहायता एक प्रकार से मध्यम श्रेणी का धैर्य कहलाती है।

अब उत्तम कोटि के धैर्य को भी स्पष्ट कीजिए?

व्यक्ति के जीवन की संघर्षमय परिस्थितियाँ अचानक ऐसी विषम और भयावह परिस्थितियों को उत्पन्न कर व्यक्ति के समक्ष गहन अंधकार की स्थिति उत्पन्न करने वाली होती हैं जिनसे सहसा उबर पाना कठिन जान पड़ता है। किन्तु ऐसी घनघोर दुर्जेय यानि कठिन स्थिति उत्पन्न होने पर भी स्वयं में दृढ़, मनस्वी (उच्च विचारों वाला), संघर्षशील, मानवीय गुणों का पारखी, सचेष्ट तथा प्रयासशील धैर्यवान् व्यक्ति क्रमशः

सभी अजेय (जिन्हें जीतना कठिन हो) कठिनाइयों को पार करने में समर्थ होता है। इस प्रकार के साहसिक कदम उच्च कोटि के अथवा प्रथम श्रेणी के धैर्य के अंतर्गत स्वीकृत किए जाते हैं।

धैर्यवान का मन कैसा होता है ?

धीर व्यक्ति का मन निश्चल व गंभीर होता है। तभी तो ऐसा मानव कभी भी, कैसी भी परिस्थिति आ जाने पर व्याकुल व व्यग्र नहीं होता। धैर्य ही चंचलता से रहित दृढ़ और स्थिर मनोबल का हेतु है।

धैर्य बुद्धि को क्या प्रदान करता है ?

धैर्य बुद्धि को स्थिरता प्रदान करता है।

धैर्यवान का चित्त कैसा होता है?

धैर्यवान के चित्त में उद्वेग, हड़बड़ाहट या उतावलापन उत्पन्न नहीं होता। इसलिए उसका चित्त निर्विकार होता है।

धैर्य किसका प्रतीक है ?

यह बुद्धिमता व गंभीरता का प्रतीक है।

धैर्यवान व्यक्ति किस स्वभाव के होते हैं?

वे अच्छे स्वभाव वाले, नम्र, सुशील, प्रसन्नचित्त, प्रफुल्लित, शांत व सौम्य प्रकृति के होते हैं। उन स्थिर बुद्धि वालों का स्वभाव सदा सजनता से ओतप्रोत रहता है। यह समभाव-समदृष्टि के सबक पर मज़बूत बने रहने की बात है।

धीर व्यक्ति को प्रगाढ़ वृत्ति इंसान क्यों कहते हैं ?

क्योंकि वह दृढ़ संकल्पी गंभीर इन्सान सदा अपने सिद्धांतों पर स्थिर रहता है।

धैर्यवान कैसे अपने असली रूप में स्थिर रह सकता है ?

धैर्यवान विचारशक्ति द्वारा अपने असली रूप में स्थिर रह सकता है ।

धैर्य से काम करने से क्या प्राप्त होता है ?

अपने धर्म व कर्म की पालना करने के दौरान धैर्य से काम लेने से संतुष्टि प्राप्त होती है।

धैर्यवान मनुष्य का विचार और इरादा कैसा होता है और वह अपनी प्रतिज्ञा को किस प्रकार निभाता है?

धैर्यवान दृढ़ विचार और पक्के इरादे वाला अर्थात् मज़बूत धुरी वाला होता है और वह अपनी प्रतिज्ञा को दृढ़ता से निभाता है।

हम किस प्रकार कह सकते हैं कि धैर्यवान को अपने चित्त को एकाग्र कर ईश्वर में लीन करने का विधान समझ में आ जाता है ?

चूंकि धैर्यवान का मन इधर-उधर नहीं भटकता और संसार की विषय वासना उसे तुच्छ प्रतीत होती है। इस प्रकार उसे चित्त को एकाग्र करके मन को ईश्वर में लीन करने का विधान समझ में आ जाता है।

मन को ईश्वर में लीन रखने से धैर्यवान का कौन सा भाव नष्ट हो जाता है ?

चित्त को एकाग्र कर मन को ईश्वर में लीन करने से उसका उग्र व व्यग्र भाव नष्ट हो जाता है ।

धैर्य धारण करने वाला क्या कहलाता है ?

धैर्य धारण करने वाला बुद्धिमान, न्यायवान, उदार, दयावान, गुणवान, पुण्यवान, साहसी, पराक्रमी, शूरवीर, निर्भय, सहनशील, निश्चल, निष्ठावान, गंभीर, आत्मज्ञानी, तेजस्वी, आत्मसंयमी व संतोषी इंसान कहलाता है। वह सबको क्षमा कर उनकी भलाई करने वाला परोपकारी इंसान होता है। याद रखो संतोष-धैर्य को धारण किए बिना कोई भी विरक्त अवस्था को प्राप्त नहीं हो सकता।

मनुष्य धैर्य बल को धारण कर क्या प्राप्त कर लेता है?

धैर्य बल को धारण कर मनुष्य पौरुषत्व यानि मनुष्यता की पूर्ण ऊँचाई व सामर्थ्य को धारण कर लेता है।

संतोष की भांति धैर्य भी मनुष्य के किस मूल गुण को श्रृंगारते हुए और निखारता है ?

संतोष की भांति धैर्य भी मनुष्य के मूल आवश्यक गुण समभाव-समदृष्टि को श्रृंगारते हुए और निखारता है तथा वर्त-वर्ताव में लाने का बुद्धि-बल अर्थात् विचारशक्ति प्रदान करता है।

धैर्य को विकसित करने का साधन क्या है?

स्थिर मति का द्योतक धैर्य गुण, जोखिमों में रहते हुए व्यक्ति को, उनसे बचने और मुक्त होने का, दिशानिर्देशक होता है। कुछ व्यक्ति स्वाभाववश जोखिमों में पड़ने और सफल होने में समर्थ होते हैं। ऐसे व्यक्ति मनसा, वाचा, कर्मणा स्वयं पर तथा अपने किए गये प्रयासों पर दृढ़ और आश्वस्त होते हैं। उनकी कथनी और करनी में अंतर नहीं होता। किन्तु कुछ भिन्न स्वभाव वाले मन से दुर्बल, अस्थिर, असत्य को ही सत्य मानने वाले, आलसी, कर्त्तव्य विमुख और मूढ़ प्रवृति के होते हैं। ऐसे विपरीत बुद्धि और कुप्रवृत्ति लोगों को कठिन परिस्थितियों में डालकर धैर्य गुण उत्पन्न करने पर विचार किया जा सकता है।

धैर्य की कसौटी क्या है?

आपदाओं और विषम स्थितियों में साहसिक कदम उठाते हुए शांत भाव से संघर्षों को पार कर जाना धैर्य वृत्ति से ही संभव है। अतः संघर्षो, द्वन्द्वों, विषमताओं और दुर्जेय परिस्थितियों पर विजय पाना ही धैर्य की कसौटी है।

इस वार्त्तालाप से सजनों यह स्पष्ट होता है कि कुछ गुणों को व्यक्ति अपने पूर्वजों से विरासत रूप में स्वतः प्राप्त करता है, जिन्हें संस्कार कहा जाता है। इसके साथ ही जीवन के संघर्षपूर्ण मार्ग में अनेक व्यवधान यानि बाधाएँ आती रहती हैं, जो सुखी जीवन के लिए अवरोधक होती हैं।

गृहस्थ जीवन में आने वाले ऐसे कष्टदायक क्षण जो परिवार अथवा परिवेश (चारों ओर के घेरे) में उत्पन्न होते हैं, उनका

निराकारण प्रायः सहज होता है किन्तु शरीर में उत्पन्न होने वाले रोगों से ग्रस्त होने पर कार्यकुशल व्यक्ति भी अपने जीवन को भार मान लेता है और उसके साथ-साथ पूरा परिवार त्रास पाता है। ऐसी दशा में घर का धैर्यवान व्यक्ति ही स्वयं में शक्ति और साहस को संचित रखते हुए, दृढ़तापूर्वक कार्य करते हुए न केवल रोगी को निरोग करने में अपितु पूरे परिवार को दुखों से मुक्ति दिलाकर, प्रसन्नता का माहौल बनाता है।

इसी प्रकार दैवी आपदा आने पर अथवा भौतिक सुख-समृद्धियों में लीन रहने से व्यक्ति को जो मानसिक, आर्थिक अथवा शारीरिक मर्मान्तक (शरीर के कोमल भाग जैसे हृदयगत) पीड़ाएँ मिलती हैं उनसे छुटकारा दिलाने में एकमात्र धैर्य ही सहायक होता है। धैर्य वह भाव अथवा गुण है, जो मानवीय दुर्बलताओं को दूर करके गुणों का समावेश करते हुए जीवन को उदात्त (विशाल हृदय) बनाता है। इसलिए कहा गया है- बुद्धिमान जन विपत्ति में धैर्य नहीं खोते। इसके विपरीत जो विपत्ति आने पर धैर्य खो देते हैं वह अधीर बुद्धिहीन कहलाते हैं।

जान लो कि आमतौर पर धैर्य के लिए धीरता शब्द का भी प्रयोग होता है, धीरता से तात्पर्य धीर होने की अवस्था, गुण या भाव है। यह भाव मनुष्य के धैर्य, साहस और मनोबल का द्योतक है। धीरता शील, सौजन्य (भलाई), साहस जैसे गुणों को स्वयं समेटे हुए है इसलिए विपत्ति की कठिन घड़ियों में वह व्यक्ति को टूटने से बचाने की क्षमता रखती है। धीरता, उदारता और परार्थता यानि परोपकार की पोषक है। यह शांतचितता को भी दर्शाती है।

अन्य शब्दों में धीरता वस्तुतः साहस, शक्ति, सहिष्णुता यानि सहनशीलता, उदारता और गंभीरता का समन्वित रूप है। संघर्ष की कठिन घड़ी में यह शांत और सहृदय व्यक्तियों को बुद्धि और साहस की कठिन कसौटी पर खरा उतरने के लिए सहयोग देता है। यह असहनीय कष्टों को झेल कर हृदय को विदीर्ण होने से बचा लेता है। धीरता का अभीष्ट (वांछित लक्ष्य) है, विचार ईश्वर है अपना आप के बोध द्वारा निज असलियत स्वरूप में ठहरे रह, सुखोपलब्धि करना। अतः आनन्द उपलब्धि इसकी चरम परिणति (स्थिति) है। कठिनाइयों से जूझने के लिए प्रत्येक स्थिति में प्रस्तुत रहकर अदम्य (प्रबल) साहस और कुशल निर्देशन का परिचय देना इसकी प्रमुख विशेषता है। आओ धीरता के विषय में अब प्रश्नोत्तर के माध्यम से भी जान लेते हैं:-

धीर कौन होता है? उसके क्या लक्षण हैं?

जिसका चित्त विपरीत परिस्थितियों में भी विचलित न हो वही धीर है। ऐसा मनुष्य दृढ़ मन या निश्चय वाला, सहनशील, गंभीर, बुद्धिमान, शक्तिशाली, विद्वान तथा शान्त होता है। भगवद्गीता में धीर व्यक्ति उसे कहा गया है, जो जन्म-मरण से मोहग्रस्त नहीं होता।

धीरता किसकी प्रतीक है?

धीरता ईर्ष्या आदि का अभाव होने के कारण मानसिक शान्ति व सन्तोष की प्रतीक है।

धीर पुरूष क्या कहलाता है?

आत्मा को स्थिर रखने वाली धृतात्मा।

धीरता व्यक्ति को कैसा इन्सान बनाती है?

धीरता वस्तुतः व्यक्ति को साहसी शक्तिशली और शूरवीर बनाने के साथ ही स्थिर, शांत और गम्भीर बनाती है। ऐसा व्यक्ति उतावलेपन से प्रेरित होकर कोई भी ऐसा कार्य नहीं करता, जिससे उसे बेसब्री का दुगना दुःख झेलना पड़े। इस तरह संतोष से सुख पाकर वह अपनी विद्वत्ता का आदर्श प्रस्तुत करता है।

धीरता के लिए अनिवार्य तत्त्व क्या हैं?

ईर्ष्या और कलुष यानि पाप दमन के साथ शांति और सन्तोष की उपलब्धि, केवल स्वयं के लिए नहीं अपितु दूसरों को भी कठिन परिस्थितियों से उबारने की इच्छा एवं साहस और बल का उचित समय पर प्रयोग, जिससे स्थितियों पर काबू पाने की सामर्थ्य आ सके - ये ही धीरता के अनिवार्य तत्व हैं। याद रखो धीरता शूरवीरता नहीं, यह कर्मठता है, बारम्बार असफल होने पर भी प्रयासरत रहने की क्षमता है।

धीरता के विधि एवं निषेधपरक प्रयोग को स्पष्ट कीजिए?

जो धैर्यवान हैं, वे अपने बल और साहस का समुचित प्रयोग विशेष अवसर पर ही करते हैं, जबकि चंचल प्रकृति के लोग बिना सोचे-समझे अपनी शक्ति का दुरुपयोग करते हैं और प्रायः बनता हुआ काम भी बिगाड़ देते हैं। धीरता इनसे अलग कोटि का गुण है। यह प्रदर्शन से दूर, सच्चाई पर आधारित गुण है। उतावलापन और बेसब्री इसके विरोधी तत्व हैं, जो निषेधपरक हैं।

धीरता को विकसित करने का साधन क्या है?

धीरता के विकास के लिए परिवार, समाज, सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं का यह परम कर्त्तव्य है कि बच्चों के बाल्यकाल से ही उन्हें महापुरुषों के त्यागमय जीवन और धीर व्यक्तियों की कहानियाँ सुना कर उन धीरवीरों के चारित्रिक गुणों से परिचित कराए। यही नहीं उनका यह भी कर्त्तव्य है कि वे मन-वचन-कर्म द्वारा, वैसा ही आचरण कर, स्वयं उन जैसा ही चरित्रवान बनने की आदर्शतम मिसाल उनके सामने कायम करें और इस प्रकार अपनी संतानों को वैसा ही बनने के लिए प्रेरित करें। निःसंदेह इस प्रकार प्रेरित होकर वे अपना चारित्रिक उत्थान कर सकेंगे और अपना जीवन सँवार सकेंगे।

यही नहीं इस विशिष्ट गुण के प्रचार-प्रसार के लिए समाज में धीर-गंभीर पुरुषों को यथोचित् सम्मान प्रदान करते हुए उनके सम्पर्क में हिंसक, क्रूर, असहनशील और अमर्यादित विचारों के पोषक यानि समर्थक लोगों को शिक्षित करने की आवश्यकता है ताकि वे उनके गरिमापूर्ण चरित्रों से प्रेरणा लेकर स्वयं भी उनके समान बनने का प्रयास करें, जिससे सामाजिक परिवेश और सामुदायिक संगठन अधिक स्वच्छ, स्वस्थ और पारदर्शी बनने में समर्थ हो।

अंततः सजनों जान लो कि धीर व्यक्ति अज्ञान से मुक्त होता है, उसे अपने लक्ष्य का बोध रहता है। अतः साहस, शक्ति, सहिष्णुता यानि सहनशीलता, त्याग तथा सत्य पर आरूढ़ (सवार) रहते हुए संघर्ष करना और अभीष्ट यानि वांछित सिद्धि प्रप्ति करना ही धीरता की कसौटी है। याद रखो कि अभीष्ट को प्राप्त करने में समय की दूरी तय करते हुए

असंख्य अवरोधों को पार करने में धैर्यवान व्यक्ति को सतत संघर्षशील जीवन बिताना पड़ता है और अन्ततः वह अपना संकल्प पूरा कर दूसरों के सामने आदर्श प्रस्तुत करता है। इस संदर्भ में युग पुरुषों का जीवन चरित्र हमारे सामने ही है जो धैर्य के बल पर कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी हिम्मत व साहस से काम लेते हुए जीवन का हर काम सिद्ध कर पाएं। यह अधर्म पर विजयी हो सत्यनिष्ठा व धर्मपरायणता से जीवन जीने की बात है। इसके विपरीत अन्य सभी गुणों से विभूषित होने पर भी यदि कोई व्यक्ति धीर नहीं है, तो किसी कार्य को आरम्भ करने के पूर्व ही वह या तो हार मान बैठता है अथवा विवेकशून्य होकर विपरीत परिस्थितियों का शिकार बन जाता है।

अतः धीरता की मानव जीवन में महत्ता व उपयोगिता को समझते हुए यह याद रखो कि धीरज सारे आनन्दों और शक्तियों का मूल है। धीर पुरूष को कोई भी नहीं हरा सकता। कहा गया है कि जिस प्रकार शरीरधारी आत्मा इस शरीर में बाल्यावस्था और फिर वृद्धावस्था की ओर निरन्तर अग्रसर होती रहती है, उसी प्रकार मृत्यु होने पर आत्मा दूसरे शरीर में चली जाती है। धीर व्यक्ति ऐसे परिवर्तन से मोह को प्राप्त नहीं होता। अतः इस सत्य को जानो व मानो और इस तरह ताकतवर होकर खुद के साथ-साथ दूसरों को भी सच्चाई-धर्म के निष्काम रास्ते पर अग्रसर करते हुए, संभालने के योग्य बनो। याद रखो कि धीर पुरुषों की यह विशेषता होती है कि जहाँ और जिस स्थिति में वे रहते हैं, वे अपने कुशल निर्देशन से परे, परिवेश को स्वयं के समान ढालने की अद्‌भुत क्षमता रखते हैं। उनके व्यक्तित्व का प्रभाव अन्य लोगों पर भी पड़ता है। धीर व्यक्ति केवल बाँटता

है, अन्य लोगों से कुछ लेता नहीं। उसके मानवीय गुण आसुरी और हिंसक प्रवृति वालों को भी मानव बनाने में सक्षम होते हैं और दूषित वातावरण से मुक्त कराने में समर्थ होते हैं।

सजनों धैर्य के विषय में इससे आगे आगामी कक्षा में जानेंगे। तब तक के लिए जो आज समझाया है उसे अच्छी तरह पढ़-समझ कर यादगीरी में बैठा कर वर्त्त-वर्त्ताव में लाना आरम्भ कर दो व इस तरह जीवन के हर क्षेत्र में विजय प्राप्त करना सुनिश्चित करो।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।



धैर्य-(2)
प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

गत सप्ताह हमने जाना कि धैर्य चार मुख्य सद्‌गुणों में से एक है। खतरा उत्पन्न होने पर, भय या प्रलोभन जैसी स्थिति के आने पर धैर्य मनुष्य को अडिग, अचल और आत्मविश्वासी बनाकर हृदयविदारक (अति शोकप्रद), मर्मान्तक (अति कष्टदायक, जानलेवा) पीड़ा से बचाने और वज्राघात यानि बहुत बड़े घात जैसे निर्मम और कठोर, कष्टदायक कारणों के उत्पन्न होने पर मनुष्य को दुःसह (सहनशक्ति से बाहर) स्थिति से मुक्त कराता है। इस दृष्टि से धैर्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जो लोग इस गुण को जानने और आत्मसात्

करने के इच्छुक होते हैं वे अभ्यास, प्रयास और स्वयं को अनुशासित करते हुए संयम और धैर्य को जीवन का अंग बना लेते हैं यानि अपने स्वभाव के अंतर्गत कर लेते हैं। यह भी मत भूलो कि शोक में, आर्थिक संकट में अथवा प्राणघाती भय उपस्थित होने पर जो व्यक्ति अपनी बुद्धि से दुःख निवारण के उपाय का विचार करते हुए धैर्य धारण करते हैं, उन्हें जीवन में कभी भी कष्ट नहीं उठाना पड़ता। तात्पर्य यह है कि उन्हें इस बात का बोध होता है कि धैर्य को खोना कष्ट-क्लेश को आमन्त्रित करना है। ऐसे व्यक्ति ही 'ईश्वर है अपना आप' के विचार पर स्थिर बने रह अपने कुसंगी संकल्प को सजन और संगी बना, पवित्रता से जीवनयापन कर पाते हैं। इस प्रकार वे मन को जीतकर, जगत पर सहजता से विजय प्राप्त कर लेते हैं।

इस संदर्भ में संतोष और धैर्य का निरन्तर अभ्यास यानि साधना करने से मनुष्य का मूलतः पशु रहना और तद्नुरूप व्यवहार करना कम हो जाता है। इस के आचरण से उसमें मनुष्यता जाग्रत होती है। जैसे-जैसे ऐसा साधक, संतोष और धैर्य को साधना द्वारा अपने जीवन में उतारता है वैसे-वैसे उसका तथा संसार का विकास होने लगता है। कारण, वह पहले दुःख में बिन उलझे उसको समझना चाहता है। दुःखद संवेदनाओं को साक्षी भाव से देखते-देखते व उनका विघटन-विश्लेषण (अलग करके बारीकी से जाँच) करते-करते उनके अनित्य स्वभाव को समझते-समझते द्वेष के चिरसंचित संस्कारों (इन्द्रियों द्वारा विषय-भोग किए जाने से मन पर पड़ने वाले प्रभाव) का उन्मूलन (समाप्त) कर लेता है। उसी प्रकार सुखद संवेदनाओं को साक्षी भाव से देखते-

देखते, उनका विघटन-विश्लेषण करते-करते, उनके अनित्य स्वभाव को समझते-समझते, राग के चिर संस्कारों का उन्मूलन कर लेता है। इस तरह उसके अंतर्मन की गहराइयों में राग-द्वेष पर आधारित जितने विकार दबे होते हैं, धैर्य अपनाने से वे सभी समाप्त हो जाते हैं। फलतः वह दुःख से घबराता नहीं और सुख में हर्षाता नहीं यानि सुख-दुःख उसके लिए समान हो जाता है। उसकी व्यक्तिगत उन्नति का प्रभाव समाज पर भी पड़ता है और वह संतोषी व धीर इन्सान किसी की हिंसा न करते हुए, किसी को दुख न पहुँचाते हुए, अजस्त्र (लगातार रहने वाली) करुणा का स्रोत बन निष्कामता से सब कार्य सिद्ध कर लेता है।

अतः हम कह सकते हैं कि सच्चाई-धर्म के रास्ते पर बने रह निष्कामता से परोपकार कमाने हेतु संतोष और धैर्य दोनों वृत्तियों का निरन्तर समरूप बने रहना अति आवश्यक है। याद रखो ऐसा करने पर ही स्वभावों का टैम्परेचर घटता-बढ़ता नहीं और अटलता से सच्चाई-धर्म की राह पर सरलता से बने रहना संभव हो जाता है। आओ अब धैर्य के विषय में प्रश्नोत्तर के माध्यम से आगे समझते हैं:-

धैर्य यानि धीरता से सम्बन्धित अन्य शब्द क्या हैं?

धैर्य यानि धीरता से सम्बन्धित अन्य शब्द गंभीरता, सहनशीलता, सहिष्णुता, क्षमा, तितिक्षा आदि हैं। अब इन्हीं के विषय में क्रमानुसार समझते हैं।

गंभीरता से क्या तात्पर्य है?

गंभीरता किसी व्यक्ति, परिस्थिति या वस्तु में विद्यमान ऐसा

भाव या गुण है, जो उथलेपन के अभाव तथा गहनता, स्थिरता, धीरता व तलस्पर्शिता के संयोग से निर्मित होता है। गर्भित (पूर्ण) या सहज गंभीरता व्यक्ति के व्यक्तित्व का एक अंश होती है। अतः ऐसा सूक्ष्म बुद्धि गहराई तक सत्य बोध करने के योग्य होता है और इसीलिए विकट परिस्थितियों में भी गंभीरता का त्याग नहीं करता यानि आंदोलित नहीं होता। जैसे घनघोर आंधी-तूफान में, कड़कती बिजलियों के बीच भी, बादल के स्वर की गंभीरता यथावत् बनी रहती है।

गंभीरता को विकसित करने का क्या साधन है?

गंभीरता के उद्‌भव में जहाँ व्यक्ति की मूल प्रकृति नियामक (नियन्त्रित करने के) रूप में कार्य करती है, वहीं परिवेश (यानि चारों ओर घर, परिवार व समाज का घेरा) या परिस्थितियाँ इस गुण के विकास के लिए साधन रूप में कार्य करती हैं। अनुशासनहीन वातावरण जहाँ व्यक्ति को उच्छृंखल और लापरवाह बना सकता है, वहीं एक अनुशासित-सुसंस्कृत वातावरण उसे धीर-गंभीर बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। धैर्य, अध्यवसाय (लगातार परिश्रम), स्थिरता जैसे गुणों को आत्मसात करने वाला व्यक्ति भी गंभीरता को सहज ही प्राप्त कर सकता है। यहाँ यह भी जान लो कि गंभीरता निराशा, अभाव या दुःख-दारिद्रय से उपजा भाव नहीं है, यह तो एक ऐसा मूल्य है, जिसके स्पर्श मात्र से व्यक्ति का व्यक्तित्त्व दिव्य आभा से देदीप्यमान (प्रकाशपूर्ण) हो उठता है। कर्त्तव्यपरायणता भी व्यक्ति की गंभीरता को तराशती है। छिछले हँसी-मज़ाक, घटिया आरोप-प्रत्यारोप, परनिंदा में रुचि आदि कुछ ऐसे

तत्व हैं जो गंभीरता के लिए घातक सिद्ध होते हैं। अतः इनसे बचकर वह उर्वर भूमि तैयार की जा सकती है, जिसमें गंभीरता का पौधा पनपता है।

गंभीरता की कसौटी क्या है?

उत्साह, धैर्य व स्थिरता से पोषित होना ही गंभीरता की कसौटी है। गंभीरता अपने अवगुणों को छिपाने का आवरण नहीं हो, वरन् हृदय की सात्विक वृत्तियों से जनित हो, यही गंभीरता का सच्चा स्वरूप है।

गंभीरता के महत्त्व व उपयोगिता को स्पष्ट कीजिए?

गंभीरता एक ऐसा मूल्य है, जो अपने साथ अन्य कई गुणों को एक कड़ी के रूप में जोड़े रखता है, जैसे उत्साह, तलस्पर्शी दृष्टि, गहनता, धैर्य, स्थिरता आदि। अतः इतने गुणों का समुच्चय होने के कारण मानव-जीवन में इस मूल्य का महत्त्व कई गुणा बढ़ जाता है। जिस समाज या राष्ट्र के लोग गंभीर प्रकृति के नहीं होते, जो क्षुद्र रंग रास में, घटिया विलासिता में, छिछले आमोद-प्रमोद में व्यस्त रहते हैं, वे अपने साथ अपने कुल और राष्ट्र का भी अंत कर बैठते हैं।

गंभीरता द्वारा व्यक्ति का उद्धार कैसे संभव हो सकता है?

गंभीरता व्यक्ति के व्यक्तित्त्व को तराशाती है। गंभीर प्रकृति का व्यक्ति जीवन के प्रत्येक क्षण को, प्रत्येक कार्य को महत्त्वपूर्ण मानकर पूरी निष्ठा, ईमानदारी व कर्त्तव्यपरायणता के साथ निभाता है। ऐसा व्यक्ति कभी भी निर्दिष्ट मार्ग से विचलित नहीं होता। उसके लिए जीवन हँसी-मज़ाक मात्र नहीं होता, वरन् एक गंभीर दायित्व होता

है। अतः ऐसा व्यक्ति समाज व राष्ट्र के प्रति भी अपने दायित्व को बड़ी कुशलता से निभाता है। चूँकि ऐसा व्यक्ति छोटे से छोटे कार्य को भी बड़ी लगन, धैर्य व निष्ठा से करता है, अतः ज्ञान-विज्ञान व कला के क्षेत्र की बड़ी-बड़ी उपलब्धियाँ ऐसे ही व्यक्तियों द्वारा अर्जित की जाती हैं। ऐसा व्यक्ति समय का दुरुपयोग नहीं करता क्योंकि उसकी गंभीर प्रकृति उसे व्यर्थ की बातों में रस लेने से रोकती है। सच तो यह है कि गंभीरता के जादुई स्पर्श से व्यक्ति के व्यक्तित्व का आकर्षण कई गुना बढ़ जाता है।

सहिष्णुता यानि सहनशीलता भी धीर बनने के लिए अनिवार्य है, इस संदर्भ में सहनशीलता से क्या अभिप्राय है, स्पष्ट कीजिए?

कष्ट, पीड़ा, अत्याचार, प्राकृतिक घात-प्रतिघात को चुपचाप सहने की शक्ति या स्वभाव ही सहनशीलता है। सहिष्णुता महान गुण है। यह पलायनवादिता व कायरता का सूचक नहीं है अपितु यह तो विनयशीलता का द्योतक है। सहिष्णुता मनुष्य को कष्ट सहने के लिए, शक्ति प्रदान करने वाली, अपने विपक्षियों को क्षमादान देने वाली और समाज में साम्य स्थिति लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली है।

सहनशीलता का विधि एवं निषेधपरक प्रयोग कैसे होता है?

व्यक्तिगत या सामाजिक जीवन में जाड़ा, गर्मी, वर्षा जैसी प्राकृतिक घटनाओं के उतार-चढ़ाव को सहन करना पड़ता है, चाहे हँसकर सहे या रोकर। इसी तरह विपक्षी के व्यंग्य बाण सहने पड़ते हैं। परिवार में स्त्रियों को अनेकानेक कष्टों,

मानसिक और शरीरिक यातनाओं को झेलना पड़ता है। वस्तुतः मनुष्य का स्वभाव बन चुका है सहने का। वह पर्याप्त मात्रा में सहनशीलता संचित कर चुका होता है। ऐसी परिस्थितिजन्य घटनाओं को सहना सहिष्णुता का विधिपरक पक्ष है। किन्तु यदि लगातार असंतोष व्यक्त किया जाए या परिस्थिति के विरुद्ध सिर उठाया जाय, तो यह सहिष्णुता का निषेधपरक पक्ष होगा।

सहिष्णुता के कितने भेद या स्तर हैं?

सहिष्णुता के तीन भेद या स्तर हैं, यथा स्वभावगत या प्राकृतिक सहिष्णुता, सामाजिक सहिष्णुता, धार्मिक सहिष्णुता।

प्राकृतिक सहिष्णुता क्या है?

प्राकृतिक परिस्थितयों से तालमेल बैठाना स्वभावगत या प्राकृतिक सहिष्णुता है। किसी को गर्मी अधिक सताती है, किसी को कम। यह उसकी सहिष्णुता की मात्रा पर निर्भर करता है।

सामाजिक सहिष्णुता को स्पष्ट कीजिए?

समाज में जो उत्पीड़न होता है, जो अन्याय किया जाता है, जिस तरह व्यंग्यबाण छोड़े जाते हैं, उनमें अविचलित रह अपने मन-मस्तिष्क को शांत एवं संतुलित रखना सामाजिक सहिष्णुता का रूप है।

धार्मिक सहिष्णुता के बारे में भी बताइए?

भक्तों में तथा साधु पुरुषों में जो सहिष्णुता पाई जाती है, वह

धार्मिक सहिष्णुता का परिचायक है। कहते हैं कि सहिष्णुता की सीमा होती है यानि अत्याचार सहने की भी एक क्षमता होती है तथा धैर्य का बाँध टूटना सहिष्णुता की चरम सीमा का सूचक होता है किंतु धार्मिक सहिष्णुता धारने वाला सजन ठीक उसी प्रकार अपनी सहिष्णुता नहीं छोड़ता जिस प्रकार वनस्पतियाँ झंझावात, उपलवृष्टि यानि तूफान व ओलों की मार सहकर भी विनम्र बनी रहती हैं।

सहनशीलता को विकसित करने का साधन क्या है?

मन पर नियंत्रण, संयम, धैर्य, दृढ़ संकल्प एवं क्षमाशीलता द्वारा सहिष्णुता का विकास संभव है। सहिष्णुता के लिए आवश्यक है कि क्षमाशीलता को अपनी पराजय न समझा जाय। क्षमाशीलता तो महानता की सूचक है।

स्पष्ट है कि नाना प्रकार के कष्टों, विपदाओं एवं उत्पीड़नों के बावजूद मन तथा वाणी पर पूर्ण नियंत्रण, शिष्ट तथा मधुर वचनों का प्रयोग तथा ग्लानि एवं पश्चाताप से रहित होना ही सहिष्णुता की कसौटी है। तात्पर्य यह है कि जो जितने कष्ट सहता है, उसे उतना ही सम्मान प्राप्त होता है। ऐसा इन्सान दुःख में उलझता नहीं, न ही उसे सोच बना कर मन में लेकर बैठ जाता है व दूसरों को उसका बखान करते हुए रोने-झुखने का स्वभाव अपनाता है। वह तो विचार शक्ति द्वारा दुःख निवारण का यत्न करता है व सदा प्रसन्नचित्तता से ताकतवर अवस्था में बना रहता है। इस प्रकार सहिष्णुता का गुण धारण करने से समाज में समरसता आती है, हिंसा वृत्ति का निवारण होता है एवं संतोष का उदय होता है। सहिष्णुता व्यक्ति को उदार हृदय बनाने वाली है। समाज में

सभी तरह के व्यक्ति रहते हैं। उनसे लड़-झगड़ कर काम नहीं चल सकता। अपनी सहनशक्ति बढ़ा कर अन्यों के लिए आदर्श बनने की आवश्यकता बनी रहती है। प्रारब्ध को महत्त्व नहीं दिया जाता। सहिष्णुता धारण करने या उसका प्रदर्शन करने से कार्यसिद्धि होती है।

इस संदर्भ में सजनों धैर्य धारण करने में सहनशीलता के साथ-साथ क्षमा की भूमिका भी अतुलनीय है। क्षमा का अर्थ है, धैर्य, सहिष्णुता, माफी। क्षमाशीलता वह प्रवृत्ति है, जिसके वशीभूत होकर व्यक्ति अपने से छोटों या बड़ों के द्वारा किये जा रहे अनीतिपूर्ण कार्यों के लिए उन्हें माफ़ करता रहता है। क्षमा ससीम (यानि जिसकी सीमा या हद होती है) प्रवृत्ति है। क्षमा शत्रु, मित्र, वीर तथा साधु-सन्त जनों का आभूषण है। क्षमाशीलता क्षमा करने की प्रवृत्ति है। क्षमाशीलता से धैर्य धारणा और सहनशीलता का बोध होता है। क्षमाशीलता दैवीय गुण है । सामान्य संसारी व्यक्ति ऐसे अनेक कार्य करता है, जो शास्त्रसम्मत, नीतिसंगत या विधान के अनुकूल नहीं होते। यदि ऐसे व्यक्तियों को क्षमा न किया जाए, तो उनमें अपराध बोध जागृत हो सकता है। पृथ्वी की भांति उदार व्यक्ति ऐसे व्यक्ति को क्षमा प्रदान करके क्षमाशील कहलाता है। आओ क्षमा के विषय में अब आगे जानते हैं:-

क्षमाशीलता के लिए क्या आवश्यक है?

क्षमाशीलता में जप, तप, धर्म, ज्ञान, धैर्य, वीरता ये सारे गुण समाहित रहते हैं। क्षमाशील व्यक्ति अपने शत्रुओं के दुष्कर्मों को बहुत काल तक क्षमा करता रहता है। इसमें उसके धैर्य

की भी परीक्षा हो जाती है। क्षमाशीलता के लिए उदारता, विनयशीलता, दृढ़संकल्प व विवेक आवश्यक है।

क्षमा के विधि एवं निषेधपरक प्रयोग को स्पष्ट करो?

यदि अपने से बलशाली व्यक्ति के दुष्कर्मों की उपेक्षा करते हुए उसे क्षमा दान दिया जाता है, तो यह विधिपरक क्षमाशीलता होगी। जो निर्बल हैं, विनीत हैं, सरल हैं, उनके प्रति क्षमाभाव प्रदर्शित करने का प्रश्न ही नहीं उठता। अन्याय को सहन करते रहने की शक्ति भी क्षमाशीलता ही है।

क्षमा के विभिन्न भेद यानि स्तर क्या हैं?

क्षमा के दो भेद स्तर हैंः- आत्मक्षमाशीलता, पर-क्षमाशीलता।

आत्मक्षमाशीलताः- यदि मनुष्य अपने द्वारा किये गये पापों, अपनी त्रुटियों को माफ़ कर देता है तो यह आत्मक्षमाशीलता है किन्तु जब अन्यों द्वारा किये जा रहे अपराधों तथा अनाचारों को क्षमा करता है, तो यह पर-क्षमाशीलता है और यही असली क्षमाशीलता है।

क्या क्षमा की भी कोई सीमा है या यह असीम है। उदाहरण देकर समझाओ?

द्वापर में शिशुपाल को उसके अपशब्दों के लिए श्रीकृष्ण बारम्बार क्षमा करते रहे किन्तु जब पराकाष्ठा हो गई, तो उसका वध कर दिया। अतः क्षमा की एक सीमा होती है। वह असीम नहीं होती। इस संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती

ग्रन्थ कह रहा है कि पहले प्यार से समझौता देवें। मारें नहीं बल्कि कड़ी निगाह से समझावें। अगर वह फिर भी न समझे तो छठी बार मार सकते हैं। जितना कसूर हो उतनी ही सज़ा देवें।

क्षमा को विकसित करने के क्या साधन हैं?

क्षमाशील बनने के लिए विद्या तथा विनय सम्पन्न होने के साथ ही नीति-निपुण होना आवश्यक है। विद्वान तथा विनयी व्यक्ति ही विवेकानुसार क्षमा प्रदान कर सकता है। क्षमाशील होने के लिए धैर्यवान होना भी आवश्यक है।

क्षमा की कसौटी क्या है?

अदम्य (प्रबल) साहस एवं धैर्य के साथ ही विनयशीलता का होना क्षमाशीलता की कसौटी है। क्षमादान के बाद उसका उल्लेख उचित नहीं। जो क्षमायाची हो उसको कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिए।

क्षमा का महत्त्व क्या है?

याद रखो जो क्षमाशील है उसकी इस संसार में और परलोक में भी प्रशंसा होती है। उसका सदैव सम्मान होता है। मनुष्य से भूल या त्रुटि होना, कार्य का बिगड़ जाना स्वाभाविक है, किन्तु क्षमाशील व्यक्ति ऐसी भूलों या त्रुटियों को गम्भीरता से नहीं लेते। उलटे वे क्षमा करते रहते हैं।

क्षमाशीलता को वीरों का आभूषण कहा गया है। क्षमा में जो औदार्य है (उदारता), वह क्रोध करने में नहीं। कुछ अपराध ऐसे होते हैं जो क्षम्य हैं, तो कुछ अक्षम्य हैं। प्रायः क्षमाशील

व्यक्ति अपने विवेक से क्षमा की परिधि तय करते हैं। क्षमा के मूल में कल्याण या हित की भावना कार्य करती है। याद रखो भूल करना मनुष्य का स्वभाव है परन्तु क्षमा करना दैवी गुण है।

सहिष्णुता, क्षमा व धैर्य में क्या अंतर है?

सहिष्णुता को क्षमा का पर्याय कहा गया है किन्तु सहिष्णुता में स्व-सहनशीलता प्रधान रहती है जबकि क्षमा दूसरों के लिए होती है। पापी के पाप या उसके दुष्कर्म को क्षमा करने की प्रवृत्ति क्षमाशीलता है तथा धैर्य वह प्रतीक्षा है जो बार-बार असफल होने पर भी संकल्प शक्ति को पराजित नहीं होने देती। मन में असंतोष का न उपजना, बारम्बार प्रयत्न करना——यही धैर्य की निशानी है। धैर्य में निराशा नहीं, आशा का भाव छिपा होता है। सहिष्णुता में क्षमा तथा धैर्य दोनों का ही भाव मिला हुआ है।

धैर्य से एक अन्य सम्बन्धित शब्द है तितिक्षा, तितिक्षा से क्या अभिप्राय है?

सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों को सहने की क्रिया/शक्ति, विकलता के बिना सभी दुःखों को सहना, धैर्यपूर्वक सहन करने का भाव तथा क्षमाशीलता ही तितिक्षा है।

अन्य शब्दों में अप्रतीकारपूर्वक चिन्ता (जिसके विरुद्ध प्रयत्न या कोई उपाय न किया जा सके) और विलापरहित होकर सब प्रकार के दुःखों को सहना ही तितिक्षा कहलाता है। याद रखो जब तितिक्षा साधी जाती है, तब सुख-दुःख और

मोह, अंतःकरण को किसी तरह से क्षुब्ध नहीं कर सकते हैं। तभी तो गीता में कहा गया है कि 'सुख-दुःख, सर्दी और गर्मी को देने वाले इन्द्रियों और विषयों के संयोग तो अनित्य हैं, क्षणभंगुर हैं, अतः इनका त्याग करो। याद रखो जो सुख-दुःख में धीरता और समानता समझते हैं, इन्द्रियों और विषयों के संयोग उन्हें व्यथित (बेचैन) नहीं कर पाते।'

तितिक्षा के लिए अनिवार्य तत्त्व क्या हैं?

तितिक्षा का प्रारंभ बाहरी यात्रा को भीतरी बनाने से होता है। 'मैं' यानि आत्मा को सुख-दुःख नहीं बांधता, न ही व्यापता है। हम शरीर के सुख-दुःख से सारा संबंध रखते हैं, जो अनित्य है, बाह्य है और क्षणिक है। जैसे ही आंतरिक यात्रा शुरू होती है, हम सुख-दुःख से ऊपर उठने लगते हैं। अतः इसके अनिवार्य तत्वों को इस प्रकार समझा जा सकता हैः-

1. आत्मा को जानना

2. मन को बाहर से समेटकर भीतर ले जाना

3. आत्म-अनात्म, नित्य-अनित्य के अंतर को जानना

4. आत्मा में अवगाह यानि आत्मा के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सुख-दुःख से रहित हो जाना।

5. निरन्तर अभ्यास और प्रभु में विश्वास

तितिक्षा के विधि एवं निषेधपरक प्रयोग को भी स्पष्ट करो?

न केवल शरीर से उपयुक्त गरमी-सर्दी आदि को सहन करना अपितु मन से उचित कष्टों को सहन करने की क्षमता

रखना तितिक्षा का विधि परक प्रयोग कहलाता है। लेकिन इसके विपरीत निषेध की कोटि में आता है।

अंत में सजनों यह जान लो कि चित्त में कुत्सित यानि अधम और विकृत विचारों का निवारण कर स्वस्थ, सबल, दृढ़निश्चय, साहसी, शाक्तिशाली, प्रशान्त (बहुत शान्त और स्थिर), गंभीर, दूरदर्शी और प्रतिभाशाली बनाने वाला एकमात्र भाव अथवा गुण धैर्य है। गुणों में से एक होने के कारण जीवन की विविध दिशाओं में यह व्यापक रूप से विस्तीर्ण है। संस्कारों को परिष्कृत यानि स्वच्छ और सुन्दर बना कर, ठोस दिशा प्रदान करने वाला यह गुण, सर्वदेशीय (सब देशों से सम्बन्धित) है। कमोबेश यानि कम अथवा ज्यादा सभी में पाया जाने वाला यह गुण विशेष सात्विक वृति वाले लोगों का दुर्लभ गुण बन जाता है और समय आने पर अजेय शक्ति का परिचायक बनता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, प्रत्येक दिशा में और प्रत्येक घड़ी में इस की संगति अनिवार्य है। साहित्य हो या कला, वाणिज्य हो या विज्ञान, सर्वत्र इसका ही महत्व है इस दृष्टि से यह अत्यन्त मूल्यवान और विशिष्ट तत्त्व है जो सर्वकालिक है।

इस संदर्भ में हम आपसे पूछना चाहते हैं कि क्या आप जानते हो कि समाज में मानव मूल्य की हत्या क्यों होती है?

मौन

वह इसलिए होती है कि दो कारणों से लोगों के साथ अन्याय होता है।

1. हम दूसरों को दुखी कर क्षति पहुँचाकर अपने-आप सुखी

होना चाहते हैं। हम स्वार्थी यानि आत्मकेंद्रित हैं।

2. हम अपने दुख का कारण स्वयं को नहीं अपितु दूसरों को मानते हैं। बाह्य जगत को मानते हैं और वैसा आचरण करते हैं।

जान लो कि ये दोनों कारण ही निराधार हैं क्योंकि सुख-दुःख को भीतर ढूढँना प्रारंभ करने से स्वभाव बदलता है। कारण जान लेने से धैर्य यानि तितिक्षा आ जाने से व्यक्ति समाज में अन्याय, अत्याचार सहन नहीं करता अपितु स्वयं सम पर स्थित रहता है और आत्मस्वरूप में बने रहकर अन्यों को भी यथावत् यानि अपने ही समान देखता व समझता है। ऐसे लोगों से घर, परिवार, समाज व कुल विश्व में एक ऐसे सुन्दर, स्वच्छ, स्वस्थ व अध्यात्मिक वातावरण का निर्माण होता है, जहाँ मानव-मूल्यों की रक्षा हो पाती है तथा करुणा, दया, सहयोग, सहिष्णुता यानि सहनशीलता की भावभूमि बननी है। ऐसे साम्राज्य में कोई आतंकवादी नहीं होता अपितु सभी मनुष्य सुरक्षा का अनुभव करते हैं। तपोभूमि में हिंस्त्र-हिंसक (जिसकी हिंसा की जा रही है व जो हिंसा कर रहा है), भोज्य-भोजक का भेद नहीं रहता। वहाँ शेर आकर शांति से बैठा रहता है, मनुष्य भी रहता है, पर कोई ख़तरा नहीं। धैर्य, सहनशीलता व तितिक्षा से भी ऐसी ही तपोभूमि बनती है।

तभी तो धैर्य के साथ-साथ क्षमा, सहनशीलता, तितिक्षा आदि सद्गुणों का महत्त्व भी मानव के जीवन में अतुलनीय माना जाता है। इस संदर्भ में जानो कि अंतःकरण में काम, क्रोध, मद, मत्सर यानि जलन, अभिमान आदि अनेक

विकारों का निवास है। इसमें अधिकांश निष्कामता भी है। विवेक उर्वरक का काम करता है। निष्कामता ही अमलता है और अंतःकरण की शुद्धता का मूल है। यह शुद्धता द्रष्टाभाव से आती है। 'मैं' शरीर की अवस्थाएं शैशव, किशोर, युवा, प्रौढ़ और वृद्ध के रूप में निरन्तर परिवर्त्तन का चक्र एकटक, एकरस देख रहा है। अतः यह दृष्टा ही अपरिवर्तनशील है। यही नित्य है, शाश्वत है। यही सुख का स्रोत है।

आत्मा से भिन्न जो भी है वह अनात्म यानि जड़ है और अनित्य है। आत्म को जान लो कि- मैं आत्मा हूँ, अतः सुख स्वरूप हूँ, शेष अनात्मा है, अतः दुःख रूप है इसलिए उससे मत जुड़ो। यही विवेक है। यह विवेक सत्य-असत्य, करणीय-अकरणीय, विधि-निषेध का बोध कराता है। अंतःकरण के विकारों को क्षीणकर उसे निर्मल बनाता है। अनात्मा यानि जड़ता के प्रति वैराग्य को जन्म देता है। अतः विवेक के उदय से वैराग्य आता है। वैराग्य विवेक की चरमावस्था है। यही वैराग्य अनासक्त और सम बनाता है। ज्ञानस्वरूप बना कर परमात्मा से मेल कराता है। इसका संस्कार दृढ़ हो जाए तो तितिक्षा आती है। अतएव उसे विकसित करने के उपाय हैं द्रष्टाभाव से देखते रहना, अनात्मा का त्याग, आत्मा से साक्षात्कार, विवेक को प्रोत्साहन देना कि वैराग्य हो और तितिक्षा आए।

अतः प्रतिकारपूर्वक चिन्ता और विलापरहित होकर सब प्रकार के सुखों व दुःखों को सहन करो। इस संदर्भ में मानो कि सुख-दुःख बहुत कुछ मानसिक स्थितियाँ हैं। मन को पढ़ने से इनसे काफी हद तक मुक्ति मिल सकती है। अतः

हर परिस्थिति में समभाव में बने रह सबके साथ समदृष्टि अनुरूप व्यवहार करो। न तो सुख में प्रफुल्लता हो और न ही दुःख से संताप हो यानि अंतःकरण किसी भी प्रकार सुख-दुःख और मोह से क्षुब्ध न हो अर्थात् प्रभावित व ग्रस्त न हो। याद रखो विवेक की चरमावस्थिति ही वैराग्य है। किसी व्यक्ति, वस्तु, परिस्थिति अदि से आसक्ति या द्वेष का न होना यही वैराग्य है।

वैराग्य को न तो त्याग का अभिमान समझा जाए, न अन्य की उपेक्षा। अनात्म यानि जड़ वस्तु में न तो आदरबुद्धि हो, न ही वैराग्य हो। याद रखो जब अप्रिय घटना या कार्य संपन्न हो जाए तब भी जो व्यक्ति समभाव में रहता है, उसी को धैर्यवान, धीर, सहनशील व तितिक्षायुक्त कहा जाता है। जो ऐसी अवस्था से कम से कम दुःखी या अशांत हो, वही वीर व बहादुर धीर माना जाता है। दैहिक, दैविक तथा भौतिक दुःखों में उसका मन उद्विग्न नहीं होता, सुखों की प्राप्ति में उसकी स्पृहा यानि आसक्ति समाप्त हो जाती है तथा उसका राग, भय और क्रोध नष्ट हो जाता है।

मननशीलता की चरमसीमा पर पहुँचा हुआ ऐसा सजन ही स्थितप्रज्ञ कहलाता है। ऐसा व्यक्ति सर्वत्र स्नेहरहित हुआ, शुभ-अशुभ को प्राप्त होकर न तो प्रसन्न होता है और न ही द्वेष करता है। उसी की बुद्धि स्थिर मानी जाती है। इसी तरह सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख और मान-अपमान में जिसके अंतःकरण की वृत्तियाँ भली प्रकार शांत रहती हैं, ऐसा स्वाधीन आत्मा वाला ही परमात्मा में सदैव स्थित रहता हैं यानि कभी विलग नहीं होता। यही तो निष्कामता से

सच्चाई-धर्म के रास्ते पर सुदृढ़ता से बने रहने की बात है। आपकी जानकारी के लिए आगामी कक्षा में हम सच्चाई के विषय में बात करेंगे। तब तक हिम्मत से काम लो और जीवन के हर पहलू में विवेकशीलता से सब कुछ करते हुए धीर होने का परिचय दो।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।



दिनाँक 29 नवम्बर 2015 का सबक

सत्य-(1)
प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार सजनों श्री साजन जी कह रहे हैं-

कुटिल कामी और छली कपटी, हनुमान जी।
शहनशाह दी सभा विच किस तरह राहवेगा।।

चोर ठग मिथ्या बोलने वाला सजन।
फिर किस तरह ओ सभा विच बाहवेगा।।

इसलिए सजनों -

युवा अवस्था दे असूल आप पकड़ो,
ते सजनां नूं पकड़ना सिखा दीजियो।
कुसंग संकल्प दा झुरना हटा के ते संतोष धैर्य दा सिंगार
सजनां नूं पहनना सिखा दीजियो।।

इस प्रकार संतोष धैर्य का श्रृंगार पहनने उपरान्त-

सच्चाई धर्म दे रस्ते ते सजनां नूं चढ़ना सिखा दीजियो।
ओ मेरे साजना सतवस्तु दी इक चाल पकड़ना समझा दीजियो।।

इस सन्दर्भ में सतवस्तु की चाल पकड़, सच्चाई-धर्म के रास्ते पर चलते हुए समभाव-समदृष्टि के सबक को अपनाने की योग्यता प्राप्त करने हेतु पहले सत्य को समझते हैं:-

सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें बताता है कि सत्य ही स्वयं परब्रह्म परमेश्वर परमात्मा है यानि सत्य ही ब्रह्म है। सत्य के साथ यदि ख्याल जुड़ गया तो समझो कि ईश्वर के साथ जुड़ गया। इस तरह फिर सत्य और ईश्वर में कोई अन्तर नहीं रहता। यद्यपि सत्य की उपासना करने वाले इसे भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं तथापि सत्य एक ही है, दूसरा नहीं। जान लो सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर ही है। सत्य के सिवा और किसी चीज़ की हस्ती संभव नहीं। सत्य रूपी धुरी पर ही यह पृथ्वी टिकी हुई है। सत्य से बढ़कर धर्म नहीं है। अतः समस्त अन्य आडम्बर छोड़कर इसी सत्य-धर्म पर टिके रहो, क्योंकि यही चैतन्य शक्ति ही मानवता का प्रतीक है। इसी शक्ति को यथा धारे रखकर ही बलवान होकर जीवन जीने हेतु उसका उचित प्रयोग कर सकते हो। याद रखो सत्य खान से निकले हुए सोने की भांति शुद्ध और खरा है, इसीलिए शरीर रूपी घर को

सचखंड बनाने का विधान है। सत्य को चूँकि ईश्वर का स्वरूप कहा गया है, अतः इसका क्षेत्र अन्य मानव-मूल्यों की अपेक्षा व्यापक, सूक्ष्म, गम्भीर और जटिल है। इसकी सूक्ष्मता, गम्भीरता व जटिलता को समझने के लिए एक निगाह एक दृष्टि होने की आवश्यकता है। ऐसी एकाग्र निगाह व दृष्टि ही हृदय की गहराई में उतरकर विद्यमान सत्य की पारखी बन सकती है।

ध्यान दो अपने असलियत स्वरूप को जान लेना सत्य को पहचानना है। इस हेतु 'विचार ईश्वर है अपना आप' इस के प्रति विश्वास का होना ही पर्याप्त नहीं है अपितु विश्वास की अटलता भी अनिवार्य है। इसीलिए तो कहा जाता है कि सत्य ही परम बल है। यहाँ स्पष्ट कर दें कि सत्य का सर्वश्रेष्ठ अभिनंदन यह है कि हम उसको आचरण में ले आएं। इस हेतु आवश्यक है कि हम सत्य ही बोलें व सत्य को ही अपने आचार-व्यवहार द्वारा प्रदर्शित करें। तभी हम बलवान होकर इस जगत में विचर सकते है। इस सन्दर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

एहो दृढ़ विश्वास है, एहो तो इतिहास है,
एहो तो यादाश्त है।।
उस शहनशाह दाते दी एहो तो करामात है।।
सत सत बोलना सीखो सजनों,
सत् सत् करो प्रवान
सत है गुरु, सत नाम सत ध्यान लाणा सीखोसजनों
सत् सत् बड़ा है महान।।
सत सत वर्त्त वर्ताओ करना सीखो,
सजनो सत् सत् करो प्रवान।

सत सत बोलना सीखो सजनों सत् आप पढ़ो ते सजनां नूं पढ़ाओ, इसे शब्द नाल हिवे विश्राम।।

निःसंदेह सत्य अनंत रूप में असत्य की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली है। जान लो जहाँ सत्य नहीं, वहाँ शुद्ध ज्ञान प्राप्ति संभव नहीं। अतः मूलमन्त्र शब्द को गुरु मानो और अंतर्मुखी हो अपना ख़्याल ध्यान वल व ध्यान प्रकाश वल कर लो। इस तरह आत्म में स्थित परमात्म तत्व से विशुद्ध आत्मिक ज्ञान की प्राप्ति करो और फिर उसी सत्य के पालन में ही शान्ति मानो। जान लो कि यदि हमारे जीवन में सच्चाई है, तो उसका असर अपने आप लोगों पर पड़ेगा क्योंकि सत्य की हमेशा विजय होती है।

आओ अब सत्य शब्द को विस्तार से समझते हैं:

संस्कृत भाषा में विशेषण के रूप में सत्य शब्द का अर्थ है:- सच, यथार्थ, ठीक, वास्तविक, असल, यथातथ्य, ईमानदार, विश्वस्त, पुण्यात्मा, खरा, सच्चा आदि।

पुल्लिंग रूप में यह सच्ची बात, लगन, विशुद्धता, अच्छाई, पारमार्थिक सत्ता, सत्ययुग, प्रमाणित सिद्धान्त में से एक, इन अर्थों में ग्रहण किया जाता है।

इस शब्द का अनेक रूपों में प्रयोग होता है, जैसे:

1. किसी व्यक्ति की ईमानदारी के विषय में घोषणा करना मन, वचन और कर्मजन्य सत्य है।

2. किसी पदार्थ की वास्तविकता अथवा असलियत के बारे में प्रमाणित करना भी सत्य है।

3. सद्‌गुणसम्पन्न व्यक्ति के लिए भी सत् या सत्य शब्द का प्रयोग होता है।

4. अपने व्रत को सच्चाई के साथ पालन करने वाले को भी सत्य से संबद्ध किया जाता है।

5 अपने कर्म या सिद्वान्त के प्रति निष्ठा रखने वाले के साथ भी सत्य शब्द योजित किया जाता है।

6. कृतयुग को सतयुग या सत्य-युग कहा जाता है।

7 सत्य शब्द का मुख्य अर्थ है - सच या सच्चा - अन्य शब्दों में जो बात जैसी हो, जैसे देखे-सुने, वैसे ही माने और कहे व करे।

परिभाषाः

ईश्वर, प्रकृति, लोक शास्त्र आदि से सम्बद्ध शाश्वत तथ्यों को सही रूप में तोड़े-मरोड़े बिना अन्यों को प्रिय लगने वाली वाणी के माध्यम से अपने हित और लोकहित में व्यक्त करना सत्य है। सत्य को सही-सही रूप में बोलना चाहिए, जिससे दूसरे लोग समझ सकें कि सच्चाई क्या है। यद्यपि सत्य कभी-कभी अप्रिय होता है, किन्तु सत्य कहने में संकोच नहीं करना चाहिए। सत्य की माँग है कि तथ्यों को यथारूप में लोकहित के लिए प्रस्तुत किया जाये।

अनिवार्य तत्त्वः

सत्य एक उत्कृष्ट, व्यापक मानवमूल्य है और इसके लिए सूक्ष्म विचार होना आपेक्षित हैं। किसी विशेष प्रसंग में

सर्वप्रथम यह आश्रय (व्यक्ति विशेष) के मनोजगत् में प्रकट होता है। तत्पश्चात् वाणी और अंततः कर्म के माध्यम से प्रकट होता है। प्रत्येक व्यक्ति में सत्य के प्रति समान आग्रह यानि निष्ठा नहीं होती। व्यक्तिगत भेद के आधार पर इसका न्यूनाधिक यानि कम या ज्यादा होना स्वाभाविक है। सत्य के आश्रय (यानि प्रत्येक व्यक्ति के लिए) आलम्बन (यानि जिस के साथ व्यवहार करना है) उस के प्रति सत्य का विवेकपूर्वक प्रयोग करना वांछनीय है अन्यथा सत्य, असत्य के रूप में परिणत हो जाएगा। जान लो कि सत्य का स्थान मुख है और वाणी से ही वह जाना जाता है। सत्य के लिए जो भी साधन प्रयुक्त हों वे औचित्य से युक्त होने चाहिएँ।

विधि एवं निषेधपरक प्रयोगः

सत्य ऐसा मानवमूल्य है, जिसका निषेधरूप असत्य के रूप में ही हो सकता है, जिसकी गणना मानव मूल्य में नहीं होती। सत्य का निषेधरूप पापमय है। जान लो कि जहाँ शाश्वत सत्य अथवा लोक सत्य निषेध होता है, वहाँ अशुभ परिणाम भी आश्रय को भोगना पड़ता है। उदाहरणस्वरूप महाभारत में सत्य के पक्षधर को राज्य न देकर धृतराष्ट्र ने जिस सत्य के निषेधरूप को अपनाया, उसका अंतिम परिणाम कौरवों के सर्वनाश के रूप में प्राप्त हुआ।

सत्य के भेदः

सत्य के दो भेद मानते हैं। निरपेक्ष सत्य और सापेक्ष सत्य। निरपेक्ष यानि जो कामना-रहित है और सापेक्ष यानि जो किसी बात की अपेक्षा करता है। जान लो कि निरपेक्ष सत्य

ईश्वर है, जो प्राप्ति के योग्य है, पर जब तक वह प्राप्त नहीं है, तब तक सापेक्ष सत्य पर ही आश्रित रहना होगा।

विकसित करने के साधनः

सत्य के साधनों में सर्वप्रथम है सत् तत्त्व अर्थात् ईश्वर या परमात्मा के प्रति आस्था। इसके पश्चात् परमात्मा के अंशभूत सभी मनुष्यों एवं प्राणियों के प्रति सहृदयता, संवेदनशीलता और सेवा का भाव आवश्यक है। इन्हीं साधनों या दिव्य शक्तियों के परिणामस्वरूप सत्य के साधक को शेष सृष्टि के प्रति एकात्म्य और तद्द्वारा सुख की अनुभूति होगी। व्यक्ति का अंतःकरण विशाल, उदार, विनम्र और सहनशील होगा। स्वार्थ-भावना, लोभ, क्रोध, ईर्ष्या, आदि बुरे भाव उससे कोसों दूर हो जाएँगे। ऐसी स्थिति में अंततः सत्य अपने सभी अंगों के सहित साधक के हृदय में नित्य या सदैव निवास करेगा। अनेक महापुरुषों ने अपने जीवन में सत्य को पूरी तरह विकसित और प्रतिष्ठित करके संसार के सामने सत्य के व्यापक स्वरूप को व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत कर दिखाया।

कसौटीः

जिस प्रकार सत् स्वरूप परमात्मा अविज्ञेय (यानि जिसके विषय में जाना न जा सके) व अकथनीय है, उसी प्रकार सत्य भी निश्चयात्मक रूप से कहा नहीं जा सकता। इस जीवन-मूल्य को धारण करने और प्रयोग करने में विवेक की बहुत आवश्यकता है। विनम्रता सत्य की कसौटी है। जिस व्यक्ति में विनम्रता कूट-कूटकर न भरी हो, उसे सत्य नहीं

मिल सकता। जो व्यक्ति अधीर, क्रूर, कठोर और निर्दयी है, वह सत्य को धारण नहीं कर सकता। सत्य प्राप्ति उसके लिए काफी कठिन है।

महत्त्वः

मनुष्य को सामान्य गुण-दोषयुक्त मनुष्य की कोटि से ऊपर उठाकर माननीय व महिमायुक्त बना देने का विरल गुण सत्य में ही विद्यमान है। मानव ही नहीं सम्पूर्ण दृश्यमान प्रकृति भी सत्य से परिचालित, प्रभावित, प्रेरित और अनुशासित है। मानव मात्र को धारण करने वाले धर्म के चार स्तंभों में से 'सत्य' आद्य है। बहुत कुछ स्पष्ट किए जाने पर भी यह अपने वास्तविक रूप में अब तक अविज्ञ यानि जाना नहीं जा सका है। उसका मुख स्वर्ण के पात्र से ढँका हुआ है। उसे ईश्वर का रूप माना जाता है, जो सर्वत्र है और जिसका कभी अभाव नहीं होता।

यह मानव को पूर्णतः आवृत यानि चारों ओर से ढँकने या घेरने वाला वह गुण है, जो विचार, वाणी और आचार द्वारा अभिव्यक्त होता है। याद रखो कि सदा सत्य ही जीतता है, झूठ नहीं। सत्य ही वह मार्ग है, जिस पर देव अर्थात विद्वान लोग चलते हैं। इसी मार्ग पर चलकर अपनी सब कामनाओं को पूर्ण कर चुकने वाले ऋषि उस ब्रह्म में लीन होकर मुक्त हो जाते हैं, जो सत्य का परम निधान यानि कोष/आधार है। इतिहास गवाह है कि अनेक महापुरुषों ने सत्य का आश्रय लेकर ही अपने व्यक्तित्व को गौरवान्वित किया है।

व्यक्ति का उदात्तीकरण:

सत्य एक उत्कृष्ट विभूति यानि दिव्य शक्ति है, जिसके आश्रय से व्यक्ति पशु से मानव, मानव से महामानव और महामानव से भगवान-सदृश बन सकता है। सत्य की व्यापकता के समानान्तर (Parallel) अपने व्यक्तित्व को अनवरत यानि निरन्तर सत्य के सजातीय (समान) मूल्यों से संवर्द्धित (पोषित) करता हुआ व्यक्ति अपने परिवार में ही नहीं, बल्कि लोक-परलोक में भी प्रशंसा का पात्र बन जाता है। सत्यरूप परमात्मा से उसकी निकटता बढती जाती है और उसकी अभीप्सा (इच्छाओं) का पर्यवसान (समाप्ति) अंततः निःश्रेयस् (मुक्ति/मोक्ष) में होता है, जो अत्यन्त दुर्लभ स्थिति है।

सजनों यह तो हम सब जानते ही हैं कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में जन्म लेने के बाद से ही वह लगातार कुछ न कुछ उससे लेता ही रहता है। कभी पुत्र के रूप में, कभी पिता के रूप में, कभी प्रजा के रूप में, कभी राजा के रूप में। उसके समाज के प्रति ऋणों की कोई गणना नहीं की जा सकती। समाज और व्यक्ति का पारस्परिक आदान प्रदान भी केवल जीवन नहीं कहा जा सकता।

संसार की सभी उन्नत सभ्यताओं और संस्कृतियों में मानव के नैतिक मूल्यों को विशेष स्थान दिया गया है क्योंकि जीवन केवल भौतिक आदान-प्रदान नहीं है, वह व्यक्ति के और समाज के विकास का भी नाम है। व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास की दृष्टि से सत्यनिष्ठा जैसे महान एवं विशाल

जीवन मूल्य की उपयोगिता असंदिग्ध है। भौतिक शरीर की नग्नता को ढांपने के लिए जिस प्रकार वस्त्रों की आवश्यकता मानवजाति को अनुभव होती रही है, उसी प्रकार से आत्मिक और चारित्रिक विकास के लिए विशिष्ट जीवन मूल्यों को जीवन में उतारने की आकांक्षा भी कई ऋषियों मुनियों में रही है। नैतिक जीवन मूल्यों को जीवन व्यवहार मे उतारने वाले व्यक्ति को ही समाज में ललकारा जाता है और इस ललकार के जवाब में वह अपने मन-वचन-कर्म द्वारा उन मानवीय मूल्यों को अपनाने की महत्ता का आदर्शतम् रूप प्रस्तुत कर अन्य सामाजिक प्राणियों को भी इस सच्चाई धर्म की राह पर निष्कामता व निर्भयता से चलने के लिए प्रेरित करता है।

इसीलिए तो सत्यनिष्ठा जैसे जीवन-मूल्य की वर्तमान समय में अत्यधिक आवश्यकता अनुभव की जाने लगी है। भौतिकता की अन्धी दौड़ में, आधिकाधिक प्राप्त करने और संचित करने के फेर में, आज का मनुष्य दोगला हो गया है यानि किसी बात पर टिकता नहीं। स्वार्थ सिद्धि के लिए असत्य-भाषण, धोखा, ढोंग, व्यर्थ की बातें करना आदि सामान्य सी बात है, किन्तु समाज में ऐसे व्यक्तियों को अनादर की दृष्टि से देखा जाता है, क्यों ? इसीलिए क्योंकि ये उसे पतन के गर्त्त में ले जाने के दोषी कारक होते हैं। जबकि सत्यनिष्ठा से भरपूर व्यक्ति अपने प्राणों की बाज़ी लगाकर भी, अपने ध्येय के प्रति सच्ची लगन, निष्ठा, विश्वास आदि के सामने किसी प्रकार का कोई समझौता नहीं करता। याद रखो मनुष्य की सत्यनिष्ठा समाज को विकसित करती है। यदि अधिकांश मनुष्य सत्यनिष्ठा को

अपने आचरण में ढाल लें तो समाज के विकास की गति बहुत बढ़ जाए। व्यक्तिगत जीवन में सत्य निष्ठा की इसी महत्ता को जानते हुए आइए सत्यनिष्ठा के विषय में प्रश्नोत्तर के माध्यम से विस्तार से समझते हैं:-

कहते हैं सत्यनिष्ठ ही धार्मिक यानि ईश्वरीय सत्ता में अटूट श्रद्धा व विश्वास रखने वाले माने जाते हैं, सत्यनिष्ठा से क्या तात्पर्य है?

मोटे तौर पर "सत्यनिष्ठा" शब्द का तात्पर्य है "सत्य में निष्ठा', "सत्य के प्रति निष्ठा" अथवा "सत्य में विश्वास"।

यहाँ "निष्ठा" शब्द के अर्थ को स्पष्ट करते हुए बता दें कि सत्यनिष्ठा में इस शब्द का प्रयोग सत्य के प्रति व्यक्ति की दृढ़ता, एकाग्रता, तत्परता, अनुराग, श्रद्धा व विश्वास को दर्शाता है।

हम सब सुनते आए हैं कि सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने के लिए सदा तत्पर रहना चाहिए। याद रखो यह तत्परता तभी दिखलाई देगी, जब व्यक्ति में सत्यनिष्ठा की भावना होगी।

हम कह सकते हैं कि 'सत्यनिष्ठा' मानव हृदय की वह विशिष्ट मनोदशा अथवा भाव-विशेष है, जिसमें वांछित सत्य के साक्षात्कार से प्राप्त अपनी मानसिक दृढ़ता के बल पर वह विकट से विकट परिस्थिति में भी विचलित नहीं होता और अपने विचारों की सत्यता को स्थापित करने के लिए प्राणों की बाज़ी तक लगा देता है।

सत्य निष्ठा का अनिवार्य तत्त्व क्या है?

'सत्य निष्ठा का अनिवार्य तत्त्व है - "निष्ठा" की प्रबलता। जितनी ही निष्ठा प्रगाढ़ (गहरी) एवं प्रबल होगी, सत्य का महत्त्व भी उतनी ही गम्भीरता से समझ में आएगा।

सत्यनिष्ठा को एक नैतिक मूल्य के साथ-साथ आध्यात्मिक मूल्य क्यों माना जाता है?

निष्ठा का भाव हमारी आवश्यकता से अधिक हमारी आत्मा से जुड़ा है। संसार की जो भी वस्तु हमें आकर्षित करती है, उसकी हमें आवश्यकता हो या न हो, हमारा झुकाव मानसिक रूप से उधर हो ही जाता है। आगे चलकर यही लगाव जब गहरा होने लगता है, तब समर्पण में परिवर्तित हो जाता है। वस्तु जितनी ही हमसे दूर होती है, उसके प्रति हमारी निष्ठा और भी बढ़ती जाती है। यह बात प्रेम के सम्बन्ध में भी भली प्रकार समझी जा सकती है। किन्तु, जिसे सत्य से ही प्रेम हो, जिसकी निष्ठा प्रेम में ही हो, वह उससे एक पल भी दूर नहीं रह सकता। सत्य के विपरीत कुछ भी सुनना, देखना या करना उसके निकट आत्मा के हनन अथवा मृत्यु जैसा ही कष्टकर होता है। इस प्रकार इस मूल्य के संरक्षण हेतु पहले तो सत्य के प्रति आकर्षण आवश्यक है और फिर उस सत्यज्ञान के पश्चात उसकी रक्षा के लिए कुछ भी कर गुज़रने वाली मानसिक, आत्मिक निष्ठा की आवश्यकता है।

सत्यनिष्ठा का विधि एवं निषेधपरक प्रयोग स्पष्ट कीजिए?

सत्य के प्रति निष्ठावान व्यक्ति के लिए सत्य के प्रति

दृढ़प्रतिज्ञ होना अनिवार्य है। इसके साथ-साथ उसके लिए अविचल सत्य का मन, वचन और कर्म से अनुपालन करना भी ज़रूरी है। सत्य और न्याय जुड़वां बन्धु हैं। जहाँ सत्य होगा, वहाँ न्याय भी होगा। न्याय उचित पक्षों-प्रसंगों का पक्षधर सत्यनिष्ठ ही हो सकता है। ये सारे गुण सत्यनिष्ठा के विधायक (निर्माता) हैं। ये गुण अस्थिर हुए कि सत्य व न्याय भी खण्डित हो जाएंगे। अतः सत्य के प्रति अस्थिरता सत्यनिष्ठा का निषेधक तत्त्व है। पुनः न्यायप्रियता का अभाव या अन्यायशीलता, पक्षपात आदि सत्यनिष्ठा के विरोधी भाव हैं। इनसे सत्यनिष्ठा डगमगा जाती है। अतः जान लो कि सदाचार, सत्य व न्याय इन दोनों का सहकारी है तथा दुराचार इनका शत्रु।

सत्यनिष्ठा के कितने भेद एवं स्तर हैं?

ठीक ही (सत्य) कहा गया है - सत्यशीलता मन की विभूति यानि दिव्य शक्ति है। पहले मन में सत्यनिष्ठा जाग्रत होती है, फिर वचन में सत्य मुखर होता है। तत्पश्चात कर्म में उस सत्य की अभिव्यक्ति होती है। अतः सत्यनिष्ठा के तीन भेद हैं - मानसा, वाचा एवं कर्मणा। सर्वोपरि है- इन तीनों में ताल-मेल। यदि मन में सत्यनिष्ठा हो, तो वचन और कर्म भी तदवत् होंगे। यदि केवल वचन में सत्यनिष्ठा का दिखावा भर है और मन और कर्म में नहीं है, तो यह सत्य नहीं, सत्यनिष्ठा नहीं, उसका ढोंग है। सत्य, न्याय, सदाचार, निष्ठा, सुकर्म, न्यायोचित व्यवहार आदि सहधर्मी चारित्रिक गुण या मूल्य हैं। सदाचार के अन्तर्गत ब्रह्मचर्य आदि चारित्रिक गुण होंगे। सत्यवादिता होगी। सद्व्यवहार होगा।

न्यायप्रियता होगी। ये सब सत्यनिष्ठा के ही विभिन्न प्रकार हैं।

सत्यनिष्ठा को विकसित करने का साधन क्या है?

सत्यनिष्ठा को अपने आचरण का एक अभिन्न अंग बनाने के लिए मनुष्य को कुछ साधना करनी होती है। यह साधना है - सत्य के साक्षात्कार की दिशा में निरन्तर प्रयत्न करते जाना और इस साधना में उसके सहायक साधन हैं उसका चरित्र-बल, उसकी आन्तरिक पवित्रता, निश्छलता, सरलता, कटु-सत्य को स्वीकार करने की उदारता, लगन, ईमानदारी आदि। इन गुणों के बल पर वह सत्यनिष्ठा की भावना को स्वयं में विकसित कर सकता है।

सत्यनिष्ठा की कसौटी को भी स्पष्ट कीजिए?

सत्यनिष्ठा की कसौटी है उसकी-निष्ठा की प्रबलता। सत्य का, यथार्थ का बोध तो लाखों को होता है, किन्तु उनमें कोई एक विरला ही होता है, जो उस यथार्थ को जान-समझ कर उसकी स्थापना के लिए प्राण तक न्योछावर कर देता है। ऐसा सत्यनिष्ठ ही फिर यह गाता है:

मैंने साजन ही साजन है गाया सदा

मैंने गा-गा के साजन बुलाया सदा ।
मैंने गा-गा के साजन रिझाया सदा ।।
अपने सुख के लिए, सबके सुख के लिए।
मैंने साजन ही साजन है गाया सदा।।

उसकी वाणी सुनो, उसकी वाणी पढ़ो ।

उसकी वाणी जपो, उसकी वाणी कहो ।।
अपने सुख के लिए, सबके सुख के लिए ।
मैंने साजन ही साजन है गाया सदा।।

वो तो तुझ में भी है- वो तो मुझ में भी है ।
वो तो सर्व ब्रह्माण्ड में समाया हुआ ।।
अपने सुख के लिए, सबके सुख के लिए ।
मैंने साजन ही साजन है गाया सदा।।

उसने जो भी कहा उसने जो भी लिखा ।
मैंने समझा और वो ही बताया सदा ।।
अपने सुख के लिए, सबके सुख के लिए ।
मैंने साजन ही साजन है गाया सदा।।

साजन मैं भी जपूँ- साजन तुम भी जपो।
ये तो सब से कहो सब ही साजन जपो ।।
अपने सुख के लिए, सबके सुख के लिए ।
मैंने साजन ही साजन है गाया सदा।।

सारतः सजनों हम कह सकते हैं कि सत्यनिष्ठा एक ऐसा जीवन मूल्य है, जिसकी आज के भौतिकवादी युग में अत्यन्त आवश्यकता है। आज हम संसार में चारों ओर भोग-विलास की सामग्री का अम्बार लगा देख रहे हैं, किन्तु भौतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का पतन हमें कहाँ ले जा रहा है। हम उसे देखकर भी अनदेखा कर रहे हैं। क्यों ? क्या कारण है कि आधुनिक मनुष्य नैतिक मूल्यों की ओर से भाग रहा है ? वह नैतिक मूल्यों को यदि संरक्षण देना भी चाहता है, तो अपनी शर्तों पर, क्यों ? नैतिक मूल्यों को आचरण में ढालना

जिस लगन, साधना और निष्ठा की माँग करता है, वह, भागमभाग के इस विश्व में किसी के पास नहीं है। सत्यनिष्ठा की पहली सीढ़ी है - सत्य के प्रति जिज्ञासा। सत्य को आलम्बन यानि आश्रय के रूप में कोई ग्रहण तब ही करेगा, जब इससे उसे कोई लाभ मिल रहा हो। किन्तु, सत्यनिष्ठा से भौतिक लाभ की कामना क्या नितान्त व्यर्थ है? नहीं। सत्य के प्रति निष्ठा से भी कार्य अथवा उद्देश्य की सफलता निश्चित की जा सकती है, किन्तु इसके लिए आवश्यकता है यह स्वीकारने की, कि सत्य के प्रति निष्ठा, हमारे लिए जगत के कार्य-व्यापार में बाधक नहीं अपितु सहायक है। सत्य को जानने की जिज्ञासा जितनी प्रबल होगी, व्यक्ति सत्य का अन्वेषण यानि खोज भी उतना ही शीघ्र आरम्भ करेगा, इसे हम दूसरी सीढ़ी मान सकते हैं।

सत्य के अन्वेषण की दिशा में उसका मन तब तक प्रवृत्त रहेगा, जब तक वह अपनी वांछित जिज्ञासा शान्त नहीं कर लेता। सत्य के अन्वेषण में उसकी निरन्तर प्रवृत्ति, तीसरी सीढ़ी है, जिसका अन्तिम परिणाम उसे वांछित सत्य के साक्षात्कार से आनन्दित करता है। सत्य के साक्षात्कार के उपरान्त उसकी निष्ठा उसमें और भी बढ़ जाती है। सत्य के प्रति उसकी निरन्तर-अटूट निष्ठा के कारण ही यह सब सम्भव होता है। हमें अधिक अतीत में जाने की आवश्यकता नहीं है, हमारे ही देश में आधुनिक युग में अनेक सत्यनिष्ठ महापुरुष हुए हैं जिन्होंने जीवन में अपने-अपने क्षेत्र में अपने लक्ष्य के प्रति सत्यनिष्ठा के कारण इतिहास में अपना नाम अमर किया है। सत्यनिष्ठा का परिणाम, यही चौथा सोपान है, जहाँ व्यक्ति इसी लोक में अपार आनन्द प्राप्त कर लेता है

अथवा अपने उद्देश्य के लिए प्राणों की बाज़ी लगाकर अपनी सत्यनिष्ठा से अमरत्व प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकार सजनों स्पष्ट है कि सत्यनिष्ठा चरित्र का एक ऐसा गुण है, जो मानव-मात्र के व्यक्तित्व का विकास कर उसका उद्धार करने में सहायक होता है। वह पाँच वर्ष का बालक ही क्यों न हो किसी महान उद्देश्य के मानसिक साक्षात्कार के उपरान्त जब उसके प्रति उसकी अटूट निष्ठा स्थापित हो जाती है, तब व्यक्तित्व का उद्धार भी हो जाता है। बालक ध्रुव और प्रह्लाद की, ईश्वर को सामान्य मनुष्य से बहुत ऊँचे पद पर स्वीकार करने की सत्यनिष्ठा ने उन्हें सांसारियों द्वारा प्रदत्त अनेक कष्टों के सम्मुख भी झुकने या मिटने नहीं दिया। इस उदाहरण से स्पष्ट होता है कि ध्येय के प्रति सत्यनिष्ठा व्यक्ति के चरित्र को महान बना, उसे श्रेष्ठ व्यक्तियों की श्रेणी में लाकर, अमर बना देती है इसके विपरीत जिसकी सत्यनिष्ठा कमज़ोर होती है, ऐसे व्यक्ति समाज को पतन के गर्त्त में ले जाते हैं। इस संदर्भ में सजनों यह तो सर्वविदित ही है कि सत्यनिष्ठा की प्रतिष्ठा के उत्कर्ष पर होने के कारण ही प्रथम सार्थक अर्थपूर्ण युग को सतयुग अर्थात् सत्ययुग के नाम से जाना जाता है जबकि इसके विपरीत विभिन्न युगों में सत्यनिष्ठा की इस प्रतिष्ठा के क्रमशः कम होते-होते नाममात्र के रूप में रह जाने के कारण ही कलियुग में सर्वत्र झूठ का बोलबाला है।

अतः सजनों सतयुगियों की भांति सत्यनिष्ठ बनने के लिए, सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने के लिए सदा उद्यत रहो तथा सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और

असत्य का विचार करके करो। इस सन्दर्भ में याद रखो कि सच्चाई-धर्म के रास्ते का बोध होना और उस पर बने रहने के योग्य बनना व बनाना हर मानव का अधिकार भी है और कर्त्तव्य भी। अपने इस अधिकार का अदान-प्रदान अब सब इन्सानों को सत्य धर्म की मर्यादा में बने रहकर कर्त्तव्यपरायण की भावना से ओत-प्रोत होकर करना आरम्भ करना होगा। इस हेतु हमें सत्य धारण कर तद्नुकूल जीवन जीना व वर्त्त-वर्त्ताव करना सुनिश्चित करना होगा।

सत्य के विषय में इससे आगे आगामी कक्षा में बताया जाएगा तब तक के लिए जो आज बताया है उस पर विचार करो व उसे अमल में लाओ। इस सन्दर्भ में सदा याद रखो किः-

'ओ३म तत् सत् ब्रह्म स्वरूप मेरा
ओजी ओ३म हरे ओ३म ओ३म हरे'

सजनों इसी शाश्वत सत्य को जीवन में आत्मसात् करते हुए, निज धर्म पर डटे रह, निष्काम भाव से परोपकार करते हुए, अपना घर सतयुग बनाओ व परमपद को पाओ।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

सत्य-(2)

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

अभी तक सजनों हमने जाना कि ब्रह्म ही सत्य है, ऋत यानि विश्व व्यवस्था, नैतिकता और आध्यात्मिकता की दृष्टि से निश्चित दैवी नियम है। सच यथार्थ तत्व है, वास्तविक बात है, असलियत अपना-आप है। इस सत्य को सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में इस प्रकार कहा गया है:-

सत् चित्त आनन्द स्वरूप मेरा,
ओजी सत् हरे सत् सत् हरे।

सजनों सत्य सर्वदा प्रकाशित है अर्थात् इस सत्य को सजनों कोई छिपा नहीं सकता। सत् जनचर-बनचर, जड़-चेतन, सर्व विद्यमान पारमार्थिक सत्ता है जो तीनों कालों में सदा ज्यों की त्यों रहती है अर्थात् सत्य में किसी भी प्रकार का विकार या परिवर्तन संभव नहीं होता। अतः इस सत्य पर टीका-टिप्पणी व तर्क-वितर्क करना व्यर्थ है।

समस्त जनचर-बनचर-जड़-चेतन इसी सत्ता को धारण कर अस्तित्व में आते हैं तथा अपने भरण-पोषण के लिए इसी पर निर्भर रहते हैं किन्तु अपनी सत्ता के लिए सत्य किसी पर निर्भर नहीं रहता। वह तो स्वयंभू, स्वतन्त्र और निर्लेप है। सत् परम, नित्य और शाश्वत है व जीवन का सार है। अगर इस सार को जानना है तो सत्य पर धर्म संगत स्थित हो जाओ। यह पूर्ण हैं। यह वह हैं जिसके होने का कोई संदेह न हो यानि सच्चा होने का भाव है। यह किसी भी तथ्य का उचित व न्याय-पक्ष है। सच धर्म की यानि ईमान की बात है। सबसे अधिक महत्त्व इसी का है क्योंकि सत्य ही दिव्यता का व हर जीव के भाग्योदय का प्रतीक है। जिस हृदय में सत्य प्रकाशित रहता है उस हृदय में आसुरी वृत्तियाँ कदापि नहीं पनप सकती और इस प्रकार इन्सान का सदाचारी बने रहना सहज हो जाता है। इसीलिए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

'हमारा रास्ता सच्चाई-धर्म का है, इसी रास्ते पर चलो।

इस हेतु सजनों कदम-कदम पर विचार शब्द पकड़ते हुए अपना आत्मनिरीक्षण करो कि कहीं हम इस सत्य-धर्म के

रास्ते से भटक संसार में अटक तो नहीं रहे यानि गुमराह तो नहीं हो रहे। यदि ऐसा हो रहा है तो इसके प्रति सावधान रहो। हमेशा याद रखो कि हमारा सच बोलचाल, सच खानपीन, सच विचार, सच रहन-सहन, सच वर्त्त-वर्त्ताव हो और दोनों नैनों व शरीर रूपी मकान में सच्चाई इस कदर भरी हुई हो कि देवलोक की सुगन्धि भी मात खा जाए।' इस तरह अध्यात्मिक, आधिभौतिक व आधिदैविक तीनों तापों पर फ़तह पा जाओ।

अर्थात् जगत पर विजयी रहने हेतु हमारा मन-वचन और कर्म तीनों सत्यमेव होने चाहिए। इन तीनों के सत्यमेव होने से अभिप्राय है:-

जैसा हमें प्रत्यक्ष शब्द ज्ञान हुआ हो, बोलने की इच्छा होने पर वैसा ही ठीक भाव दूसरों में संचार करने का संकल्प भी हमारे मन में हो। यह मन का सच्चा होना है।

यही भाव देने का मानसिक संकल्प रखते हुए हम मुख से यथार्थ वाक्य व वाणी उच्चारित करें। यह वाणी का सच्चा होना है।

फिर जो वाणी हम मुख से बोलें तद्नुसार ही कर्म यानि आचरण करें। यह कर्म का सच्चा होना है।

अन्य शब्दों में प्रत्यक्षादि द्वारा स्वयं जिस प्रकार ज्ञान हुआ है, उसी प्रकार जिससे श्रोता को ज्ञान हो, वैसे वचन कहने को सत्य कहते हैं। ऐसा वाक्य यदि भ्रमजन्य हो या मनमत पर आधारित हो तो वह सत्य नहीं कहला सकता। इसीलिए

सत्य का सबक पढ़ते-पढ़ाते समय इस तथ्य का ध्यान रखना आवश्यक है।

सजनों जान लो कि मन-वचन-कर्म की यथार्थ एकता ही सत्य का व्यावहारिक रूप है। इसी यथार्थ एकता से ही मानव का ईश्वरत्व यानि असलियत स्वरूप प्रकट हो सकता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है, 'विचार ईश्वर है अपना आप' व 'सचखण्ड वस्से निरंकार'। आगे इस ग्रन्थ में सजनों यह भी कहा गया है:-

सच नूं धारण करके, जेहड़ा सच कमावे
बेख़ौफ़ा, बेख़तरा, बेडर ओ हो जावे।
निर्भय निर्वैर ओन्हु मिले, त्रिलोकी दी कुर्सी
कैसा ओ चमक रिहा चमके ओ सुजान,
जपो भगवान जपो भगवान।।

सजनों सत्य की इसी महत्ता को समझते हुए व इसे जीवन का सर्वोच्च मूल्य जानते हुए सत्य की साधना युग-युग से ऋषि-मुनि कर रहे हैं। अतएव, सत्य के साधक बन, सत्य को जीवन में उतार लो यानि आत्मसात् कर लो। सत्य से अलग आपकी कोई सत्ता न रहे। भौतिक जीवन हो या अध्यात्मिक, व्यापारिक हो या सामरिक (युद्ध क्षेत्र), कलात्मक हो या यान्त्रिक सर्वत्र सत्य के महत्त्व को समझते हुए उसे ही अपनाओ और जय-पराजय को समान समझते हुए सदैव सत्य भाषी व सदाचारी बने रहो।

याद रखो बिना आचरण में उतारे सत्य के विषय में मात्र पढ़ना-सुनना-समझना व चर्चा करना सब बेकार है। इस

तरह का प्रदर्शन करने से भले ही लोक व्यवहार में हमें ऊँचा समझा जाए परन्तु हकीकत में यह सत्य का उपहास है। अतएव हकीकत में श्रेष्ठ व महान बनने के लिए सत्य को अपने जीवन में साधना अति आवश्यक है। इस हेतु आवश्यकता है जीवन से जुड़े सत्य के हर पहलू को चाहे वह सत्यभाषण है, सत्संगति है, सदाचरण है, सद्भाव है, सद्भावना है, सद्-विचार है, सद्व्यवहार है या सद्स्वभाव है, सूक्ष्मतया उसे समझने की व तदुपरान्त निरन्तर अभ्यास द्वारा कदम-कदम पर आत्मनिरीक्षण यानि अपनी जाँचना-तुलना करते हुए आत्मसात् करने की।

सत्य के विभिन्न पहलूओं में से आज हम सत्यभाषण व सत्-संगति पर बातचीत करेंगेः-

सत्य भाषण से क्या अभिप्राय है?

सत्य से युक्त ऐसा भाषण जिसका आधार सत्य होता है तथा जो ऋत यानि विश्व व्यवस्था, नैतिकता और आध्यात्मिकता की दृष्टि से निश्चित दैवी नियमों पर आधारित व असल होता है, सत्य भाषण कहलाता है। सत्यभाषी स्पष्टवक्ता व खरी बात कहने वाला होता है तथा सदा अपनी प्रतिज्ञा या दिए गए वचन पर दृढ़ रहने वाला होता है।

याद रखो प्रयुक्त सत्य यानि कथनी-करनी के सामंजस्य से, उद्भूत कथन ही सत्य भाषण का सौन्दर्य और आत्मा है। तात्पर्य यह है कि यदि कहना छोड़कर, करना शुरू कर दिया जाए यानि अनुभूत को ही बिना किसी लाग-लपेट के व्यक्त करना आरम्भ कर दिया जाए तो वह शनैः शनैः

अनुभूत सत्यभाषण हो जाता है। फिर बोलने वाला सदा सत्य आचरण पर ध्यान देता है।

छोटे-छोटे स्वार्थ से ऊपर उठना, अपने कृत्य और तद्नुरूप कथन से सतत् जागरूक रहना, कथनी और करनी में समन्वय के लिए सोचकर अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार कार्य करना निरन्तर जारी रहे, तो इस दिशा में मदद मिल सकती है। हमारा अहंकार इतना उद्दाम यानि स्वेच्छाचारी है कि बिना कुछ किए ही हम आसमान में महल खड़ा कर देते हैं। अपनी प्रशंसा के पुल बाँधते रहते हैं। यह भले ही अपनी हीनता, कमी छिपाने का प्रयास हो, पर इससे व्यक्तित्व का विघटन (छिन्न-भिन्न) होता है। सत्य का विकास कतई नहीं होता। अतएव, अपना मूल्यांकन करते हुए, निरन्तर सत्य को जीवन में उतारने और फिर कथन करने से सत्यकथन का विकास करो।

सत्यभाषण करते समय मनुष्य को क्या ध्यान में रखना चाहिए?

सत्यभाषण करते समय मनुष्य के भीतर दूसरों के हित की भावना होनी चाहिए अर्थात् सत्य समस्त प्राणियों के कल्याण के निमित्त ही बोला जाना चाहिए। इस हेतु विवेकपूर्ण हितकारी वचन ही बोलने चाहिए। जिस सत्य को बोलने से दूसरों का अहित हो या कष्ट पहुँचे, ऐसा सत्य बोलने से मौन रहना लाभप्रद है।

सत्य यथा संभव दूसरे को प्रिय यानि मधुर लगने वाली भाषा में ही बोला जाना चाहिए। बिना किसी प्रयोजन के दूसरे को

अप्रिय लगने वाली बात न बोलें। इस संदर्भ में जीवन में अनेक अवसर ऐसे भी आते हैं जबकि सत्य कटु भी होता है किन्तु उसको न कहने से हानि होती है। अतः ऐसे अवसर पर अप्रिय होने पर भी उसका कहना उचित होता है।

बोलने से पहले यह सोच लेना चाहिए कि हम क्या बोल रहे हैं यानि पहले तोलें फिर बोलें और उतना ही बोलें जितना आवश्यक है। याद रखो अधिक बोलने वाला व्यक्ति वाणी पर संयम नहीं रख पाता और कुछ न कुछ असत्य अवश्य बोल जाता है।

सत्य को सर्वदा कह देना उचित नहीं होता। कई बार ऐसा कहना अनुचित भी होता है। अतः परिस्थिति को देखते-समझते हुए कष्ट सहकर भी उस समय मौन रहना ही उचित होता है।

सत्यभाषण की कसौटी क्या है?

सजनों जिस प्रकार दियासलाई की जलती एक तीली वर्षों से जमे अन्धकार को तत्क्षण फाड़ देती है, उसी प्रकार सत्यभाषण का प्रभाव होता है। सर्वोपरि और अन्तिम मूल्य सत्य है, उससे उद्‌भूत सम्बन्धित भाषण उतना ही अमूल्य है। अतएव, बाधाओं के बावजूद शत-प्रतिशत सत्यभाषण करना ही इसकी कसौटी है।

सत्य बोलने की क्षमता का अपने अन्दर कैसे विकास करना चाहिए?

सत्य बोलने के लिए चाहिए, मन में निहित इच्छा शक्ति की

दृढ़ता व निरन्तर अभ्यास, ऐसा नैतिक बल जिसमें प्राणो तक की परवाह न हो व कथनी-करनी में आदर्श समन्वय। याद रखो तभी सत्य आचरण में उतरेगा और मानव विवेकशीलता से यह निर्णय ले पाएगा कि सत्य ही जीवन की आत्मा है।

याद रखो मनुष्य यदि मन के धरातल पर निर्णय ले कि वह सत्य बोलेगा और उसके परिणाम के लिए तैयार रहेगा तो फिर वह कदापि ऐसा काम ही नहीं करेगा जिससे आत्मग्लानि या पश्चात्ताप हो। ऐस निर्णय लेकर व्यवहार करने वाला व्यक्ति ही सत्य वचन बोल सकता है व निष्काम रास्ते पर बना रह सकता है।

इस विवेचना से सजनों स्पष्ट होता है कि हमें सदा प्रिय, हितकारी व मधुर सत्य वचन ही बोलने चाहिए। सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार सजनों याद रखो 'सच चानणा है व झूठ अंधेरा' है। झूठ मिथ्या है, असत्य है। यह स्वार्थ, भय, लोभ-लालच व प्रतिशोधवश, जानबूझ कर अपनी ग़लती या चोरी छिपाने हेतु बोला जाने वाला प्रयत्न है। शास्त्रानुसार असत्यभाषी नरक जाता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में यह भी लिखा हैः-

सुकर्म और धर्म दा सजनों ईश्वर साथी होता है। वेदां विच लिखया है झूठ बोलन करके सजनों परलोक बिगड़ जाता है।

अतः सजनों मत भूलो कि ईश्वर ने सच का व्यापार करने के लिए ही हमें भूमण्डल में भेजा है परन्तु इस कलियुग में तो

हम झूठ का व्यापार करके खोटी कमाई कर रहे हैं। इस सम्बन्ध में आज के इंसान की हालत बताते हुए ईश्वर कहते हैं:-

भेजया हाई तैनू सच वणजन नूं, झूठ दा कीता हेई व्यापार
डरदा होयां मेरे निकट न आवे भुलिया फिरें गँवार।

ए जिंदगी तेरी सदा नहीं रहनी, इस नूं लवीं संवार
जन्म दी मौज न माणी, जन्म दी मौज न माणी।।

इस संदर्भ में जान लो सजनों कि सत्य का मुख सोने से अर्थात् प्रलोभनों से ढँका हुआ है। उसका अनावरण कर सत्य तक पहुँचना कठिन साधना है। उससे भी कठिन है सत्य पर डटना और इसके लिए आत्मनिवेदन, व्रत यानि दृढ़ संकल्प, तप, चर्या, साधना, प्रयत्न, उद्योग, प्रतिबद्धता, समर्पण आदि साधन अपनाना। मत भूलो कि जीवन के चरम सत्य को जानना और उस पर अमल करना परम पुरुषार्थ है। अतः इन साधनों के प्रयोग द्वारा अटल सत्य को जानो, उसका साक्षात्कार करो तथा उसे जीवन का अभिन्न अंग बनाओ। इस तरह उसे अपने मन, वचन, कर्म द्वारा जीवन में उतार लो। यही नहीं सत्य को आप धारण कर अन्यों यानि परिवारजनों व संगी-साथियों को भी इसके प्रति जागरूक करो व उन्हें कुमार्ग अपनाने से बचा लो। विपरीतता, विषमता की परवाह न करो और प्राण देकर भी सत्य की रक्षा करो।

यह भी जान लो कि शरीर धर्म यानि पशु धर्म यथा आहार, निद्रा, भय और मैथुन इनका पालन कर मनुष्य अपना पालन-पोषण तो कर सकता है और हज़ारों कीट पतंगों की तरह जी

और मर सकता है परन्तु इतिहास में लीक नहीं छोड़ सकता यानि परमात्मा के अंश रूप (आत्मा) का प्रकाशन नहीं कर सकता। इस प्रकार ब्रह्मस्वरूप का बोध कर मनुष्यत्व का वर्त्त-वर्त्ताव करने योग्य नहीं हो सकता। इस हेतु सत्य के संधान यानि संयोग, अनुपालन और कथन द्वारा हकीकत में 'शब्द-ब्रह्म' को चरित्रार्थ कर, ब्रह्मस्वरूप होना होगा। यही असत्य से विरत होने और सत्य के प्रति समर्पित होने का एकमात्र प्रयत्न है। अब ध्यान से सुनो कि इस संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती हमें क्या कह रहा हैः-

इस हेतु सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में विदित युवावस्था की भक्ति यानि समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार संतोष, धैर्य का श्रृंगार पहन, सच की नेक कमाई करो और धर्म के रास्ते पर सीधे चलते जाओ। इस तरह भक्ति-शक्ति को धारण कर उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल हो जाओ। इसके अतिरक्त सजनों शास्त्रविहित् कर्त्तव्य कर्मों यानि शास्त्रों में लोगों के हित के लिए जो अनेक प्रकार के कर्म बताए गए हैं और जिन अनुचित कृत्यों का निषेध किया गया है, उस अनुशासन को अपनाने पर विचार करो। इस तरह जो निषिद्ध व त्याज्य है यानि असत्य है व अज्ञान अंधकार का प्रतीक है उसे छोड़ो व सच्चाई-धर्म के रास्ते पर निरंतर आगे बढ़ते जाओ।

इस परिप्रेक्ष्य में जानो कि त्रेता, द्वापर व कलियुग में, जितने भी श्रेष्ठ पुरुष हुए या शास्त्र रचे गए उन सब द्वारा सजनों को संतोष-धैर्य की पोशक पहन, सच्चाई-धर्म के निष्काम रास्ते पर अग्रसर हो, परोपकार करते हुए, मनुष्यत्व में बने

रहने का ही सुझाव दिया गया है। अतः हमारे लिए भी यही उचित एवं आवश्यक हो जाता है कि हम उन ग्रन्थों व युग पुरुषों की वाणी का सम्मान करते हुए जिह्वा सचखंड करके अपने अंदर सच का बीज बो लें और सच के उसूलों को पकड़ कर सतवस्तु पहचान लें। याद रखो ऐसा करने पर ही हम सत् प्रवान करने वाले, उस ईश्वर के विचारवान व बहादुर सुपुत्र कहला सकते हैं और अपने गृहस्थ-आश्रम को ठीक चलाते हुए, आने वाली पीढ़ियों के लिए भी आदर्श कीर्तिमान स्थापित कर सकते हैं।

हम सब ऐसे योग्य इन्सान बनें इस संदर्भ में सत् संगति की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। सच्चेपातशाह जी के वचन हैं कि जीवन उसी का सुखी हो सकता है जिसको प्रतिदिन सत् संग मिलता रहे।

सत् संग के लिए ही तो उन्होंने हमें सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ अनमोल दात के रूप में प्रदान किया है। इसी का मनन व अनुशीलन करने से हमारे मन के भाव गूढ व आचार-विचार उच्च हो सकते हैं। आगे सच्चेपातशाह जी उदाहरण देते हुए हमें समझाते हैं कि जिस प्रकार साईकल की फूँक निकाल देने पर वह नहीं चलती और फूँक भर देने पर वह चल पड़ती है, उसी प्रकार सत् संग में भी सजनों में फूँक भरी जाती है। इससे उसे कुछ नियम नीति से जीना आ जाता है। इस प्रकार सत् संगति से मनुष्य में सद्ज्ञान-वृद्धि होती है। सद्ज्ञान-वृद्धि के लिए सत् संगति से बढ़कर, इससे श्रेष्ठ, इससे श्रेयस्कर और कोई साधन नहीं है। बिना

सत्संगति के मनुष्य को सद्ज्ञान प्राप्त नहीं होता। इससे मनुष्य को ऐहिक और पारलौकिक दोनों प्रकार की समृद्धि प्राप्त होती है। ऐहिक समृद्धि से तात्पर्य यह है कि सत्संगति से मनुष्य को जीवन में सुख, समृद्धि और परम शान्ति प्राप्त होती है। वह समाज में उच्च स्थान प्राप्त करता है, उसकी कीर्ति संसार में फैलती है। पारलौकिक समृद्धि से हम ब्रह्म साक्षात्कार के लिए प्रयत्नशील होते हैं। इसके लिए याद रखो कि संसार के आवागमन से मुक्त होने के लिए यथार्थ ज्ञान का बोध ही एकमात्र उपाय है। श्रेष्ठ पुरुषों के सम्पर्क में आने से हमारे आचरण पर गहन सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। हमारा चरित्र उच्च और निर्मल हो जाता है। हमारे क्रूर कर्म हमसे सदैव के लिए छूट जाते हैं। सारतः सत्संग वह संसर्ग है, जिससे मनुष्य में साधुता-सज्जनता आती है।

कहते हैं संसार का प्रत्येक मनुष्य जन्म से संत होता है। आगे चलकर वह उचित लालन-पालन व सत्संगति के अभाव में, कुसंग के कारण ही दुर्जन बन जाता है। तभी तो सच्चेपातशाह जी ने कहा है-

अच्छे संग तरे, मंदे संग डूबे

अतः इस मायावी जगत में विचरते हुए इसके दुष्प्रभावों से बचे रह, सत्य पर डटे रहने के लिए, सत् संगति, भले, सज्जन, महापुरुषों की संगति आवश्यक तथा उपयोगी होती है। इससे मनुष्य को सदैव मधुर फल ही प्राप्त होते हैं। आओ अब सत् संगति के विषय में भी जानते हैं-

सत् संगति से क्या तात्पर्य है?

सत्+संगति अर्थात सत्य की संगति, श्रेष्ठ, भले और सज्जन व्यक्ति का संग-साथ, वर्तमान का साथ आदि।

सत् अ संगति कैसे प्राप्त होती है?

सत्संग द्वारा। सत्संग का अर्थ है वह समाज जिसमें धर्म अर्थात् अध्यात्म संबंधी चर्चा होती है। इस द्वारा ईश्वर के प्रति विशेष श्रद्धा, प्रेम और विश्वास के अतिरिक्त, सभी के प्रति स्नेह का भाव पनपता है। अपनाए विकारों के कारणों पर विचार करने का अवसर प्राप्त होता है और आत्मनियन्त्रण द्वारा आत्मसुधार कर मनुष्यत्व में बने रहना सहज हो जाता है।

सत्संगी किसे कहते हैं?

अच्छी संगति में रह कर सबसे मेल-जोल रखने वाले सजन को सत्संगी कहते हैं।

सत्संगति का प्रभाव स्पष्ट करो?

मनुष्य में शुभ और अशुभ दोनों प्रवृतियाँ होती हैं। सत्संगति से मनुष्य में सद्गुणों का जागरण व संचार होता है। सद्गुणों के जागरण व संचार से मन की सद् वृत्तियाँ जागती हैं। सात्विक प्रवृत्तियों का जन्म होता है। इससे सद्भावना, सदाचार, सदाशयता, परोपकारिता, सत्य, न्याय, अहिंसा, क्षमा आदि भाव उदित होते हैं।

अशुभ प्रवृत्तियों का निराकरण होता है और शुभ गुणों का निरन्तर विकास होता है। इसीलिए जब हम अच्छे लोगों या

विचारों के सम्पर्क में आते हैं या रहते हैं, तो हमारे व्यक्तित्व में सद्‌गुणों का समावेश अपने आप होने लगता है। जब हम अपने से अधिक बुद्धिमान, विद्वान, गुणवान एवं योग्य व्यक्ति के सम्पर्क में होते हैं, तो हमारे दुर्गुण नष्ट हो जाते हैं। यह होता है सत्संग और सत्संगति का प्रभाव।

आमतौर पर सत्संगति के कितने भेद या स्तर हैं?

आमतौर पर सत्संगति दो प्रकार से की जा सकती है - प्रथम श्रेष्ठ सज्जनों, विद्वानों, बुद्धिमानों, गुणवानों के संसर्ग में आना एवं उनकी अनुभूत शिक्षाएँ ग्रहण कर उन पर चर्चा करना, वार्तालाप करना, उनकी दिनचर्या का अवलोकन करना, उनके निरन्तर सम्पर्क व सानिध्य में रहना आदि। यह सत्संगति की उच्च कोटि कही जा सकती है।

दूसरे प्रकार का सत्संग हमें धर्म ग्रन्थों के अध्ययन-अनुशीलन, उनके सतत चिन्तन, मनन व मन्थन से प्राप्त होता है। मनुष्य सजीव प्राणी है। मानवीय सत्संगति का प्रभाव तुरन्त चिरस्थाई होता है, जबकि पुस्तकों, सद्‌ग्रन्थों का प्रभाव विलम्ब से होता है और अस्थायी भी रहता है।

सत्-संगति किस भाव से की जानी चाहिए?

सत्-संगति अनासक्त भाव से, फल की आकांक्षा किए बिना यानि निष्कामतापूर्वक की जानी चाहिए। ऐसी सत्-संगति का प्रभाव व्यक्ति पर शीघ्रता से पड़ता है जिसके कारण उसका कायाकल्प हो जाता है। इसमें लोककल्याण और परहित का भाव भी छिपा रहता है।

कहते है सत्संग में दो चीजों के प्रवेश से बाधा उपस्थित होती है, वे क्या है?

एक रज अर्थात् धन और दूसरा राजस् अर्थात् अहं या माया (नारी)। सत्संग से जुड़े रहने में, इन दोनों के प्रवेश से बाधा उपस्थित होती है। अतः ये निषेधक हैं। सादगी व प्रेम-सद्भाव इसके विधायक यानि रचनात्मक तत्त्व हैं, जिनसे सत्संग का विचार पनपता है।

सत्संगति को विकसित करने का साधन क्या है?

जीवन में सत्संगति विकसित करने के साधनों पर विचार किया जाय, तो कहा जा सकता है कि सर्वप्रथम मानव में सत्संग करने की, श्रेष्ठ उत्तम मनुष्य बनने की भावना, ललक, क्षुधा व पिपासा होना नितान्त आवश्यक है।

सत्संगति की कसौटी क्या है?

कहते है यदि दुर्जन व्यक्ति भी किसी सत् पुरुष की संगति करे, तो उसमें भी सज्जनता आ सकती है, जबकि दुष्ट व्यक्ति (दुर्जन) की संगति से सज्जनों को कोई हानि नहीं हो सकती, उनमें असाधुता नहीं आ पाती। अर्थात् सत् पुरुष, दुर्जन के साथ रहते हुए भी उसकी दुष्टता का अंश मात्र भी नहीं अपनाते, अपितु अपनी सत्प्रकृति को स्थिर बनाए रखते हैं। तात्पर्य यह है कि सत्संग की महिमा अपरम्पार है। इसीलिए प्रत्येक मानव को सत्संग करना चाहिए व कुसंग से बचे रहना चाहिए। दुर्जन हो या सज्जन, सत्संग से सबको सद्गुण प्राप्त होता है। अतः सत्संग साधुता, सज्जनता की कसौटी है।

यह तो सत्संगति की बात हुई, बुरे संग को क्या कहते है?

कुसंग।

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार कुसंग क्या है ?

संकल्प ही हमारा कुसंग है। अतः संकल्प को पकड़ना है और उसको सजन और संगी बनाना है।

संकल्प कुसंगी सजन और संगी कैसे हो सकता है?

सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

मनमत ते सजनों न चलना, गुरुमत दा संग असां करना अर्थात् मूलमन्त्र शब्द को गुरु मान कर, जगत के समस्त कार्यव्यवहार करते हुए उसी के अजपा जाप द्वारा, अपना ख़्याल ध्यान वल व ध्यान प्रकाश वल जोड़े रखो। यही मन को प्रभु में लीन रखने की बात है व सर्वोत्तम सत् संगति है। इस सत् संगति के प्रभाव से हृदय विदित आत्मज्ञान का बोध होता है और उस सत्य ज्ञान धारणा से स्वतः संकल्प कुसंगी, सजन और संगी हो जाता है। यही नहीं फिर धीरे-धीरे जब इन्सान आत्मज्ञान को मन-वचन-कर्म द्वारा आत्मसात् कर पूर्णतः संसारी व शास्त्र दोनों प्रकार के कनरस से आज़ाद हो जाता है और संकल्प पर पूरी तरह फ़तह पा लेता है तो उसके स्वभावों का घटता-बढ़ता टैम्प्रेचर भी सम हो जाता है। यही तो समभाव नज़रों में कर समदृष्टि होने का प्रतीक होता है।

जब हमारा संकल्प पूर्ण रूप से सजन हो जाएगा फिर क्या होगा?

फिर घर भी सजन, परिवार भी सजन और कुल संसार भी सजन हो जाएगा। फिर हमारा झुखना बन्द हो जाएगा। झुखने का अर्थ है रोना। याद रखो संकल्प झुखता है और इन्सान रोता है। यह पुनः प्रसन्नचित्तता को प्राप्त होने की बात है।

मानव जीवन में सत् संगति का महत्व व उपयोगिता स्पष्ट कीजिए ?

संगति का मनुष्य जीवन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है। मानव जिस प्रकार की संगति में रहता है वैसा ही बन जाता है। वह जिस प्रकार की संगति करता है, उससे अवश्य प्रभावित होता है। उदाहरणस्वरूप स्वाति (चन्द्रमा के स्वाति नक्षत्र में स्थित होते समय हुई वर्षा के जल) की एक बूँद भिन्न-भिन्न संगति पाकर उसके अनुरूप परिवर्तित हो जाती है। जब वह कोमल केले के सम्पर्क में आती है, तो कपूर बन जाती है, समुद्र की सीपी की संगति पाकर वही बूँद मोती बन जाती है, बाँस में पड़ने पर वंशलोचन दवा और साँप के मुँह में पड़ जाने पर विष बन जाती है। इससे संगति का महत्त्व व उपयोगिता स्पष्ट है। इसी तरह गर्भ में प्रवेश कर शरीर धारण करने वाली जीवात्मा को भी जो संगति गर्भाधारण व जन्म लेने के पश्चात् माता-पिता, सगे-संबधियों व मित्रजनों के रूप में प्राप्त होती है वह भी उसी अनुरूप ढल अपने परिवार व समाज के लिए या तो अमृत साबित होती है या फिर विषधर बन जाती है।

सत् संगति के प्रभाव से अनेक दुश्चरित्र सच्चरित्र बन जाते हैं, अनेक क्रूर दुष्कर्मी महापुरुष बन जाते हैं। स्पष्ट है कि गुण और दोष मनुष्य में संगति से ही उत्पन्न होते हैं। सत्संगति निराशा में आशा का संचार करती है। इससे मनुष्य में धैर्य, साहस, वीरता, सच्चरित्रता का संचार होता है और जीवन चरित्र उज्ज्वल बनता है।

सत्संगति से वह विवेकशील और सदाचारी बनता है। इसी कारण समाज उसका आदर करने लगता है यानि वह सर्वत्र सम्मान पाता है और उसकी प्रतिष्ठा बढ़ने लगती है।

स्पष्ट है सजनों सत्संग सुरत-शब्द के मिलाप यानि आत्मकल्याण का हेतु है। तभी तो इसे मनुष्य के मूल स्वाभाविक गुण यानि धर्म पर सुदृढ़ बने रहने का आधार माना जाता है। याद रखो जो रूहानी खुराक इससे औषधि रूप में मिलती है, वह सब विकारों व पापों का नाश करने वाली होती है। सत्संग से ही विश्वास, वैराग्य, सम, सन्तोष, सत् शास्त्र का विचार और परमशांति प्राप्त करने तथा सत्य ज्ञान और उसको अपनाने हेतु सही युक्ति प्राप्त होती है। यह समभाव-समदृष्टि के सबक पर अटलता से डटे रहने हेतु सामर्थ्यवान बनने की बात है। इसीलिए कई तो सत्संग को तीर्थ और मुक्ति की नौका मानते हैं क्योंकि इस द्वारा ही मनुष्य में आत्मा-परमात्मा की अभिन्नता का भाव सुदृढ़ता से बना रहता है जिसके प्रभाव से जीव को विश्राम का अनुभव होता है। फलस्वरूप मनुष्य का मन-मस्तिष्क एकता-एक अवस्था में बना रहता है। सत्संग से ही सुख-दुःख में धीरज बना रहता है और वैर तथा ईर्ष्या-द्वेष जैसे विकारी भावों से

छुटकारा मिलता है। इसीलिए कहा गया है 'सत्यमेव जयते' यानि सत्संग से ही राजा, प्रजा व देश सुखी रहते हैं क्योंकि इस द्वारा हर व्यक्ति इस संसार में आने का यथार्थ लक्ष्य जान, बुद्धिमत्ता से अपने बल व पराक्रम का प्रयोग करते हुए, सच्चाई-धर्म के मार्ग पर निरंतर बने रहने में सक्षम हो पाता है। सत्-संग के इसी महत्त्व को समझते हुए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

'महाबीर जी तों दासी की कुझ मंगदी,
बनियां रहे दासियां दा सत्संग नाल प्यार।'

इसीलिए हमारे लिए बनता है कि अनन्त शांति व आनन्द को प्राप्त करने हेतु सत्यनिष्ठा व धर्मपरायणता से सार्थक जीवन जीना आरम्भ कर दें ताकि जीवन का मकसद हाथ से छूट न जाए। ऐसा सुनिश्चित करने के लिए आओ अब सब मिलकर अपने जीवन के मकसद को जानते हैं:-

मैं सत्यार्थ इस जगत विच सच दी पट्टी लै के आया।
सच ही पढ़ना, सच ही गुढ़ना, उस रब ने समझाया।।

सच पढ़न गुढ़न दे मगरों, सच ही वण्डना सिखाया।
मैं सत्यार्थ इस जगत विच सच दी पट्टी लै के आया।।

जद तक मैं सच वर्त्तांगा ते वण्डदा रवाँगा, ओ संग राहवेगा मेरे,
सच नूं छडना है रब नूं छडना, फिर उसने फरमाया,
मैं सत्यार्थ इस जगत विच सच दी पट्टी लै के आया।

जीव है क्या और ब्रह्म है क्या, आपे ज्ञान कराया,
एह जगत है खेला उसदा, सारा खोल सुनाया,

मैं सत्यार्थ इस जगत विच सच दी पट्टी लै के आया।

मैं अजर-अमर हूँ, जग नश्वर है, तभी तो मैंने जाना,
रब नूं छडना, जग विच फँसना, जन्म-मरण विच आना,
मैं सत्यार्थ इस जगत विच सच दी पट्टी लै के आया।

सत्य-धर्म ते डटे रहन लई, संतोष धैर्य दे दो बल दस्से,
फिर आख्या निष्कामी बन परोपकारी समरूप ही,
मैनु सब विच वेखीं,
मैं सत्यार्थ इस जगत विच सच दी पट्टी लै के आया।

ताहीं ता मैं विचर रहा हूँ इस जगत विच सुघड़ सयाना होके,
सचखंड पहुँचन तो पहलां राह विच फँस न जावां,
विच आके किसे वी धोखे,
मैं सत्यार्थ इस जगत विच सच दी पट्टी लै के आया।

सर्व-सर्व परमेश्वर नूं देखदेयां होयां
सजन भाव अपनाओ।
सजन भाव व्यवहार विच लिया के
समभाव-समदृष्टि हो जाओ।।

आपकी जानकारी के लिए जीवन में सत्य से जुड़े अन्य पहलूओं के विषय में आगामी कक्षा में बताया जाएगा।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 13 दिसम्बर 2015 का सबक

सत्य-(3)

न बुरा सोचूँगा, न बुरा बोलूगाँ और न ही किसी का बुरा करूँगा।

याद रखो एक इन्सान के लिए जीवन में यही करना उचित होता है। यही इस जगत में रहते हुए, उस परमात्मा के प्रति, सर्वोत्तम भक्ति-भाव अपनाना कहलाता है। बाकी सब तो आडम्बर मात्र है। इस भक्ति-भाव को अपनाने से ही समभाव-समदृष्टि उजागर होती है और उस पर स्थिर रह इन्सान कदाचित् फिर किसी कारण या परिस्थितिवश अपने धर्म से डोलता नहीं। अतः सजनों ऐसा करना सुनिश्चित करो और महाबीर जी के द्वारे पर होते हुए भी हार न खाओ। आओ अब सब विजय प्राप्ति हेतु प्रार्थना करें:-

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्म-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में

शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

अभी हमने जो प्रार्थना की, वह किस हेतु की है?

बल, बुद्धि व सुमति प्राप्त करने हेतु।

बल, बुद्धि व सुमति क्यों प्राप्त करनी है?

आत्मस्वरूप में स्थिर बने रहने व निष्कामता से जीवन के कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए।

इस संदर्भ में सजनों याद रखो कि जब भी कोई जीव इस जगत में आता है उसके सामने दो रास्ते होते हैं, एक परमार्थ का और दूसरा स्वार्थ का। क्या आप बता सकते हो कि इन्सान के लिए जीवन में दोनों में से कौन सा रास्ता अपनाना उचित होता है?

परमार्थ का।

इस सन्दर्भ में सब अपनी जाँचना करो कि कही हम मोह-माया के वशीभूत हो, परमार्थ के मार्ग से भटक, स्वार्थ के रास्ते पर अटक व भटक तो नहीं गए। तात्पर्य यह है कि कही हम यह जानते हुए भी कि परमार्थ का रास्ता हितकारी है, स्वार्थ के रास्ते पर आगे बढ़ने की भूल तो नहीं कर रहे?

यदि हमसे यह भूल हो रही है तो यह जान लो कि परमार्थ के रास्ते पर सुदृढ़ता से बने रहने हेतु ही तो हम उस ईश्वर से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करते हैं।

याद रखो एक बार सच्चे दिल से प्रार्थना करने के पश्चात् यदि हम किसी के भी प्रलोभन या बहकावे में आकर स्वार्थ का चलन अपनाने की भूल नहीं करते तो निश्चित ही वह ईश्वर अपने बच्चों को सुपुत्र व संसार में उचित ढंग से विचरने के योग्य बनाने हेतु, यह सब प्रदान कर देते हैं। अतः एक बार पिता से सुमति प्राप्त करने के पश्चात् फिर हमारे लिए बनता है कि हम जगत के आकर्षणों में फँसकर, दूसरो के ऐशो-आराम को देख कर या फिर किसी अन्य भटकाव में फँसकर, कदाचित् सच्चाई-धर्म के रास्ते से विचलित न होवे अपितु उस पर वीरता से डटे रहने का पराक्रम दिखाएं।

इस सन्दर्भ में याद रखो परमार्थी-धन सर्वोत्तम धन होता है और यही मन की शांति का हेतु होता है। यही अंतिम समय में जीव के साथ जाता है। अतः सजनों जगत के अधीन नहीं होना अपितु आत्मिक ज्ञान प्राप्त कर उसी के नियम नीति अनुसार जगत पर समझदारी से राज करना है। जान लो कि हकीकत में ऐसा इन्सान ही अपने जन्म की बाज़ी को जीत सकता है।

अब हम आपकी जानकारी के लिए, एक इन्सान जो स्वार्थ के रास्ते पर अग्रसर होता है व दूसरा जो परमार्थ के रास्ते पर अग्रसर होता है, उनके परस्पर नजरिए का अंतर समझाने लगे हैं, इसे ध्यान से समझोः-

जो स्वार्थ के रास्ते पर विचरता है वह सबको यही कहता है कि 'चाहे तुम मेरे रास्ते में फूल बिछाओ, मैं तुम्हारे रास्ते में काँटे ही बिछाऊँगा' जबकि इसके विपरीत जिसका नज़रीया

परमार्थ अनुरूप होता है वह सबको कहता है कि 'चाहे तुम मेरे रास्ते में काँटे बिछाओ, मैं तुम्हारे रास्ते में फूल ही बिछाऊँगा।' इस तरह दोनों अपने नजरिए के अनुरूप ही जगत में परस्पर व्यवहार द्वारा एक दूसरे का अहित या हित करते हैं। याद रखो जहाँ स्वार्थी द्वि-द्वेष के भाव अनुसार चलन अपनाता है व सुख-दुख के प्रभावों से झुखते-रोते हुए जीवन व्यतीत करता है, वही परमार्थी एकता, एक अवस्था में बना रह आनन्दमय जीवन व्यतीत करता है।

याद रखो परमार्थी नज़रिए के अनुरूप आचार-व्यवहार दर्शाना ही आत्मीयता के चलन के अंतर्गत आता है। ऐसा इन्सान किसी को भी तकलीफ नहीं देता अपितु कष्ट सहकर भी सबकी तकलीफें बुद्धिमत्ता व सूझबूझ से दूर करने का यत्न करता है। यह सर्वव्यापक एक दर्शन में स्थित होने की बात होती है।

आओ अब इसी एक दर्शन में स्थित रहने हेतु, सत्य के विषय में जानते है:–

सत्य के संदर्भ में सजनों गत सप्ताह हमने सत्-भाषण व सत्-संगति की महिमा को जाना। इससे सजनों स्पष्ट हुआ कि इनके प्रभाव से मनुष्य का हृदय कोमल/संवेदनशील हो जाता है। इसे सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में इस प्रकार कहा गया है :-

अलफ के मिलने से पहले इन्सान कठिन होता है यानि उसको संसारी कन रस होता है। अलफ के मिलने के बाद वह नर्म हो जाता है यानि उसको शास्त्र का कन रस पड़ जाता है।

इस प्रकार अलफ यानि मूलमन्त्र शब्द गुरु के अजपा जाप द्वारा इन्सान अपनी ब्रह्म सत्ता का बोध कर लेता है व उस महान सत्ता को ग्रहण कर 'खुद हूँ आप भगवान' के भाव पर स्थिर हो जाता है। फिर वह जब उस ब्रह्म सता को वर्त्त-वर्त्ताव में लाता है तो उसे सर्वव्यापक एक दर्शन का आभास हो जाता है। इस तरह वह उसी सत्य को सर्व सर्व देखते हुए उसी प्रकाश में अटल हो हर हालत में एक रस रहता है। यह होता है 'आत्मा अमर व अजन्मा है' के सत्य का आभास होना यानि ब्रह्म होने के सत्य को धारण करते हुए जगत में विचरते हुए भी निर्लेप बने रहना। इससे इन्सान स्वार्थपरता से बचे रह समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार सच्चाई-धर्म के निष्काम रास्ते पर सदा अग्रसर रहता है। ऐसा होने पर ही उसमें क्षमा, सहानुभूति व दया भाव जाग्रत होता है और वह परोपकार के निमित्त सांसारिक भोग परायण वस्तुओं के प्रति जो आसक्ति होती है उसका त्याग करने में स्वयं को सक्षम समझने लगता है।

इस तरह उसमें सत्-असत् का विवेक जाग्रत होता है और वह इस विवेक बल पर कब, किसके लिए, क्यों, कहाँ किस तरह की सत्संगति की जाए इसका बोध कर आत्मसाक्षात्कार करने में सक्षम हो जाता है। उसकी दृष्टि व्यापक व हृदय उदार हो जाता है। वह व्यष्टि से समष्टि की ओर अग्रसर होता हुआ, समभाव-समदृष्टि की युक्ति के अनुशीलन पर सुदृढ़ बने रह सृष्टि के प्रत्येक कण-कण में एक ही का दर्शन करता हुआ आत्मभाव में स्थित हो जाता है। इस तरह ख़्याल के परमात्मा से जुड़े रहने के फलस्वरूप वह पूर्ण आत्मतोष प्राप्त कर सत्-चित्त-आनन्द स्वरूप में

मगन हो जाता है। यह होता है आत्मा-परमात्मा की अभेदता का अनुभव यथा बने रहना। फिर यही उसके जीवन का प्रमुख सरोकार बन जाता है। इस तरह उन्नति-सुख आदि की वृद्धि के साथ-साथ मुक्ति भी इसी से सिद्ध हो जाती हैं यानि स्वार्थी राज के साथ-साथ परमार्थी राज भी इसी से प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार सत् के सतत सुखद प्रवाह से जीवन धारा सुन्दर और प्रकाशपूर्ण हो जाती है। आओ अब इससे आगे समझते हैं:-

सजनों सत्य के सम्बन्ध में सत्त्व शब्द के बारे में जानना भी अति आवश्यक है। सत्त्व शब्द सत् धातु में त्व प्रत्यय लगाने से बना है। सत्त्व प्रकृति के तीन गुणों में से प्रथम श्रेष्ठ सद्गुण है। इसे धर्म, गुण या स्वभाव भी कहते हैं। इस धर्म पर बने रहना मानवता में बने रहने की बात होती है। चैतन्य प्राण, जीवनी शक्ति, मूल तत्व भी सत्त्व ही है। सत्त्व चित्त की मुक्त दशा है। यह चित्त को शुभ कर्मो की ओर प्रवृत्त करने वाला गुण है। सत्त्व को निर्मल, प्रकाशमान, विकाररहित, सुखदाई, ज्ञान युक्त और शान्ति का प्रतीक माना गया है। यही ग्रहण और कामना करने योग्य है।

याद रखो जब हमारी जगत सम्बन्धी चेतना अहंकार की भावना से ऊपर उठ जाती है, तो ही सात्त्विक वृत्ति अंतर में पनपती व फलती-फूलती है। सात्विक वृत्ति के अन्दर पनपनें से सद्भावना, विवेक और सद्बुद्धि विकसित होती है। तब स्वार्थ-परमार्थ में ढल जाता है। स्वार्थ की संकीर्ण परिधि से चेतना तब मुक्त होकर परमार्थ की ओर उठ जाती है। इस दशा में रसना का स्वाद, रहनी की चटक, चाल-चलन की चपलता, वृत्ति की चंचलता, सादगी और शांति में परिणत हो

जाती है। सत्त्व की इस दशा में विषयासक्ति छूट जाती है और काम-क्रोध नहीं रहता। चित्त एक ही ओर हो जाता है व सुखद निर्द्वन्द्व मन, तोष व शांति का अनुभव करता है। सर्वमंगल की भावना आ जाती है। इस तरह सत्त्वगुण से जो ज्ञान व प्रकाश मिलता है उस द्वारा चित्त में समत्व भाव स्थित हो जाता है और सुख-दुःख मान-अपमान, मित्र-वैरी सम प्रतीत होने पर परमानन्द की प्राप्ति होती है। इसकी चरम दशा में यानि त्रिगुणातीत भाव दशा आने पर योगी भक्ति की चरम कोटि पा जाता है। इस तरह यदि संसार के सामान्य व्यवहार कुशल विवेकवान् प्राणी भी इष्ट-अनिष्ट को समभाव से लेते हैं तो उनका मन सम हो जाता है और वे विकास पथ पर अग्रसर हो जाते हैं।

अतैव सजनों याद रखो सत्त्व चेतना हमारे कर्म की वह सर्वोच्च दशा है जिसमें तमस का क्रोध और रजस का काम, शान्त होकर सत्त्व के बढ़ते प्रकाश से समत्व को प्राप्त कर लेते हैं। यह त्रिगुणों में सर्वोपरि है। अतः इसके साधक उद्वेग व आवेग रहित उच्च कोटि के मनुष्य कहलाते हैं। ये निष्कामी, श्रेष्ठ, सत्यवादी, ईमानदार, क्षमाशील, धीर, गंभीर, संतोषी, संयमी, अति धर्मात्मा, और प्रशान्त प्रकृति के सज्जन परोपकारी, निरासक्त, निरभिमानी, उदारशय होते हैं तथा पुण्यात्मा और साहसी माने जाते हैं। ये आस्तिक और भौतिक से अधिक आध्यात्मिक सत्ता के विश्वासी होते हैं। इस प्रकार सदाचरण उनकी पूंजी होती है। शांति और तेज उनमें सदा विद्यमान रहता है। सुख-दुःख को सम मानने वालो उन सजनों का कोई दुश्मन व वैरी नहीं होता यानि वे निर्वैर होते हैं। सजन व संत स्वभाव ऐसे ही व्यक्तियों का

होता है। समत्व बुद्धि, शीतल मन, गुणग्राहकता ऐसे सात्त्विक पुरुषों के ही स्वाभाविक लक्षण होते हैं।

इस संदर्भ में सजनों यह भी जान लो कि सृष्टि-चक्र का प्रारम्भिक समयकाल यानि सतयुग/स्वर्ण-युग सत्त्व प्रधान होता है इसलिए सर्वोपरि माना जाता है। तभी तो सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है-

मिटे अंधेरा आवे चानणा, नाले होवे सवेरा।
हटे रात उमस्या वाली, सतवस्तु पाया ए फेरा।
सर्गुण विच सतवस्तु राहवे, सचखंड हमारा डेरा।।

इस कुदरती ग्रन्थ के अनुसार सतयुग के लोगों का हृदय शुद्ध अर्थात् सत्त्व प्रधान, समता व विज्ञान-प्रधान प्रसन्न मन होता है। उनका सर्वस्व सत्य ही होता है यानि उनको सत्य धन ही प्रिय होता है। इसीलिए ही तो वे मानवता के प्रतीक धर्मपरायण इन्सान कहलाते हैं। क्या आप जानना चाहोगे कि उन सज्जन पुरुषों में और क्या-क्या गुण विद्यमान होते हैं-

हाँ जी ।

तो अब ध्यान से सुनो-

1. सच्चाई की राह पर चलने वाले वे मानव संतोष-धैर्य की पोशाक पहन सदा हर अवस्था व सुख-दुःख, मान-अपमान आदि परिस्थितियों में, उठत-बैठत, स्वप्न-जाग्रत सच-सच का उच्चारण करते हैं। इस तरह उनका बोलचाल, खान-पीन सब सच ही होता है तथा सत्य ही उनके घर की रसम-रिवाज़ होती है। तभी तो उनकी जिह्वा सरलता से स्वतन्त्र

हो जाती है। इस संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

सतवस्तु दे सतवादी होवन कैसा राज है मेरा।
सतवादी सचखंड ब्रह्माण्ड हर अन्दर स्थान है जेहड़ा।
हाँ मैं सर्वव्यापी युग युग रोशन नाम है मेरा।।

2. ज़बान सच होने के साथ-साथ उनका हृदय सच व दोनों नयनों में भी सच्चाई भरी होती है। यही कारण है कि उनका संकल्प स्वच्छ व दृष्टि कंचन होती है, तभी तो उनकी अन्दरूनी व बैहरूनी दोनों वृत्तियों में कोई विकार प्रवेश नहीं कर पाता।

3. वे उत्तम-पुरुष सत्य को धारण कर कदम-कदम पर विचार शब्द अनुरूप चलते हैं यानि सत्य को ही वर्त-वर्ताव में ला, सच का सौदा करते हैं व सच का ही प्रचार और प्रसार करते हैं।

4. हम कह सकते हैं कि झूठ रूपी अवगुण की गहराई का उन्हें यथार्थता से बोध होता है। तभी तो वे सत्-वादी, सत्य धर्म पथ को ही शाश्वत सत्य का मार्ग मान उसी पर दृढ़ता व निस्वार्थता से बने रहते हैं।

5. वे सत्य से प्यार करते हैं इसलिए सत्-असत् का विचार करने वाले विवेकशील अर्थात् सत्य के पारखी होते हैं।

6. वे जानते हैं कि जिस जोत से सारा भूमण्डल प्रकाशित है वह हकीकत में सचखंड में जग रही है। सचखंड में ही निरंकार का वास है और वही आत्मा में परमात्मा है अर्थात् 'ईश्वर है अपना आप', इस गूढ़ सत्य का बोध कर वे अपने

शरीर रूपी मकान को सचखंड बना लेते हैं। तभी तो उनकी यश और कीर्ति की सुगंधि कुल संसार में फैलते हुए देवलोक को भी मात कर देती है। इसीलिए तो कहा गया है:-

सचखंड जेहड़ा ही कर लवे, सुगंधि जावे लोक-परलोक

7. वे जानते हैं कि सत्यनिष्ठ बने रहकर ही उनका बेड़ा पार हो सकता है इसीलिए वे मोहमाया के सांसारिक बंधनों से मुक्त रह, इंसानियत के प्रतीक–सद्‌गुणों से युक्त हो सदा उनका ही वर्त्त-वर्त्ताव करते हैं।

8. सत्य की निराली खुराक खा कर उनकी एक निगाह और एक ही दृष्टि हो जाती है अर्थात् दिव्य-दृष्टि हो जाती है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

सतवस्तु सचखण्ड अटल ओ नगरी,
सच वर्त्ताव करे जेहड़ा।
धर्म दा उपदेश जो होवे, ओथे है साडा डेरा।।

सतवस्तु सच बोलचाल है, सच ओ कमावे।
सच दी खुराक ओ खाकर दिव्य दृष्टि ओ पावे।।

इसीलिए तो सुकर्मों को धारण कर वे सदा निर्भयता से अपने फ़र्ज़-अदा को सच्चाई-धर्म से न्यायसंगत निभा पाते हैं और पतिव्रत/पत्नीव्रत धर्म की मर्यादा पर अटल बने रह, गृहस्थाश्रम ठीक चलाते हुए घर सतयुग बना लेते हैं।

9. उनकी धारणा में सदा अंकित रहता है 'धर्म मत हारना रे-धर्म के ऊपर तन, मन, धन सब वारना रे", तभी तो इस नियम का दृढ़ता से पालन करने वाले वे इन्सान धर्म के

ऊपर तन-मन वारने से भी नहीं सकुचाते और अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ता से डटे रह, अपने जीवन के कर्त्तव्यों की पालना प्रसन्नचित्तता से कर पाते हैं।

10. भगवान की सर्वव्यापकता का बोध कर, अपने सत्-चित्त-आनन्द स्वरूप में स्थित रहने वाले वे सच्चरित्र समचित्त, बुद्धिमान इन्सान, सरल, सतर्क, निर्भीक, निरासक्त, निर्विकार, निष्कलंक व विश्वसनीय इंसान सदा एक अवस्था में बने रहते हैं और मौत के भय से भी विमुक्त हो, बेख़ौफ़ा-बेख़तरा इस जगत में विचरते हैं। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

सच नूं धारण करके जेहड़ा सच कमावे
बेख़ौफ़ा, बेख़तरा, बेडर ओ हो जावे।।

11. अंततः हम कह सकते हैं कि सत्य को ईश्वर मान, समस्त सृष्टि में एक ही परम तत्व को स्वीकारने वाले वे इंसान जीव मात्र में अपने को ही देखते हैं और इस प्रकार ईश्वर-मनुष्य तथा मनुष्य और अन्य प्राणियों की एकता का समर्थन करते हुए ज्ञान के सर्वोच्च शिखर को प्राप्त कर लेते हैं। तभी तो वे सबसे श्रेष्ठ और ज्ञानवान कहलाते हैं।

इस संदर्भ में सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में लिखा है-

'सतवस्तु में केवल विचार, सतज़बान एक दृष्टि एकता और एक अवस्था होगी। न सिमरण, न भजन और न ही बन्दगी होगी। खुला प्रकाश होगा। सतवस्तु में कला से सब कुछ उपजेगा। इसीलिए सजनों हमारे लिए यही समय है अपना जीवन बनाने का और प्रभु से मेल खाने का।

इस परिप्रेक्ष्य मे सजनों ध्यान दो कि जो घटना एक शरीरधारी पर घटती है उसका प्रभाव समग्र जड़ पदार्थ और उसकी आत्मा पर भी पड़ता है। इस सत्य का साक्षात्कार समबुद्धि का जनक होता है और समबुद्धि अहिंसा भाव की जननी होती है। यह अपने आप में वैर त्याग, चराचर प्रेम और निष्काम भाव का द्योतक है। इसके लिए आत्मशुद्धि अनिवार्य है। आत्मशुद्धि के लिए अहंकार का त्याग आवश्यक है। अहंकार त्याग, तप और भक्ति की ताकत से संभव है। तप के लिए राग-भोग का त्याग और भक्ति के लिए समभाव-समदृष्टि की युक्ति को धारण कर परस्पर सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव करना आवश्यक है। इसके अनुशीलन से व्यक्ति और समष्टि का कल्याण होता है।

अतः साध्य की पवित्रता के साथ-साथ साधन की पवित्रता पर भी ध्यान देना अनिवार्य है। इस संदर्भ में याद रखो हमारी आदतें हमारे जीवन की सबसे बड़ी पूंजी हैं। अशुद्ध साधनों के प्रयोग से कभी-कभी हमें बड़ी सफलता अवश्य प्राप्त हो जाती है, परन्तु वह हकीकत में सच्ची सफलता नहीं होती क्योंकि यदि मनुष्य की आत्मा ही दब जाए यानि वह झूठ, छल-कपट व बेईमानी का आश्रय लेने लगे, तो सारी सफलताएँ व्यर्थ हैं। साध्यता का आधार नैतिक दृष्टि से है। इसलिए अशुद्ध साधनों का उपयोग अनैतिक है। याद रखो धर्म का सीधा सम्बन्ध है परिवर्तन से। यदि आदमी का मन बदलता है व सदा संकल्प रहित हो संतोष को प्राप्त रहता है तो ग़लत काम अपने आप छूट जाता है। इस प्रकार सत्य का अनुशीलन करने वाला न तो अन्यायी को नीचा दिखाता है न डराता है। उसका उद्देश्य होता है प्रेम से

समझा-बुझाकर उसके मस्तिष्क एवं हृदय को आश्वस्त कर, हृदय परिवर्तन करना। अतः सत्य सिद्धान्तों की पालना हेतु कष्ट सहना व उन पर मरना सीखो। इसी में ही कल्याण है। मत भूलो कि सत्य से ही धर्म की रक्षा होती है और मानव सदाचारी कहला सकता है। सदाचार ही जीवन की कसौटी है। यह एक महत्त्वपूर्ण नैतिक सामाजिक मूल्य है। वस्तुतः सदाचार ही धार्मिक मनुष्य की विशिष्ट पहचान है। इस संदर्भ में यद्यपि पोथी-पुराण, रूढ़िपालन, शास्त्रश्रवण, कथा-कीर्तन आदि धर्म के विविध साधन माने जाते हैं तथापि वास्तविक धर्म तो मनुष्य का अपना सदाचरण ही कहलाता है। आओ अब सदाचरण के विषय में समझते हैं:-

सदाचार

सदाचार का शब्दिक अर्थ क्या है?

सदाचार शब्द सत् और आचार शब्दों से मिलकर बना है। इसका शब्दिक अर्थ शुभ आचरण अथवा सजनों का शुद्ध आचरण है।

सामान्य शब्दों में सदाचार क्या है?

सामान्य शब्दों में सदाचार का मूल अर्थ है शील या चरित्र अर्थात् यह शुद्ध आचरण का प्रतीक है। यह धर्मानुकूल सात्विक उत्तम चाल-चलन, शिष्ट, विनम्र व नैतिक व्यवहार का द्योतक है। इसे श्रेष्ठजनों यानि सद्गुणी व्यक्तियों के कार्य एवं व्यवहार करने की विधि भी कहते हैं।

सदाचरण को भी स्पष्ट कीजिए?

शास्त्रोक्त एवं लोकसम्मत आचार-विचार विधि का पालन करना ही सदाचरण है। इसी प्रकार व्यक्ति द्वारा संचालित कोई भी अनुष्ठान जो उसके शील या चरित्र को उजागर करने में समर्थ हो सदाचरण कहलाता है।

सदाचार के अंतर्गत क्या आता है?

सत्य, इन्द्रिय संयम, स्वधर्म पालन, सत्यभाषण, शील, दया, क्षमा, संतोष, धैर्य, अहिंसा, ईश्वर पर विश्वास, मैत्री भाव, परोपकार आदि सभी चारित्रिक सद्‌गुण सदाचार के अंतर्गत आते हैं।

सदाचरण को अन्य शब्दों में क्या कहते हैं?

आचरण का श्रेष्ठ रूप।

सदाचार को किसका मूल माना जाता है?

सदाचार को धर्म का मूल माना जाता है क्योंकि धर्म सच्चरित्रता पर टिका होता है जो सदाचार का सर्वोत्तम साधन है और व्यक्ति विशेष की लौकिक एवं आध्यात्मिक उन्नति का हेतु है। अन्य शब्दों में सदाचार में ही वे गुण समाहित होते हैं जो धर्म में होते हैं। सदाचारी व्यक्ति धर्म का रूप होता है व दुराचारी अधर्म का। सदाचार धर्म की स्थिति को मज़बूत करता है।

इस संदर्भ में सजनों यदि ध्यान से समझा जाए तो ज्ञात होता है कि सभी धार्मिक व्यक्तियों का जीवन और उनकी लौकिक एवं पारलौकिक क्रियाएँ वेद और स्मृति के ही अनुकूल होती हैं, इस कारण उनका आचरण स्वतः ही दूसरों के लिए

प्रमाण बन जाता है। गीता में भी कहा गया है कि श्रेष्ठ जन जो-जो आचरण करते हैं, वैसा ही आचरण दूसरे लोग भी करते हैं, इस कारण सद्‌गुणी श्रेष्ठ जन का आचरण दूसरों के लिए प्रमाण बन जाता है और सबके लिए धर्म का मार्ग प्रशस्त करता है।

सदाचारी क्या कहलाता है?

धर्मात्मा, पुण्यात्मा।

धर्म ग्रन्थों में किस प्रकार के सदाचरण को महत्त्व दिया गया है?

धर्म ग्रन्थों में सम्यक् आचरण को महत्त्वपूर्ण माना गया है। सम्यक् आचरण से तात्पर्य बाह्य जगत के विषयों के प्रति उदासीनता यानि सुख-दुःख के प्रति समभाव रखने से है। अनुशीलन और अभ्यास से इसे साधा जाता है।

आचार शब्द को भी स्पष्ट कीजिए?

जिसका जीवन में आचरण किया जाए अथवा कार्य एवं व्यवहार में प्रयोग किया जाय, ऐसी कार्यपद्धति या शैली को आचार कहा जाता है। इसका सम्बन्ध कार्यों को करने की विशेष रीति से है, अपना जीवन चलाने के ढंग से है। यह चाल-चलन, प्रथा, प्रचलन और व्यवहार के नियमों का वाचक होता है। यह व्यापक रूप में समाज में परम्परागत रूप से प्रचलित रीति-रिवाजों और प्रथाओं को भी अभिव्यक्त करता है।

आचार का वर्त्त-वर्त्ताव करना अथवा अनुसरण करना व्यक्ति

का चारित्रिक गुण है। इस संदर्भ में किसी व्यक्ति विशेष का आचरण उसके दैनिक जीवन के क्रिया कलापों में स्वतः प्रकट होता है अर्थात् आचरण की पवित्रता (सदाचार) अथवा अपवित्रता (दुराचार) व्यक्ति के कार्य व्यापार होते हैं, जिन्हें लोक में नैतिक दृष्टि से आँका जाता है। इस दृष्टि से कर्मकाण्ड तथा बाह्य शुद्धि को निरर्थक समझते हुए, विशुद्ध आचरण की प्रतिष्ठा पर बल देना आवश्यक है। याद रखो ऐसा आचरण ही मुनुष्य को चरित्रवान बनाकर ऊँचाई की ओर ले जाता है।

आचरण का विधि एवं निषेधप्ररक प्रयोग स्पष्ट करो?

शास्त्र के अनुसार वर्णित आचार पद्धति का अनुसरण करते हुए जब व्यक्ति विशुद्ध जीवन शैली अपनाता है, तो वह समष्टि जगत के लिए महिमामण्डित और कल्याणप्रद होता है। उसके नैतिक आधार अत्यन्त दृढ़, ठोस और पवित्र होते हैं। इसे विधिपरक आचरण माना जाता है। नैतिक गुणों से रहित होकर अत्यन्त अव्यावहारिक और दोषपूर्ण आचरण अपनाने वाला व्यक्ति अविवेकी, अभद्र और अनीति करने वाला होता है, जो व्यावहारिक जगत के लिए अवाँछनीय होता है, ऐसा आचरण निषेधपरक कहा जाता है।

आचरण का विशिष्ट गुण क्या है?

आचरण का विशिष्ट गुण यह है कि उसमें संशोधन संभव है यानि उसका परिष्कार किया जा सकता है। स्वार्थ से परमार्थ की दिशा में बढ़ने के लिए आचरण का परिष्कार आवश्यक है। परिष्कृत आचरण ही सदाचार बनता है और

सदाचारी व्यक्ति समाज में प्रतिष्ठा पाता है, पूजा जाता है।

आचरण की कसौटी क्या है?

नीर-क्षीर-विवेक बुद्धि ही आचरण की प्रमुख कसौटी है। कर्त्तव्य अकर्त्तव्य की भावना समाज को निर्दिष्ट पथ पर अग्रसर कर सकती है। मन की शुद्धि से आचरण की शुचिता यानि पवित्रता आती है।

आओ अब आचरण को विकसित करने का महत्त्वपूर्ण साधन क्या है, उसके विषय में भी जानते हैं:-

आचरण को विकसित करने का साधन क्या है?

शील नैतिकता की आधारशिला है। शील के जो भी सिद्धान्त है, उन्हें जीवन में उतारने से, उनके अनुसार आचरण करने से व्यक्ति का आध्यात्मिक स्तर ऊपर उठता है। शील नहीं, तो कुछ भी नहीं, बिना शील के प्रज्ञा भी नहीं होती। ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि शील आचरण को प्रयत्नपूर्वक शुद्ध करता है। हिंसा न करना, चोरी न करना, यौन दुराचार से विरत रहना, झूठ न बोलना, नशीली चीजों का सेवन न करना आदि शील के अंतर्गत आते हैं। इस प्रकार शील की पालना से व्यक्ति सदाचार अपना पाता है। इससे मनुष्य की आयु, विद्या, यश और बल - ये चार चीज़ें बढ़ती हैं। इसके अतिरिक्त आचरण के विकास में साहस, सत्यनिष्ठा, परोपकार, सदयता आदि महत्त्वपूर्ण साधन बन सकते हैं परन्तु इस हेतु समाज में नैतिक गुणों के समावेश और भ्रष्टाचार के बहिष्कार किए जाने की आवश्यकता है।

याद रखो महापुरुषों के जो आचरण हैं, समाज उनका अनुकरण तथा अनुसरण करके व्यवस्थित होता है और समाज में शान्ति की स्थापना होती है। श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करता है, अन्य पुरुष भी वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाणित कर देता है, समस्त मनुष्य समुदाय उसके अनुसार बरतने लगता है। वस्तुतः सामान्य जन के लिए श्रेष्ठ व्यक्तियों का आचरण ही आचरणीय है। इस प्रकार प्रमाणरत आचार्य श्रेष्ठ ही सोपानभूत या साधन हैं। उनके चरित्र में शील, दम, सत्य, अस्तेय आदि जो मानवीय गुण हैं, वे सभी आचार के पूरक हैं।

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में शील को धारण करने पर विशेष महत्त्व दिया गया है। कृपया इसे भी स्पष्ट कीजिए?

मनुष्य के संयमित और मर्यादित मानवोचित व्यवहार को शील कहते हैं। शील उत्तम भाव है सत् स्वभाव है अर्थात् जिस व्यक्ति का चाल-चलन, वृत्ति, स्वभाव, चरित्र सत् पर आधरित होता है, जो किसी से दुर्व्यवहार नहीं करता हैं, मानवीय मर्यादाओं का पालन करता है तथ सद्-गुणों से युक्त होता है, उस व्यक्ति को शीलवान् कहते हैं। शीलवान् मृदुभाषी, क्षमाशील, उदार और कृतज्ञ होता है। यह राग-द्वेष विहीनता, तटस्थ व्यवहार, नम्रता विनयशीलता आदि को दर्शाता है।

शील का अनिवार्य तत्त्व क्या है?

अद्रोह और सात्विकता शील के अनिवार्य तत्त्व है अर्थात् मन, वाणी और क्रिया द्वारा सभी प्राणियों से अद्रोह, सब पर

दया करना और यथा शक्ति दान देना आदि शील कहा जाता है। विवेक भी शील का अनिवार्य तत्त्व है क्योंकि विवेक ही कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य में भेद करके अकर्त्तव्य से विरत करता है तथा शील की रक्षा करता है। याद रखो जब तक चित्त में सत्य, शांति, मैत्री, दया आदि सात्विक भावों की पुष्टि नहीं होती और क्रोध, द्वेष, भोगप्रियता आदि राजस-तामस भाव प्रधान रहते हैं, तब तक शील की रक्षा नहीं हो पाती। अतः सात्विकता भी शील का अनिवार्य तत्त्व है।

शील की पुष्टि में बाधक तत्व क्या है?

अविवेक, अहंकार और निर्लज्जता शील की पुष्टि में बाधक हैं। अविवेक के कारण मनुष्य कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का सही निर्णय नहीं कर पाता और अकर्त्तव्य में प्रवृत्त होकर शील से हाथ धो बैठता है। अहंकार के कारण मनुष्य में उद्दण्डता आती है और वह विनय खो देता है। विनय शील का ही प्रत्यक्ष बाह्य रूप है। विनय की अनुपस्थिति में शील का कोई स्थान नहीं होता। इस संदर्भ में याद रखो वास्तविक शील वह होता है जो व्यक्ति के स्वभाव का अभिन्न अंश बनकर उसके व्यक्तित्व और कृतित्त्व दोनों पर स्पष्ट छाप छोड़े। अतः शील के अंतर्गत कपट का कोई स्थान नहीं होता।

शील की कसौटी क्या है?

सद्व्यवहार शील की कसौटी है। सद्व्यवहार के अभाव में शील की पुष्टि असंभव है। सद्व्यवहार के साथ-साथ सम आदर की कसौटी पर भी शील की परख की जा सकती है। शीलवान दूसरों का आदर करता है और दूसरों से स्वयमेव आदर पाता है।

शील की महत्ता क्या है?

शील हृदय की वह स्थायी स्थिति है, जो सदाचरण की प्रेरणा आप से आप करती है। शील मानवता की पहचान हैं। यदि किसी व्यक्ति में शील नहीं है तो वह मनुष्यता के विपरीत आचरण कर सकता है, अतः मनुष्यता के विकास के लिए शील का महत्त्व है। शील अपना प्रभाव स्वयं प्रकट करता है। शील मनुष्य का सर्वोतम आभूषण है। शील ही विद्वानों का धन हैं। शील अपरिमित बल है। शील सर्वोत्तम शस्त्र है। शील के द्वारा ही चरित्र का निर्माण होता है। शील हमारी गति के लिए संबल है। शील ही परम तप है। शील ही परम धर्म है। शील ही परम ज्ञान है। शील से ही निर्वाण की प्राप्ति हो सकती है। अतः शील की सदा रक्षा करनी चाहिए।

सदाचार के संदर्भ में वर्तमान युग के हालात व उसके परिणामों को स्पष्ट कीजिए ?

सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ वर्तमान युग के व्यक्तियों की हालत को व्यक्त करते हुए कह रहा हैः-

भजन बन्दगी इन्सान भुल के ते,
भुल गए स्वरूप हमारा।
सच्चाई धर्म दे दो मन्त्र भुल गए,
न डिट्ठा प्रतिबिम्ब दा नज़ारा।।

अर्थात् विश्व आज भौतिकवाद का गुलाम हो गया है। ऐसे में पाश्चात्य चकाचौंध ने भारतीय समाज को बुरी तरह प्रभावित किया है। नीति और आदर्शों का त्याग करने के कारण अनेक बुराइयाँ जन्म ले रही हैं। समाज में स्वार्थ, झूठ, चोर-बाज़ारी, बेईमानी, रिश्वत, चरित्रहीनता आदि में

वृद्धि हो गई है। वर्तमान युग में कुशिक्षा के प्रभाव से युवा-वर्ग सदाचार को निरर्थक समझता है और सदाचार विरोधी जीवन को आदर्श मानने लगा है। इसी कारण समाज की दुर्दशा हो रही है। युवा पीढ़ी पतन की ओर उन्मुख हो चोरी, झूठ, बेईमानी को अपने जीवन की उन्नति का अंग समझने लगी है। नींव कमजोर हो तो उस पर खड़ा मकान अधिक दिनों तक नहीं टिक सकता। इसी के परिणामस्वरूप आज युवा अपना बल, तेज, शौर्य खोता जा रहा है, जो निराशा, हताशा के पथ को प्रशस्त कर उनके जीवन में विश्रृंखलता, अनुशासनहीनता एवं उच्छृंखलता को बढ़ावा दे रही है।

घटते हुए सदाचरण की रक्षा के लिए युवा वर्ग को सचेत होना आवश्यक है और अन्य महापुरुषों जैसे राम, रहीम, कृष्ण आदि के चरित्र को आदर्श मानकर समभाव-समदृष्टि के सबक अनुसार परस्पर सजन भाव का व्यवहार करते हुए, सदाचार-प्रिय बनना चाहिए अन्यथा उन्हें अनन्त अन्धकार में भटकने के सिवाय कुछ भी प्राप्त नहीं होगा।

सदाचरण की कसौटी क्या है?

सदाचार की दृष्टि से दो बातें महत्त्वपूर्ण हैं - व्यक्ति की कथनी और करनी में सामञ्जस्य तथा चरित्र में नैतिक गुणों को विकसित करने पर अधिक से अधिक ज़ोर देना। इसीलिए व्यवहार को मनुष्य की कसौटी स्वीकारा है।

सदाचार का महत्त्व व उपयोगिता स्पष्ट कीजिए?

सहनशीलता, धीरता और दूसरों के द्वारा अपकार होने पर भी चित्त को द्वेषरहित, क्रोधरहित और क्षमाशील रखना ही

सदाचार की महत्ता है। क्षमा, परमशक्ति, परम तप, धर्म का मूल है। कुशल एवं शुभ कर्मों के आचरण द्वारा ही भयमुक्त और निर्भीक समाज का निर्माण सम्भव है।

मनुष्य अपने जीवन को सदाचार से ही पूजनीय बना सकता है। सदाचार ही वह बल है जो मनुष्य की सबसे बड़ी शक्ति है और अपराजेय है। इसी शक्ति के बल से मनुष्य मानसिक दुर्बलताओं का नाश करता है। सदाचार को जीवन का दिग्दर्शक यन्त्र कह सकते हैं। जिस प्रकार दिग्दर्शक यन्त्र के बिना जहाज निर्दिष्ट मार्ग पर नहीं चल सकता, उसी प्रकार सदाचार के बिना मनुष्य कभी भी अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाता। तभी तो कहा गया है कि सदाचार मनुष्य के जीवन को सार्थकता प्रदान करता है।

स्पष्ट है सजनों सत्य मार्ग ही सदाचार है। सदाचार विवेक आश्रित, व्यवहार-सिद्ध एवं समाजोपयोगी हैं। सदाचार अपनाने वाला रूढ़िवादिता से दूर रहता है तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि विकारों का त्याग कर सत्य, दया, क्षमा, आत्मनिग्रह आदि को महत्त्व देता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

सच्चाई धर्म लवो तुसा धार,
फिर किस तरह करो तुसा विकार।

अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि सदाचरण आत्मानुशासन है, यह अन्यों के प्रति शिष्टाचार का प्रदर्शन है, व्यवहार या बर्ताव में किसी व्यक्ति के सुन्दर अन्तर्भावों का अन्यों पर प्रकटन है। सजनों, यद्यपि व्यक्तित्व में आचरण का समावेश रहता है, तथापि वह आचरण के अतिरिक्त भी

अनेक गुणों को अपने में समेटे रहता है। इस संदर्भ में जब मनुष्य के आकर्षण या तेज को प्रकट करना होता है, तो उसके व्यक्तित्व को प्रस्तुत किया जाता है। चरित्र आचरण से भी अधिक व्यापक है। चाल-चलन भी चरित्र का ही द्योतक है।

इस परिप्रेक्ष्य में सजनों ध्यान दो कि व्यक्ति का मूल्यांकन मुख्यतः दो बातों पर आधारित होता है—आचार और विचार। दोनों में तालमेल एवं एकात्मता होना वांछनीय होता है। जिस व्यक्ति का आचरण उसके विचारों के अनुसार नहीं होता ऐसा व्यक्ति आदर एवं सम्मान का पात्र नहीं बन पाता। अतः सामाजिक जीवन की तरह व्यक्ति के अपने जीवन में भी कथनी और करनी के दुहरे मापदंड को अच्छा नहीं माना जाता। यह जान लो सजनों कि सामाजिक जीवन में विचार नहीं, आचार को अधिक महत्त्व दिया जाता है। सद्-आचरण किसी व्यक्ति के शील, स्वभाव और चरित्र को पवित्र रखने का माध्यम है। विशुद्ध अन्तःकरण वाला सदाचारी व्यक्ति किसी विशेष पहचान का मोहताज नहीं होता। कर्त्तव्यों का निष्ठापूर्वक निर्वाह करता हुआ वह त्याग, तपस्या और कर्मठता का परिचय देता है और लोकमंगलकारी कहलाता है।

सारतः आचरण की शुद्धता यानि सदाचरण से व्यक्ति के चरित्र का निर्माण होता है। अतः मनुष्य को इसके लिए सतत् प्रयत्नशील रहना चाहिए। निश्चित ही सदाचरण से प्राप्त विवेकपूर्ण दृष्टि से जीवनगत कार्यों को सम्पन्न करने में पूर्ण सहयोग मिलता है। फिर मानव द्वारा अपनाए गए

समस्त अनुष्ठान उसकी नैतिकता के मापदण्ड होते हैं। याद रखो जो व्यक्ति जितना ही नीतिज्ञ होता है, उसकी जीवन पद्धति का मानदण्ड उतना ही ऊँचा और महान गुणों का द्योतक होता है। इस प्रकार आत्मानुशासन अपनाने के फलस्वरूप उसके जो भी संयमित क्रियाकलाप समाज में प्रकट होते हैं वे सब सदाचरण की व्याख्या करते हैं। याद रखो जो व्यक्ति उच्च आदर्शों को जितना आत्मसात करता है, व्यवहार में उन सभी का उतना ही अधिक प्रकटन होता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सदाचरण नित्यप्रति की जीवनचर्या है। यह सद्‌गुणों के स्वात्मीकरण के बाद उद्‌घाटित होने वाला ऐसा प्रवाह है, जिससे सारा समाज लाभान्वित होता है। ऐसा सच्चाई-धर्म के रास्ते पर निष्काम भाव से चलने वाला सदाचारी फिर क्या कहता है, ध्यान से सुनोः-

सजन-भाव समभाव अपनाकर

हुण मैं सच वन्डागा, सच ही वन्डदा रहवाँगा।

क्यों

प्रभु नूं संग रखन लई, एह अच्छी है कारी।
हुण मैं सच वन्डागा, सच ही वन्डदा रहवाँगा।।

सच वंडना ही कर्म है मेरा, सच वंडना है धर्म।
हुण मैं सच वन्डागा, सच ही वन्डदा रहवाँगा।।

जो वी लैना चाहवे आवे, भिन्न-भेद नहीं ऐथे।
हुण मैं सच वन्डागा, सच ही वन्डदा रहवाँगा।।

सारे धंधे छड के सजनों, सच दा ही व्यापार कराँगा।

हुण मैं सच वन्डागा, सच ही वन्डदा रहवाँगा।।

सच ही बोलचाल अपना के, सच दा ही व्यवहार दिखा के।
हुण मैं सच वन्डागा, सच ही वन्डदा रहवाँगा।।

जदो दी सच नाल लगी यारी, मगरो लत्थी जगत बीमारी।
हुण मैं सच वन्डागा, सच ही वन्डदा रहवाँगा।।

सच ही है सच्चा सौदा, सच ते चले ओ करदा है मौजां।
हुण मैं सच वन्डागा, सच ही वन्डदा रहवाँगा।।

कदम-कदम ते सच नूं फड के, ए विध सच इकट्ठा कर के।
अपना हृदय सचखंड कराँगा, अपना हृदय सचखंड कराँगा।।

सत्य आचार, विचार ख्याल, सत् ही ध्यान होवेगा मेरा।
सजनों सच दी परख करन लई, ए क्रिया है ज़रूरी।।

अगर ये सब मंजूर है तो सब मिलकर बोलो।
हुण मैं सच वन्डागा, सच ही वन्डदा रहवाँगा।।

सबकी जानकारी के लिए सच्चाई के विषय में इससे आगे आगामी कक्षा में बताया जाएगा।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरांत सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 20 दिसम्बर 2015 का सबक

सत्य -(4)

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ सजनों कह रहा हैः-

सचखण्ड दी जिसनूं चाह होवे,
सच्चाई धर्म नूं धारण करो।
गुरु नानक सच दी पट्टी लिखी,
सारे जगत डिट्ठी।।
इस मन्त्र नू इन्सानों पकड़ो,
ओन्हां ताईं मेल करो।
सजनो जे सचखण्ड विच सैर करनी जे,
सच्चाई दा शब्द तुसां पकड़ लवो।।
सचखण्ड विच जोत निरंकार दी,
उसे जोत नाल सजनों तुसां जुड़ो।।

कितने ही सुन्दर शब्दों में सजनों सत्य-धर्म की महानता को स्पष्ट किया गया है। इस सन्दर्भ में सजनों गत सप्ताह हमने जाना कि आचरण भाव का प्रकट रूप है। जिसने सद्ज्ञान को आचरण में उतार लिया, उसने ईश्वर को ही मूर्त्तिमान कर लिया। आचरण और सत्यता के लिए आर्य जाति चिरकाल से प्रसिद्ध है। सुन्दर आचरण, सुन्दर शरीर से अच्छा है। मूर्त्ति और चित्र की अपेक्षा यह उच्चकोटि का आनन्द देता है। यह कलाओं में सुन्दरतम कला है। आचरण एक दर्पण के सदृश है जिसमें हर मनुष्य अपना प्रतिबिम्ब देखता है। मनुष्य का आचरण ही यह बताता है कि वह कुलीन है या अकुलीन, वीर है या कायर अथवा पवित्र है या अपवित्र। जिस प्रकार रोगियों के लिए भली-भांति सोचकर निश्चित की हुई औषधि नाम उच्चारण करने मात्र से (बिना खिलाए) किसी को निरोग नहीं कर सकती, ठीक उसी प्रकार मात्र देवालयों में जाने व धर्म-शास्त्र पढ़ने से तब तक कुछ नहीं होता जब तक प्रदत्त सद्ज्ञान को आचरण में नहीं उतारा जाता। इस प्रकार जो उस सद्ज्ञान के अनुसार आचरण करता है, वस्तुतः वही विद्वान व बुद्धिमान कहलाता है।

इस प्रकार सजनों स्पष्ट ही है कि सदाचरण वही है जो मनुष्य को चरित्रवान् बनाए और ऊँचाई की ओर ले जाए। यह भी जान लो कि जो परम पुरुषार्थ के लिए यत्नशील है, वह साधारण जन के समान आचरण नहीं करता। शील मानसिक उच्छृंखलता पर अंकुश लगाता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि मानवीय वृत्तियों को सदाचार से दूर किया जा सकता है। मन में उत्पन्न हुई हिंसा की भावना को अहिंसा के द्वारा दूर किया जा सकता है और करुणा, सहानुभूति एवं दया की भावना को जागृत किया जा सकता है। संतोष, धैर्य, क्षमा, सहनशीलता जैसे गुणों से मनुष्यों का नैतिक उत्थान होता है।

यही गुण हमें मनुष्यता का पाठ पढ़ाते हैं। सदाचार के गुणों द्वारा मनुष्य का चरित्र उज्ज्वल होता है, जो धर्मनिष्ठा उत्पन्न करते हैं। यही धर्मनिष्ठा अलौकिक शक्ति की प्राप्ति में सहायक होती है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

भक्ति सच धर्म दी कर,
फिर इन्सान नू मौत दा न रिहा डर।
शक्ति दा हथियार हाथों में फड़,
बैख़ौफ़ा बेख़तरा जगत में विचर।।

आओ सत्य के व्यवाहारिक पक्ष से सम्बन्ध में अब इससे जुड़े अन्य पहलूओं जैसे सद्भाव, सद्भावना, सद्विचार, सदाशयता, सद्गुणयुक्तता, सद्स्वभाव, सत्कार्य, सत्कर्म, सद्व्यवहार व सच्चरित्रता को भी क्रमशः समझते हैं:-

सद्भाव

'सद्भाव' का मुख्य अर्थ क्या है?

'सद्भाव' शब्द दो शब्दों के योग से बना है यथा 'सद्' एवं 'भाव'।
'सद्' शब्द संस्कृत शब्द स्त्रोत से हिन्दी में आया है और यह 'सत्' का समानार्थी है।

'सद्' का शब्दिक अर्थ - सत्य, यथार्थ, सत्त्व, मूल तत्त्व, किसी पदार्थ का सार, जीवनशक्ति आदि हैं। लोक व्यवहार में 'सत्' या 'सद्' का एक अर्थ 'अच्छा' भी है।

भाव का अर्थ 'मन में उत्पन्न होने वाले विचार या ख़्याल' है।

इस आधार पर सद्भाव का अर्थ 'सच्चे, प्रेम और हित के अच्छे भाव' से है।

अतः सद्भाव का मुख्य अर्थ - 'मन में उत्पन्न होने वाले अच्छे-अच्छे विचारों के रूप में स्पष्ट होता है।

साधारण शब्दों में सद्भाव, शुभचिंतना की वृत्ति, निष्कपट, मैत्री भाव, अच्छी नीयत, वस्तुस्थिति, वास्तविकता, भद्रता व साधुता को प्रदर्शित करता है। इस प्रकार रचनात्मकता की पुष्टि करने वाले समस्त सकारात्मक मानवोचित्त भावों के जागरण की संज्ञा सद्भाव है। याद रखो सज्जनों का हृदय सदैव सद्भावों से समृद्ध रहता है। यही सद्भाव ही उनकी सत्क्रियाओं का आधार होता है।

'सद्भाव' का अनिवार्य तत्त्व क्या है?

शुभ संस्कार, ज्ञान और स्वस्थ चिन्तन, सद्भाव के अनिवार्य तत्त्व हैं। जिन परिवारों का वातावरण सात्त्विक होता है, युवा और वरिष्ठ सदस्य सुसंस्कारित होते हैं और सद्भावों से समृद्ध होने के कारण सत्कर्त्तव्यों के पालन में व्यस्त रहते हैं, उनमें पलने वाले बच्चों में भी सद्भावना के बीज अंकुरित और पल्लवित होते रहते हैं। अतः सद्भावपूर्ण पारिवारिक वातावरण और उससे मिलने वाले शुभ संस्कार सद्भाव के अनिवार्य तत्त्व हैं। ज्ञान भी सद्भाव का अनिवार्य तत्व है क्योंकि मनुष्य के सारे दुष्कर्म अज्ञानजनित होते हैं। कई बार लगता है कि यह व्यक्ति जानबूझकर पाप कर रहा है, किन्तु वास्तविकता यह होती है कि पापी सच्चे अर्थों में नहीं जानता कि वह पाप कर रहा है, जिस दिन जान लेता है, उस दिन

वाल्मीकि बन जाता है। लोभ, मोह, मद, स्वार्थ आदि दुर्भाव अज्ञान के ही बेटे हैं। अज्ञान के प्रबल होने पर ये सद्भाव की हानि करते हैं, किन्तु जहाँ ज्ञान प्रबल होता है, वहाँ ये अस्तित्व में ही नहीं आते, क्योंकि ज्ञान का पुत्र, स्वस्थ चिन्तन अपने प्रताप से इन्हें मनोराज्य में पनपने ही नहीं देता। अतः शुभ संस्कार, ज्ञान और तद्जनित स्वस्थ चिन्तन सद्भाव के अनिवार्य तत्त्व हैं।

'सद्भाव' को विकसित करने के साधन क्या-क्या हैं?

स्वाध्याय, सत्-संगति और इन्द्रियनिग्रह सद्भावों को विकसित करने के साधन हैं। अच्छे ग्रन्थों का अध्ययन करने से चित्त की दुर्वृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं। सत्संगति भी मनोविकारों के विष का शमन करके सद्भावों के अंकुरण के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार करती है। इन्द्रियनिग्रह चित्त की चंचलता को समाप्त करके मनः शान्ति का पथ समतल बनाता है। स्वाध्याय, सत्संगति और इन्द्रियनिग्रह के शुभ संयोग से परिष्कृत मन की मृदु और उर्वर चिन्तन भूमि में सद्भावों के शुभ अंकुर सहज ही पल्लवित हो जाते हैं।

सद्भावों की पुष्टि में कौन से तत्व बाधक सिद्ध होते हैं?

चित्त की दुर्बलताएं, कुसंगति और वातावरण एवं व्यवस्था की त्रुटियाँ सद्भावों की पुष्टि में बाधक बनती हैं। मनुष्य के मन मे लोभ, मोह, स्वार्थ, ईर्ष्या, द्वेष आदि दुर्बलताएं सहज हैं। वे उसके व्यक्तित्व से वैसे ही जुड़ी हैं, जैसे प्रकाश से अन्धकार जुड़ा है। प्रकाश की कमी हुई कि अन्धकार ने पैर पसार दिये। ऐसे ही मानवीय व्यक्तित्व में जहाँ दया, प्रेम आदि सबलताएं दुर्बल हुई कि उपर्युक्त दुर्बलताओं ने

प्रभावित किया। ये दुर्बलताएं ही दुर्भावों की आधार भूमि हैं। इस पर विजय प्राप्त किये बिना सद्भावों की पुष्टि असम्भव है। कुसंगति की आँधी इस दुर्बलताओं की लपटों को और भी तेज कर देती हैं।

मनुष्य के मन की इन दुर्बलताओं को नियन्त्रित रखने के लिए समाज व्यवस्था बनाता है। पुरस्कार और दण्ड का विधान रखता है, किन्तु जब व्यवस्था ही दोषपूर्ण हो जाती है तो समाज का वातावरण बिगड़ जाता है। तब दुर्बलताओं और तत्प्रेरित दुर्भावों का बोलबाला हो जाता है। सद्भावों की क्षति होती है। आज का स्वार्थ और उन्मादग्रस्त भ्रष्ट वातावरण इस तथ्य का साक्षी है। इस प्रकार सद्भावों की पुष्टि में अनेक बाधाएं दिखाई देती हैं।

सद्भाव की कसौटी क्या है?

राग-द्वेष से मुक्त होकर सबका हित साधन करना, सबके हित की चिंता करना सद्भाव की कसौटी है। यदि कोई व्यक्ति किसी का अहित सोचता है या फिर किसी को कष्ट पहुँचाने का प्रयत्न करता है तो उसके व्यक्तित्व में सद्भावों की उपस्थिति को संदेहजनक समझना चाहिए। सद्भाव मनुष्य के जीव मात्र के हित चिन्तन की संज्ञा है। सद्भाव समृद्ध व्यक्ति के लिए कहीं कोई अपना-पराया नहीं होता। सब उसके होते हैं और वह सबका होता है। अतः किसी का भी अहित चिन्तन न करना सद्भाव की कसौटी है।

इससे सजनों स्पष्ट हो जाता है कि सद्भाव ही संसार का आधार हैं। ये समाज का मेरुदण्ड हैं। सद्भाव मनुष्यता के आभूषण हैं। मनुष्य की महानता की सर्वोत्तम कसौटी है।

याद रखो मनुष्य की सच्ची पहचान उसकी आकृति या रँग, रूप नहीं है, उसकी सच्ची पहचान उसके मानवोचित सद्भाव हैं। अतः सद्भावों की कोई सीमा नहीं है। जो लोग सद्भावों की जितनी विस्तृत दिशा विकसित कर लेते हैं, वे उतने महान बन जाते हैं। सन्तों में सद्भावों की दिशा का विस्तार अनन्त होता है। वे 'सारी पृथ्वी उस ईश्वर का ही परिवार है' और 'सर्व राम रूप जान" जैसी उदार दृष्टि विकसित करके सबके प्रति सद्भाव युक्त बन जाते हैं। इसीलिए वे लोक वंदनीय और अनुकरणीय होते हैं।

यही नहीं सजनों सद्भाव मनः संघर्ष को शान्त करके असीम शान्ति प्रदान करते हैं। सद्भावों के कारण मन की समस्त दुर्वृत्तियाँ लोभ, द्वेष, क्रोध, हिंसा आदि शान्त हो जाती हैं। फिर मनुष्य किसी का अहित चिन्तन नहीं करता है। वह सबके प्रति उदार, प्रेमपूरित, बन्धुत्व युक्त और कृपालु हो जाता है। ये समस्त सद्गुण उसके व्यक्तित्व का उद्धार कर उसे सच्चा मनुष्य बनाते हैं।

यद्यपि आज समाज में सद्भावों की भारी क्षति दिखायी देती है तथापि मनुष्यता के उदाहरण कम नहीं मिलते। जहाँ बहुत से लोग स्वार्थ-सिद्धि की अन्धी दौड़ में दूसरों को हानि पहुँचाने, उनका अनेक तरीकों से शोषण करने में जुटे हैं, वहीं कुछ लोग उनकी रक्षा के लिए भी सतत् प्रयत्नशील हैं। उनकी इस प्रयत्नशीलता का आधार सद्भाव ही हैं। यदि सद्भाव न हों तो कोई किसी की सहायता के लिए आगे नहीं आयेगा। इससे सिद्ध हो जाता है कि सद्भाव बन्धुत्व की पुष्टि करता है। सद्भाव की सीप से ही, सहयोग का मोती जन्म लेता है। मानवीय व्यवहार में सद्भाव ही सद्व्यवहार

का हेतु भी है क्योंकि जब मनुष्य के मन में सद्भाव पुष्ट होते हैं तभी वह सत्क्रियाओं का सम्पादन करता है। अन्यथा नहीं करता। इससे सद्भाव का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। सद्भावों से ही सजनों मनुष्य के अन्दरसद्भावना उत्पन्न होती है। आओ अब सद्भावना के विषय में जानते हैं:-

सद्भावना का शाब्दिक अर्थ क्या है?

'सद्' यानि (सत्) और 'भावना' के योग से सद्भावना शब्द बनता है। जैसा कि ऊपर बताया गया है कि 'सद्' का शाब्दिक अर्थ होता है सच्चा या सत्याधारित व 'भावना' का साधारणतः अर्थ है कल्पना, धारणा, विचार, ख़्याल आदि।

वास्तव में भावना चित्त का वह संस्कार है जो अनुभव और स्मृति से उत्पन्न होती है। इस प्रकार भावना देखे, सुने या जाने हुए पदार्थ के संबंध में स्मृति या पहचान का सेतु होती है। कहते हैं कि मनुष्य के चित्त में जैसा भाव होता है, वैसी ही उसकी भावना भी होती है। जिसका चित्त निर्मल होता है उसकी भावना ब्रह्म संबंधी होती है: और जिसका चित्त कलुषित होता है, उसकी भावना विषयवासना की ओर होती है। मनुष्य भावना अनुरूप ही परम पुरूषार्थ करता है व देह-धारण करता है।

इस संदर्भ में सजनों सद्भावना से तात्पर्य सच्ची या सत्याधारित भावना से है। जब व्यक्ति सच्चे हृदय से आत्म उन्नति अथवा लोक कल्याण हेतु सहानुभूति, संवेदना, परोपकारिता इत्यादि का सहारा लेता है, तो उसे सद्भावना कहते हैं। आत्मीयता, निष्कपटता, दयालुता, दानशीलता इत्यादि उच्च मानवीय मूल्य इस के स्वरूप को स्पष्ट करते

हैं। सद् भावना शब्द का अन्य अर्थों में भी प्रयोग होता है जैसे सच्ची भक्ति या निष्ठा। सद् चिंतन, सद् निरीक्षण, निष्कपटता/सरलता, हितैषिता, सद्सत्ता आदि।

सद्भावना का अनिवार्य तत्त्व क्या है?

सद्भावना मूलतः आन्तरिक प्रक्रिया है। यह पहले मन में उदित होती है। फिर इसका बाह्य प्रकाशन होता है। इसके चार तत्त्व माने जा सकते हैं - भाव, आलम्बन, आश्रय तथा साधन।

इस सन्दर्भ में सद्भावना जैसा कि नाम से ध्वनित है, मूलतः भाव या भावना है। इसके अन्तर्गत सहानुभूति, संवेदना, परोपकारिता, त्यागशीलता इत्यादि भाव आते हैं। सबके मूल में आत्मीयता होती है।

सद्भावना का कोई-न-कोई आलम्बन अवश्य होता है, अर्थात वह व्यक्ति जिसके सहारे यह उत्पन्न होती है, विकसित होती है। उदाहरणार्थ कोई भी सांसारिक प्राणी, पशु, पक्षी, कीट, यहाँ तक कि वनस्पतियाँ भी इस कोटि में परिगणित हैं।

सद्भावना जिस व्यक्ति में उत्पन्न होती है,
उसे आश्रय या आधार कहते हैं।

सद्भावना के साधनों को दो कोटियों में रखा जा सकता है- अन्तर और बाह्य। अंतर कोटिक साधन में सत्संकल्प, दृढ़निश्चय, आत्मीयता की भावना, आलम्बन के प्रति कल्याण-कामना आदि बातें आती है। सत्संगी आलंबन के प्रति भौतिक सामग्री; यथा-गुलदस्ता, फल, मिठाई, वस्त्रादि

भेंट करना सद्भावना के बाह्य रूप/साधन कहलाते हैं।

सद्भावना का विधि एवं निषेधपरक प्रयोग स्पष्ट करो?

आत्मिक उत्कर्ष या समष्टि के कल्याणार्थ आचरित सद्भावना विधिपरक कहलाती है। यदि कोई व्यक्ति, वर्ग या देश अपनी दुर्बलताओं से छुटकारा पाने अथवा किसी को भ्रमित कर अपनी स्वार्थ-सिद्धि करने की नीयत से सद्भावना का परिचय देता है, तो वह निषेधपरक कहलाती है।

सद्भावना के कितने भेद-स्तर हैं?

इसके तीन भेद किए जा सकते हैं - सात्विक, राजसिक और तामसिक। व्यक्ति के क्रियाकलाप में यदि लोकमंगल की भावना निहित हो, तो उसे सात्विक कहा जाएगा। अनाथों, रोगियों आदि के प्रति मदर टैरेसा द्वारा आचरित सद्भावना सात्विक कहलाएगी। राजसिकता सतोगुण विशिष्ट होती है, तब सद्भावना लोकोपकार बन जाती है। यदि यही सद्भावना उनके धर्मान्तरण की नीयत से दिखाई गई होती, तो तामसिक कहलाती।

सद्भावना को विकसित करने का साधन क्या है?

मनुष्य में सद्भावना विकसित करने के साधनों पर विचार किया जाए, तो इनमें सर्वप्रथम सहृदयता, आत्मीयता आती है। सहृदय हुए बगैर कोई सद्भावना का परिचय नहीं देता। यह सहृदयता व आत्मीयता का भाव समस्त प्राणी मात्र को समान समझते हुए उनके प्रति समता यानि समभाव व

सजन-भाव अपनाने से पनपता व फलता-फूलता है। इसके लिए जन्मजात या अर्जित संस्कार अनुकूल पृष्ठभूमि का निर्माण करते हैं। संस्कारशील व्यक्ति सहज ही सद्भावनाशील होता है। निष्कपटता, निष्कामता, त्यागशीलता, साहस, परोपकारिता इत्यादि इसके ऐसे अन्यत्र साधन हैं, जो इसे विकसित करते हैं। इनके अतिरिक्त सज्जनों की संगति, सद्ग्रन्थों का अध्ययन व मनन आदि भी इसे विकसित करने वाले साधन हैं। डाकू अंगुलिमाल का हृदय-परिवर्तन महात्मा बुद्ध की संगति, उपदेश व सद्भावना का ही तो परिणाम है।

सद्भावना की कसौटी क्या है?

व्यक्ति का विवेक ही वह निष्कर्ष है, जिस पर सद्भावना की परख होती है। कब, कहाँ, कैसे, किस अनुपात में इसका प्रयोग/उपयोग हो, इसे विवेक ही तय करता है। अन्य शब्दों में सद्भावना का भी प्रयोग/उपयोग पात्र, देश, काल, सर्वोपरिता पात्रता को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

स्पष्ट है सजनों कि सद्भावना का सीधा-सादा सा अर्थ है - सुन्दर-स्वच्छ भावना। जहाँ सुन्दर और सच्ची भावना होती है, वहाँ व्यक्ति क्षुद्र नहीं रह सकता क्योंकि सद्भावना की नीति कहती है - आप भले ही मेरे मार्ग में कांटे बोओ, मैं आपके मार्ग में फूल ही बिछाऊँगा। इस स्थिति में व्यक्ति जो चिन्तन एवं कर्म भी करता है वह उसकी महानता के ही प्रतीक होते हैं। इस तरह औरों के प्रति सुन्दर, स्वच्छ भावना रखने से न केवल उसका भला होता है, अपितु अपना आप भी सँवरता है और एक साधारण मानव अपने अन्दर

मानवीय गुणों का विकास कर महामानव बन जाता है यानि इतिहास-पुरुष बन जाता है। युग-पुरुषों का सर्वोत्तम उदाहरण इस संदर्भ में हमारे सामने ही है। याद रखो सद्भावना एक ऐसी उच्चतर मानवीय विशेषता है, जो जीवन में बुराइयों को दूर कर सज्जन पुरुष बनने में सहायक होती है तथा शत्रु को भी मित्र में बदलने की क्षमता रखती है। सद्भावना से पोषित होने के लिए सजनों सद्-विचार व सदाशयता भी अनिवार्य है। आओ अब इनके विषय में जानते है:-

सद्-विचार से क्या तात्पर्य है?

सजनों मन में भावों का आना और मिटना स्वभाविक प्रक्रिया है। ये भाव विचार हैं। मनुष्य अपने उत्तम विचारों से ही महान बनता है। इस तरह सद्-विचार का प्रमुख और एकमात्र अर्थ है अच्छे विचार, उनका संग्रह व उनकी अभिव्यक्ति। सद्-विचार में कल्याण भावना निहित रहती है।

सदाशयता क्या है?

सदाशयता शब्द 'सदाशय' से उत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है उदार और श्रेष्ठ यानि सज्जन व भलामानस होने का भाव। इस प्रकार सद्-विचारों अर्थात् उन्नत और उच्च विचारों से युक्त हो, सबके प्रति अच्छे भाव रखना ही सदाशयता कहलाता है। सामान्य जीवन में सदाशयता वह स्थिति है, जिसमें मनुष्य ईमानदारी और सच्चाई से, अथवा मन में सद् आशय रखकर कोई काम करता है और जिसके फलस्वरूप कोई अनुचित कार्य हो जाने पर भी वह दोषी नहीं माना जाता। सदाशयता वह बहुमूल्य गुण है जिसकी आवश्यकता

जीवन के हर क्षेत्र में पड़ती है। अभावग्रस्त निर्बल लोगों की निष्कामता से सहायता करके सदाशय व्यक्ति को आत्म-संतोष और सुख प्राप्त होता है।

याद रखो सदाशयता महानता का लक्षण है। यह वह मानवीय गुण है, जिसमें दूसरों का हितचिन्तन आवश्यक है। इससे विरोधी भावों का अन्त होता है तथा पारस्परिक एकता दृढ़ होती है।यह प्रत्येक मानव के अन्दर सारी पृथ्वी परिवार तुल्य है ऐसी भावना जागृत करती है।

सदाशयता व सद्-विचार का अनिवार्य तत्त्व क्या है?

मन में सत्यनिष्ठ और उदार विचारों का प्रकट होना तथा उदारता और कल्याणकारी भावों से युक्त होना सदाशयता के अनिवार्य तत्त्व हैं।

सद्-विचार की परिधि व्यापक है। सत्य पर आधारित होने के कारण इसमें जीवन के समस्त तत्त्वों को जो वस्तु और व्यक्ति से सम्बन्धित हैं, सद्-विचार के अनिवार्य तत्त्व के रूप में स्वीकारा जाता है। अन्य शब्दों में क्षमाशीलता, संवेदनशीलता, सहानुभूति, विनम्रता, दयालुता, परार्थ चिन्तन, निःस्वार्थता, अनुभव, ज्ञानार्जन की सतत पिपासा, बड़ों के प्रति श्रद्धा, उत्तरोत्तर जीवन की महानता के चरमबिन्दु तक ले जाने का सतत् प्रयास, ममता, दया, करुणा, दूसरों की सुरक्षा का भाव, अन्तःकरण की शुद्धता, पवित्रता, स्त्रियों को उच्च और परिष्कृत भावों से सम्मान देने की क्षमता तथा वासनाओं की अनिच्छा, कुण्ठा, निराशा तथा अमर्यादित विचारों से तटस्थ रहते हुए नित नए और शुभ, मंगलमय विचारों से अन्तःकरण को समृद्ध करने का

भाव ही सद्-विचार है। इसके विपरीत कुविचार अथवा निकृष्ट विचारों का इसके अंतर्गत कोई स्थान नहीं होता। हम कह सकते हैं कि मनुष्य के सद्-विचार ही उसे महान बनाते हैं और सम्मान दिलाते हैं। सद्-विचार या सुविचार ही उचित और अनुचित की शिक्षा देकर मनुष्य जीवन की महानता से परिचित कराते है।

सद्-विचार का विधि एवं निषेधपरक प्रयोग क्या है, स्पष्ट कीजिए?

ऐसे सद्-विचार जो परिवार, समाज, देश, राष्ट्र के लिए महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी होते हैं, युग-युगों तक सम्मान पाते हैं, विधिपरक कहलाते हैं। वे सार्वभौम और शाश्वत होने के कारण किसी देश अथवा राष्ट्र की परिधि में बन्धकर नहीं रहते। विचार चाहे धार्मिक हो, दार्शनिक, राजनीतिक हो या ऐतिहासिक या फिर वैज्ञानिक, उनकी श्रेष्ठता की पहचान मौलिकता और सार्वभौमिकता है, जिन्हें मुक्तकण्ठ से मर्यादित स्वीकार किया जाता है। ऐसे सद्-विचार श्रेष्ठ महात्माओं और अवतारी पुरुषों के होते हैं।

इसके विपरीत समस्त कुविचार न केवल व्यक्ति के लिए घातक सिद्ध होते हैं अपितु विरोधी तत्त्वों और हिंसक वारदातों को जन्म देकर समाज और राष्ट्र में विद्रोह की ज्वाला भड़काकर देश और राष्ट्र की जन-धन हानि करते हुए उसे कलंकित करते हैं। निश्चित ही ऐसे अनुचित, दुर्विनीत और कुत्सित विचार असंगत, मर्यादाहीन और निषेधपरक हैं। इस सन्दर्भ में सजनों जान लो कि दुर्विचार अति हानिकारक होते हैं। यही नहीं, बुरे विचार हमारे

अन्तःकरण पर भी कुठाराघात करते हैं। ऐसे विरोधी विचार हमारे परिश्रम को पंगु बनाते हैं और हमें दुष्ट कार्य की ओर ले जाते हैं। अतः इन्हें त्याग कर सद्-विचारों को अपना लेना चाहिए।

सद्-विचार के कितने भेद स्तर हैं?

विचारों में आध्यात्मिक शक्ति का होना उसकी महानतम उपलब्धि है। फिर भी विचार कई प्रकार के हो सकते हैं, जैसेः-

1. ऐसे विचार जो उठते हैं, किन्तु कार्य रूप में परिणत न होकर यों ही विनष्ट हो जाते हैं।

2. गहन गम्भीर चिन्तन से रहित विचार। इन्हें सद्-विचार नहीं कहा जा सकता।

3. ऐसे विचार जो मनुष्य के पथप्रदर्शक बनते हैं। ये सद्-विचार की कोटि में आते हैं।

4. ऐसे दुर्जेय विचार, जो साधनों के अभाव और बाधक तत्त्वों के आने तथा दृढ़ शक्ति के अभाव में ऊँचाईयों तक पहुँचने से वंचित रह जाते हैं। ये सद्-विचार के निषेध पक्ष को बताते हैं।

याद रखो सद्-विचारों को कार्यरूप में परिणत होना आवश्यक है। सद्-विचार को प्रकट करना भी आवश्यक है। साधु-सन्तों के सद्-विचार उपदेश रूप में प्रकट होते हैं। सद्-विचारों का ही एक रूप सद्भाव है - यह सौजन्य या साधुता को दर्शाने वाला है।

सद्विचारों को विकसित करने के साधन क्या हैं?

सद्-विचारों के विकास के लिए व्यक्तिगत प्रयास आवश्यक हैं। विचारों में सात्त्विकता लाने के लिए सद्-ग्रन्थों का अध्ययन, स्वाध्याय, मनन, सत्संग आदि की परम आवश्यकता है।

सद्-विचार की कसौटी क्या है?

सजनों हम सब जानते हैं कि कोई विचार कितना ही अच्छा क्यों न हो, जब तक उसे मूर्तरूप नहीं दिया जाता तब तक वह व्यर्थ ही माना जाता है। विचारों की शाश्वतता, उनकी सराहना एवं अनुकरणीयता ही सद्-विचारों की कसौटी है।

सदाशयता का जीवन में महत्त्व स्पष्ट कीजिए?

सदाशयी व्यक्ति अच्छे विचारों से युक्त होता है यानि सदाशयता सद्-विचारों का संग्रह है। ऐसा व्यक्ति अन्यों को अपने सद्विचारों से प्रभावित करता है। यह उसकी सदाशयता ही होती है कि वह अनुचित भाव रखने वाले के प्रति भी सहानुभूति दिखाता है यानि अपने विपक्षी से भी सदय होकर बोलता है। ऐसे व्यक्ति में समस्त कुविचारों का अंत हो जाता है। इस प्रकार हर प्रकार के सुविचारों को धारण कर सदाशय व्यक्ति बनना स्वयं में बहुत बड़ी उपलब्धि है। सदाशय व्यक्ति की प्रेरणा से अनन्त लोगों को सन्मार्ग का पथ सूझता है और दुविधा की समाप्ति के साथ नैराश्य का अंत होता है। सदाशयता से व्यक्ति स्वयं तो सुखी होता ही है साथ ही दूसरे भी सुख प्रदान करते हैं।

इस विवेचना से सजनों स्पष्ट होता है कि सद्-विचार ऐसे विचारों की श्रृंखला है जो चिन्तन-मनन के उपरान्त मानवीय उत्थान से सम्बन्धित महान गुणों से परिपूर्ण होता है। सद्-विचारों की सफलता के लिए सद्-विचारों की अभिव्यक्ति तथा सद्-विचारों की ग्राह्यता अनिवार्य होती है। जब दाता और ग्राहक में तालमेल बैठ जाता है, तो सद्-विचार का पूर्ण विकसित यानि खिला हुआ स्वरूप प्रकट होता है।

इस सन्दर्भ में सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है:-

जेहड़ा सजन विचार पकड़े एक,
उस सजन दी बुद्धि हो गई विवेक।
सत हो गया बोलचाल,
उच्च बुद्धि उच्च ख्याल।।

अर्थात् मनुष्य के व्यक्तित्व को निखारने एवं कर्त्तव्यनिष्ठ बनाने में सद्-विचारों की महान भूमिका है। जहाँ कहीं किन्हीं कारणों के परिणामस्वरूप किसी देश के लोगों के सद्-विचारों में अन्तर उपस्थित होता है, उस देश, जाति और राष्ट्र का गौरव देखते-देखते ही समाप्त हो जाता है। अतः समाज और देश का यह कर्त्तव्य है कि बच्चों में बाल्यावस्था से ही ऐसे संस्कार डाले, जो उन्हें चारित्रिक सुदृढ़ता के लिए सतत सचेत रहने की प्रेरणा दें। सन्तों, महात्माओं की वाणियाँ, उपनिषद आदि सद्ग्रन्थ सद्-विचारों से ओतप्रोत हैं। उनका अध्ययन, उनका चिन्तन और उनके अनुसार जीवन का परिष्कार अति आवश्यक है। ये मनुष्य के उज्ज्वल भविष्य के निर्माणकर्ता हैं और राष्ट्र के

उत्थान के लिए पूरी तरह उत्तरदायी हैं।

इस संदर्भ में यह भी सदा स्मरण रखो कि सद्-विचारों व सदाशयता से युक्त व्यक्ति ही सद्गुणी कहला सकता है और उत्तम समाज के निर्माण में अपना योगदान दे सकता हे। आओ इस परिप्रेक्ष्य में अब सद्गुणयुक्तता के महत्त्व को समझते हैं।

सद्गुणयुक्तता से क्या तात्पर्य है?

'सद्गुणयुक्तता' शब्द तीन शब्दों से मिलकर बना है यथा सद्/सत् अ गुण अ युक्तता। इन तीनों ही पदों के अर्थ परस्पर पर्याप्त रूप से भिन्न हैं।

'सद्' का अर्थ है - सत्य, अच्छा, उत्तम।

'गुण" का अर्थ है - किसी वस्तु में विद्यमान वह बात, जिसके कारण वह अन्य से पृथक पहचानी जाती है। 'गुण' का प्रयोग किसी वस्तु या व्यक्ति आदि की अच्छाइयों के अर्थ में भी किया जाता है।

'युक्तता' विशेषण पद 'युक्त' में 'ता' प्रत्यय का योग करने पर बना है। इसका अर्थ है सहित।

इस प्रकार 'सद्गुणयुक्तता' शब्द का अर्थ है, अच्छी विशेषताओं व गुणों से समृद्ध होना।

सजनों जान लो कि जिस मनुष्य में अच्छे गुण हों, जो अपने अच्छे कर्मों, अच्छी आदतों, अच्छे व्यवहार आदि के लिए जाना जाता हो, उसे हम सद्गुणयुक्त कहते हैं। पारिवारिक,

सामाजिक, राष्ट्रीय अथवा व्यक्तिक धरातल पर सद्गुणों से युक्त कार्य करते हुए लोक कल्याण करना सद्गुणयुक्तता है। याद रखो सद्गुण संक्रामक होता है व अपने आसपास को प्रभावित करता है। सुंदर नर देह पाकर प्रत्येक मनुष्य को सद्गुणों का अर्जन करना चाहिए। मत भूलो कि सद्गुण ही सुकृति यानि सत्कर्म के रूप में मृत्यु के बाद भी साथ जाता है। सद्गुणी सज्जनता का प्रतीक होता है। सद्गुणयुक्तता मनुष्य के लिए सदा वांछनीय है, महापुरुष अपनी सद्गुणयुक्तता के कारण ही प्रख्यात होते हैं। सद्गुणयुक्तता के अभाव में वास्तविक सम्मान की प्राप्ति असंभव है।

सद्गुणयुक्तता के अनिवार्य तत्त्व क्या हैं?

इस संदर्भ में यह याद रखो कि सद्गुणों का विकास सज्जनों के हृदय में होता है। जिस प्रकार कुपात्र में दी गई शिक्षा फलित नहीं होती उसी प्रकार कुपात्र सद्गुण अर्जित नहीं कर सकते। अतः पात्रता, संस्कार, शिक्षा, स्वभाव और संस्कार सद्गुणयुक्तता के अनिवार्य तत्त्व हैं। वैज्ञानिक अनुसंधानों के अनुसार बालक के स्वभाव का अधिकांशतः निर्धारण माता की गर्भावस्था की मनोदशा से होता है। तात्पर्य यह है कि यदि गर्भावस्था के दौरान माता शान्त मनःस्थिति में रहेगी, तो बालक शान्त स्वभाव का होगा और यदि माता चिन्ता, खीझ, झुंझलाहट आदि से परेशान रहेगी, तो बालक के स्वभाव में भी ये दोष गर्भकाल के दौरान ही उत्पन्न हो जाएंगे। कदाचित इस तथ्य से हमारे पूर्वज ऋषि महर्षि सुपरिचित थे। इसीलिए राजवंशों की गर्भवती नारियाँ इस दौरान ऋषि आश्रमों में स्थानान्तरित हो जाती थी। गर्भावस्था में माता के प्रभाव से निर्मित स्वभाव संस्कारों से

पोषित होने पर व्यक्ति को सद्‌गुणयुक्तता या दुर्गुणयुक्तता प्रदान करता है। एक तथ्य यह भी है कि माता जिस स्वभाव की होती है, वह स्वभाव न केवल गर्भावस्था में शिशु को प्रभावित करता है, अपितु गर्भावस्था के पश्चात् शिशु के संस्कारों की भी दिशा निर्धारित करता है। उपर्युक्त तथ्यों के प्रकाश में स्पष्ट हो जाता है कि माता से हस्तान्तरित स्वभाव और परिवार परिवेश से प्राप्त संस्कार सद्‌गुणयुक्तता के अनिवार्य तत्त्व हैं। इनके अभाव में सद्‌गुणयुक्तता असम्भव है।

सद्‌गुणयुक्तता को विकसित करने के साधन क्या हैं?

अपने हृदय पात्र को बड़ा बनाना यानि उसका विकास करना, अपने आपको जानना, पढ़ना और दुर्गुणों को हटाना, हर क्षण इसके प्रति सतर्क रहना, मन, वचन, कर्म में पवित्रता अपनाना सद्‌गुणों को विकसित करने का ही साधन हैं। स्पष्ट है कि सत्संगति, स्वाध्याय यानि अपने मानसिक या आत्मिक विकास के लिए ग्रन्थों का नियमपूर्वक अध्ययन और विवेक से सद्‌गुणयुक्तता का विकास होता है। स्वभाव और संस्कार से प्राप्त सद्‌गुण सत्संगति का स्वस्थ वातावरण पाकर स्वतः विकसित हो जाते हैं। स्वाध्याय मनुष्य को ज्ञान-दृष्टि प्रदान करके सत्-असत् का विवेक प्रदान करता है और मनुष्य दुर्गुणों को जानकर उनसे दूर हो जाता है। स्वाध्याय का यह कार्य सत्संगति भी करती है। इस प्रकार सत्संगति से पोषित विवेक सद्‌गुणयुक्तता को विकसित करने का सर्वोत्तम साधन है।

कुसंग और अन्याय सद्‌गुणयुक्तता का सुपक्ष बाधित करते

हैं। कुसंग के कारण स्वभाव और संस्कार प्रभावहीन हो जाते हैं। स्वभाव और संस्कार का निर्मल दर्पण कुसंग की धूल से ढक जाने पर अपनी चमक खो देता है। इसीलिए कई बार यह देखा जाता है कि अच्छे परिवारों में भी बुरे लोग मिलते हैं।

अतः याद रखो सद्‌गुणों का विकास करने के लिए निरंतर अभ्यास के साथ-साथ दुर्गणों का त्याग भी करना पड़ता है। इस तरह सत्संग, स्वाध्याय, स्वचिंतन द्वारा एक-एक गुण बढ़ाते जाना होता है। सद्‌गुणों की ख़ातिर अनीति, अधर्म, अन्याय से कभी समझौता नहीं करना। विपरीतता-विषमता में ही सद्‌गुणों के संग्रह और प्रयोग में डटना, प्रतिबद्ध रहना बहादुर व्यक्ति की निशानी होती है।

सद्‌गुण का विधि एवं निषेधपरक प्रयोग स्पष्ट करो?

यह विधिपरक है, पर निषेधपरक तब होता है, जब सद्‌गुणी होने का अहंकार हो जाता है। यह सद्‌गुणों को निषेधात्मक बना देता है। प्रदर्शन, आत्मप्रशंसा इसमें बाधक सिद्ध होते हैं।

सद्‌गुणयुक्तता की कसौटी क्या है?

याद रखो बिना त्याग, समर्पण, कष्ट यातना के न सद्‌गुण आते हैं, न वे कसौटी पर खरे उतरते हैं। विवेक सद्‌गुणयुक्तता की कसौटी है अर्थात् सद्‌गुण का व्यवहार विवेक की कसौटी पर कसकर ही करना चाहिए अन्यथा हानि उठानी पड़ सकती है। अविवेक विपत्तियों का द्वार है। अविवेक के कारण सद्‌गुण भी दुर्गुण बन जाता है। अतः

इसकी यही कसौटी है कि विपरीतता-विषमता में भी सद्‌गुणों का किसी मूल्य पर साथ न छोड़ा जाए।

सद्‌गुणयुक्तता का महत्त्व स्पष्ट कीजिए?

सजनों सारा संसार टिका है पारस्परिक संबंधों की स्निग्धता, मधुरता, प्रगाढ़ता पर। ये संबंध निरंतर सहयोग, सद्‌भाव, स्वार्थ-त्याग, सेवा, समर्पण की अपेक्षा करते हैं। सद्‌गुणों के कारण मनुष्य की पात्रता का ऐसा विकास होता है कि वह न केवल पारस्परिक संबंधों की अपेक्षा पर खरा उतरता है अपितु उनका विश्वास प्रिय भी बन जाता है। इस प्रकार सद्‌गुणयुक्तता सामाजिक सुख-शान्ति के लिए अनिवार्य है। यदि सद्‌गुण न हों, तो सामाजिक जीवन सर्वथा असम्भव हो जाए। दैहिक, दैविक और भौतिक तापों से संतापित मनुष्य किसी सद्‌गुणी मनुष्य का आश्रय पाकर ही ताप मुक्त होता है या कुछ विश्राम पाता है। यदि दया, प्रेम, उदारता, कृपा, सहयोग आदि सद्‌गुणों का सामाजिक व्यवहार पूर्ण रूप से समाप्त हो जाए, तो पीड़ित की पीड़ा का निवारण असम्भव है। सत्य तो यह है कि जिस समाज में सद्‌गुणयुक्तता जितनी अधिक होती है, वह समाज उतना ही अधिक सुखी होता है और जहाँ इसका अभाव होता है, वहाँ क्लेश दिखाई देता है। अतः सद्‌गुणयुक्तता अनिवार्य है।

स्पष्ट है सजनों सद्‌गुण मनुष्यता सिखाते हैं यानि सद्‌गुणयुक्तता मनुष्य में अंतर्निहित पशुता का शमन कर, उसका परिष्कार, परिशोधन कर यानि दुर्गुणों से बचाकर मानवीय व्यक्तित्व का विकास करती है। सद्‌गुणयुक्त व्यक्ति सामान्यतः कोई ऐसा कार्य करना नहीं चाहता, जिससे

उसकी अच्छी छवि पर कोई आँच आए। इसलिए वह उत्तरोत्तर सद्‌गुणों की ओर ही दृष्टि केन्द्रित करता है। ऐसा सद्‌गुणी मनुष्य न किसी का अहित करता है और न ही उसे किसी से अपने अहित का भय होता है। वह तो सदा करूणा, उपकार और सेवा की भावना से ओत-प्रोत हो शान्त चित्त से अचल व प्रसन्न बना रहता है। हम कह सकते हैं कि सद्‌गुणयुक्तता प्रसन्नता प्राप्ति का द्वार है। इन्हीं सद्‌गुणों के कारण ही व्यक्ति का समाज में सम्मान होता है और उसके स्वभावों की सुगंधि सभी दिशाओं में व्याप्त होती है जिसके सद्‌प्रभाव से हृदय आकाश का वातावरण निर्मल रहता है और इन्सान को अपने सत्-चित्त-आनन्द स्वरूप का अनुभव यथार्थता से बना रहता है। ऐसा होने पर ही व्यक्ति सद्‌स्वभाव अपनाकर सत्कर्म कर सकता है। आओ सत् के संबंध में अब सद्‌स्वभाव व सत्कर्म को भी समझते हैं:-

सद्‌स्वभाव से क्या तात्पर्य है?

संस्कृत के स्व तथा भाव शब्द के योग से स्वभाव शब्द का सृजन हुआ है। इसके पूर्व सत् उपसर्ग लगाने से सद्‌स्वभाव बना है। इसका मुख्य अर्थ है सत् व अच्छी प्रकृति, आदत, मिजाज़ आदि।

सद्‌स्वभाव का अनेक रूपों में प्रयोग होता है जैसे:-

1. किसी व्यक्ति में सदा रहने वाला मूल भाव ही वास्तविक रूप में स्वभाव कहलाता है।

2. मूल गुण स्वभाव से बनते हैं। जातियों के स्वभाव से गुण बनते हैं, इसीलिए प्रत्येक जाति के पृथक-पृथक गुण होते हैं।

3. प्रत्येक मनुष्य की तासीर अलग-अलग होती है। यह तासीर स्वभाव का ही एक रूप है।

4. तासीर से मिलता जुलता शब्द है मिज़ाज, जो स्वभाव के निकट का अर्थ देता है।

5. प्रकृति स्वभाव का पर्याय है।

6. स्वभाव से ही आदत बनती है।

7. सहज स्वभाव से विशिष्ट स्वभाव बनता है।

सद्स्वभाव का अनिवार्य तत्त्व क्या है?

मुख्यतः स्वभाव पहले मानसिक और बाद में भौतिक होता है। पहले मन में भाव उत्पन्न होता है। उस भाव का कारण जितना प्रबल होता है, स्वभाव की भावना भी उतनी ही प्रबल होती है। दूसरा व्यक्ति में स्वभाव बनाने की सामर्थ्य भी होनी चाहिए, अन्यथा भाव और इच्छा के होते हुए भी वह सामर्थ्य के अभाव में स्वभाव नहीं बना पाता। स्वभाव के लिए तीसरा आवश्यक तत्त्व है, मन में सात्त्विक भावों का उदय होना। बिना सात्त्विक भावों के उदय से न तो व्यक्ति में मूल गुण बन पाते हैं और न मूल गुण संस्कार और आदत में परिणत हो पाते हैं। चौथा महत्त्वपूर्ण तत्व है - स्वभाव का व्यावहारिक रूप में समीकरण, जिसे औचित्यपूर्ण ही होना चाहिए। बिना औचित्यपूर्णता के स्वभाव, संस्कार व आदत नहीं बन पाते हैं। इस प्रकार स्वभाव के ये घटक जितने निःस्वार्थ व सात्त्विक होंगे, स्वभाव उतना ही प्रभावकारी होगा। सन्त कबीर का स्वभाव फक्कड़ था, इसीलिए वे संसार, जीव,

परमात्मा की बातें बड़े सहज, बेबाक और यथार्थ ढंग से कह डालते थे। महात्मा गाँधी का स्वभाव सहज था, इसीलिए वे सहज ढ़ंग से अपनी सारी बातों को जनता के सामने रख देते थे।

इस निश्छल स्वभाव से न केवल व्यक्ति की महत्ता प्रतिपादित होती है, वरन् समाज व देश-विदेश में भी इस व्यक्तित्व के कारण उसे सम्मान मिलता है।

सद्स्वभाव का विधि एवं निषेधपरक प्रयोग बताओ?

एक प्रकार का स्वभाव अपने उत्कर्ष तथा दूसरे के सहयोग व भलाई के लिए होता है और दूसरे प्रकार का स्वभाव अपनी दुर्बलताओं से छुटकारा पाने के लिए होता है। इस तरह स्वभाव विधि व निषेध दो रूपों में प्रकट होता है। यथा- उसने अपने स्वभाव के चलते मन की संकीर्णताओं का परिहार कर दिया। वस्तुतः काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार के भाव ही मनुष्य के मन को विकारयुक्त करते हैं, जिससे स्वभाव राजसी तथा तामसी बन जाता है। मनुष्य जब अपने स्वभाव को सात्त्विक भाव से जोड़ता है, तब राजसी और तामसी के भाव त्याज्य हो जाते हैं और वह सभी संकीर्णताओं से पृथक् हो जाता है। इस तरह का स्वभाव व्यक्ति को अच्छा मानव बनाने का ही सत्प्रयास है अन्यथा सांसारिक भोगपरायण स्वभाव मानव को नष्ट कर देता है। उदाहरणस्वरूप कामान्धता ने विद्वान रावण को नष्ट करवा दिया। इन सबका मूल कारण स्वभाव का सत्त्विक न होना था। सात्त्विक भाव को आत्मसात् करने वाले व्यक्तियों का स्वभाव निश्चित रूप से मानव को महिमामय बना देता है।

यही स्वभाव का अभीष्ट महत्त्व है।

स्वभाव के कितने भेद हैं?

स्वभाव के भेदों पर विचार करते हुए स्वभाव के तीन भेद किए गए हैं - सात्त्विक स्वभाव, राजस स्वभाव और तामस स्वभाव। ये तीन स्वभाव प्रकृति से उत्पन्न हैं। जब व्यक्ति निष्काम यानि अनासक्त भाव से फल की आकांक्षा किए बिना सत्कर्मों को करता है, तो उससे सात्विक स्वभाव बनते हैं। इसे उच्च कोटि या उत्तम कोटि का स्वभाव कहा जाता है, जिसमें लोक-कल्याण एवं परहित का भाव कहीं न कहीं अवश्य रहता है।

जब शारीरिक भय या अन्य कारणों से व्यक्ति कर्त्तव्य-कर्म करता है, तो उससे राजस स्वभाव बनते हैं। इसमें कुछ अंश तक आत्मलाभ का भाव होता है।

जब व्यक्ति अज्ञान, आलस्य एवं मोह आदि कारणों से कर्मों को संचालित करता है, तो उससे तामस स्वभाव बनते हैं। स्वभाव से ही गुण बनते हैं। स्वभाव के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए अन्यत्र कहा गया है कि सात्त्विक स्वभाव व गुण वाला व्यक्ति ही सत्कर्मी होता है, क्योंकि उसके सभी कर्म उत्तम कोटि के होते हैं। राजस तथा तामस स्वभाव व गुणवाले व्यक्तियों के स्वभाव कम मध्यम व अधम कोटि के होते हैं, जो सभी कर्मों को अपने लिए स्वभाव व गुण को ग्रहण कर सुखी बनता है तथा लोक-कल्याण तथा परहित करके समाज व देश को भी सुखी बनाता है।

स्वभाव के अन्य तीन भेद भी किए गए हैं यथा मानवी

स्वभाव, दैवी स्वभाव, राक्षसी स्वभाव - वस्तुतः ये सभी स्वभाव विभाजन सात्त्विक, राजसी एवं तामस स्वभाव के ही पर्याय हैं।

व्यक्ति के व्यक्तित्व के आधार पर स्वभाव के कितने भेद हैं?

व्यक्ति के शरीर में जो अविनाशी जीवात्मा है, उसे ये प्राकृतिक गुण शरीर में बान्धते हैं। व्यक्ति के व्यक्तित्व के आधार पर स्वभाव के दो भेद हैं - कोमल (मृदु) और कठोर (परुष) स्वभाव। मृदु स्वभाव का उदाहरण है नारियल, ऊपर से कड़ा, लेकिन भीतर से कोमल। परुष स्वभाव का उदाहरण हैं बेर, ऊपर से कोमल, लेकिन भीतर से कड़ा - कठोर। मृदुस्वभावी व्यक्ति लोक-कल्याणकारी एवं परोपकारी होता है, जबकि परुष स्वभावी व्यक्ति अकर्मण्य, आलसी और प्रमादी होता है।

सद्स्वभाव को विकसित करने के साधन बताइए?

मानव के स्वभाव को सुन्दर, श्रेष्ठ तथा सत्यनिष्ठ बनाने और उसे विकसित करने के साधनों का विचार किया जाय, तो कहा जा सकता है कि सर्वप्रथम मनुष्य का सहृदय होना ज़रूरी है। जब व्यक्ति सहृदय होगा, तभी वह दूसरों के दुःख से द्रवित होगा और परोपकारी बनेगा। परोपकारी बनने में उसमें जो उदारता और त्याग की भावना बलवती होती है, उससे केवल सहानुभूति ही उत्पन्न नहीं हो सकती है, बल्कि उसे दुःखी, दलित तथा अभावग्रस्त के प्रति दया करने को प्रेरित भी करती है। दया करने की स्थिति में उसका अन्तर्मन स्वार्थ से ऊपर उठकर निःस्वार्थ हो सकता है। कहा भी गया है कि निःस्वार्थ सेवा से प्रभु के प्रति जो आत्मीयता व

सामीप्य बढ़ता है वह केवल निष्काम भाव को ही विकसित नहीं करता, वरन् परमतत्त्व के दर्शन में भी सहायक बन सकता है।

सद्स्वभाव की कसौटी क्या है?

वस्तुतः विवेक के आधार पर ही कब, कैसे, क्यों, कहाँ, कितना और किसके लिए किस तरह का स्वभाव रखा जावे, इसका उचित बोध हो सकता है और यह औचित्य बोध ही स्वभाव की गरिमा व गौरव को अक्षुण्ण बनाए रखता है। जैसे शठ के साथ शठ का स्वभाव ही रखना औचित्य पूर्ण है। अतः इस औचित्य बोध को सद्स्वभाव की कसौटी के रूप में स्वीकारा जा सकता है।

सद्स्वभाव अपनाने का महत्त्व बताइए?

मानव जिन आन्तरिक गुणों को ग्रहण कर सच्चे अर्थों में महामानव बनने का प्रयत्न कर सकता है, वह बहुत कुछ स्वभाव पर निर्भर होता है। स्वभाव सद् भी हो सकता है और असद् भी। सद्स्वभाव से सृष्टि का विकास सम्भव होता है और असद् स्वभाव से विनाश, लेकिन मानव सद्स्वभाव बनाये कैसे? क्योंकि मनुष्य को सृष्टा द्वारा जो शरीर मिला है,उसका स्वभाव ही अशुचि है। शरीर का स्वभाव मल से भरा हुआ है। श्रेष्ठ (उत्तम) ज्ञान ही वह साधन है, जिसके माध्यम से मानव शरीर और मन के मल को प्रक्षालित कर निर्मल बना सकता है। इसी स्थिति में जीवात्मा शुद्ध हो जाती है और मन में बसे राग-द्वेष, मोह, क्रोध, लोभ, अहंकार-मद-मत्सर सब कुछ नष्ट हो जाते हैं।

मानव के निर्मल स्वभाव से शुद्ध अविनाशी आत्मतत्व प्रगट हो जाता है। संतो, भक्तों व सज्जन पुरुषों का स्वभाव ऐसा ही होता है। इससे स्पष्ट है कि संत, भक्त, ऋषि-मुनि हमें न केवल निर्मल-सद्स्वभाव अपनाने का महत्त्व बतलाते हैं, अपितु उसे जीवन में अपनाने की प्रेरणा भी देते हैं। सद्स्वभाव से ही मानव का उन्नयन और विकास होता है। वस्तुतः मानवता का विकास भी इसी पर ही निर्भर है।

सारतः सजनों मानव के जागरण और उत्कर्ष का आधार स्वभाव ही है। स्वभाव यदि सात्त्विक है तो व्यक्ति सदाचरण करने को उद्यत होता है। सदाचरण से ही मानव में जागरण की चेतना उदित होती है। जागरण की चेतना आते ही व्यक्ति न केवल सांसारिक भोगों एवं ऐश्वर्य के प्रति विवेकशील बुद्धि से कार्यों का संचालन करता है, बल्कि उपभोग और उपयोग में भी औचित्य का सहारा लेता है। ऐसा करने पर व्यक्ति जो-जो सत्कर्म करता है, उससे वह समाज में समादृत होता है और वैयक्तिक जीवन में भी आनन्द व सुख का अनुभव करता है। उसकी दृष्टि व्यापक एवं उदार हो जाती है। निःस्वार्थी बनकर वह अभावग्रस्तों व दलितों की सहायता करने और उनके जीवन-स्तर को ऊपर उठाने का भरसक प्रयत्न करता है। वह व्यष्टि सीमा को लाँघकर समष्टि सीमा में प्रवेश करता है, जहाँ उसे धीरे-धीरे सृष्टि में ही उस सृष्टा के दर्शन होने लगते हैं। इससे उसे मनःसंतोष प्राप्त होता है और मनःसंतोष से चिर स्थाई शांति। इस प्रकार सद्स्वभाव व सदाचरण से उसकी सर्वांगीण उन्नति और मुक्ति का कारण सिद्ध हो जाता है। अतः सद्स्वभाव व सदाचरण ही मानव की सबसे बड़ी

उपलब्धि है, जिसे मानव-जीवन का साध्य भी कहा जा सकता है।

अंततः सजनों हम कह सकते हैं कि स्वभाव से ही व्यक्ति अच्छा इन्सान बनता है और स्वभाव ही मनुष्य के अधोपतन का कारण बनता है। स्वभाव से ही मनुष्य सजन बनता है व स्वभाव से ही दुर्जन। प्राणियों के सर्वस्व की परीक्षा स्वभाव से ही होती है। अतः सत् स्वभाव अपनाओ। सत् स्वभाव अपनाकर ही सत्कार्य **कर पाओगे और उदारमना व परोपकारी बन अपने जीवनलक्ष्य को पा सकोगे। क्या आप जानना चाहोगे कि सत्कार्य क्या होते हैं?**

हाँ जी।

तो आओ इसे फिर प्रश्नोत्तर के माध्यम से जानते हैंः-

सत्कार्य से क्या तात्पर्य है?

सत्अकार्य। सत् अर्थात् सत्तायुक्त, वर्त्तमान, विद्यमान, यथार्थ, सत्य, स्थाई, भलाई, धार्मिक, पवित्र, उच्च, उत्तम, सम्यक्, दृढ़प्रतिज्ञा। कार्य अर्थात् काम क्रिया, धंधा, शास्त्रविहित नित्य नैमित्रिक आदि कर्म, आचरण।

इस प्रकार सत्कार्य से तात्पर्य उत्तम, उच्च पवित्र व विशिष्ट कार्य या कर्म करने से है। इसका अनेक अर्थों एवं रूपों में प्रयोग होता है। जैसे–सच्चा व अच्छा कर्म, नेक, उच्च व श्रेष्ठ कर्म, सद्गुणसम्पन्न सम्माननीय कर्म, सुन्दर व वास्तविक कर्म, उत्तम धार्मिक कृत्य, विशिष्ट कर्म व नैतिक कर्म व सुकर्म आदि।

याद रखो पुण्य, तप, धर्म संबंधी सत्कार्य करने से ही मनुष्य को प्रतिष्ठा मिलती है। विशिष्ट नैतिक कर्म से व्यक्ति में नैतिकता आती हैं। ये कृत्य ही मनुष्य को मनुष्य बनाते हैं। अतः सेवा, परोपकार, जैसे सत्कार्यों में चित्त लगाना चाहिए। जो मानव अच्छा कर्म करता है, समाज उसका आदर करता है। श्रेष्ठ कर्म मोक्षदायक होते हैं।

सत्कर्म के लिए अनिवार्य तत्त्व क्या है?

सत्कर्म पहले स्तर पर मानसिक होता है और दूसरे स्तर पर भौतिक। सर्वप्रथम मन में सत्कर्म का भाव आना चाहिए, उसका कारण जितना प्रबल होगा और उसकी प्रेरणा जितनी प्रबल होगी, सत्कर्म की भावना भी उतनी ही प्रबल होगी। मन में दृढ़ संकल्प, कार्य करने की बलवती इच्छा और उच्च आदर्शों से प्रेरित होकर सदा सत्कर्म करने के लिए प्रतिबद्धता होनी चाहिए। व्यक्ति सत्कर्म करने की ऊर्जा व शक्ति अथवा सामर्थ्य के अभाव में सत्कर्म नहीं कर सकता। सत्कर्म के लिए तीसरा आवश्यक तत्त्व पात्र, नीर क्षीर विवेक, कारण और लक्ष्य हैं, जिसके लिए सत्कर्म किया जा सके। सत्कर्म का चौथा महत्त्वपूर्ण तत्व है, सत्कर्म का साधन, वह भी औचित्यपूर्ण होना चाहिए। इस प्रकार सत्कर्म के ये घटक जितने ही निःस्वार्थ होगें, सत्कर्म उतना ही महान् होगा। पाँचवा महत्त्वपूर्ण तत्त्व है सदाचरण। सदाचरण से ही सत्कर्म की सिद्धि होती है, अन्य किसी महान् उपकरण से नहीं। सदाचरण को यदि धृतराष्ट्र ने अपनाया होता और सत्कर्म किया होता, तो महाभारत नहीं होता। सत्य इसका छठा महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। सत्य ही

सत्कर्म की प्रेरणा है। राजा हरिश्चन्द्र की सत्यनिष्ठा ही उनके सत्कर्मो को उजागर करती है।

सजनों मानव को मनुष्य की संज्ञा मनन करने, सोचने-विचरने का विशिष्ट गुण होने के कारण ही दी गई है। इस संदर्भ में मनुष्य मन से सोचता है और कर्मेन्द्रियों से काम करता है। वह मन को सत्कार्य के लिए तैयार करे, इसका अभ्यास करे, तभी वह अच्छे काम कर सकता है। इस विषय में यह भी हम सब जानते हैं कि मन की गति चंचल है, पैदल चलने वाले घोड़े की तरह इधर-उधर भटकना और गंतव्य तक न पहुँचना ये इसके लक्षण हैं। ऐसे मन को आत्मनिग्रह यानि संयम द्वारा वश में करना और विपथन-विचलन से बचकर उत्तम कार्य करने में रत करना ज़रूरी है। इसके लिए सर्वप्रथम मन को दृढ़ करके लक्ष्य निर्धारित करना आवश्यक है। फिर दृढ़ संकल्प, मनोयोग और कर्मठता के बल पर सत्कार्य सिद्ध करना चाहिए। सत्य बोलने का अभ्यास इसका एक अच्छा उदाहरण हैं। इसे कार्य रूप देने से कई संकटों व अप्रियता का सामना करना पड़ सकता है, पर यदि हम डटे रहे तो ये सत्कार्य करने में सफल हो जाते हैं और यह सत्कार्यों की लंबी श्रृंखला को धारण करने का कारण भी बन जाता है।

सत्कार्यों का विधि एवं निषेधपरक प्रयोग क्या है?

वैसे तो सत्कार्य सदैव विधिपरक ही होते हैं, इससे अपना तो भला होता ही है साथ ही जग का भी भला होता है, परन्तु अपने सत्कार्य के लिए अन्य के ऐसे कार्यों की अपेक्षा, अवहेलना करना निषेधात्मक कहलाता है। अतः दूसरों को

सहयोग देते हुए अपने सत्कर्मों का विकास करो।

सत्कार्यों के विभिन्न भेद अथवा स्तर स्पष्ट करो?

उत्तमता एवं अधमता व नीचता को आधार बनाकर कर्म के दो भेद किए गए हैं- सत्कर्म और दुष्कर्म। सात्त्विकी भाव प्रधान सत्कर्म को ही उत्तम कर्म कहते हैं और दुष्कर्म को अधम। जो पुरुष सात्विक भाव से श्रद्धायुक्त और दोषदृष्टि से रहित होता है और प्रभु का निरन्तर श्रवण करता है, वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है और उत्तम कर्म यानि सुकर्म कर कर श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त होता है। इसमें लोककल्याण और परहित का भाव कहीं न कहीं अवश्य रहता है। सात्त्विकी भाव प्रधान सत्कर्म में व्यक्ति अनासक्त भाव से, फल की आकांक्षा किए बिना ही कर्म करता है। यह कर्म प्रवृत्तिमूलक भी हो सकता और निवृत्तिमूलक भी।सत्कर्म ही अपने वास्तविक रूप में स्वाभाविक व सहज कर्म हैं, जिन्हें करके मनुष्य भगवत् प्राप्ति रूप परम सिद्धि को प्राप्त होता है। अतः सत्कर्म फलदायी है। मूल्य-परायण व्यक्ति बनकर वास्तविक सुख की प्राप्ति करते हुए जीवन को सफल और सार्थक बनाने के लिए सत्कर्म को समझना और करना आवश्यक है।

सत्कार्यों को विकसित करने का साधन बताइए?

मानव में सत्कर्म विकसित करने के साधनों पर विचार किया जाए, तो कहा जा सकता है कि सर्वप्रथम मानव का सहृदय होना आवश्यक है, मन का साफ भी होना चाहिए। जब व्यक्ति सहृदय होगा, तभी वह दूसरों के दुःख-वेदना से द्रवीभूत होगा। दुःख व कष्ट ही पहले प्रेरक तत्त्व हैं जिनसे

द्रवीभूत होकर मनुष्य सत्कर्म करने के लिए तत्पर हो उठता है अन्यथा वह सत्कर्म करने के लिए तैयार ही नहीं होता। उदारता उसकी सहृदयता को व्यापक आधार देती है। तब दुःखी व अभावग्रस्त के प्रति उसमें सहानुभूति उत्पन्न होती है और यह सहानुभूति दया में परिणत हो जाती है, तब उसका दयालु अन्तर्मन स्वार्थ से ऊपर उठकर निःस्वार्थ हो जाता है। इस स्थिति में ही उसमें निष्काम सेवा की चेतना जागती है। साहस होने पर ही यह सेवा परमार्थ को प्रेरित करती हैं। इसके बाद सत्कर्म को प्रेरित करते हैं – ज्ञाता (कर्त्ता) ज्ञान और श्रेय (कर्म)। इन तीनों के संयोग से सत्कर्म में प्रवृत्त होने की इच्छा उत्पन्न होती है। ये तीनों ही सत्कर्म के संग्रह हैं, जिनसे कर्म बनता है। यही सत्कर्म मानव को परमार्थ और परोपकार करने के लिए बाध्य कर सकते हैं।

सजनों पतन की राह चिकनी होती है। उस पर लोभ के दो-चार धक्के लग जाएँ तो फिर पाताल नापना सहज हो जाता है। अतः मन को नीचे गिरने से बचाना और ऊपर की ओर उठाते रहना परम आवश्यक है। चूँकि सत्कार्य कठिन होते हैं और सदा कर्मठ की परीक्षा होती रहती है इसलिए मन में उठने वाले विचारों को नकारात्मकता से बचा कर सत्संगति द्वारा सदा सकारात्मक बनाए रखना अनिवार्य होता है। इस संदर्भ में सजनों जान लो कि सबसे बड़ा सत्कार्य है, आत्मा की खोज, जिसका साधन है संयम, सत्य, शील, संतोष, धैर्य, क्षमा, निष्कामता और दया। यदि इन्हें आत्मसात् कर लिया तो सब सहज हो जाएगा।

सत्कार्य की कसौटी क्या है?

विवेक ही सत्कर्म की कसौटी है। विवेक आधार पर कब, क्यों, कैसे, कहाँ, कितना, किसके लिए सत्कर्म किया जाए, इसका ध्यान रखा जाए। अतः जिन्दगी दाँव पर लग जाए, सर्वस्व लुट जाए, चारों ओर का मार्ग अवरुद्ध हो जाए, फिर भी सत्पथ का अवलंबन कर परम पुरुषार्थ की सिद्धि करना ही इसकी कसौटी है।

सत्कार्य करने का जीवन में क्या महत्त्व है?

अतीत की परंपरा को आदर्श बनाएँ या भावी जीवन को आलोकित करना चाहें, उसका एक ही मार्ग है, सत्कार्य। याद रखो व्यक्तित्व इसी से विकास की सही दिशा पाता है व उज्जवल भविष्य का मार्ग प्रशस्त करता है। अन्य शब्दों में अपने संकीर्ण स्वार्थ मंडल से निकल कर विस्तृत समष्टि लोक में प्रवेश सत्कार्यों द्वारा ही होता है। परमार्थ के लिए जिस प्रकार साधु अपना शरीर धारण करते हैं, उसी प्रकार मनुष्य को भी जगत के हित के लिए अपने जीवन के कार्य समर्पित करने चाहिए। यह ही सत्कार्य है।

संक्षेपतः सजनों जान लो कि यदि मनुष्य आचार, शास्त्र, नीति, धर्म, लोक-संग्रह, अध्यात्म आदि सद्भावों से प्रेरित होकर कर्म करता है, तो उसे सत्कर्म कहते हैं। ऐसा कर्म अभेद-भावना की ओर ले जाता है तथा कर्त्तव्य व करणीय कहलाता हुआ धर्म का मार्ग प्रशस्त करता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

'सुकर्मा दा होवे राज, धर्म दा झण्डा झूले,
हुण ठंडी आवे हवा, धर्म दा झण्डा झूले।

इसका प्रारंभ होता है मन की वृत्तियों को कछुए की तरह सब ओर से सिकोड़कर अपने भीतर समेटने से और नीर-क्षीर विवेक से सत्कार्य का चुनाव करने और उसमें प्रवृत्त होने से। निःसंदेह यह संस्कार साधना पर निर्भर करता है कि व्यक्ति लौकिक सुख बटोरने में ही रत रहता है या आत्मान्वेषण कर परम पुरुषार्थ की प्राप्ति का प्रयास करता है। इस संदर्भ में प्रत्येक मनुष्य के लिए यह याद रखना आवश्यक होता है कि प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। जैसा कार्य वैसा फल भोगना पड़ता है यानि जैसा बोना, वैसा काटना अवश्य पड़ता है। अपना किया हुआ कर्म सर्वत्र ही फल देता है। बिना किए हुए कर्म का फल कहीं नहीं भोगा जाता है। शुभ कार्य करने से सुख और पाप कर्म करने से दुःख ही मिलता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

अच्छी खरीद करो इन्सानों,
मन्दी खरीद न करनी जे।
जे मन्दी खरीद कर बैठे हो,
तां नतीजा बुरा निकलना जे।।

सजनों व्यक्ति प्रेरित होकर सत्कार्य करे या श्रेय की ख़ातिर करे उसका परिणाम सदा सुखद, शुद्ध व मंगलकारी ही होता है। इसका उद्देश्य सदा मांगलिक और श्रेयस्कर होता है। संसार सत्कर्म पर ही टिका है। इसका परिणाम व्यक्तिपरक है या समाजपरक, पर यह सद्भावनाओं व सद्-विचारों से प्रेरित होता है। अतैव मानव के लिए सदैव सत्कार्य करना ही हितकारी होता है। याद रखो सत्कार्य करने वाला सुकर्मी ही परस्पर सद्व्यवहार कर एकता व

एक अवस्था में बना रह सकता है। इस विषय में आओ अब सद्व्यवहार को भी जान लेते हैं-

सद्व्यवहार से क्या आशय है?

सद्व्यवहार से आशय अच्छे चाल चलन, भले आचरण व उचित व्यवहार से है।

सद्व्यवहार के सम्बन्ध में सजनों यह जान लो कि इस हेतु व्यक्ति में सर्वप्रथम अच्छे भावों का होना आवश्यक है। भाव ही विचारों के उत्प्रेरक होते हैं। इसके पश्चात् ये विचार ही व्यवहार के रूप में परिणत होकर हमारे सामने आते हैं। कई बार ऐसा भी होता है कि भाव अच्छे होने पर भी व्यवहार अच्छा नहीं हो पाता। इसका कारण यह है कि हम भावों को सही रूप में समझ नहीं पाते या अनेक प्रकार के भौतिक प्रपंचों में उलझे होते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि भावों को पहले सही रूप में समझा जाए, उसके पश्चात् ही उनका व्यवहार करना चाहिए। याद रखो सजनों हमें दूसरों के साथ सदैव सद्व्यवहार करना चाहिए क्योंकि सद्व्यवहार से ही हमारी संस्कृति झलकती है और सभी प्रसन्न रहते हैं।

सद्व्यवहार का विधि एवं निषेधपरक प्रयोग स्पष्ट कीजिए?

सद्व्यवहार यद्यपि उदात्त वृत्ति का सूचक है, किन्तु उसका प्रयोग सदा विवेक पूर्वक किया जाना चाहिए। इसमें पात्रता का ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिए। यदि व्यक्ति हमारे सद्व्यवहार का अधिकारी है, तो उसके प्रति सद्व्यवहार का

प्रदर्शन अवश्य किया जाना चाहिए, अन्यथा हमारे सद्व्यवहार का कोई अर्थ नहीं होता। कभी-कभी तो हमारा सद्व्यवहार प्रदर्शन अनिष्ट फलदायी बन जाता है।

सद्व्यवहार किस स्थिति में प्रशंसनीय व कब निन्दनीय होता है?

सद्व्यवहार का प्रदर्शन स्वार्थ भावना से मुक्त होकर किया जाता है, तो यह प्रशंसा योग्य होता है और यदि सद्व्यवहार प्रदर्शन में स्वार्थ भावना की गन्ध होती है, तो वह निन्दनीय है।

सद्व्यवहार की कसौटी क्या है?

किस प्रकार के व्यवहार को हम सद्व्यवहार के अन्तर्गत रख सकते हैं, यह जानने के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति में विवेकयुक्त बुद्धि का विकास हो सके। विवेक के आधार पर ही सद्व्यवहार और दुर्व्यवहार में अन्तर किया जा सकता है। कभी-कभी वह व्यवहार जो हमें ग़लत लगता है, वह सही होता है। यथा माता द्वारा बच्चे को डाँटे जाने पर बच्चे को जो माता का व्यवहार अच्छा नहीं लगता, परन्तु वह बच्चे के लिए अच्छा ही होता है। अतः विवेक की कसौटी पर खरा उतरा व्यवहार ही सद्व्यवहार कहलाता है।

सारतः सजनों सद्व्यवहार मनुष्य के कुल, चरित्र तथा शिक्षा-दीक्षा की कसौटी है। सद्व्यवहार का दूसरा नाम ही शिष्टाचार यानि भले आदमियों का सा वर्त्ताव है। सत्पुरुष ऐसा ही आचरण व वर्त्ताव करते हैं तभी तो तीनों लोकों पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। याद रखो, न कोई किसी का मित्र

है और न ही कोई किसी का शत्रु। मनुष्य के सद्व्यवहार अथवा दुर्व्यवहार से ही उसके मित्र अथवा शत्रु होते हैं। अपने मन में सद्व्यवहार का उदित होना ही हम में उदात्त यानि श्रेष्ठ व महान भावों के जागृत होने का संकेत है। ये उदात्त भाव ही हमारे मन में उत्तम भावों के उत्प्रेरक होते हैं और ये उत्तम विचार ही क्रियान्वित होकर सद्व्यवहार का रूप ग्रहण करते हैं।

सजनों अभी तक हमने सत्य के सन्दर्भ में सत्य तत्व, सत्यनिष्ठा, सत्यभाषण, सत्संगति, सदाचरण, सद्भाव, सद्भावना, सद्विचार, सदाशयता, सद्गुणयुक्तता, सद्स्वभाव, सत्कार्य/सत्कर्म व सद्व्यवहार के बारे में क्रमशः सविस्तार जाना। जानते हो सत्य से जुड़े ये तमाम पहलू एक इंसान को सदाचारी बना सच्चरित्र इन्सान के रूप में ढालते हैं। ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि सद्भाव सद्भावना में, सद्भावना सद्-आशय या विचार में, सद्-विचार सद्गुणयुक्तता में, सद्गुणयुक्तता सद्स्वभाव में, सद्स्वभाव सत्कार्य या सत्कर्म में व सत्कर्म सद्व्यवहार में तबदील होते हुए अन्ततः सच्चरित्रता का रूप ले लेते हैं ।

सच्चरित्रता एक मानव के जीवन में किए जाने वाले उन कार्यों या आचरणों का स्वरूप होती है जो उसकी योग्यता व मनुष्यत्व आदि का सूचक होते हैं। श्रेष्ठता, विद्वता, गुणवत्ता, सामर्थ्य, बुद्धिमत्ता, प्रवीणता, अनुकूलता, उपयुक्तता, सभ्यता, शिष्टता, व्यवहारज्ञान इत्यादि सभी इंसानियत के गुण सदाचारिता के अंतर्गत ही आते हैं।

सरल शब्दों में हम कह सकते हैं कि सच्चरित्रता से तात्पर्य

व्यक्ति के उस गुण या भाव से है जिसमें छल-कपट व झूठ का व्यवहार लेश मात्र भी न हो तथा जिसकी प्रमाणिकता में किंचित् मात्र भी संदेह न हो। ऐसा सच्चरित्र व्यक्ति विचारपूर्वक अपने भाव-स्वभावों यानि अपनी मूल प्रकृति को सत्य-निष्ठा से मानव-धर्म के अनुरूप साधे रख सदा पूर्ण चेतन अवस्था में बना रहता है और आत्मज्ञान प्राप्त कर आत्मप्रेरणा द्वारा अपना मार्गदर्शन स्वयं करते हुए अपना शासक स्वयं बन जाता है। तात्पर्य यह है कि आत्मनिरीक्षण द्वारा अपने मन की प्रवृत्तियों पर आत्मनियंत्रण रख इन्द्रिय-निग्रह करने की व हर कठिन परिस्थिति से उबरने हेतु दिल-दिमाग व आत्मा को सामूहिक रूप से एकाग्र रख पाने की कला वह बखूबी जानता है। तभी तो संतोष-धैर्य को धारण कर वह स्वार्थ भाव से रहित हो सर्वहितकारी सत्कार्य करता है। अन्य शब्दों में सब प्रकार से निर्दोष, निर्मल, निरासक्त, अच्छी प्रकृति, स्वभाव, आचरण व व्यवहार करने वाला वह सरल व विनीत सच्चरित्र इंसान सत्यगामी कहलाता है और निष्कामतापूर्वक सच्चाई-धर्म की राह पर चलते हुए वह मन-वचन-कर्म द्वारा परोपकार कमाता है।

इस संदर्भ में चूंकि वह जान जाता है कि नकारात्मक भाव अशुभ होते हैं इसीलिए वह संसार में विचरते हुए भाव-शुद्धि द्वारा अपनी धारणा को सदा सात्विक व दृष्टिकोण को हमेशा सकारात्मक बनाए रखता है। फलतः उसकी वृत्ति, स्मृत्ति व भाव-स्वभाव रूपी बाणा निर्मल, अंतःकरण विशुद्ध तथा बुद्धि विवेकशील बनी रहती है। तभी तो ऐसा बुद्धिमान व प्रतिभाशाली मानव ईश्वरीय माया के भ्रमजाल में नहीं फँसता और निर्लिप्तता व तृप्तता से इस जगत में विचरते

हुए जीव, जगत व ब्रह्म के यथार्थ को जान जाता है।

उसके जीवन में किंचित् मात्र भी बनावटीपन यानि आडंबर नहीं होता इसलिए उसका निष्कलंक जीवन चरित्र सच्चरित्रता जैसे दिव्य गुणों की निधि कहलाता है और उसकी कर्त्तव्यनिष्ठा व कर्मठता का आदर्शतम रूप समाज के सामने प्रस्तुत करता है। स्पष्ट है कि संतोष, धैर्य, क्षमा, निष्कामता, दया, श्रद्धा, शिष्टता, सरलता, विनयशीलता, गंभीरता, अंतकरण की शुचिता आदि उसके चारित्रिक गुण उसके व्यक्तित्व की विशिष्ट पहचान बन जाते हैं और इन दिव्य गुणों के बल पर वह आत्मसंयमी व आत्म अनुशासित मानव प्रत्येक कार्य को नियन्त्रित विधि व एकाग्रचित्तता से संपादित करने की क्षमता अर्जित कर लेता है। यही नहीं अपने दृढ़, साहसिक और उत्साहजनक स्वभाव के कारण कठिन परिस्थितियों में भी वह अपनी सहनशीलता, न्यायप्रियता, कर्त्तव्यपरायणता व सद्भावना का अद्भुत परिचय दे, समभाव में स्थित बना रहता है और बखूबी समदृष्टि के गुण अनुसार परस्पर सजन भाव का व्यवहार करते हुए सबका प्रिय बन जाता है। इस तरह मन-वचन-कर्म द्वारा सत्य का आचरण व व्यवहार कर वह समबुद्धि इंसान सच्चरित्रता की कसौटी पर खरा उतरता है और जनकल्याण के निमित्त एक धर्मज्ञ इन्सान की तरह निष्कामता से परोपकार करते हुए शांति, सुख व सुव्यवस्था कायम करने में अपना सहयोग देता है।

हम कह सकते हैं कि सच्चरित्रता एक मानव के उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल व पराक्रमी होने का प्रतीक होती है। ऐसा

सदाचारी मानव ही निष्कामता पूर्वक मानव-धर्म का पालन करते हुए अपने आचरण व व्यवहार की श्रेष्ठता अर्थात् चारित्रिक उज्जवलता का आदर्श रूप सबके समक्ष रख सदा स्वतंत्र, शांत व आनंदित बना रह सकता है। इसलिए ऐसा सत्यनिष्ठा व धर्मपरायणता का प्रतीक मानव मोक्ष का अधिकारी बनता है व यशकीर्ति को प्राप्त कर अपने सच्चे घर परमधाम में निवास करता है। इसीलिए तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

'सुरत सच्चे घर दे अन्दर जावे ओए, ओथे लख लख खुशियाँ मनावे ओए'

आगे यह भी कहा गया है:-

संतोष, धैर्य, सच्चाई दे सवाल,
जैंदे हल हो गए हां हां हां हां।
उसने पा लिया आत्मिक ज्ञान,
ओ सर्व सर्व प्रकाश रिहा ओ पहुँच गया परमधाम।।

सारतः सजनों यह जान लो कि अंतरमन में सात्त्विक भावों व विचारों के प्रादुर्भाव से आत्मिक ज्ञान का प्रकाश उत्पन्न होता है। आत्मिक ज्ञान के प्रकाशन से व्यक्ति कर्त्तव्यपालन की शक्ति पाता है। कर्त्तव्यों का निष्काम भाव से समुचित निर्वहन करना ही सुकर्म है और जिन सुकर्मो में प्रवृत्त होने से कल्याण की प्राप्ति हो यानि जीवन का परम पुरूषार्थ सिद्ध हो वह धर्म कहलाता है। इस प्रकार सत्य आधारित कर्म और धर्म दोनों ही सच्चरित्रता में चार चाँद लगाते हैं। नीति भी यही कहती है कि जिससे लौकिक उन्नति और पारलौकिक कल्याण की प्राप्ति हो वही धर्म है। हकीकत में यह धर्म क्या

है और इसकी सिद्धि कैसे होती है, सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार इसके विषय में सविस्तार अगले सप्ताह से जानेंगे।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरांत सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।



दिनाँक 27 दिसम्बर 2015 का सबक

धर्म-(1)
प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

सजनों गत सप्ताहों में हमने सत्य के सबक को हर पहलू से समझा ताकि सत्य के अर्थ को जीवन में उतारने के योग्य बनने हेतु, हम आत्मबोध के साथ-साथ इंसानियत अनुरूप भाव-स्वभावों में यथा इस तरह से बने रह सकें कि समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार सजन-भाव के चलन पर निष्कामता से बने रहना ही हमारे धर्म का रूप हो। इस संदर्भ में हमें ध्यान रखना होगा कि सत्य के प्रति हमारे चित्त की वृत्ति निरन्तर बनी रहे और हम हृदय आकाश में सर्वत्र

ब्रह्म की ज्योति या केवल प्रकाश का शान्त भाव से अनुभव करते रहें। ऐसा करना इसलिए आवश्यक है क्योंकि जिस सत्य के प्रति धारणा बनाई है, वहाँ निरन्तर चित्त वृत्ति को एकाग्र रख आत्मा-परमात्मा के स्वरूप को मन में तत्वतः समझ लेना होगा और 'ईश्वर है अपना आप प्रकाश ' के सत्य अनुसार सर्वशक्तिमान होकर उसी सत्य पर धर्मसंगत स्थिर रहना होगा। याद रखो यह कार्य मूलमन्त्र आद् अक्षर के अजपा जाप द्वारा सहजता से सिद्ध हो सकता है।

इससे सजनों स्पष्ट होता है कि वह सूरजों का सूरज परमेश्वर शाश्वत सत्य है। सुरत के इसी सत्य रूपी शब्द के साथ बने रहने या मन के परमेश्वर में लीन रहने पर ही मनुष्य का अन्तःकरण प्रकाशित व एकरस पवित्र बना रह सकता है। ऐसा होने पर मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार यथार्थतः अपना-अपना काम विधि के विधान अनुसार क्रमबद्ध करते रहते हैं और इस प्रकार इन्सान को अपने धर्म से परिचित करा उस पर सुदृढ़ता से बने रहने की ताकत प्रदान करते हैं। याद रखो जब सत्य से अन्तर जगत व बाह्य जगत प्रकाशित रहते हैं तो इन्सान को अपनी नित्य अवस्था व सत्यज्ञान स्वरूप होने का बोध रहता है। यह बोध ही ख़्याल को सत्य ज्ञान रूपी विचारधारा से इतनी पावनता व सकारात्मकता प्रदान करता है कि सर्वव्यापक एक ही दर्शन का सत्य समभाव के रूप में नज़रों में ठहर जाता है और इन्सान सांसारिक मिथ्यात्व से किसी प्रकार भी नहीं जुड़ता। इस प्रकार वह धर्मज्ञ ताकतवर इंसान अपने ख़्याल को संसार से आज़ाद रखते हुए, संकल्परहित होकर इस जगत में बुद्धिमत्ता व निर्लिप्तता से विचरता है व समदृष्टि के चलन

अनुसार सजन भाव का परस्पर व्यवहार करते हुए अपने धर्म पर अटल बना रहता है। हम भी ऐसा कर पाने योग्य बनें इस हेतु आओ धर्म के विषय में पूरी तरह से समझते हैं ताकि हम सच्चाई-धर्म के रास्ते पर प्रशस्त रहते हुए आने वाली पीढ़ियों को भी वैसे ही सत्यनिष्ठ व धर्मपरायण बना पाएं। इस तरह उस परमेश्वर के सपुत्र कहलाएं और अपने अजर-अमर, रूप-रंग-रेखा से रहित सत्य ज्योति स्वरूप को प्राप्त हो जीवन सफल बना पाएं। यह शुद्ध कमाई करने की बात है। इसके लिए सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है:-

इस वक्त दी शुद्ध कमाई दे मुताबिक ओ सजनों
सतवस्तु में मौज उड़ानी जे,
ओ मौज उड़ानी जे।
सतवस्तु में एक दृष्टि एक दर्शन।

धर्म के विषय में सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है-

धर्म है कामना से रहित निष्काम रास्ता

धर्म शब्द की इस परिभाषा को समस्त शास्त्र व कुदरती विज्ञान हर मानव के लिए अपने जीवन-लक्ष्य प्राप्ति का सूचक मानते हैं। धर्म शब्द का यह स्पष्टीकरण या व्याख्या अपने आप में इतनी सहज व सरल है कि इस द्वारा धर्म की विशेषता व व्याप्ति पूर्णतः निश्चित व स्पष्ट हो जाती है। अतः सर्वहित को ध्यान में रखते हुए इस वृत्ति को हमें इस तरह से साध लेना है कि यह हमारी स्मृति में सदा बनी रहे, उससे कभी अलग न हो यानि हमारा स्वाभाविक गुण बन

हमारे आचार-विचार द्वारा प्रदर्शित हो। सही अर्थों में यही धर्म का वास्तविक स्वरूप है व निर्विकारता का प्रतीक है।

धर्म ग्रन्थों के अनुसार धर्म प्रत्येक पदार्थ/व्यक्ति का मूल स्वाभाविक गुण व उसका सनातन तत्व है। यही सनातन तत्व ही मनुष्य को जीवन में अभ्युदय (उन्नति) और मृत्यु के बाद कल्याण यानि मोक्ष की प्राप्ति का हेतु होता है। इसीलिए आत्मा और परमात्मा की शाश्वतता, शाश्वत जीवन और शाश्वत मूल्यों में विश्वास, नैतिक व्यवस्था को भौतिक व्यवस्था से उच्चतर मानने में विश्वास तथा इन विश्वासों के अनुसार आचार-व्यवहार अपनाना, ही धर्म संगत माना जाता है। यही व्यवहार-संहिता व्यक्ति के सत्य-कर्म करने व सदाचारी होने का हेतु होती है व इसके द्वारा व्यक्ति अपने जीवन का हर कर्त्तव्य नीतिनुसार, न्यायसंगत निभाने की योग्यता दर्शा पाता है। हम कह सकते हैं कि प्रत्येक वस्तु को जिस प्रयोजन के लिया रचा गया है, उसकी परिपूर्त्ति करना ही उस वस्तु का धर्म है। धर्म वह तत्त्व है, जो जगत को धारण करता है। समस्त मानवोचित गुण धर्म के अंतर्गत ही आते हैं।

इसी सन्दर्भ में जिस शारीरिक, मानसिक अथवा बौद्धिक कर्म के द्वारा अन्तःकरण में वैराग्य, शांति आदि का उदय होता है और विवेक का प्रकाश होता है उसी को धर्म कहते हैं। इस परिभाषा के अनुसार धर्म अन्तःकरण की शुद्धि का साधक कर्म है। इसीलिए सत्कर्मजन्य अन्तःकरण की एक विशेष वृत्ति को धर्म कहते हैं।

वेद अनुसार धर्म लोक हितकारी कर्म व मनुष्य के कल्याण

के निमित्त साधन है। इससे तमोगुण का ह्रास होता है और सत्वगुण विकसित होता है। यह वृत्ति को क्लेशानुवेध यानि कष्टपूर्ण मानसिक स्थिति के कारण उत्पन्न होने वाली बाधा से बचाकर समाधि के उपयुक्त आत्मनिग्रही बनाकर, आत्म स्वरूप में अवस्थित करने में सहायक कर्म है। इस प्रकार आत्मानुभूति यानि समस्त मन व प्राण का विश्वास के साथ एक हो जाना भी धर्म कहलाता है।

याद रखो धर्मयुक्त वस्तु ही अनमोल और उपयोगी होती है इसलिए तो कहा गया है धर्म वस्तु का वीर्य है अर्थात् सामर्थ्य है, जो उस वस्तु की सतत् रक्षा करता है। वस्तु के रक्षक इस वीर्य को धर्म इसलिए कहते हैं कि वह वस्तु के द्वारा धृत होता है अर्थात् धारण किया जाता है। धर्म, धर्मी यानि अपना धर्म/कर्त्तव्य जानने वाले धर्मात्मा व न्यायी को धारण करता है अर्थात् उसका आश्रय है। अतः वह धर्मी यानि अपना धर्म/कर्त्तव्य जानने वाले धर्मात्मा व न्यायी का वाहन है। आओ अब प्रश्नोत्तर के माध्यम से धर्म की व्यापकता को समझते हैं:-

धर्म को विभिन्न शब्दकोशों के आधार पर पारिभाषित कीजिए?

विभिन्न शब्दकोशों में धर्म को इस प्रकार परिभाषित किया गया है:—

1. किसी वस्तु या व्यक्ति की वह वृत्ति, जो उसमें सदा रहे, उससे कभी अलग न हो, प्रकृति, स्वभाव, नित्य नियम, जैसे आंख का धर्म है देखना।

2. किसी मान्य ग्रन्थ, आचार्य या ऋषि द्वारा प्रवर्तित ईश्वर, परलोक आदि के सम्बन्ध में विशेष रूप का विश्वास और आराधना की विशेष प्रणाली अथवा वे निर्दिष्ट कर्म जो पारलौकिक सुख की प्राप्ति के लिए किए जाएं। वह कृत्य या विधान, जिसका फल शुभ बताया गया हो।

3. वह कर्म जिसका करना किसी सम्बन्ध, स्थिति या गुण विशेष के विचार से उचित और आवश्यक हो। वह कर्म या व्यापार जो समाज के कार्य विभाग के निर्वाह के लिए आवश्यक और उचित हो। किसी जाति, कुल, वर्ग व पद इत्यादि के लिए उचित ठहराया हुआ व्यवसाय या व्यवहार। जैसे पुत्र का व्यवहार पुत्र धर्म के अनुसार हो या राजा का व्यवहार राजधर्म के अनुरूप हो।

4. नियम, विधि-व्यवहार आदि के आधार पर नियत तथा निश्चित वे सब काम या बातें, जिनका पालन समाज के अस्तित्व या स्थिति के लिए आवश्यक होता है और जो प्रायः सर्वत्र सार्वजनिक रूप से मान्य होती है। जैसे दया, न्याय, सत्यता आदि का आचरण मनुष्य मात्र का धर्म है।

5. वह आधार, जिससे समाज की रक्षा और सुख-शांति की वृद्धि हो तथा परलोक में भी उत्तम गति मिले जैसे कल्याणकारी कर्म, सुकृत सदाचार पुण्य सत्कर्म।

6. परस्पर व्यवहार सम्बन्धी नियम, जिसका पालन राजा, आचार्य या मध्यस्थ द्वारा कराया जाए। नीति, न्याय, व्यवस्था कायदा कानून।

7. उचित और अनुचित का विचार करने वाली चित्तवृत्ति, न्यायबुद्धि, विवेक व ईमान।

8. सत्संग, प्रकृति, स्वभाव, तरीका, ढंग, आचार, अहिंसा तथा निष्पक्ष होने का भाव या स्थिति को भी धर्म कहते हैं।

धर्म का अनिवार्य तत्त्व क्या है?

मानव का सबसे बड़ा धर्म है मानवता। निश्चित रूप से मानवता मर्यादित आचरण करने का दूसरा नाम है। मर्यादा विधि (यह करो) एवं निषेध (यह मत करो) दोनों का निर्धारण करती है अर्थात् धर्म का अनिवार्य तत्त्व करणीय/अकरणीय, करो/मत करो, पाप/पुण्य में भेद करना है।

धर्म का अनन्य सिद्धान्त है कि हमें हर दशा में कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। इस हेतु कर्म फल का त्याग कर कर्म को कर्त्तव्य मानकर करना ही सर्वोपयोगी है। चंचलता आदि स्वाभाविक प्रवृत्तियों पर रोक लगाने व आत्मीयता अनुरूप बने रहने हेतु इसे धर्म का अनिवार्य तत्व माना गया है।

ब्रह्मचर्य, सत्य और तपस्या इन तीनों से धर्म स्थापित होता है और नियम, क्षमा, शौच, अहिंसा, दया, सुशांति और अस्तेय इनके द्वारा वर्धित होते हैं। समग्र वेद स्मृति वेदवेत्ताओं ने शील, आचार, विद्या, आत्मसंतोष, धीरता, सत्य प्रियता, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, मौन, आत्मचिन्तन, आत्मसमर्पण, अपनी ही पत्नी से संतान पैदा करना, बाहर भीतर से पवित्र रहना, तप यानि संयम, दया, परहित, समता व समदर्शिता आदि को धर्म का लक्षण माना है। हम कह सकते हैं कि

उचित-अनुचित का विचार कर यानि मनुष्य के अभिमानपूर्ण प्रयत्नों के परिणाम की विपरीतता को देखते हुए सांसारिक भोगों की चेष्टा से निवृत्ति प्राप्त करना धर्म के अंतर्गत आता है।

धर्म का मौलिक तत्व क्या है?

सब मनुष्यों में सर्व एकात्मा का भाव रखते हुए, मन, वचन, कर्म द्वारा किसी परिस्थिति व अवस्था में इसके प्रतिकूल आचार, विचार व व्यवहार न दर्शाना ही धर्म का मौलिक तत्व है। तात्पर्य यह है कि जो हमें प्रिय नहीं वैसा आचरण व व्यवहार किसी के साथ मत करो। याद रखो इसी पर ही पूरा धर्म आधारित है। इस संदर्भ में सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है:-

सजनों इक धर्म सारी दुनियां अन्दर,
इक धर्म ही सजनों पालो तुम।
श्री राम रमणे वाले धर्म ते चल गए,
फिर धर्म दी मौज उडा लवो तुम।।

साजन जी बैठे राम गोदी विच,
हेंठा आलम बैठी तमाम।
श्री राम गोदी है ओ सब दी सांझी,
हिन्दु मुस्लिम सिक्ख ईसाई मान।।

इस प्रकार सजनों समभाव-समदृष्टि अनुरूप चलन पर यथा बने रह, परस्पर निष्काम भाव से सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव करने वाला ही धर्मपरायण कहला सकता है।

धर्म के साथ अधर्म की जानकारी अपेक्षित है ताकि अधर्म का त्याग एवं धर्म का अनुसरण किया जा सके। इस सन्दर्भ में सूक्ष्मतः धर्म-अधर्म यानि पाप-पुण्य के अन्तर को स्पष्ट करो?

ऐसा माना जाता है कि जगत में जो कुछ विषमता दिखती है, उसका मूल धर्म और अधर्म है। धर्म जन्य सुख होता है और अधर्म जन्य दुःख। शास्त्रानुकूल (नियमानुसार) कार्य करना धर्म है और शास्त्र निषिद्ध कर्म अधर्म है। वर्णाश्रम यानि ब्रह्मचर्य, गृहस्थ आदि चारों आश्रमों के अनुसार चलना धर्म है जबकि उसका उल्लंघन अधर्म है। धर्म पालना से जीवन व जगत की स्थिति संभव, सुचारु और संतुलित रहती है और जिससे असंतुलन हो, वह अधर्म कहलाता है। इस संदर्भ में सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ सब सजनों को सचेत करते हुए कहता हैः-

धर्म दा मार्ग छड के सजनो अधर्म दे मार्ग क्यों जांदे हो।
पाप दी बेड़ी डुबनी जे, क्यों धर्म नू नहीं पहचानदे हो।।
धर्म दी ताकत बड़ी बलवान, धर्म दे मार्ग चढ़े श्री राम।
अपने प्यारियां दी लाज बचाके अधर्मियां दा खातमा करन तमाम।।
धर्म दे मार्ग चढ़े हनुमान, उसी मार्ग मिल पए श्री राम।
ओ दुष्टां नूं मार मुकावे, गदा ओन्हां दा है जे तूफान।
धर्म दे मार्ग चढ़ पिया, चढ़े विभीषण राज जी।
उसी मार्ग में मिले श्री रामचन्द्र महाराज जी।
अमर ओ हो गया लंका दा पाया उस राज जी।।
चलदे चलदे चलदे चलो धर्म दे मार्ग है जित तुम्हारी।

चलदे चलो सजनों मुख न मोड़ो,
उस मार्ग मिलन श्री राम बिहारी।।
मिलन श्री राम जगत भण्डारी धर्म दा,
रस्ता धर्म दा मार्ग है जे ओ महान।
पौड़ी-पौड़ी चढ़दे जाओ सजनो पावो अपना स्थान।
कैसा ओथे है विश्राम।।

याद रखो सजनों वास्तव में धर्म वह है जिससे परिणाम में अपना और दूसरों का हित होता है और अधर्म वह है, जिससे परिणाम में अपना और दूसरों का अहित होता है। याद रखो सरलता धर्म है, कुटिलता अधर्म है। अतः सत्य से बड़ा धर्म नही और असत्य से बड़ा अधर्म नहीं।

अभी हमने जाना कि सत्य ही धर्म है और असत्य ही अधर्म है, आओ अब आगे जानते हैं-

धर्म और विज्ञान में क्या अन्तर है?

धर्म और विज्ञान दोनों ही सत्य को उद्घाटित करने की चेष्टाएं हैं। विज्ञान बाह्य मायावी जगत के आधार पर सत्य की खोज करता है तथा धर्म अंतर जगत में प्रतिष्ठित होकर नित्य सत्य का साक्षात्कार करता है। दोनों का परम लक्ष्य सत्य की खोज कर उसे प्राप्त करना है। यहाँ समझने की बात यह है कि विज्ञान जिस मायावी जगत के सत्य की खोज करता है उसमें समय के साथ बदलाव आना स्वाभाविक ही होता है जबकि धर्म जिस सत्य का साक्षात्कार करता है वह नित्य यानि अपरिवर्त्तनशील होता है।

सनातन तत्व धर्म के प्रतिनिधि किसे माना जाता है?

अनादि काल से सनातन तत्व धर्म के प्रतिनिधि वेद माने गये हैं। वेद ही धर्म के प्रमाणित आधार के रूप में वास्तविक धर्म मूल माने जाते हैं। माना गया है कि धर्म रूपी मेघ ही आत्मदर्शन रूपी वर्षा करके साधक के चित्त को सींच, आत्मा को अपने स्वरूप में स्थित रख, शुद्ध ज्ञान यानि मोक्षप्रद ज्ञान प्राप्ति का द्वार खोल सकता है जिससे हृदय निर्लिप्तता व विशुद्धता के भाव से भरपूर हो जाता है। यह अपने आप में श्रेष्ठता को प्राप्त होने की बात है।

कहते है कि धर्म कमाओ, धर्म कमाने से क्या तात्पर्य है?

धर्म के मार्ग पर बने रह, धार्मिक आचरण या सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करना, धर्म कमाना कहलाता है।

जो धर्म कमाता है वह क्या कहलाता है?

ऐसा व्यक्ति पुण्यात्मा कहलाता है।

पुण्यात्मा का विशिष्ट लक्षण क्या है?

पुण्यात्मा अपने जीवन काल में न ही किसी का धर्म नष्ट करता है और न ही अपना धर्म नष्ट होने देता है क्योंकि वह मन को परमेश्वर में लीन रखते हुए प्राप्त सद्-विचारों अनुसार जो भी कहता है सत्य कहता है या न्याय संगत बात करता है व न्याय पूर्वक ही अपने पर शासन करता है। इसके विपरीत काम करने वाला अविचारी धर्म-संकट यानि दुविधा की स्थिति में पड़ जाता है और इसी कारण अपना धर्म नष्ट कर बैठता है।

निज धर्म की रक्षा क्यों अनिवार्य है और यह कैसे हो सकती है?

निज धर्म की रक्षा धर्म-भ्रष्टता से बचे रहने के लिए आवश्यक है। यह इसलिए भी जरूरी है ताकि धर्म के नाम पर किए जाने वाले ढोंग या पाखंड से बचा जा सके और स्वार्थ साधने वाले भाव-स्वभावों से बचे रह निष्कामता व धर्मपरायणता से जीवन जीया जा सके। याद रखो नित्य धर्म के स्थान पर किसी अन्य धर्म की स्थापना कर उसे अपनाना, निज धर्म से गिरने व अधर्म के रास्ते पर चलते हुए नैतिक पतनता को प्राप्त होने की बात है। इसीलिए शाश्वत धर्म में दृढ़ विश्वास और श्रद्धा रखते हुए, धर्म में ही सदा तत्पर रहो और धर्म का विधि अनुसार पालन करते हुए आत्मीयता पूर्वक जीवन जिओ।

धर्म में प्रवृत्त बुद्धि किसकी होती है व उसका विशेष गुण क्या होता है?

धर्म और अधर्म का विवेक रखते हुए, अच्छे-बुरे का विचार करने में सक्षम व्यक्ति ही धर्म में प्रवृत्त बुद्धि वाला कहला सकता है। ऐसा धर्मात्मा धर्म का भय मानकर कभी भी यानि किसी भय या लोभ आदि के कारण अपने धर्म से गिर अधर्म नहीं करता। आज के समयकाल में यानि कलियुग में धर्मबुद्धि होना अति आवश्यक है क्योंकि जो भी इस माया रूपी जगत में घटता है वह ऊपर से देखने में धर्म प्रतीत होता है परन्तु वास्तव में अधर्म या नाममात्र का धर्म होता है। इसीलिए सभी को इसके प्रति सचेत करते हुए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

'धर्म मत हारना रे धर्म के ऊपर सजनों तन-मन-धन सब वारना रे'

धर्म की कसौटी क्या है?

परहित से बड़ा कोई धर्म नहीं तथा परपीड़ा से बड़ा अधर्म नहीं है। आचार परमधर्म है। समता सबसे बड़ा धर्म है। सभी प्राणियों में अपने को व अपने में सबको देखना यही धर्म का सार है। निस्वार्थता ही धर्म की कसौटी है।

कहते है धर्म व्यक्ति के उदात्तीकरण का साधन है कैसे?

जो व्यक्ति अपने धर्म यानि कर्त्तव्य को समझ कर विवेक के आधार पर उसका पालन करता है, उसका अन्तर मन निष्कलुष हो जाता है। इस प्रकार व्यक्ति की वृत्ति, स्मृति, बुद्धि व स्वभाव का ताणा-बाणा निर्मल बना रहता है और धर्म पालना व्यक्तित्व के उदात्तीकरण का साधन सिद्ध होती है।

धर्म का महत्त्व व इसकी मानव जीवन में उपयोगिता बताओ?

संसार के सकल नानात्मक रूप व्यापारों की संज्ञा धर्म है। उद्‌भव से लेकर विकासक्रम की सभी अवस्थाओं में धर्म की व्यापकता है। क्षुद्र प्राणियों का धर्म उनकी भौतिक प्रकृति तक सीमित है, जबकि मनुष्य के लिए उसके सम्पूर्ण जीवन का कर्म, जो उसके कर्त्तव्याकर्त्तव्य संचालन में नियंत्रण एवं निर्देशन करता है वह धर्म है। जिस प्रकार धर्म के बिना वस्तु का वस्तुत्व नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार धर्म के बिना मनुष्य का मनुष्यत्व ही नष्ट हो जाता है। धर्म से सब कुछ सिद्ध हो सकता है। धर्म मनुष्य की चेतना को प्रबुद्ध करता है।

मनुष्यत्व की रक्षा और परमेश्वर की प्राप्ति धर्म द्वारा होती है। धर्म केवल मनुष्यत्व का ही रक्षक नहीं है, मनुष्य में रहकर प्राणिमात्र का भी रक्षक है। इसी से मनुष्य के व्यवहार में दूसरे प्राणियों के प्रति हिंसा भाव निषेध हैं।

वस्तु के वस्तुत्व को सुरक्षित रखना और विकसित करना धर्म का काम है। धर्म की महत्ता इसलिए भी है कि धर्म का संबंध बाह्य कर्मों की अपेक्षा सद्‌गुणों से अधिक माना गया है। धर्म दर्शन या संस्कार से पृथक् सदाचार या सामाजिक कर्त्तव्यशास्त्र का कोई विधान नहीं हो सकता। कहीं-कहीं पर न्यायशास्त्र भी धर्म का सहारा लेता है। प्रायः समस्त लौकिक धारणाओं के बीच अबाध गति से प्रवाहित होने वाली कर्त्तव्य की धारा धर्म ही है।धर्म से उत्पन्न कर्त्तव्य सभी के प्रति हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। स्वभावतः मनुष्य प्रकृति का गुलाम है और प्रकृति के विपरीत जाने की क्षमता मनुष्य में नहीं है। धर्म इसी में संयम की व्यवस्था करता है। धर्म का महत्त्व यह है कि वह मनुष्य के लिए संयम के विधि एवं निषेध दोनों पक्षों का विवेचन करता है। धर्म सदाचारमय जीवन पर न केवल बल देता है वरन् इसका पालन कैसे हो, यह निर्देश भी देता है। धर्म मर्यादा में विश्वास जागृत कर समाज से सुसम्बद्ध रखने में सहायता करता है। धर्म की संकल्पना अत्यंत व्यापक है, जिसमें कर्त्तव्य, आचार-संहिता, नियम, रीति रिवाज़, आचार-विचार, नैतिक आचरण, शिष्टाचार आदि का समावेश हो जाता है। धर्म जीवन प्रणाली है। याद रखो सत्-असत् के विवेक को महत्त्व देने से जो तत्त्व मिलता है, वही तत्त्व अपने कर्त्तव्य का अर्थात् स्वधर्म का पालन करने से मिल जाता है।

विश्व के विभिन्न अवयवों को एकसूत्र में, एक श्रृंखला में बांधने वाला सारभौम तत्त्व धर्म ही है। धर्म की कोई क्रिया विफल एवं व्यर्थ नहीं होती। अतः धर्म का आचरण सर्वथा स्वीकार्य है। सकाम भाव से सम्पादित होने पर धर्म ऐहिक फलों को देता है तथा निष्काम भाव से सम्पादित होने पर मोक्ष की उपलब्धि कराता है।

सारतः कहा जा सकता है कि धर्म ही समस्त जगत का आधार है। धर्म पर ही जगत अवस्थित है। संसार में धर्म ही सबसे श्रेष्ठ है क्योंकि यही आत्मा की ब्रह्मस्वरूपता को जान, तद्-अनुरूप हो जाने का साधन है। इस नाते सत्य की भी धर्म में ही प्रतिष्ठा है। हम कह सकते हैं कि धर्म आत्मा का एक विशेष गुण है। यह विहित कर्म से अथवा शुभ प्रवृत्ति से उत्पन्न होता है। कायिक, वाचिक एवं मानसिक पापों का परित्याग कर देने पर वृत्ति अन्तर्मुख हो जाती है। वृत्ति का आत्मसामीप्य ही धर्म की उत्कृष्ट अवस्था है। तभी तो सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है-

धर्म नूं जो जितना चाहो,
महाराज जी दे नैनां नाल नैन मिला के।
फिर जो मन मंदिर सोई जग
अंदर मुकम्मल एहो दृष्टि सजनों दिखाओ।
सम दा कोई सवाल नहीं फिर दिव्य दृष्टि
दा शब्द लै के अपना जीवन बनाओ।।

इसके अतिरिक्त धर्म का संबंध अन्तःकरण से है, आजीविका से है। हम अपने जीवन में समस्त प्राणियों से मन, वचन, कर्म, से कैसे व्यवहार करें, कैसे आजीविका चलायें, इन

बातों की शिक्षा धर्म देता है। निर्धारित कर्त्तव्याकर्त्तव्य भी धर्म है। याद रखो सत्-पुरूषों की वृत्ति निरन्तर धर्म में ही रहती है इसीलिए वे कभी दुःखी या व्यथित नहीं होते। इस प्रकार धर्म समाज के सुसंचालन के लिए अनिवार्य और अपरिहार्य है और ईश्वर साधना का सर्वोत्तम कर्म है। इस संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

सच वर्ते सच वर्त वर्तावे, धर्म दा ओ मन्त्र उचारे।
अराधना धर्म दी साधना करके पहुंचे दयालु दे द्वारे।।

अतः अपने धर्म की पालना ही हितकारी है। याद रखो जहाँ धर्म होता है, वहीं जय होती है।धर्म के मूल अर्थ को जानने के पश्चात् आओ अब विभिन्न युगों में धर्म को प्रश्नोत्तर के माध्यम से समझते हैं-

विभिन्न युगों में धर्म की स्थिति स्पष्ट करते हुए वर्त्तमान युग के हालात स्पष्ट कीजिए?

धर्म ग्रन्थों के अनुसार सतयुग में धर्म जहाँ चार पादों (भागों) में स्थित होता है वहीं त्रेता में तीन, द्वापर में दो व कलियुग में एक पाद ही उसका आधार रह जाता है। तात्पर्य यह है कि सतयुग में जहाँ सम्पूर्ण मानव जाति अपने मूल धर्म को सुदृढ़ता से मन-मस्तिष्क में सम्पूर्णतः धारे रख उसका अनुगमन करती है वहीं त्रेता में इस धर्म को अपनाने वालों की संख्या क्रमशः तीन-चौथाई, द्वापर में आधी व कलियुग में एक-चौथाई रह जाती है। यहाँ समझने की बात यह भी है कि युग-युगांतरों में जिस अनुपात से धर्म के रास्ते पर चलने वालों का पराक्रम कमज़ोर पड़ता है, उसी अनुपात से

वैश्विक स्तर पर धर्म व्यवस्था, नैतिक व्यवस्था व आर्थिक व्यवस्था भी कमज़ोर हो डाँवाडोल हो जाती है। इसका प्रमाण आज की पतित व तनावयुक्त शारीरिक, मानसिक व सामाजिक विकृत परिस्थितियों के रूप में समक्ष देखा जा सकता है। अधिकांश मानव 'मैं और मेरा' के भाव से ग्रस्त हो स्वार्थी हो गए हैं। इस प्रकार अपनी समरूपता यानि एकात्मा के भाव को भूल अपने मूल धर्म से विमुख हो कुकर्म-अधर्म का रास्ता अपना चुके हैं जिसके कारण उनका मन-मस्तिष्क सम अवस्था से च्युत हो विषम हो चुका है। इसीलिए उनका ख़्याल नकारात्मक व ध्यान अस्थिर हो चुका है और उनके चित्त की एकाग्रता व मन की शांति भंग हो गई है। अतः हम कह सकते हैं कि इन वर्तमान दुष्कर परिस्थितियों में मानव जाति के लिए धर्म का मार्ग अपनाना कठिन हो गया है। यदि ध्यान से देखा जाए तो मन-मस्तिष्क की इसी अचेतन व कठिन अवस्था के कारण ही एक मानव के लिए अपने जीवन के प्रधान लक्ष्य यथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को प्राप्त करना उसके बल, बुद्धि, ज्ञान व पुरुषार्थ की पहुँच से बाहर हो गया है और वह स्वयं को इनकी प्राप्ति के प्रति कमज़ोर पा, अशान्त व अधीर हो, परस्पर वैर-विरोध युक्त जीवन जी रहा है।

धर्म को पुनः विकसित करने का साधन बताइए?

मानव विवेक-पूर्वक कार्य करते हुए उचित को ग्रहण करे और अनुचित का त्याग करे, यही धर्म को पुनः विकसित करने का उत्कृष्ट साधन है। सबकी जानकारी के लिए इसी उद्देश्य पूर्त्ति हेतु ही सतयुग दर्शन वसुन्धरा परिसर में

समभाव-समदृष्टि का स्कूल खोला गया है ताकि मानव इसी जीवनकाल में ही समभाव-समदृष्टि की युक्ति को धारण कर, अपने अन्दर मानवता से भरपूर आवश्यक मूल गुण सजन-भाव का वर्धन कर सके और आत्मसंतुष्ट हो, धैर्य बल द्वारा सत्यनिष्ठा से उसके अनुकूल धर्म के निष्काम रास्ते पर चलते हुए परपमद प्राप्त करके योग्य बन सके।

हम जानना चाहते हैं कि इन विकट परिस्थितियों में समभाव-समदृष्टि की युक्ति किस प्रकार सहायक होगी?

इस संदर्भ में यह जान लो कि 'समभाव समदृष्टि' के इस स्कूल से धर्म विमुख हो चुकी मानव जाति को पुनः धर्म की वास्तविक परिभाषा से परिचित करा प्रत्येक मानव की वृत्ति, स्मृति व बुद्धि में उसे उतारने का युक्तिसंगत यत्न किया जाएगा ताकि सभी मनुष्य हर परिस्थिति में निज धर्म को सुदृढ़ता से धारण करने की योग्यता प्राप्त कर धर्मज्ञ बन पाएँ। आशय यह है कि उनके अन्दर यह माद्दा इस तरह से भरा जाएगा कि वे विषम परिस्थिति में भी धर्म को हारेंगे नहीं अपितु धर्म पर डटे रह उस पर अपना तन-मन-धन कुर्बान करने से नहीं सकुचाएँगे।

अंततः सजनों यह सब जानने के उपरान्त हमारे लिए बनता है कि हम धार्मिक विधि-विधान अनुसार सदैव धर्म-कार्य ही करें ताकि इस भोगभूमि पर विचरते समय हम अपने धार्मिक कर्त्तव्य व लौकिक कृत्य न्यायसंगत निभाते हुए सदा तृप्त रह सकें और इस प्रकार भोगविलासों में लिप्त हो अपना जीवन बरबाद न करें। इसके लिए धर्म-सम्बन्धी सिद्धान्तों, नियमों और उनके अनुसार व्यवहार की रीति का ज्ञाता होना

यानि धर्म के मूल स्वरूप को जानना अति आवश्यक है। तभी हम किसी सम्प्रदाय के साथ जुड़ने के स्थान पर अपनी अंतरात्मा या अपने यथार्थ में बने रह आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने को प्राथमिकता देंगे और धर्म संबंधी समस्त सिद्धांतों को व्यवहार में ला सकेंगे। इस प्रकार धर्म रूपी रथ के रुके हुए पहिए को तत्वज्ञान के उत्तम उपदेश तथा व्यवहार में उसके प्रयोग द्वारा पुनः चला सकेंगे और जगत में सदा धर्म अनुकूल आचरण करते हुए इस जगत में धर्मसंगत बने रह सकेंगे। इस संदर्भ में सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है-

श्री हनुमान जी महाराज, धर्म दा झण्डा झूले।
श्री हनुमान जी महाराज, धर्म दा झण्डा झूले।

सुकर्मां दा होवे राज, धर्म दा झण्डा झूले।
हुण ठण्डी आवे हवा, धर्म दा झण्डा झूले।।
धर्म दा झण्डा झूले, धर्म दा झण्डा झूले।
श्री हनुमान जी महाराज.....

कर्म जावन घर आपने, अधर्म जावन घर आपने।
हुण शास्त्र लिया विचार, हुण रस्ता लियां है संवार।।
सुखकारी लिया है संवार।।
हुण सच्चे शौह नाल प्यार, धर्म दा झण्डा झूले।
धर्म दा झण्डा झूले, धर्म दा झण्डा झूले।
श्री हनुमान जी महाराज.....

नाम दियां बून्दां बरसन, किणमिण-किणमिण बरसन।
हुण खाक होवे साडी साफ, हुण बीज बोवो दिन रात
सुखकारी लिया है संवार।

हुण सच्चे शौह नाल प्यार, धर्म दा झण्डा झूले।
मेरा सच्चे शौह नाल प्यार, धर्म दा झण्डा झूले।।
धर्म दा झण्डा झूले, धर्म दा झण्डा झूले।
श्री हनुमान जी महाराज.....

फुव्वारे रिमझिम लावन, अपनी शोभा दिखावन।
सुक्का हरया होवे बाग, ए उसे दा प्रताप
सुखकारी लिया है संवार।।
हुण सच्चे शौह नाल प्यार, धर्म दा झण्डा झूले।
हुण सच्चे शौह नाल प्यार, धर्म दा झण्डा झूले।।
धर्म दा झण्डा झूले, धर्म दा झण्डा झूले।
श्री हनुमान जी महाराज.....

दरखतां दे हुन भाग जागे, सच्चाई दे फल फुल लागे।।
लिश्कारे मारे बाग, त्रिलोकी दा चिराग
सुखकारी लिया है संवार।
हुण सच्चे शौह नाल प्यार, धर्म दा झण्डा झूले।
मेरा सच्चे शौह नाल प्यार, धर्म दा झण्डा झूले।।
धर्म दा झण्डा झूले, धर्म दा झण्डा झूले।
श्री हनुमान जी महाराज.....

मालियां दे माली बाग लाया,
बाग दा मालिक देखन आया
मालियां दे माली दित्ता ए संवार,
मालिक देख के होया ए निहाल।।

सुखकारी लिया है संवार,
हुण सच्चे शौह नाल प्यार, धर्म दा झण्डा झूले।
हुण सच्चे शौह नाल प्यार, धर्म दा झण्डा झूले।।
धर्म दा झण्डा झूले, धर्म दा झण्डा झूले।
श्री हनुमान जी महाराज, धर्म दा झण्डा झूले....

सुकर्मां दा होवे राज, धर्म दा झण्डा झूले।
हुण ठण्डी आवे हवा, धर्म दा झण्डा झूले।।

धर्म दा झण्डा झूले, धर्म दा झण्डा झूले।
श्री हनुमान जी महाराज धर्म दा झण्डा झूले।।
धर्म दा झण्डा झूले, धर्म दा झण्डा झूले।
धर्म दा झण्डा झूले, धर्म दा झण्डा झूले।।

हम सब धर्म का झण्डा झुलाने के काबिल बनें व सच्चाई धर्म के रास्ते पर निष्कामता से चलते हुए अपने सच्चे घर को प्राप्त हों, इन्हीं शुभकामनाओं के साथ। धर्म के विषय में इससे आगे अगले सप्ताह जानेंगे।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 3 जनवरी 2016 का सबक

धर्म-(2)
प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

धर्म का अर्थ जानने के पश्चात् हमें इस सत्य से सदा परिचित रहना होगा कि मनुष्य अल्पज्ञ है, उसे भ्रम हो सकता है, चोरी-ठगी की कामना हो सकती है। इस प्रकार स्वयं बहकने के कारण वह दूसरों को भी अपनी वाणी, अर्जित मिथ्या ज्ञान व कर्म द्वारा निज धर्म से बहका सकता है। इस सन्दर्भ में परमेश्वर की वेद-विदित वाणी अपने आप में सत्य वाक् होती है यानि धर्म की बात होती है। तात्पर्य यह है कि उस वाणी में असत्य का लेश मात्र भी नहीं होता और

उसका ज्ञाता सदा पुण्य कर्म ही करता है। इसलिए जीव के लिए उसी सर्वज्ञ परमेश्वर से ही सत्यज्ञान प्राप्त कर, उनके संसार में जितना आनन्द है उस आनन्द में बने रह, निष्काम कर्म करने का विधान है।

याद रखो इसके विपरीत कुछ भी करना मिथ्याचारी बन कुकर्मों व अधर्मों के दु:खदाई चक्रव्यूह में फँसने की बात होती है। हम सब उसकी कृपा के पात्र बन उनके वचनों की पालना द्वारा एक अच्छे व नेक इन्सान की तरह जीवन जी सकें उसके लिए धर्म के विषय में आगे समझते हैं-

सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ के अनुसार-

चहुं प्रकारां दे कर्म बनाए,
कुकर्म, कर्म, सुकर्म, धर्म नज़र आए।।
निष्काम भक्ति है तूं ही तूं ही,
किस नूं पूजां ते किस नूं न पूजां।।

अर्थात् कर्म चार प्रकार के होते है यथा कुकर्म, कर्म, सुकर्म व धर्म।

कुकर्म खोटे काम यानि लोकनिंदित कर्म को कहते हैं। ऐसा कर्म करने वाला पापी कहलाता है और अपमान व निंदा का पात्र बनता है।

कर्म वह होता है जो किया जाए और कर्त्ता की क्रिया के प्रभाव अनुसार उस मानव के भाग्य का विधान रचे। यही एक इंसान को अपने बंधन में बाँध उसके जन्म-मरण का हेतु होता है और इसी को ही अपने कर्मों के फल की प्राप्ति कहते

हैं। इस संदर्भ में जान लो कि कलियुग को कर्मयुग कहते हैं। कर्म से जो भी कर्मफल की अधीनता स्वीकार कर्म करते रहने को ही प्रधान मान लेता है वह कभी भी निष्कामी नहीं हो सकता और कर्मगति से नहीं बच सकता।

सुकर्म यानि अच्छा काम। ऐसा उत्तम करने वाला मानव ही सदाचारी बन सकता है।

धर्म मानव की वह वृत्ति होती है जो उसमें सदा रहे, उससे कभी अलग न हो। इसे उचित-अनुचित का विचार करने वाली चित्तवृत्ति भी कहते हैं। यह वह आचरण होता है जो लोक व समाज की स्थिति के लिए तो आवश्यक होता ही है साथ ही इसके द्वारा समाज की रक्षा व सुख-शांति में भी वृद्धि होती है और परलोक में भी उत्तम गति प्राप्ति होती है। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि किसी निर्देशित कर्म का विधिपूर्वक नियमानुसार करना ही धर्म है। सुख, शांति और पवित्रता का जीवन व्यतीत करने के लिए धर्मपरायण बने रहना आवश्यक है। इस संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें कह रहा है:-

धर्म ते चली अधर्म न करी, खुशी विच उमर बिता।

इस सदर्भ में सजनों जानो कि मानव होने के नाते, मानवता हमारा धर्म है। यह धर्म प्रत्येक मानव के जीवनकाल का आरम्भ होते ही उसके हृदय में विद्यमान हो जाता है और आजीवन जीवित रहता है। उसे स्थापित या सुरक्षित रखने हेतु मानव को धर्मानुसार चलते रहना होता है। अपने धर्म को सम्भाले रखने के लिए दृढ़ संकल्प हो उसे ध्यान से

अपने अधिकार में कर आजीवन थामे रखना होता है ताकि धर्म रूपी धरोहर की धारणा का बोध सदा हमारे मन-मस्तिष्क में बना रहे और हम उसको सत्यता से उपयोग में ला सकें। यह अपने धर्म पर अधिकार रखने की क्रिया कहलाती है।

इस निज धर्म का सजनों निष्कामता व अकर्त्ता भाव से पालन करना होता है। यह होता है मानव का धर्म संगत कर्म करना और उस कर्म के प्रभाव से निर्लेप रह सदा तृप्त रहना। ऐसे मानव का ही मन स्थिर व चित्त स्वस्थ होने के साथ-साथ शांत भी होता है। फिर वह जो भी करता है सुकर्म ही कहलाता है। ध्यान दो सजनों जब तक इस अखिल ब्रह्मांड में सुकर्मों का राज रहता है तब तक के समयकाल को सतयुग यानि धर्मयुग के नाम से जाना जाता है। इसी विषय में आओ अब आगे प्रश्नोत्तर के माध्यम से जानते हैं:-

सतयुग को धर्मयुग क्यों कहते हैं?

सतयुग को धर्मयुग इसलिए कहते हैं क्योंकि सतयुग के सजन धर्ममय अर्थात् धर्म से परिपूर्ण पुण्यात्मा अपने आप में धर्म का प्रमाण होते हैं। उनका चित्त वैराग्य के अभ्यास से सब वृत्तियों से रहित हो जाता है। वे धर्म-बुद्धि वाले अर्थात् धर्म-अधर्म, भले-बुरे का विचार करने वाले धर्मशील होते हैं। उनकी धर्म में आस्था, श्रद्धा, भक्ति और प्रवृत्ति होती है और उनके अंदर धर्म-बल महान होता है। वे धर्म की पालना या रक्षा करने वाले तथा धर्म के कामों का यथाशक्ति अनुष्ठान करने वाले होते हैं। वे धर्म पर अधिकार रखने वाले होते हैं तथा धर्म मार्ग पर चल कर अपने कर्त्तव्यों का पालन करते

हैं। वे धर्म की पालना करते हुए धर्म का ही उपदेश करने वाले होते हैं या हम कह सकते हैं कि वे धर्म का मर्म जानने वाले धर्मज्ञ, श्रेष्ठ तथा धर्मवीर होते हैं। धर्म से उत्पन्न होने वाला सुख प्राप्त कर उनका आचरण व भावना धर्मानुसार होती है। वे धर्म का तत्व खुद समझते हैं और दूसरों को भी समझा सकते हैं। उनका व्यवहार सदा धर्म अनुरूप ही होता है और अपने धर्म को सुरक्षित रखने हेतु वे सजन अपना तन, मन, धन वारने से भी नहीं सकुचाते। इसलिए वे सभी विचारक और न्यायकर्ता होते हैं और धर्मार्थ यानि पुण्य के विचार से परोपकार के लिए सदा तत्पर रहते हैं। तभी तो सतयुग में सुकर्मों का राज होता है और वे धर्मरक्षक सजन निरंतर सुख, शांति, एकता और पवित्रता का जीवन व्यतीत करते हैं।

इस युग में धर्म का रक्षण और पालन करने वाले कौन होते हैं?

भगवान श्री विष्णु।

क्या कारण है कि धर्मयुग आज अधर्म युग में परिवर्त्तित हो गया है?

इस सत्य का बोध कराते हुए सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ जनाता है कि :-

'सतवस्तु में संकल्प नहीं होता लेकिन त्रेते में स्वभावों में तबदीली होने के कारण संकल्प पैदा हो जाता है तो उसके साथ-साथ झुखना शुरू और रोना उग पड़ता है। द्वापर युग में स्वभावों में तबदीली होने के कारण संकल्प बढ़ना शुरू हो

जाता है इसीलिए झुखना अधिक होता है और रोना बढ़ जाता है। सजन कलुकाल के युग में संकल्प बिल्कुल बढ़ जाता है और झुखना ही झुखना व रोना ही रोना हद से ज्यादा हो जाता है।'

अर्थात् मानव के शान्त मन में संकल्प का उपजना ही युग परिवर्त्तन का हेतु बनता है। यह संकल्प ही त्रेता से लेकर कलियुग के अंतिम चरण तक सजनों के आचार, विचार व व्यवहार से धर्म छूटने की क्रिया का कारण बनता है। फलतः मानव जाति का पतन हो जाता है और धर्मनिष्ठ सजनों को कई प्रकार की हानि या कठिनाई सहनी पड़ती है।

कुल सृष्टि धर्म-च्युत इस पतनोन्मुख अवस्था से कैसे उबर सकती है?

इस संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें बताता है कि-

'कलुकाल के बाद चौरासी के अन्त में सजन श्री शहनशाह हनुमान जी की समभाव-समदृष्टि की सौखी युक्ति के वर्त्त-वर्त्ताव से झुखना हट जाता है और रोना बन्द हो जाता है।'

फिर इस ग्रन्थ में यह भी कहा गया है-

धर्म दा झण्डा झुलावनगे, सुकर्मां दा राज लियावनगे।।
ठंडी आवे हवा हवा।

अर्थात् सृष्टि को सच्चाई-धर्म के मार्ग पर स्थिरता से अग्रसर करने हेतु सतयुग दर्शन शंख, चक्र, गदा, पदम् धारी श्री साजन जी प्रगटते हैं और वह सजनों को सजन श्री

शहनशाह हनुमान जी द्वारा प्रदत्त युवावस्था की भक्ति अर्थात् समभाव-समदृष्टि की युक्ति को अपनाकर, सजन-भाव अनुरूप आत्मीयता का व्यवहार करने के लिए प्रेरित करते हैं। इस प्रकार सजन श्री शहनशाह हनुमान जी की सौखी युक्ति को अपनाकर सम, संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म के सवाल हल करने से, संकल्प का झुखना मिट जाता है और रोना बन्द हो जाता है। फलतः उच्च बुद्धि, उच्च ख्याल, भक्ति प्रबल और शक्ति ताकतवर होने से इंसान विचार, सत्-ज़बान, एक दृष्टि, एकता और एक अवस्था में ठहर जाते हैं और निष्काम रास्ते पर बढ़ते हुए परोपकार कमाते हैं। इस तरह मानव जाति फिर से सच्चरित्र, धर्म-परायण बन जाती है और फिर से सतयुगी संविधान व साम्राज्य की स्थापना होती है। धीरे-धीरे फिर से धर्म चार पादों पर स्थिर हो जाता है।

किस देश को धर्म के संचय के लिए आदर्श कर्म-भूमि माना गया है?

भारतवर्ष को यह सौभाग्य प्राप्त है। इसी भूमि पर स्थित समभाव-समदृष्टि के स्कूल से पढ़ाई जा रही 'युवावस्था की भक्ति' यानि 'समभाव-समदृष्टि की युक्ति' के माध्यम से ही प्रत्येक मानव को 'सजन-भाव' की पढ़ाई व गुढ़ाई करा, पुनः मानवता अनुरूप आचार-विचार अपनाकर, तद्नुरूप व्यवहार दर्शाने के लिए प्रेरित किया जाएगा। इस प्रकार समभाव-समदृष्टि की युक्ति के प्रयोग में पारंगत बन प्रत्येक इन्सान न केवल निज धर्म-रक्षा करने में समर्थ हो सकेगा अपितु आने वाली पीढ़ियों को भी उसी मानव-धर्म को धारण

करने की प्रेरणा देगा। इस तरह कुल समाज के सदस्य 'समभाव-समदृष्टि की युक्ति' के अनुकूल, संतोष-धैर्य की पोशाक पहन कर, सच्चाई-धर्म की राह पर निष्कामता से चलते हुए परोपकार कमा सकेंगे और सदाचारी बन अपने धर्मज्ञ होने की आदर्शतम मिसाल कुल दुनियां के आगे रखेंगे।

इस विवेचना से सजनों स्पष्ट होता है कि सतयुग में हर मानव सुकर्म करता तो है पर उसमें जकड़ता नहीं। इसलिए तब संकल्प नहीं होता और हर मानव अकर्त्ता भाव में स्थित होता है। त्रेता में जैसे ही इंसान की पकड़ से धर्म छूटने लगता है तो एक मर्यादित व्यवस्था तैयार की जाती है ताकि इंसान अपने धर्म के प्रति जाग्रत रह केवल सुकर्म करे। यहाँ संकल्प और कर्त्ता-भाव हृदय में पनपता है। कर्त्ता भाव के प्रभाव द्वारा इंसानों का मन-मस्तिष्क सुकर्मों में जकड़ा जाता है और अहं-भाव के पनपते ही 'विचार ईश्वर है अपना आप' के स्थान पर 'अविचार ईश्वर है इक साथ' यानि सेवक-स्वामी का चलन आरम्भ हो जाता है। इसी द्वि-भाव के पनपने के कारण इंसानों के अन्दर से आत्मीयता का भाव छूट जाता है तथा वड-छोट, मान-अपमान, अमीरी-गरीबी, तेरी-मेरी इत्यादि जैसे भाव विकसित होने लग जाते हैं। द्वापर में जैसे ही इंसानों के लिए मर्यादित अवस्था में बने रहना मुश्किल हो जाता है वैसे ही धीरे-धीरे इंसानों के अन्दर से धर्मसंगत कर्म करने का विचार समाप्त होता जाता है और अविचार के कारण सुकर्म इंसान की पकड़ से छूट जाते हैं। इस तरह धीरे-धीरे केवल कर्म करने को ही मानव अपने जीवन का मकसद बना लेते हैं और किए हुए कर्म के

फल की इच्छा मानव को सताने लगती है। इच्छाओं के वशीभूत हुआ इंसान का मन चंचल हो जाता है और मन-मस्तिष्क का संतुलन बिगड़ जाता है। इसी संतुलन को पुनः स्थापित करने के लिए द्वापर में कर्मयोग यानि निष्काम कर्म करने के सिद्धान्त की पालना पर जोर दिया जाता है। कलियुग में सजनों धर्म-सुकर्म और कर्म तीनों ही मानवों के ख़्याल की पकड़ से छूट जाते हैं फलस्वरूप अधिकतर मानव कुकर्म-अधर्म करने लगते हैं और धर्म के नाम पर भिन्न-भिन्न कर्मकांडों, आडम्बरों व भिन्न-भिन्न धर्म संप्रदायों, सन्त सम्प्रदायों व पंथों में उलझ कर निज धर्म हार बैठते हैं। क्या आप जानना चाहोगे कि ऐसा क्यों होता है?

हाँ जी।

तो इस वार्त्तालाप को ध्यान से सुनो-

ध्यान दो अनादि काल से जगत में सनातन तत्व 'धर्म' के प्रतिनिधि अपौरुषेय ग्रन्थ वेद माने गए हैं। इस सनातन तत्व 'धर्म' के स्थान पर किसी अध्यात्मिक महापुरुष को मानने वालों के अनुयायियों के अपने-अपने अनेक धर्म-संप्रदाय या मज़हबी शासन प्रणालियाँ हैं। इन सभी भारतीय सम्प्रदायों का सामूहिक नाम हिन्दु धर्म है। अब तो हिन्दु धर्म के साथ-साथ, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई आदि धर्म सम्प्रदाय भी विकसित हो चुके हैं जिनके कारण हर धर्म के अनुयाई अपने ही सम्प्रदाय को विशेष महत्त्व देते हैं और अन्यों यानि दूसरों से द्वेष जैसी संकीर्ण भावना रखते हैं जिससे सामाजिक व्यवस्था चरमरा चुकी है। तभी तो सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है-

धर्म छोड़े इन्सान ओ सारे, धर्म छोड़े ओ सृष्टि सारी।
विपत्ति खरीद लई ओन्हा ने हो गये आपस विच शिकारी।।

सजनों इस परिप्रेक्ष्य में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में यह भी कहा गया है-

'जेहड़ा आद जिव्हा ते अक्षर लिखया सी,
उस नूं क्यों तुसां छोड़ दिया।
उस नूं क्यों तुसां छोड़ दिया,
उस वल्लों क्यों मुख मोड़ लिया।।
आद अक्षर नूं छोड़ दिया,
सुकर्म धर्म वल्लों मुख मोड़ लिया।
योग साधना दे दो अक्षर,
ओन्हां वल सजनों तुसां ध्यान न दिया।।
आद अक्षर नूं छोड दिया,
जन्म अपने नूं क्यों रोल दिया।

सजनों इन धर्म-संप्रदायों या मज़हबी शासन प्रणालियों की उपस्थिति ने 'शब्द है गुरु' के भाव से हटकर शरीरों, तस्वीरों व मूर्तियों को गुरु पद के रूप में मान्यता प्रदान की है। इस संदर्भ में यह सत्य तो सब जानते ही हैं कि जहाँ 'शब्द' शाश्वत होने के कारण सदा सम रहता है वहीं शरीरों, तस्वीरों व मूर्त्तियों की अनित्यता से भी हम अपरिचित नहीं हैं। अतः इस गम्भीर परिस्थिति को सजनों समझने की आवश्यकता है ताकि हम सभी पराए विधर्मों को छोड़कर निज मानव-धर्म अनुकूल ढल सकें।

इस संदर्भ में सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ 'शब्द है गुरु

शरीर नही,' इसकी महत्ता को स्पष्ट करते हुए कह रहा है-

आद अक्षर नूं याद करके,
भुलियां जन्मां दा जीवन बनाए लिया।।
आद अक्षर बड़ा बलवान है जी,
ओही साथी ओही शान अक्षर साडे नाल जासी।
युक्ति लै के रमणे वालड़े नूं,
रोम रोम दे विच रमा लिया सी।।
दुनियां वालियो आद अक्षर जैं पहिचान लिया,
अमर उसने अपना नाम किया।
सर्व आत्मा विच परमात्मा नूं,
उसने ही सजनों जान लिया।।

अतः ग्रन्थ कह रहा है-

'शब्द गुरु जो जानियों शब्द गुरु करो प्रवान,
शब्द गुरु है मूल मन्त्र शब्द गुरु है महान।'

अर्थात् ब्रह्माण्ड के प्रत्येक चराचर प्राणी में नैतिक स्तर पर परस्पर समन्वय व सामंजस्य स्थापित करने के लिए सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान भगवान ने शब्द गुरु की मूल सिद्धान्त के रूप में व्याख्या की है। जान लो कि यह मूल मन्त्र यानि शब्द गुरु ही हमारा आध्यात्मिक पथप्रदर्शक है और यही आत्मीयता का स्रोत शब्द गुरु ही परमानन्द की प्राप्ति हेतु दिव्यता की खिड़की खोलने की कुंजी है। इस प्रकार यह आद् शब्द ही वह केन्द्र बिन्दु है जहाँ से हर पदार्थ के अन्दरूनी (आध्यात्मिक) व बैहरूनी (भौतिक) ज्ञान का प्रकटन हो रहा है। यही सुरत व शब्द के मिलन का व

विलीन होने का केन्द्र बिन्दु है। तभी तो इस सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में यह भी कहा गया है-

'ओजी शब्द गुरु मन लवो,
अपना आप ही पहचानो।
फिर प्रीत उसे नाल बढ़ाओ,
ओजी ओ ओजी ओ ध्यान उसे दा लावो।।

ओही ईश्वर ओही परमात्मा,
ओजी ओही है भगवन्त।
सजनों जोत नाल जोत हो जावो,
ओजी ओ ओजी ओ ध्यान उसे दा लावो' ।।

स्पष्ट है सजनों कि जीव इसी की संगति में बने रह ही पूर्ण चेतन अवस्था को प्राप्त रह समभाव-समदृष्टि का कुशलता से अनुशीलन कर सकता है व धर्मपरायण बना रह सकता है, जबकि इसके विपरीत जगत रूपी माया का कुसंग करने वाला अविचारी अवचेतन व अचेतन अवस्था को प्राप्त हो कुमार्ग अपना बैठता है और जीवन का सारा खेल बिगाड़ बैठता है।

अतः सजनों इस नित्य परमेश्वर, अक्षयमान ज्ञान स्रोत शब्द को गुरु मानकर उससे ज्ञान प्राप्त करना ही उचित मानो। याद रखो सृष्टि के आदि काल से वह अनादि, प्रमादि सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान व सर्वज्ञ परमात्मा ही सभी गुरुओं का गुरु रहा है व आज भी है व सदा ही रहेगा। सभी ज्ञानी ध्यान साधना द्वारा उसी से ही प्रबल प्रेम करते हुए, ज्ञान प्राप्त करते हैं और जोत नाल जोत हो जाते हैं। इस प्रकार

उस पूर्ण से ज्ञान लेकर उसके बाद फिर पूर्ण ही रह जाता है। इस तरह उसका ज्ञान कभी भी क्षीण नहीं होता। इतिहास गवाह है कि आज तक जितने भी शरीरधारी गुरु हुए वह सभी गुरु कराल काल के गाल में मिल गए पर वह जो कालातीत है यानि काल का भी काल है वह सच्चा उपदेशक आज तक वैसे का वैसा शाश्वत है।

याद रखो यह सारी सृष्टि उसी का ही बोध कराती है। अतः उसे खोजने व पाने के लिए कहीं जाने की व दर-दर भटकने की आवश्यकता नहीं क्योंकि वह तो सर्वत्र व्याप्त यानि विद्यमान है। ज़र्रा-ज़र्रा, पत्ता-पत्ता, उसकी सत्ता तथा महत्ता का वर्णन कर रहा है यानि उसे हर जगह पा सकते हो। देखो, देखो आँखे खोल कर देखो। नहीं दिखता तो उस कृपालु के वेद-वचनों को सुनो व उन्हें ही धार उसे ही सत्य उपदेशक मान, उसी की विचारधारा अनुसार चलन अपनाओ व उसी सदाचारितापूर्ण चलन पर धर्मसंगत बने रहने में ही अपनी शान मानो।

याद रखो वह अत्यन्त विचित्र है तभी तो सर्वव्याप्त होते हुए भी किसी को भी इस स्थूल दृष्टि से दिखता नहीं। दिखाने के लिए उसका कोई रूप है ही नहीं, वह तो रूप-रंग-रेखा से रहित है। उसे तो हृदय और मन से अनुभव करना होगा क्योंकि सब जगह रहने वाला चराचर जीवों के हृदय में विशेषतः रहने वाला है। उस हृदय में रहने वाले को हृदय तथा मन से जानो और मुक्ति प्राप्त करो। इस हेतु उसके प्रति श्रद्धा और विश्वास के साथ सीस अर्पण कर दो और अधर्म के रास्ते से हट निष्कंटक धर्म के रास्ते पर निष्कामता से बने रहो।

स्पष्ट हैं सजनों संतोष-धैर्य का श्रृंगार पहन, सच्चाई-धर्म पर बने रहने हेतु परमेश्वर अनेकों प्रकार से जीव को सत्य बोध कराते हैं। उन द्वारा कराए गए सत्य ज्ञान के बोध से ही मानव अपने मानवता धर्म को जान व पहचान पाता है और उस पर सुदृढ़ता से बने रहने हेतु उचित पराक्रम दिखा पाता है। इसके विपरीत तो वह सांसारिकता को ही अपना धर्म मान द्वि-द्वेष व छल-कपट का चलन अपना बैठता है।

इस सन्दर्भ में सजनों सभी स्वीकारेंगे कि इसी मूलमन्त्र शब्द को गुरु मानकर 'ईश्वर है अपना आप प्रकाश, ईश्वर है अजपा जाप' का बोध करने वाली मानव जाति, सतयुग में अपने एक ही शाश्वत निज धर्म का पालन करते हुए एकता, एक अवस्था का प्रतीक बनी रही। इसके विपरीत आज धर्म के नाम पर भिन्न-भिन्न आडम्बरों, कर्मकांडों, भिन्न-भिन्न धर्म संप्रदायों, सन्त सम्प्रदायों व पंथों में उलझी मानव जाति अपना निज धर्म हार बैठी है और अपने आप को एकरस आचार-व्यवहार अपनाते हुए न्यायसंगत सत्य बात कहने व खुद पर न्यायसंगत शासन करने में असमर्थ पा रही है।

इस परिस्थिति का व्यक्तिगत व सामाजिक रूप से क्या दुष्प्रभाव पड़ा है?

आज की परिस्थिति को देखते हुए हम कह सकते हैं कि मानव जाति खंड-खंड हो अपने-अपने धर्म-संप्रदाय या मत, मज़हब आदि के अनुसार लौकिक कृत्य को ही धार्मिक कृत्य मानने लगी है। तभी तो तीर्थ स्थानों की ओर भाग रही है और अनेक प्रकारों के कर्मकांडों में उलझ चुकी है। जगह-जगह पर अपने-अपने धर्म-संप्रदाय के पूज्य ग्रन्थ के

अनुसार ही दीक्षा लेने व धार्मिक उपदेश देने का सिलसिला चल रहा है जिससे शारीरिक पूजा-मानता करने व करवाने को बढ़ावा मिल रहा है। इस प्रकार अपने-अपने धर्म संप्रदाय या मज़हब को लाभ पहुँचाने की प्रवृत्ति की अधिकता के कारण अच्छे-बुरे का विचार छूट रहा है। स्वार्थ साधने वाले, एक दूसरे के संप्रदायों के प्रति उपेक्षा भाव से ग्रस्त हो आत्मिक ज्ञान के स्थान पर अलगाववाद व भौतिकवाद को बढ़ावा दे रहे हैं।

इन तथ्यों के दृष्टिगत हम मानवों के लिए क्या बनता है?

चूंकि सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हम सबको कह रहा है-

पाप हटाना है, धर्म बचाना है

अतः इन तथ्यों के दृष्टिगत हम मानवों के लिए बनता है कि निज शाश्वत धर्म रूपी रथ के रुके हुए पहिए को, तत्वज्ञान के उत्तम उपदेश तथा व्यवहार में उस ज्ञान के प्रयोग द्वारा, पुनः संचालित करें ताकि धर्म का आडंबर खड़ा करके स्वार्थ साधने वालों के चंगुल से खंड-खंड हुए मानवों का अशांत मन, पुनः शाश्वत सनातन धर्म में लीन हो शांत हो जाए। इस प्रकार मानव आत्मतुष्ट हो धीर हो जाए। यही धीरता ही हमें निष्कामता से अपने शाश्वत निज धर्म को सत्यता से व्यावहारिकता में उतारने के योग्य बना धर्मपरायण बना पाएगी। तभी प्रत्येक इंसान उत्तम आचरण करने वाला बन धर्म के सिद्धांतों में दृढ़ विश्वास और श्रद्धा रखते हुए निज धर्म पर तन-मन-धन वारने के लिए सदा तत्पर रहेगा। इस

प्रकार वह अपने जीवनकाल में सत्यनिष्ठा से एक पराक्रमी, अच्छे व नेक मानव के रूप में सबके साथ नीति अनुसार समरस व्यवहार करते हुए खुद को जगत से स्वतंत्र रख पाएगा। यह होगा उसका जगत पर विजय प्राप्त कर पुनः अपने घर परमधाम को प्रस्थान कर विश्राम को पाना।

उपरोक्त समस्त विवेचना से सजनों स्पष्ट होता है कि निज मानव धर्म के आचरण का अभाव और अधर्म का व्यापक आचरण ही धर्म के नाम पर होने वाले आडम्बर, कर्मकांड, उन्माद यानि परस्पर लड़ाई-झगड़े, वैर-विरोध व हमारे सदाचारहीन होने का एकमात्र कारण है। इसलिए तो हम पुण्यात्मा होते हुए भी पथभ्रष्ट हो पाप कर्म करने से नहीं सकुचा रहे। इस संदर्भ में सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें कह रहा है कि 'धर्म का रास्ता महान है, इसी में हमारी जीत है'। अर्थात् निज धर्माचरण से ही हम मानव उस ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट कृति होने का सत्य सिद्ध कर सकते हैं और परमपद को प्राप्त कर विजयी हो सकते हैं। अतः सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित इस सत्य का पालन करते हुए विषम परिस्थिति में भी धर्म मत हारो। याद रखो धर्म हारने का अर्थ है, उपाधि खरीद करना। यहाँ उपाधि से तात्पर्य भ्रम, धोखा, छल-कपट, विघ्न, बाधा, भेद की प्रतीति कराने वाले वस्तु धर्म से है। इस सन्दर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है-

'उपाधि जिस घर वड गई सजनों,
दूर करन दा एहो है उपाय।
सच्चाई धर्म नूं धारण कर लवो।
संकटटारी ओ करन बचाओ'।।

इस प्रकार इस उपाधि से बचाने हेतु सजनों यह ग्रन्थ हमें सच्चाई और धर्म में स्थिर रह उत्तम-पुरुष बनने, सच्चाई-धर्म से ही प्यार करने व सच्चाई-धर्म का ही व्यापार करने का उपदेश देता है। इसी के साथ ग्रन्थ हमें यह भी सन्देश दे रहा है-

'सतवस्तु दी इक लहर चलेगी,
सच्चाई धर्म दे दो मन्त्र राहवनगे बाकी'।

अतः सजनों ईश्वर के आदेश को मानते हुए सच्चाई और धर्म को ही अपना हितकारी तथा सच्चा साथी मानो व इस तरह सत्यपरायण व धर्म निष्ठ बनो। इसी सन्दर्भ में आओ अब धर्मनिष्ठा को सूक्ष्मतः समझते हैं-

धर्मनिष्ठा का मुख्य अर्थ क्या है?

1. धर्मनिष्ठा का शाब्दिक अर्थ है धर्म में निष्ठा रखने वाला, धर्म के सिद्धान्तों और नियमों में दृढ़ विश्वास और श्रद्धा रखने वाला, धर्म के नियमों के अनुसार उत्तम आचरण करने वाला।

2. साधारण शब्दों में मत-मज़हब से, सम्प्रदाय से ऊपर होकर, मानवीय मूल्यों के लिए आस्तिक होकर जीवित रहने का नाम धर्मनिष्ठा है।

3. धर्मनिष्ठा के अंतर्गत अन्धविश्वासों कुतर्को एवं सन्देह का कोई स्थान नहीं होता। यह तो सद्‌गुणों/मानवीय आदर्शों/धर्म को धारण कर उसकी रक्षा के लिए जीवन तक को बलिदान करने का नाम है।

4. याद रखो धर्मनिष्ठ विघ्न-बाधाओं के आने पर भी न्याय मार्ग से विचलित नहीं होता। इस परिप्रेक्ष्य में सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है -

'धर्म सच्चाई दे रस्ते ते चल गए,
पिता जी दे वचन करन प्रवान।
देखो गुरु गोबिन्द सिंह जी दे लाडले,
धर्म ते जानां वारियां ओ रोशन नाम करन'।

अतः हम कह सकते हैं कि निष्काम भाव से प्रेरित होकर लोकमंगल के लिए कार्य करना धर्मनिष्ठा की सार्थक परिभाषा है। ऐसी धर्मनिष्ठा ही आत्मोद्धार का मार्ग प्रशस्त करती है।

धर्मनिष्ठा का अनिवार्य्य तत्व क्या है?

धर्मनिष्ठा के दो रूप हैः आन्तरिक एवं बाह्य।

सद्गुण का मानसिक विकास धर्मनिष्ठा का आन्तरिक पक्ष है तथा उन्हें क्रियात्मक रूप देना इसका बाह्य पक्ष है। धर्मनिष्ठा के अनेक सोपान हैं, जिनमें सत्य-असत्य का विवेक, विमुखता यानि दुर्व्यसनों का त्याग, सद्ज्ञान का अभ्यास, कल्याण अर्थात् निष्काम भाव से सेवा एवं परोपकार, भगवद-प्राप्तिजन्य सत्क्रिया, अनवसाद यानि बार-बार अभिशत घटना का चिन्तन न करना एवं अनुहर्षात् अर्थात् किसी भी सुखद घटना में हर्ष से न फूलना प्रमुख हैं- ये धर्मनिष्ठा के सात सोपान हैं।

याद रखो सामर्थ्यवान ही धर्मनिष्ठा का निर्वाह करता है तथा इसे हर क्षेत्र में देखा जा सकता है। इसके अभाव में नारकीय जीवन के दर्शन होते हैं। धर्मनिष्ठा का अभिप्राय है नैतिक

एवं सामाजिक नियमों का हर स्थिति में अनुपालन, जिसके अभाव में सर्वत्र अशान्ति के दर्शन होते हैं। धर्मनिष्ठा के लिए सबल मन के अतिरिक्त, उपयुक्त आलम्बन (आश्रय) साधन, वह भी औचित्यपूर्ण होना अपेक्षित है।

धर्मनिष्ठा का विधि एवं निषेधपरक प्रयोग क्या है?

धर्मनिष्ठा के स्वरूप को दो रूपों में देखा जा सकता है। आत्मोत्कर्ष तथा परोपकार से प्रेरित धर्मनिष्ठा प्रेरक होती है क्योंकि इसका लक्ष्य लोकमंगल होता है किन्तु आभासित धर्मनिष्ठा का प्रेरक दुराग्रह होता है। अपयश और अशान्ति इसका दुष्परिणाम है। इसके विपरीत उचित मार्ग में उत्पन्न धर्मनिष्ठा जीवन को महिमामंडित बना देती है। अतः इसका सार्थक उपयोग होना आवश्यक है जिससे मानव शान्तिप्रिय एवं प्रेरक बन सके।

धर्मनिष्ठा को विकसित करने के साधन क्या हैं?

धर्मनिष्ठा विकसित करने के लिए मननशीलता एवं दृढ़ संकल्पी होना अपेक्षित है।

धर्मनिष्ठा की कसौटी क्या है?

औचित्य व विवेक ही धर्मनिष्ठा की कसौटी हैं।

धर्मनिष्ठा का महत्त्व व उपयोगिता स्पष्ट करो?

आन्तरिक गुणों के विकास से महानता विकसित होती है। इन गुणों से विहीन, गन्धहीन कागज़ी फूल के समान अर्थहीन होता है। उसका सौन्दर्य, सुगन्धि के बिना अर्थहीन होता है। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखें, तो धर्मनिष्ठा के दर्शन

प्रकृति में भी होते हैं। नदियाँ, वृक्ष, फल-फूल, पर्वत-समुद्र, पशु-पक्षी, निखिल चराचर परोपकार की धर्मनिष्ठा से प्रेरित होकर जीवों को उपकृत करते हैं। प्रकृति का मनुष्य से आग्रह है कि वह भी धर्मनिष्ठ होकर जीवन को सार्थक बनाए तथा हिंसा की ज्वालाओं को करुणा व दया के जल से संवेदनशील होकर बुझाए। जैसे सूर्य-चन्द्रमा नियमित रूप से अपने निर्धारित पथ पर चलते रहते हैं, उसी प्रकार मानव को भी धर्मनिष्ठा का मार्ग नहीं छोड़ना चाहिए। धर्मनिष्ठा का अनुपालन करने से ही सच्चा सुख तथा अधर्म से दुःख प्राप्त होता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

'धर्म सच्चाई नूं फड़ लवो,
महाराज नाल न छडो प्रीत सजनों।
सच्चाई धर्म ही नाल चलेगा,
इसे विच है तुआडी जीत सजनों' ।।

स्पष्ट है सजनों मानव में धर्मनिष्ठा की चेतना का प्रकाश उसकी जाग्रति का प्रतीक है। धर्मनिष्ठ सत्यासत्य में विवेकशील रहकर अपने जीवन रूपी रथ का संचालन सदैव धर्म के प्रशस्त राजमार्ग पर करता है। अपने व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठकर परमार्थ की भावना से सदा प्रेरित रहता है। धर्मनिष्ठा न केवल उसे आत्मसुख देती है अपितु उसकी मुक्ति की साधिका भी बनती है, जिससे उसे जीवन का परम लक्ष्य प्राप्त हो जाता है। धर्मनिष्ठा से उन्नति व विकास होता है। तभी तो वेद कहते हैं हे मानव तू ऊँचा उठ, नीचे मत गिर। निराशा और पराजय की नहीं, धर्मनिष्ठ होकर आशा और विजय की भावना रख। ध्यान से सुनों सजनों इस संदर्भ

में ईश्वर आवाहन देते हुए कहते हैं कि सभी मानव धर्म से प्रेम कर धर्मनिष्ठ हो जाओ और अपने धर्म की पालना हेतु पूर्णतः तत्पर हो जाओ। इस हेतु समभाव समदृष्टि की युक्ति अनुसार सजन-भाव की पढ़ाई व गुढ़ाई कर पुनः मानवता रूपी आचार-विचार अपनाने के अपने दृढ़ संकल्प को निज धर्म की रक्षा के लिए किया जाने वाला युद्ध या उत्तम उद्देश्य मानो। इस उद्देश्य के लिए कभी भी किसी प्रभाव व प्रलोभन में आकर झूठ मत बोलो अपितु एक न्यायाधीश की तरह जो भी करो वह न्याययुक्त हो कर करो और धर्माचारी कहलाओ। किसी के प्रति द्वेष की भावना न रखो और न ही अपने हित के लिए कोई अनुचित काम करना उचित समझो।

अंत में हम कहना चाहते हैं कि अगर माता-पिता, परिवारजन, समाज वाले यहाँ तक कि आज के शासक न्यायसंगत और पक्षपात रहित निज मानव धर्म में स्थित पवित्रात्मा हो जाने का परम पराक्रम दिखा पाते हैं और वे सम्पूर्ण मानव जाति को वैसा ही पराक्रमी बना पाते हैं तो निःसंदेह स्वतः ही इस पावन धरती पर पुनः सतयुग आ जाएगा। इस प्रकार आज की नारकीय परिस्थितियों से छुटकारा प्राप्त होगा। अब अविलम्ब इस कार्य सिद्धि हेतु आप सब स्वतंत्र हो। अंत में प्रार्थना है कि इसके प्रति एकता दिखाओ और पूरी लगन व उत्साह के साथ, सब बुराईयाँ त्याग कर, इस कार्य को कर डालो और इस विश्व को विनाश से बचाकर उद्धार हेतु जाग्रत करो। हम सच कह रहे हैं कि ऐसा होने पर भारत माता हर्षा उठेगी और भारत माता की जय जयकार करना उसके प्रति यथार्थतः अपनी श्रद्धा

व्यक्त करने का प्रतीक होगा। इस प्रकार धर्म की बात को समझो व धर्मज्ञ बन इस संसार से अधर्म मिटा, पुनः सत्यनिष्ठा से धर्म का झंडा झुला दो। ऐसा करने हेतु सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार खुद जाग्रति में आ, अन्य संपर्क में आने वालों को भी जाग्रत करने के लिए जो चाल अपनानी आवश्यक है वह इस प्रकार है-

जदों दो सत्संगी सजन आपस में मिलें, तो उनको एक दूसरे से सतवस्तु की रामसत इस तरह पूछनी चाहिए-

हमारा पैगाम ले लीजिए,
एहो पैगाम सजनां नूं फरमा दीजियो।
गृहस्थ धर्म को आप ठीक निभा रहे होंगे।
एहो सजनां कोलो पुछ लीजियो,
इस बात दा उत्तर सानुं लिया दीजियो।
यह है रूड़दे हुए सजन को पकड़ लेना।।

सजनों आप नूं पकडो ते सजनां
नूं पकडना सिखा दीजियो।
एहो पैगाम सजनां नूं फरमा दीजियो।
हमारा पैगाम ले लीजियो,
एहो पैगाम सजनां नूं फरमा दीजियो।
सच्चाई-धर्म के रास्ते पर आप ठीक चल रहे होंगे।
एहो सजनां कोलो पुछ लीजियो,
इस बात दा उत्तर सानुं लिया दीजियो।।

यह है गिरते हुए सजन को खड़ा करना।
आप खडा होना ते सजनां नूं खडा होना सिखा दीजियो।
एहो पैगाम सजनां नूं फरमा दीजियो।।

हमारा पैगाम ले लीजियो,
एहो पैगाम सजनां नूं फरमा दीजियों।।

नाम-ध्यान में आप महाराज के साथ जुडे हुए होंगे।
एहो सजनां कोलो पुछ लीजियो,
इस बात दा उत्तर सानुं लिया दीजियो।।
यह है रोते हुए सजन को हसा देना,
आप हस्सो ते सजनां नूं हसना सिखा दीजियो।
एहो पैगाम सजनां नूं फरमा दीजियो।।

हमारा पैगाम ले लीजियो,
एहो पैगाम सजनां नूं फरमा दीजियो।
भक्ति-शक्ति आप ने धारण की हुई होगी।
एहो सजनां कोलो पुछ लीजियो,
इस बात दा उत्तर सानुं लिया दीजियो।।

यह है सोये हुए सजन को जगा देना।
आप जागो ते सजनां नूं जगा दीजियो।
एहो पैगाम सजनां नूं फरमा दीजियो।।
हमारा पैगाम ले लीजियो,
एहो पैगाम सजनां नूं फरमा दीजियो।।

यश और कीर्त्ति में फ़र्क तो नहीं पड़ रहा होगा।
एहो सजनां कोलो पुछ लीजियो,
इस बात दा उत्तर सानुं लिया दीजियो।।
यह है कुरस्ते पडे सजन को रास्ते पर लाना।
धर्म दे रस्ते ते आप चलो ते सजनां नूं ,
चलना सिखा दीजियो।
एहो पैगाम सजनां नूं फरमा दीजियो।।

शब्दः- एहो दृढ़ विश्वास है, एहो तो इतिहास है,
एहो तो यादाश्त है।
उस शहनशाह दाते दी एहो तो करामात है।
सत सत बोलना सीखो, सजनों सत सत करो प्रवान।
सत है गुरू, सत नाम सत ध्यान लाणा सीखो,
सजनों सत सत बड़ा है महान।।

सत सत वर्त्त वर्ताओ करना सीखो
सजनो सत सत करो प्रवान
सत सत बोलना सीखो सजनों
सत आप पढो ते सजनां नूं पढ़ाओ
इसे शब्द नाल हिवे विश्राम।।

धर्म के विषय में इससे आगे अगले सप्ताह जानेंगे।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 10 जनवरी 2016 का सबक

धर्म -(3)
प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

सजनों धर्म के विषय में अभी तक हमें जो भी ज्ञात हुआ उससे स्पष्ट होता है कि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित सत्य ज्ञान सम्पूर्ण मानव जाति को सत्यनिष्ठ व धर्मपरायण बनाने हेतु, आत्मज्ञानी बन, इस जगत में तृप्त व निर्लिप्त विचरते हुए, मानव मर्यादा यानि मनुष्यता में बने रहने का आवाहन कर रहा है।

इस संदर्भ में सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार यह भी जान लो कि मनुष्यता यानि मानवता ही सर्वश्रेष्ठ धर्म

है। मनुष्यत्व शब्द का अर्थ है मनुष्य का धर्म अर्थात् वह धर्म जिससे मनुष्य, मनुष्य कहलाता है। शिष्टता, सभ्यता, व्यावहारिकता, तमीज, दया-भाव, क्षमा, संतोष, धृत्ति, शौच, इन्द्रियनिग्रह, सत्य, परोपकार, शील, संयम, सदाचार, न्याय, एकपत्नित्व, अहिंसा आदि ये सभी मनुष्यत्व के लक्षण हैं, मनुष्यता के वाचक हैं व मनुष्य की पूर्णता के सूचक हैं। इसके विपरीत रोष, ईर्ष्या, राग-द्वेष मनुष्यत्व के प्रतिगामी हैं। मनुष्यत्व खोकर मनुष्य राक्षसत्व को प्राप्त होता है जोकि मनुष्यत्व की अधम अवस्था है। इसलिए कहा गया है कि धर्म के बिना मनुष्य पशु के समान है।

यह भी सर्वविदित ही है कि मनुष्य अपने मस्तिष्क या बुद्धि बल के कारण समस्त जीवों में सर्वोपरि है क्योंकि उसमें अनेक गुणों का विकास हुआ है। याद रखो इन सभी गुणों का समावेश और फिर उनका प्राकट्य ही मनुष्यत्व है। पशु से हटकर आचरण का प्रदर्शन मनुष्यत्व है। शास्त्रों में भी मनुष्य और मानवेतर प्राणियों को विभाजित करने वाला तत्व धर्म माना गया है। यहाँ धर्म का आशय उस कर्त्तव्य से है जो सार्थक जीवन जीने के लिए अति अनिवार्य है। धर्म आदर्श कर्त्तव्य का प्रतीक है। धर्म के सभी आचारमूलक लक्षण मानवता को परिभाषित करते हैं, इसलिए आचार को धर्म का मूल उत्पत्ति स्थान माना गया है। अतः स्वधर्म का पालन मानवता का लक्षण एवं उसका परिचायक है।

आओ अब इसी मानव धर्म व इससे जुड़े अन्य पहलूओं को प्रश्नोत्तर के माध्यम से समझते हैं-

मानव-धर्म क्या है?

मनुष्य का मनुष्य के प्रति क्या कर्त्तव्य है यह समझाने वाला धर्म मानव धर्म कहलाता है। मानव धर्म को अपनाने वाला मानव केवल मानवता यानि मनुष्यत्व को ही अपना परम लक्ष्य व अपने जीवन का केन्द्र मानता है तथा उसी अनुरूप ही अपना सर्वांगीण विकास करता है। इस प्रकार अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि व्रत निभाते हुए वह सदा आंतरिक दुःखों से बचा रह यश-कीर्ति का पात्र बनता है।

व्यापक शब्दों में मनुष्यत्व शब्द से क्या अभिप्राय है?

व्यापक शब्दों में मनुष्यत्व शब्द से अभिप्राय, सब लोगों में नित्य विद्यमान मानव प्रतिष्ठा यानि यश-कीर्ति के दिव्य केन्द्र अर्थात् आत्मा को जागृत कर, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उस गौरव को अभिव्यक्त करने से है। याद रखो कि मन में विद्यमान ईश्वरीय स्फुल्लिंग से प्रदीप्त मानवता की शक्ति भिन्न-भिन्न प्रकार के आधुनिक मानवतावादों से बिल्कुल अलग व धर्मसंगत होती है जिसके प्रयोग द्वारा मन स्वाभाविक तथा सहज रूप से प्रेम, शान्ति व निभर्यता का एक केन्द्र बन जाता है। तभी तो वह कभी भी विध्वंसात्मक नहीं होता व सर्वदा रचनात्मक व सर्वहितकारी बना रहता है।

इस प्रकार सजनों पूर्ण मानवीय विकास तथा उसकी पूर्णता पर ध्यान देने के लिए मनुष्यत्व के इस व्यापक अर्थ को आत्मसात् कर अपने आचार-विचार व व्यवहार द्वारा प्रदर्शित करना अनिवार्य है। याद रखो तभी हम सर्व एकात्मा

का भाव रखते हुए समस्त प्राणियों में समरूप निहित आत्मा में परमात्मा का आदर-सत्कार कर पाएंगे।

1. वह मानवतावादी विचार प्रणाली से प्रेरित मनुष्य–मानव के दुःखों के प्रति सदय रहकर उसको दुःखों से छुटकारा दिलाने का प्रयत्न करता है।

2. वह मनोवैज्ञानिक अपने मन के भावों को जानने वाला होता है। तभी तो वह मनुष्यता का प्रतीक यानि हृदय में मनुष्य का भाव रखने वाले सद्‌गुणों जैसे चित्त की कोमलता, दयालुता, शीलता, क्षमा, सभ्यता, शिष्टता, व्यवहारज्ञान, सुन्दरता, प्रसन्नचित्तता व परोपकारिता आदि से संपन्न होता है व सर्वहित हेतु उनका कुशलता से सदुपयोग करने में सक्षम होता है।

3. वह मानव, मानव-धर्म पर डटे रहने हेतु अपनी प्रारब्ध को प्रसन्नता से स्वीकारते हुए सदैव उसी में संतुष्ट बना रहता है। इसी तरह वह कदाचित् जीवन की किसी भी ऊँच-नीच यानि दुःख-सुख, मान-अपमान, रोग-सोग, ग़रीबी-अमीरी आदि से प्रभावित होकर अपना संतुलन नहीं खोता यानि धीरता से सच्चाई धर्म के रास्ते पर दृढ़ बना रहता है।

4. ईश्वर के हुक्म को श्रद्धा और विश्वास से मानने वाला वह मानव अपने मन-वचन-कर्म द्वारा जो भी विचारता, बोलता व क्रिया करता है वह फल के निमित्त नहीं अपितु मानवता के लिए आदर्श स्थापित करने हेतु होती है। इसलिए कुछ करने व बोलने से पूर्व वह उसके प्रभाव व अंतिम परिणाम को जानकर ही तद्‌नुरूप क्रिया करता है व इस प्रकार उस परमेश्वर का हुक्म बजाता है।

5. उस आत्मविश्वासी का हर प्रयत्न किसी शुभ कार्य को चाहे वह कितना ही कठिन क्यों न हो, पूरा करने के निमित्त होता है तभी तो वह पुरुषार्थी, पराक्रमी व बहादुर कहलाता है।

6. वह सदा आनंदमय अवस्था में बने रहने हेतु अपने विवेक बल का समुचित प्रयोग करने में कुशल होता है। इसलिए केवल वही क्रिया करता है जिससे चहुं ओर निरंतर सुख, शांति और प्रसन्नता का वातावरण बना रहे।

7. उसके आचार-विचार व व्यवहार सजन-भाव अनुकूल होते हैं और वह आत्मरूप में सभी का सत्कार करने को यज्ञ का रूप मानता है।

सारतः हम कह सकते हैं कि अपने जीवन के यथार्थ 'अमर है मेरी आत्मा, आत्मा में है परमात्मा' का बोध होने के कारण वह मार्ग में आने वाली असंख्य बाधाओं व यातनाओं से विचलित नहीं होता व इस हेतु किसी भी प्रकार की सुख-सुविधा व संबंध त्यागने यानि अपने जीवन की आहुति देने से कदाचित् नहीं घबराता। इस प्रकार हर विघ्न-बाधा से उबर वह निष्कामता व निर्भयता से परोपकार करते हुए और अपने जीवन का परम कर्त्तव्य कुशलता से सम्पादित करते हुए जगत से निर्लेप बना रहता है।

क्या कारण है कि मानव-धर्म को अपनाने वाला जगत जंजाल में नहीं फँसता?

जान लो कि जिसे मानव धर्म का बोध होता है वह ईश्वर, जीव और जगत के यथार्थ को भली-भांति जानता है। तभी तो वह इस ब्रह्मांड में सर्वव्याप्त ब्रह्म सत्ता के रूप में ईश्वरीय शक्ति

प्रकृति की प्रत्येक रचना को अखंड मानता है। इस तरह उसका एक-भाव यानि एकता व एकरसता में बने रहना स्वाभाविक यानि कुदरती होता है। ऐसा करते समय किसी बात की चिंता, कामना व आकांक्षा उसे नहीं सताती, न ही जन्म-मरण, रोग-सोग, खुशी-ग़मी, मान-अपमान, अमीरी-ग़रीबी उसे खलती है। हम कह सकते हैं कि वह सदैव परमेश्वर की सर्वव्यापकता को ध्यान में रखता है, अतः जगत जंजाल के भिन्न-भिन्न रूपों व कारणों में नहीं फँसता और सबमें आत्मरूप के यथार्थ को स्वीकारते हुए सबके साथ विचरते हुए भी स्वतंत्र व शांतमय बना रहता है। इस तरह हर परिस्थिति में उसका दिल-दिमाग़ एकरस विश्राममय सधा रहता है।

मानव धर्म अपनाने वाले कभी भी किसी से प्रतिस्पर्धा नहीं करते, ऐसा कैसे संभव हो पाता है?

मानव धर्म अपनाने वाले कभी भी किसी से प्रतिस्पर्धा नहीं करते क्योंकि वे जानते हैं कि मानव धर्म विपरीत आचरण अपनाने से ईर्ष्या और अहंकार को बढ़ावा मिलता है। फलतः हृदय में प्रतिद्वन्द्विता के कारण द्वेष-वैर-विरोध आदि अवगुण पनपने लगते हैं और दूसरों की समृद्धि देखकर उनसे आगे बढ़ने की इच्छा यानि कामना सताने लगती है जिससे व्यक्ति विशेष का दिन-रात का चैन छिन जाता है और रोने-झुखने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है। इस कठिन परिस्थिति से बचने हेतु ही ऐसा मानव अपनी चित्तवृत्तियों को निर्मल व सकारात्मक रख कभी किसी का अशुभ नहीं करता और न ही किसी के प्रति मन में दुर्भाव रखता है। यहाँ तक कि मार्ग में अवरोध उत्पन्न करने वाली मन की खुशियों को वह दुःख का पूर्ण स्वरूप जान उनका भी सहर्ष त्याग कर शान्तमय बना रहता है।

मानव धर्म अपनाने वाले कैसे हर परिस्थिति में विचारशील व न्यायप्रिय बने रह पाते हैं?

चूंकि ऐसा मानव यह जानता है कि वह बौद्धिक बल से संपन्न कुदरत की सर्वश्रेष्ठ कृति है। अतः अपनी इसी श्रेष्ठता व आत्मिक यथार्थ का बोध रखते हुए वह इस संसार में अन्य प्राणियों के अनुरूप नहीं विचरता। यही कुशलता उसे सभी विकारों से बचाए रखने में सहायक होती है और वह निर्विकारी मन में संकल्प-विकल्प का अभाव होने के कारण विचारशील व न्यायप्रिय बना रहता है।

मानव-धर्म अनुसार पुनः पूर्ण मानव बनने के लिए हमें क्या करना होगा?

पुनः पूर्ण मानव बनने के लिए हमें अपने हृदय में अध्यात्म विद्या के रूप में निहित सम्पूर्ण ब्रह्मांड का तत्वज्ञान जो सही अर्थों में मानवता का आधार है उसे अर्जित कर अपनी अध्यात्मिक शक्ति का बोध करना होगा और उसी शक्ति के प्रभाव व पराक्रम द्वारा ही अपना हर कार्य नित्य शाश्वत भाव से ही करना व कराना होगा। इस संदर्भ में हमें याद रखना होगा कि जहाँ अन्य शक्तियों का प्रभाव परिस्थितियों के अनुसार घट-बढ़ सकता है, वहीं इस शक्ति का धारक अपनी आध्यात्मिक शक्ति पर विश्वास रख आद् से अंत तक यानि जन्म से मरण तक समरूप से पराक्रमी बना रहता है। तात्पर्य यह है कि वह प्रत्येक कार्य करने में सामर्थ्यवान हो जाता है और अपना कार्य सिद्ध करने हेतु मौत से भी नहीं घबराता। तभी तो वह सभी मानवता विध्वंसक माया रूपी शक्तियों पर सदा विजयी रहता है।

अतः पुनः मानव बनने हेतु हमारे लिए आवश्यक है कि इस अध्यात्मिक विद्या द्वारा हम अपने मन के दर्पण में आत्मसाक्षात्कार कर मानव धर्म के बोध द्वारा अपनी बुद्धि को इस तरह से प्रदीप्त कर लें कि सर्वव्यापक भगवान का सत्य हमारे लिए कभी भी सवाल न बने और हमें अपना आचार, व्यवहार सजन-भाव अनुरूप साधे रखने में किसी प्रकार की भी कोई कठिनाई न हो। तभी हम इस सत्य के युक्तिपूर्ण, व्यावहारिक व क्रियाशील वाहक बन पाएंगे।

हम मानव-धर्म अपना पाएं, यह कैसे संभव हो पाएगा?

हम ऐसा कर पाएँ इस हेतु हमें इस परिवर्तनशील सत्ता के पीछे विद्यमान अपरिवर्तनीय चिरंतन सत्ता की धारणा को अपना यथार्थ मानना होगा और उस महान सत्य के आलोक में विकसित मानवता धर्म को समभाव से स्वीकारने हेतु उसके प्रति अपने आप को मन-वचन-कर्म से समर्पित करना होगा और सर्वकल्याण हेतु अपनी मनोवृति, दृष्टिकोण और स्वभाव उसी अनुसार ढालना होगा।

इसके अतिरिक्त हमें तत्वज्ञों द्वारा समय-समय पर निश्चित किसी अन्य प्रकार की विचारधारा या कार्यप्रणाली अनुरुप अपना मानसिक विकास करने के प्रति सावधान रहते हुए मानवतावाद को आध्यात्मिकता की ओर मोड़कर उसे जाति व सम्प्रदाय की सीमाओं से बाहर निकालना होगा वरना हम दिव्य-दृष्टि पदार्थों व बातों को देखने और समझने की शक्ति खो बैठेंगे। इस तरह उत्तम और सुशील बनने के स्थान पर हमारी चेतना इन्द्रियों तथा अहं के स्तर पर ही कार्य करती रहेगी और हम बुरे इंसान बन अपने आचार व व्यवहार द्वारा

केवल अशांति व तनाव ही फैलाते रहेंगे।

इस संदर्भ में हमें यह भी अच्छी तरह से याद रखना होगा कि हमारा जीवन व्यक्तिगत व इन्द्रिय सुखों के लिए नहीं है यानि केवल इन्द्रिय तृप्ति को जीवन का लक्ष्य बनाकर जीवन बिताना मनुष्यत्व की निशानी नहीं है। अतः हमें अपने अंतःकरण में दिव्यता की अनुभूति एवं अभिव्यक्ति द्वारा सबके साथ प्रेम रखते हुए, गंभीर चुनौतियों का सामना भी आत्मविश्वास के साथ करना होगा। इस हेतु हमें त्याग करना सीखना होगा। इससे समस्त प्राणियों को अपने समान समझते हुए मनुष्यत्व की उच्चतम भावभूमि विकसित होगी तथा परोपकार की भावना का उदय होगा। सजनों चाहे यह अपने पुनर्निर्माण का कार्य कठिन लगे पर हमें यह जानना समझना होगा कि दृढ़ इच्छा के सामने यह कुछ भी नहीं। इस प्रकार सजनों आत्मविश्वासी बन हमें निज मानव धर्म को जानने व उसे अपने आचार-व्यवहार द्वारा अभिव्यक्त करने के लिए आत्मिक ज्ञान प्राप्त कर संतोष प्राप्त करना होगा।

याद रखो आत्मविश्वास द्वारा मानव अपने आप को सर्वसमर्थ यानि सब कुछ करने के योग्य पाता है। इस प्रकार उसे आत्मभाव की प्राप्ति होती है और फिर मानव फल की इच्छा से रहित होकर अर्थात् निष्कामता से हर कर्म धर्मसंगत व सत्यता से करता है। तभी तो आजीवन परहित करते हुए वह अपने अंतःस्थित ईश्वर को प्रगट कर लेता है।

इससे सजनों स्पष्ट होता है कि हमारे अन्दर पूर्ण शक्ति निहित है परन्तु आवश्यकता है उस शक्ति को पहचानने की

और इस प्रकार सर्वशक्ति संपन्न प्रकृति को जाग्रत कर अन्दर स्थित दिव्यता को अभिव्यक्त करने की। यही तो है स्वयं की पहचान द्वारा अपने मन-वचन-कर्म पर अधिकार रख बिना किसी सहायता के उनसे स्वधर्म अनुरूप काम लेने में समर्थ होना।

अतः सजनों हम सभी मानवों को मानव-धर्म के प्रति जाग्रत होने की आवश्यकता है ताकि हम बार-बार अपने-अपने अमानवीय व गौरवहीन कर्मो के अनुसार जन्म-मरण के चक्र में फँस मृत्युलोक यानि भूलोक में ही न अटके रहें। इस हेतु जो इस संसार में हो रहा है उसे परमात्मा का खेल समझें। उसमें उलझे या किसी को उलझाए नहीं अपितु हर हालात में अपने दिल-दिमाग़ को आज़ाद रखें। तभी रोने-झुखने से विमुक्त रह हम प्रसन्न रह सकेंगे। याद रखो इस प्रकार शास्त्रों में वर्णित मानव-धर्म अनुकूल चलने वाला मनुष्य ही इस भूलोक में अपने जीवनकाल में सदा शांत व तृप्त बना रह, यश और कीर्ति की प्राप्ति कर सकता है और जीव अपने असली घर परमधाम पहुँच विश्राम पा सकता है।

इस संदर्भ में सजनों यह भी जान लो कि दूसरे के दुःख की निवृत्ति अपने सुख की प्राप्ति से बड़ा धर्म है।

इसी के साथ दूसरे के सुख में सुख पाना भी अपने सुख की अपेक्षा बड़ा धर्म है। इस बड़े धर्म की पालना उत्कृष्ट संस्कृति की परिचायक है। अन्य शब्दों में व्यापक मानवीय कल्याण के लिए स्वार्थ और संकीर्णता के त्याग से प्रेरित कल्याणधर्मी उदात्त चेतना की बोधात्मक और क्रियात्मक स्थिति को ही मानवता या मनुष्यता कहते हैं। इस अर्थ से मानवता मनुष्य

का वैशिष्टय है। तभी तो कहा गया है कि केवल शारीरिक रचना से ही सही अर्थों में कोई मानव नहीं होता। मानव होने के लिए मानवता का वरण आवश्यक है। इस प्रकार मानवता मानवीय सद्‌गुणों का वह समूह है जिससे मनुष्य अपनी मनुष्यता को प्रमाणित करता है। मानवता मनुष्य के शील एवं सदाचार का परिणाम है। व्यावहारिक जीवन में नित्यप्रति मानवता का अभ्यास और आचरण मनुष्य को मानव बनाता है। जीवन की विपरीत परिस्थितियाँ और घटनाएँ संवेदनशील व्यक्ति की मानवता को तराशती हैं और विकसित करती हैं। मानवीय गुणों के पुष्ट हो जाने पर चारित्रिक दृढ़ता आती है। उसमें मानवता के तत्व इतने प्रबल हो जाते हैं कि किसी भी प्रकार का प्रलोभन, भय अथवा संकोच उसे विचलित नहीं कर पाते।

सजनों मानव-धर्म अनुरूप विचरने के लिए धर्मनीति की पालना भी अति आवश्यक है। आओ अब धर्मनीति के विषय में समझते हैं-

धर्मनीति से क्या तात्पर्य है?

धर्म-नीति एक यौगिक पद है, जिसका अर्थ है धर्म का निर्देशन, दिग्दर्शन, आचरण या व्यवहार। यहाँ नीति शब्द अपने पूर्व में जुड़े धर्म शब्द की सम्पूर्णता का द्योतक है। इस प्रकार धर्म-नीति का मुख्य अर्थ है, मानव मात्र द्वारा धारण किया जाने वाला सामान्य आचार। इस शब्द का अर्थ निम्नवर्णित विभिन्न अर्थों के रूप में प्रयुक्त होता है:

1. मनुष्य के द्वारा किया जाने वाला शास्त्र सम्मत कर्त्तव्य

धर्म-नीति है, जैसे कि राम के लिए कर्त्तव्य यानि धर्म नीति थी कि अपने पिता की आज्ञा का पालन करना।

2. परंपरागत जिस नीति या आचरण का अनुसरण किया जा रहा है, वह धर्म नीति के अंतर्गत ही सम्मिलित होती है। जैसे शब्द को गुरु मानो, यह इस द्वारे की नीति है।

3. धर्म विषयक नैतिक गुण का ग्रहण भी धर्म नीति के अंतर्गत आता है जैसे क्षत्रिय का धर्म है समाज की रक्षा करना।

4 नैतिक शास्त्र या धर्म शास्त्र के अनुसार करणीय आचार के लिए भी धर्म नीति का ग्रहण होता है, जैसे हमें हर परिस्थिति में सच ही बोलना चाहिए।

5. धर्म नीति न्याय के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है जैसे राम के अनुसार छिप कर बालि-वध न्याय अर्थात् धर्म नीति ही था।

6. पवित्रता भी धर्म नीति का ही पर्याय है। यथायोग्य शुद्ध व्यवहार, छल-कपट आदि विचारों के नाश से अन्तःकरण की पवित्रता धर्म नीति का ही अंग है।

7. सत्संगति धर्म नीति का ही पर्याय है। सत्संगति से सुमति होती है। सुमति से ही धर्म नीति बनती है।

स्पष्ट है सजनों जिसे आत्मोन्नति और निर्विकल्पक सुख के लिए धारण किया जाए अथवा जिसके द्वारा लोक को भी धारण किया जाए, व्यवस्था या मर्यादा में रखा जाए, उसे धर्म नीति कहते हैं। अन्य शब्दों में आत्मा की उन्नति करने वाला, मोक्ष या उत्तम व्यावहारिक सुख देने वाला सदाचरण

कर्त्तव्य, श्रेष्ठ विधान, कानून व नियम धर्म-नीति कहलाता है।

धर्म नीति का अनिवार्य तत्त्व क्या है?

धर्म-नीति या धर्माचरण एक उत्कृष्ट, व्यापक एवं विचार-सापेक्ष मानव मूल्य है। धर्म नीति का भाव सर्वप्रथम मन में ही जागृत होता है। धर्म की पालना मन में जितनी प्रबल होगी, आचरण भी उतना ही प्रबल होगा।

मानव मन विकल्पात्मक होता है। मन का बुद्धि से संयोग है। मन के ऊपर बुद्धि का नियंत्रण ही सामर्थ्य है। मन विकल्पात्मक न हो, इसकी पुष्टि के लिए ही सामर्थ्य कहा गया है अन्यथा भाव और इच्छा के होते हुए भी सामर्थ्य के अभाव में धर्म-नीति का पालन नहीं हो सकता। तीसरा आवश्यक तत्त्व है- आलम्बन, अर्थात् पात्र विशेष, कर्म, समाज, देश आदि, जिसको लक्ष्य कर धर्म नीति का आश्रय लिया जा रहा है। चौथा तत्त्व है- धर्म-नीति का साधन। इसके अन्तर्गत धर्म के लक्षणों या साधनों में किसी एक या अनेक का ग्रहण हो सकता है।

धर्म नीति का विधि एवं निषेधपरक प्रयोग स्पष्ट कीजिए?

धर्म-नीति एक ऐसा मानव मूल्य है, जिसका निषेध रूप अधर्म-नीति के रूप में ही हो सकता है। याद रखो धर्म-नीति का उल्लंघन करने के कारण ही आज मानव दानव बनता जा रहा है। अतः धर्म-नीति में प्रतिपादत आचार संहिता का विवेक-सम्मत पालन करने में ही कल्याण है।

धर्म नीति को विकसित करने का साधन क्या है?

सत्संगति ही ऐसा साधन है, जो मानव को शास्त्र ज्ञान एवं जीवन के मार्ग को प्रशस्त कर धर्माचरण में नियोजित कर सकता है। जैसा कि कहा भी गया है कि जिस तरह नदी के प्रवाह को एक ओर से दूसरी ओर से घुमा दिया जा सकता है, उसी प्रकार सत्संगति मनुष्य के उद्देश्य को परिवर्तित कर उसके जीवन-प्रवाह को बदल सार्थक दिशा प्रदान कर सकती है।

धर्म नीति की कसौटी क्या है?

धर्म के विधायक तत्त्वों के उपस्थित होने पर विपरीत अवस्था में भी मनुष्य धर्म-नीति से डिगे नहीं, यही धर्म-नीति की कसौटी है।

धर्म नीति का महत्त्व भी स्पष्ट कीजिए?

मानव-प्रकृति स्वभावतः निर्बल होती है। मनुष्य को यदि धर्म-नीति का अवलम्ब न प्राप्त हो, तो वह सांसारिक प्रलोभनों में पड़कर अधर्माचरण में प्रवृत्त हो जाता है। धर्म-नीति ही मनुष्यों को मर्यादा में रखती है। उनको उच्छृंखल नहीं होने देती। धर्म-नीति ही समाज में संघर्ष मिटाकर शांति की स्थापना करती है। धर्म नीति ही मनुष्य में मनुष्यता लाती है। धर्म नीति का पालन करने से ही मनुष्य ऊँचा उठता है। यदि मनुष्य धर्म-नीति का त्याग कर दे, तो वह पशुओं से भी नीचा हो जाएगा। धर्म-नीति का आचरण करने वाले पाण्डवों का संसार में अक्षुण्ण यश एवं अधर्माचरण में प्रवृत्त कौरवों का समूल विनाश धर्म-नीति के महत्त्व को दर्शाता है। कामना

से, धन से, लोभ से अथवा प्राण बचाने के लिए भी अपने धर्म का त्याग न करें, क्योंकि धर्म नित्य है और सुख-दुःख अनित्य हैं।

इस प्रकार सजनों हम कह सकते हैं कि धर्म नीति का पालन ही मानव के उत्कर्ष का आधार है। वेद, स्मृति एवं सदाचार के अतिरिक्त चौथा धर्म का आधार सजनों का अन्तःकरण बताया है। अन्तःकरण की प्रामाणिकता धर्म नीति के पालने से ही आती है। धर्म-नीति के आचरण से संकीर्ण व्यष्टिभाव समष्टिभाव या व्यापकता में परिणत होता है। व्यापकता के मूल में एक प्रकार का सक्रिय वैराग्य भाव होता है। वैराग्य का अत्यन्तिक फल है - योग, परमात्म तत्त्व से संयोग और इसका परम फल है पारमार्थिक ज्ञान। इस प्रकार धर्म के आश्रय से क्रमशः साधक का अंतःकरण उदात्त से उदात्ततर होता हुआ श्रेय-लाभ करता है।

धर्म नीति के उपरान्त आओ सजनों अब धर्म सम्मान के विषय में भी जानते हैंः-

धर्मसम्मान से क्या तात्पर्य है?

धर्मसम्मान का अर्थ है धर्म का सम्मान, धर्मनिष्ठा, धर्म में आस्था का होना, धर्म पालन, धर्म परायणता, धार्मिकता, धर्मपरता। धर्मसम्मान आत्मसम्मान का विकसित रूप है। यह न तो धर्मभीरूता है, न ही धर्मांधता। धर्म को अच्छी तरह से समझे बिना, उसका सम्मान कर पाना संभव नहीं। धर्म सम्मान बचपन से ही सिखाया जाता है। बड़ों को दण्डवत करना, हाथ जोड़कर नमस्कार करना, सारे शिष्टाचार धर्मसम्मान के अंग हैं। धर्मसम्मान धर्म पालन है। धर्मसम्मान

में आस्तिकता नास्तिकता आड़े नहीं आती, यह कोरा प्रदर्शन भी नहीं है। कृत्रिमता, कट्टरता, साम्प्रदायिकता से धर्म सम्मान को मंडित नहीं किया जा सकता।

धर्मसम्मान का अनिवार्य तत्त्व क्या है?

कर्मनिष्ठा अर्थात् कर्त्तव्य का निष्कामता से पालन करना, संसार की हर वस्तु का आदर एवं अध्यात्म में रुचि - धर्मसम्मान के लिए ये अनिवार्य तत्त्व हैं। धर्मग्रन्थों का अध्ययन, ईश्वरीय नियमों का पालन ही धर्मसम्मान है। धर्म सम्मान आचरण की सभ्यता है।

धर्मसम्मान का विधि एवं निषेधपरक प्रयोग स्पष्ट कीजिए?

कण-कण में एवं प्रत्येक जीव में ईश्वर की उपस्थिति, संपूर्ण जगत में उसी ईश्वर की परम सत्ता के दर्शन, सभी को अपने ही समान देखना, कर्मण्यता में विश्वास, अकर्मण्यता का तिरस्कार ये विधिपरक धर्मसम्मान के सूचक हैं। धर्म की आड़ में छल-कपट को प्रश्रय देना, कुकृत्य करना, धर्मभीरूता दिखाना ये धर्मसम्मान के निषेधात्मक पक्ष हैं। धर्म सम्मान के लिए आत्मज्ञान आवश्यक है। इसके विपरीत दिखावा हितकर नहीं है।

धर्मसम्मान के विभिन्न भेद क्या हैं?

जान लो कि पूजा स्थलों में जाकर हाथ जोड़ना, सिर झुकाना, स्तुति करना, कीर्तन करना, भक्ति प्रदर्शित करना सांसारिक दृष्टि में धर्म-सम्मान है परन्तु हकीकत में स्वधर्मपालन धर्मसम्मान के लिए आवश्यक है। स्वधर्म पालन से तात्पर्य निष्कामता से प्रत्येक कर्म करते हुए उसके प्रति

कर्त्तव्यनिष्ठ बने रहने से है। याद रखो वही व्यक्ति ही जीवित कहलाता है, जो धर्म धारण करता है यानि धर्म का सम्मान करता है। परोपकार को भी धर्मसम्मान का ही प्रतीक माना जाता है।

धर्मसम्मान को विकसित करने का साधन क्या है?

मनुष्य ईश्वर की ओर तब अग्रसर होता है जब स्थूल भौतिक जीवन से परे जाकर चारित्रिक और नैतिक सिद्धांतों को विकसित करता है। यही सिद्धांत विकसित होकर धार्मिक चेतना में परिणत हो जाते हैं। तब ईश्वर का ज्ञान होता है। ये सारी अवस्थाएँ धर्म कहलाती हैं और यह धर्म विभिन्न प्रकार की संपन्नता देने वाला होता है। याद रखो धर्म सम्मान न तो अर्थ, न इंद्रिय तृप्ति, न ही मोक्ष प्राप्ति है। धर्म का सम्मान जीवित रहने के लिए आवश्यक है।

धर्मसम्मान की कसौटी क्या है?

सभी के प्रति समभाव होना धर्मसम्मान की असली कसौटी है। याद रखो धर्म कर्म है। कर्म की आराधना - कर्मनिष्ठा ही धर्मसम्मान की परीक्षा है।

अंततः सजनों हम कह सकते हैं कि जो करणीय है, जो स्मरणीय है, जो माननीय है, उसे करना, स्मरण करना तथा उसका मनन करना ही धर्मसम्मान है। धर्म का सम्मान करने या धर्म का पालन करने से मनुष्य जीवन सफल होता है। धर्मसम्मान ही धर्मपालन है और धर्मपालन से ही व्यक्ति सभ्य बनता है, पशुता से ऊपर उठकर मनुष्यत्व को प्राप्त करता है, ईश्वर की सत्ता को स्वीकारता है। उसका चरित्र उदात्त

बनता है। वह अध्यात्मिकता की ओर अग्रसर होता है।

धर्मपालन के संदर्भ में सजनों यह भी जान लो कि अनुकूल आचरण द्वारा किसी निश्चय, वचन आदि का निर्वाह करना धर्म पालन कहलाता है। धर्मपालन के अंतर्गत उन सभी कर्त्तव्यों, व्यवहारों, नियमों और आचारों का पालन स्वतः होता है जो व्यक्ति एवं समाज की व्यवस्था के लिए आवश्यक माने जाते हैं। चूंकि सजनों धर्म का मूल तत्व है—धारण करना, अतः जिन नियमों, कर्त्तव्यों और आचरणों से व्यक्ति परिवार, समाज, राष्ट्र तथा सम्पूर्ण विश्व में व्यवस्था रहती है, सब का कल्याण होता है, वे सचमुच धारणीय यानि पालन करने योग्य हैं। यदि धर्म का पालन न हो तो संसार में सब कुछ अव्यवस्थित व अनियंत्रित हो जाए। इस संदर्भ में जान लो कि सजनों प्रकृति और मनुष्य ने स्वभावतः सबकी स्थिति एवं विकास के लिए नियम बनाए हैं। प्रकृति ऋतु और सत्य का पालन करती है। गृह-नक्षत्र यथाक्रम गति करते हैं। ऋतुओं का निर्माण होता है। सर्दी, गर्मी, वर्षा आदि नियमतः होते हैं। इनके धर्मो में व्यतिक्रम होने पर समूचा ब्रह्मांड अव्यवस्थित, अनियंत्रित हो जाता है। इसी तरह व्यक्ति यम, नियम आदि व्यक्ति-धर्मों का पालन न करे, तो अस्वस्थ हो जाता है। वर्ण, जाति, समाज और राष्ट्र के हित में बनाए गए नियमों या कर्त्तव्यों का पालन न करने से सब ओर अव्यवस्था फैल जाती है। अतएव धर्म-पालन में धारण करने का भाव सर्वत्र विद्यमान रहता है।

याद रखो धर्मपालन करते हुए जो व्यक्ति जीवन व्यतीत करता है, उसका अन्तर्मन पवित्र और सशक्त होता जाता है।

धर्म या कर्त्तव्य का बोध सत्पुरुषों की संगति, गुरु के उपदेश और महापुरुषों के श्रेष्ठ आचरण के सतत् चिंतन से होता है। बोध हो जाने पर परिस्थिति का आकलन करने और तद्नुकूल आचरण करने में प्रवृत्ति होती है। कर्त्तव्य निश्चित हो जाने पर उसका पालन करने में धर्मशील व्यक्ति तनिक भी देर नहीं लगाते। याद रखो धर्मपूर्वक सारे काम करने से ही धर्म की रक्षा होती है। यदि धर्म की रक्षा अर्थात् पालन किया जाता है तो ही धर्म हमारी रक्षा करता है।

धर्म के महत्त्व को सम्पूर्णतः जानने के लिए सजनों धर्म-सापेक्षता को समझना भी अनिवार्य है, अतः आओ अब इसे समझते हैं:-

धर्म-सापेक्षता का शाब्दिक अर्थ क्या है?

धर्म-सापेक्षता का शाब्दिक अर्थ है धर्म की अपेक्षा से युक्त। इसे धर्म सम्मत आचरण की संज्ञा भी दी जाती है। सद् असद् विवेक अनुसार निर्णय करके धर्मपालन में तत्पर रहना धर्म सापेक्षता है। ऐसा व्यक्ति धर्म के आधार पर धार्मिक जीवन जीता है।

धर्म-सापेक्षता के मूल तत्त्व क्या हैं?

श्रद्धा, निष्ठा और विश्वास धर्म सापेक्षता के मूल तत्त्व हैं। धर्म सापेक्षता का बीज श्रद्धा की उर्वरा भूमि से ही फूटता है। श्रद्धा के अभाव में व्यक्ति धर्म के महत्त्व को नहीं समझ पाता और तब वह उससे दूर ही रहता है।

अतः श्रद्धा धर्मसापेक्षता का मुख्य तत्त्व है। श्रद्धा की प्रगाढ़ता

निष्ठा और विश्वास में बदलती है। यहीं से आस्तिकता का उदय होता है तथा धर्मसापेक्षता पुष्ट आधार प्राप्त करती है। याद रखो श्रद्धा, निष्ठा और विश्वास की अनुपस्थिति में नास्तिकता का बोलबाला हो जाता है तथा तब धर्मसापेक्षता का निर्वाह कठिन हो जाता है।

धर्म सापेक्षता में बड़ी बाधाएँ क्या हैं?

कुसंग और पाखंड धर्म सापेक्षता में बड़ी बाधाएँ हैं। धर्म सापेक्षता मनुष्य और समाज की कुशलता का पथ निर्देशित करती है किन्तु कुसंग कुशलता में बाधा उत्पन्न करता है। कुसंग विवेक को भी कुंठित करता है। इस कारण मनुष्य को धर्म और अधर्म की पहचान नहीं हो पाती। वह अधर्म को भी धर्म समझने लगता है और वास्तविक धर्म सापेक्षता को क्षति पहुँचाता है। धार्मिक आतंकवाद फैलाने वाले कट्टरपंथी अधर्म को ही धर्म के आवरण में परोसते हैं और अनेक उनके कुसंग में फँसकर धर्म सापेक्षता के नाम पर धर्म की जड़े काटते हैं। पाखंड और आडम्बर भी धर्म सापेक्षता की बड़ी बाधाएँ हैं। पाखंड और बाधाओं का संबंध धर्म की आत्मा यानि उद्देश्य से न होकर उसकी देह से होता है। इन बाह्य आचारों में मनुष्य ऐसा उलझता है कि कोरा कर्मकांडी बनकर रह जाता है। उसका बोध समाप्त सा हो जाता है। वह मिट्टी, पत्थर, धातु आदि से बनी प्रतिमा में तो ईश्वरत्व का दर्शन करता है किन्तु हाड़माँस के मनुष्य में ईश्वर को नहीं देखता। उसे मिट्टी, पत्थर आदि जड़ पदार्थों से भी गया बीता समझाता है। अस्पृश्यता जैसी रूढ़ियाँ इसका प्रमाण हैं।

धर्म सापेक्षता को विकसित करने के साधन क्या हैं?

सत्संग और स्वाध्याय धर्म-सापेक्षता को विकसित करते हैं। सत्संग से विवेक जाग्रत होता है। सत्संग के बिना विवेक नहीं होता और विवेक के अभाव में धर्म और अधर्म का भेद समझ में नहीं आता। मानव मन के सत्- असत् पक्ष का अंतर अत्यंत सूक्ष्म है और इसी रूप में धर्म-अधर्म के मध्य में भी अत्यंत सूक्ष्म रेखा खिंची है। उसे समझने के लिए सत्संग और स्वाध्याय आवश्यक है। धर्म के सर्वस्व को सुनकर धारण करना चाहिए और जो कुछ व्यवहार अपने प्रतिकूल हो वह दूसरों के साथ नहीं करना चाहिए। कहने की आवश्यकता है कि धर्म के सर्वस्व को जानने-समझने के लिए सत्संग और स्वाध्याय विशेष रूप से आवश्यक हैं।

धर्म सापेक्षता की कसौटी क्या है?

धर्म सापेक्षता की कसौटी आमरण धर्मपालन है। जो व्यक्ति बाधाएँ उत्पन्न होने पर अथवा किसी प्रलोभन में फँस कर धर्म पालन के पथ से भटक जाता है उसकी धर्म सापेक्षता अप्रमाणित और अपूर्ण होती है। अपनी धर्म सापेक्षता का निर्वाह करते हुए प्राण दे देना श्रेयस्कर है।

धर्म सापेक्षता का महत्त्व स्पष्ट कीजिए?

भारतीय-संस्कृति की पुरुषार्थ चतुष्ट्य की अवधारणा में धर्म प्रथम पुरुषार्थ है। वह अन्य पुरुषार्थों अर्थ, काम और मोक्ष की रीढ़ है। याद रखो वैयक्तिक जीवन में विवेक के आधार पर अपने धर्मानुसार कार्य करने पर मानव ऊपर उठता जाता है, इस प्रकार यह मानव व्यक्तित्व के उद्धार का

महत्त्वपूर्ण साधन है। अतः धर्म सापेक्षता का महत्त्व स्वतः सिद्ध है। धर्म-निरपेक्षता अधर्म को जन्म देती है और अधर्म अधोगति का कारण बनता है अर्थात् अधर्म से मनुष्य की अधोगति होती है और धर्म से ऊर्ध्वगति। जीवन में उर्ध्वगति चाहने वाले को धर्म का आचरण करना चाहिए।

धर्म के विषय में हुई समस्त बातचीत के पश्चात् सजनों संक्षेपतः यह जान लो कि धर्म सार्थक जीवन की विधि है। पुरुषार्थ साधन है और मनुष्य का शरीर इस धर्म का साधन है। यह शरीर उपेक्षणीय नहीं है। शरीर के भीतर ही धर्म का वास्तविक प्रयोजन सधता है। चूंकि यह शरीर ब्रह्मांड का एक प्रतिरूप है, इसलिए शरीर को साधने का प्रत्येक दैनंदिन यानि नित्य होने वाला व्यापार ही धर्म है। जब यह मानकर शरीर व्यापार होता है कि संपूर्ण जीवन इस शरीर के जीवन में सूक्ष्म रूप में वर्त्तमान है, तो संपूर्ण दृष्टि के भीतर समरसता या संगति स्थापित करना ही शरीर का धर्म हो जाता है।। यही संस्कृति है। सबमें अपने को देखो और अपने में सबको देखो। सबको देखोगे तो किसी के प्रति उपेक्षा नहीं रखोगे। क्षुद्र से क्षुद्र प्राणी भी उपेक्षा का पात्र नहीं है। सबमें अपने को देखोगे तो सबके लिए प्रिय कार्य करोगे, सबका प्रिय देखोगे। अपना अलग से कोई प्रिय होगा, तो उसकी कसौटी यही होगी कि सबको वह प्रिय है कि नहीं। जो निरन्तर देखेगा, वह अपने आप स्वतन्त्र विवेक से देखने वाला बन जाएगा। वह अपने आप मनुष्य के चरम मूल्य स्वाधीनता का आराधक हो जाएगा, वह सत्य का अन्वेषक भी होगा। पहले के प्रकाशित सत्य का भी परीक्षक होगा। वह आत्मदीप होगा, अपने लिए स्वयं प्रकाश होगा।

सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार अभी तक हमनें संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म के विषय में सविस्तार जाना। सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार 'संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म यह चार सवाल है जोकि हमने धारण करके हल करने हैं। यह है सब सजनों की पढ़ाई जोकि माह चैत्र तक (दो साल के अन्तराल में) समाप्त करनी है और पास होना है। यह सवाल हल करने पर आप सम पर खड़े हो जावेंगे। फिर आप देखेंगे कि जेहड़ा मन मन्दिर प्रकाश ओही असलियत ब्रह्म स्वरूप है मेरा अपना आप। इस एक शब्द पर पाँच साल गुढ़ना है। इस पर परिपक्व होने पर आप की दिव्य दृष्टि होगी और आप तीनों कालों की पहचान कर सकेंगे। 'इसी के साथ सजनों इस कुदरती ग्रन्थ में यह भी कहा गया है कि युवा अवस्था की भक्ति अर्थात् समभाव समदृष्टि की युक्ति के अनुसार 'संकल्प कुसंगी को संगी बनावो। सन्तोष, धैर्य और सच्चाई, धर्म के सवाल हल करके फतह पावो। सजनों सुनो, फिर सम का कोई सवाल नहीं। नौजवान युवा-अवस्था आ जाती है। उच्च बुद्धि, उच्च ख्याल, भक्ति प्रबल और शक्ति ताकतवर हो जाती है।'

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार सजनों जानो कि 'यही एकमात्र युक्ति है बिन औखियाइयों बिन खेचलों, बिन तकलीफों जन्म की बाज़ी को जीत लेने की। इस युक्ति को प्रवान करने से तीनों तापों का टैम्परेचर जो घटता बढ़ता रहता है वह समाप्त हो जाता है। जैसे बुखार घटता बढ़ता रहता है इसी तरह हमारे स्वभावों का टैम्परेचर भी घटता बढ़ता रहता है। अगर हम संतोष पर काबू पाते हैं तो धैर्य छूट जाता है। धैर्य पर काबू पाते हैं तो सच्चाई-धर्म छूट

जाता है। इस युक्ति पर चलने से सजनों तीनों तापों का रोग मिट जाएगा और हमारे सब सवाल हल हो जायेंगे। फिर समभाव जो एक निगाह एक दृष्टि देखनी होती है बिना यत्न के उसकी प्राप्ति हो जाएगी, यह है जन्म की बाजी को जीत लेना। सजनों आप ने सुना है कि सजन अर्जुन न सजन कृष्ण महाराज जी को बताया कि मैंने आज चतुर्भुजधार का चमत्कार देखा है। महाराज जी ने कहा कि अर्जुन यह प्रकाश तेरी असलियत अपना आप प्रकाश है। यही प्रकाश कुल दुनियां है। इस पर खड़े हो जाओ।

सजन अर्जुन ने वचन प्रवान किए उस चमत्कार के साथ निगाह जोड़ ली और संसारी व परमार्थी दोनों राज्य प्राप्त कर लिए। 'सम की इसी महत्ता को देखते हुए सजनों अगले सप्ताह से सम के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 17 जनवरी 2016 का सबक

सम-(1)
प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

सजनों अभी तक हमने युवावस्था की भक्ति यानि समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म के विषय में सविस्तार जाना। सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म यह चार सवाल है जो कि हमने धारण करके हल करने हैं। ये सवाल हल करने पर हम सम पर खड़े हो जावेंगे। यह सम क्या है, आओ अब इस विषय में जानते हैं-

सम का शाब्दिक अर्थ है जो सदा समान यानि एक रस रहे, जो सदा समान गुणों वाला सद्‌गुणसंपन्न हो, अभिन्न हो, सर्वत्र एक जैसा व बराबर यानि समानदशा या अवस्था में बना रहे अर्थात् समरूप रहे, निष्पक्ष व निरपेक्ष रहे। कहने का तात्पर्य यह है कि जिसे कभी भी बदला न जा सके व जो सर्वदा अप्रभावित व अपरिवर्तित हो, वही सम है।

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार जानो कि सम नित्य शब्द रूप, सर्वव्यापक भगवान यानि सच्चिदानंद निर्दोष अविनाशी परब्रह्म परमेश्वर का प्रतीक है। अन्य शब्दों में यह सद्‌गुणसम्पन्न, संपूर्ण, यथार्थ व सदा एक समान रहने वाले परमेश्वर का द्योतक है। तभी तो सम को शाश्वत सत्य माना गया है और कहा गया है कि ईश्वर ही सम है और सम ही ईश्वर है। यद्यपि सम स्वरूप होकर ही ईश्वरीय ब्रह्म सत्ता सर्वदा तीनों कालों में एक रस विचरती है तथापि किसी प्रकार का विघ्न उसको स्पर्श नहीं कर पाता। इस प्रकार सम का ही प्रगट रूप यह संसार है और इसी की स्थिति के कारण सब पदार्थ परस्पर विशुद्ध प्रेम की आकर्षण शक्ति में बँधे हुए हैं।

विभिन्न धर्म ग्रन्थों के अनुसार सम ईश्वरीय शक्ति का यथार्थ स्वरूप और गुण है। यह वह अनादि चेतन प्रकाश है जो पूर्ण, नित्य व सत् चित्त आनंद स्वरूप है। यह ही संसार का मूल है और शांति स्रोत भी। यह ही परम पद है और यह ही योग सिद्धि भी। यह ही ज्ञान की वह चरम स्थिति है जहां पहुँच कर जीव विश्राम पाता है। इसका विचार एवं इसमें स्थिति ही मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य है। अतः इसका ज्ञान परम हितकारी है।

याद रखो सम से उत्पन्न समभाव/समता/समत्व ही सभी धर्मों का प्राण है। इस पर ही कुल दुनियाँ का निजाम यानि व्यवस्था व शासन प्रणाली आधारित है। इसी से ही सांसारिक शासन व्यवस्था सुदृढ़ रहती है। इसी के आधार पर ही कुल दुनियाँ की राजनीति और धर्मनीति बनी है। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि समभाव आधारित शासन प्रणाली जहाँ सुदृढ़ व सबके लिए कल्याणकारी है वही समता से रहित नीतियाँ कुल संसार के लिए दुःखदाई और शीघ्र नष्ट होने वाली होती हैं। तात्पर्य है कि इसके अभाव में अर्थात् इसके वास्तविक सामर्थ्य से अनभिज्ञ होने पर द्वि-द्वेष, वैर-विरोध, धार्मिक तर्क-वितर्क व अशांति जन्म लेती है और मनुष्य की बुद्धि मलिन हो नाना प्रकार के पाखंडी उपदेशकों के उपदेशों के प्रभाव से कर्म-बंधन की कर्म वासना में जकड़ जाती है। जबकि इसके विपरीत समभाव/समता/समत्व का विचार मनुष्य की बुद्धि की समस्त पाबंदियों और कमजोरियों का नाश कर उसे निर्मल व प्रकाशित अवस्था में ले आता है और निर्भय एवं स्वतंत्र पद पर आसीन कर देता है। इस सन्दर्भ में सम की यथार्थ रूप से धारणा को ही मानव जीवन का दुर्लभ सत्-पुरुषार्थ जानकर इस में स्थिति के लिए हर संभव प्रयत्न करना आवश्यक है।

सजनों इस सत्य को जीवन लक्ष्य प्राप्ति का सरलतम उपाय जानते हुए आदि काल से सब ज्ञानी समभाव-समदृष्टि की युक्ति का अनुशीलन कर, इस नाशवान जगत में आनन्द स्वरूप होकर विचरे तथा उन्होंने अपने अन्दर-बाहर सर्वज्ञ, सत्-आनन्द स्वरुप एक ईश्वर की ही प्रतीति की। इस प्रकार

सत्-विचार, सत्-विश्वास, सत्-सिमरण, सत्-सेवा, सत्संग, सत्-पुरुषार्थ की धारणा द्वारा वे सत्-पुरुष सम में अवस्थित हो गए और सच्ची खुशी को हासिल कर बार-बार माया जाल में दुःख में फँसने और सन्ताप को भोगने से बचे रह सके।

यहाँ याद रखने की बात यह है कि शरीर नाशवान है जबकि सम अविनाशी और आनन्ददायक। इसलिए नाम, रूप, गुण, कर्म, अहंकार आदि माया विकारों से छूटने हेतु सम को धारण करना अनिवार्य है। एकमात्र इसी के सिद्धान्तों पर चलने से ही प्रत्येक जीव स्वार्थपरता को त्याग कर परमार्थ में लीन हो सकता है अर्थात् संसार के सब बन्धनों से छूटकर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान अनादि अखंड शब्द में लीन हो सकता है। इसीलिए तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

सम मानो सम जानो, सम लवो पहचान, समदृष्टि जानो।।

अतः

समभाव नूं पकड़ो वे सजनों सजनों वे सम दा करो वर्त्ताव।
आप पकावो ते पकवाओ किन्हां सजनां नूं एहो दिखाओ
सजनों वे, वे प्रभाव वे।

सजनों सम से साम्य उत्पन्न होता है। साम्य समान होने का भाव है, समानता है समता है। भावों में एकरूपता का होना साम्य का अनिवार्य तत्व है। तभी तो कहा जाता है कि सुख-दुःख, हर्ष-शोक, लाभ-हानि, जय-पराजय को एक समान देखो। साम्य का अभिष्ट समभाव स्थापित करना है। यह सुख-दुःख, हर्ष-शोक, लाभ-हानि, जय-पराजय को एक

समान देखने की स्थिति है यानि निरपेक्षता व निष्क्रियता की अवस्था है। इस स्थिति में कर्त्ता होते हुए भी, हर कर्म निष्कामता व अकर्त्ता भाव से सम्पन्न किया जाता है। फलतः आसक्ति व लिप्ति नहीं होती और कर्मफल से बचा रह इंसान अपनी मूल स्वरूप स्थिति में बना रहता है। योगियों या संत पुरुषों में मूलतः ऐसा साम्य पाया जाता है जिसके अंतर्गत राग-द्वेष से ऊपर उठ जाते हैं और सुख और दुःख, जीवन की धूप और छाँव, शीतलता और उष्णता को समभाव से देखते हैं। याद रखो यह अनुभूति का साम्य है। यह समरसता ही मनुष्य को ऊपर उठाने वाली है। इस संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

दुःख-सुख जेहड़ा सम कर जाने,
असलियत अपनी ओ पहचाने।
असलियत अपनी जो पहचान गया,
ओही परमधाम दियां मौंजा माणे।।

इस साम्य को साधने के लिए जहाँ संतोष, धैर्य और सच्चाई, धर्म के सवाल हल करना जरूरी है वहीं ईर्ष्या-द्वेष, अहंकार का त्याग कर, स्वार्थ के स्थान पर पारमार्थिक दृष्टि अपनानी भी आवश्यक है। तभी तो सर्वत्र विद्यमान एकरूपता का दर्शन करने को साम्य की महत्त्वपूर्ण आधारशिला माना है। यह साम्य प्रकृति में पहले से ही विद्यमान है जबकि भाव व विचारों का साम्य स्थापित किया जाता है। तभी तो कहा गया है कि ईश्वर ने मनुष्य की रचना अपने साम्य के आधार पर की है तभी तो जीवात्मा और परमात्मा के साम्य को खोजा जा सका है। इस आधार पर स्पष्ट होता है कि साम्य

खोज है किसी ऐसे तत्व की जिसे पाकर मन संतुष्ट हो जाए। तभी तो महान दिव्यंगत आत्माओं ने जब आत्मा और परमात्मा में साम्य का अनुभव किया तो उन्हें लगा कि जैसे उन्हें परम सिद्धि मिल गई हो। इस एकरूपता से तादाम्य साधते ही फिर उनका न कोई मित्र रहा न कोई शत्रु। वे तो संपत्ति और विपत्ति दोनों में ही एक से रहे यानि न उन्हें हर्ष का अनुभव रहा न शोक का, न संयोग का न वियोग का। यह सबसे महान उपलब्धि है और ईश्वरत्व का गुण है। इस गुण के विकसित होने पर सब संघर्ष समाप्त हो जाते हैं और व्यावहारिक जीवन में सर्वत्र समता, सज्जनता, परोपकारता की निर्मल धारा प्रवाहित होने लगती है। ऐसे सजन व्यक्ति हर अवस्था व परिस्थिति में एकरूप बने रहते हैं। यह एकरूपता एकत्व की प्रतीक होती है। इस संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है-

एकता पकड़ो एकता दिखाओ,
प्रीत महाराज नाल लाके तोड़ निभाओ।
इसी में तुहाडी शान है,
फिर रोशन तुआडा नाम।।

याद रखो यही एकत्व एवं समता ही ग्राह्य है। इसके विपरीत विभेद और विषमता अग्राह्य है। अन्दरूनी और बैहरूनी दोनों वृत्तियों और विचारधारा में एकत्व स्थापन ही समता है। स्पष्ट है समता विशेषतः आत्मिक विभूति या आंतरिक एकत्व होते हुए भी बाह्य अभेद का मुखापेक्षी है। जब तक बाह्य जगत में सुख-दुःख का वैषम्य रहेगा, अंतर्जगत में सामरस्य (हर स्थिति में एक ही प्रकार की अनुभूति करने का

भाव) स्थापित हो ही नहीं सकता। इस संदर्भ में सामरस्य भौतिक वैषम्य के दूरीकरण के उपरान्त मन-संचित वह साम्यावस्था है जिसमें इच्छा, ज्ञान और क्रिया के ऐक्य से व्यक्ति और समाज को सुख-शान्ति प्राप्त होती है। जब तक समाज और संसार में धनी-गरीब, ऊँच-नीच,स्त्री-पुरुष, गोरे-काले का भेदभाव बना रहता है तब तक मानसिक सुख दुर्लभ रहता है। जो सुख मिलता भी है वह समत्व या सामरस्य के बिना अधूरा या क्षणभंगुर होता है। अतैव स्थाई सुख एवं शान्ति तभी प्राप्त होती है जब पूर्ण सामरस्य हो जाता है। इसलिए तो कहा गया है कि जीवन वसुधा के समतल होने पर समरसता आती है।

स्पष्ट है कि व्यक्ति का व्यक्तित्व उसके इच्छा, ज्ञान, क्रिया इन तीनों के समन्वित विकास से निखरता है। यदि अज्ञानता से अटपटी क्रिया करते चलें तो मन की इच्छा मन में ही धरी रह जाएगी। उक्त तीनों का विकास ही एकान्वित सहयोग व व्यक्तित्व विकास की कुंजी है। अतः जब श्रद्धा और विश्वास के सहयोग से तीनों में एकान्विति यानि एकता आ जाती है तब जीवन पथ कैलाश शिखर तक उन्नीत यानि ऊपर उठ जाता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास का यह चरम शिखर है। यहाँ पहुँचने के बाद नर-नारी का द्वैत भी मिट जाता है और वे दोनों अद्वैत परमेश्वर में एकाकार हो पूज्य बन जाते हैं।

इस तरह समता आती है तो समरसता पनपती है। समता लाने के लिए परस्पर विरोधी पक्षों में सामंजस्य आवश्यक है। आशय यह है कि इस स्थिति तक पहुँचने के पूर्व व्यक्ति

के लिए जाति, वर्ग, वर्ण, मत, सम्प्रदाय, प्रदेश, देश आदि के विभेद को मिटाकर कीड़ी कोलों हाथी अन्दर ब्रह्मा कोलों तृण अन्दर समरूपता का आभास करते हुए सबके साथ एक सा व्यवहार करना होता है।

इस सन्दर्भ में समता को ही जीव की वास्तविक खुशी मान कर इसका वर्णन प्रत्येक धर्म-ग्रन्थ में हुआ है व इसी का उपदेश देने वाले मार्गदर्शक को सत्पुरुष माना गया है। समता पर आधारित जीवन व्यतीत करने वाले ऐसे सत्पुरुषों ने ही परमपद की प्राप्ति कर न केवल इच्छाओं के दुःख से स्वयं मुक्ति प्राप्त की है अपितु अपनी प्रकाशित बुद्धि द्वारा अमली ज़िन्दगी अर्थात् क्रियात्मक जीवन का आदर्श स्थापित कर पुनः-पुनः समता आधारित धर्म की स्थापना भी की है। अतः हे इंसानों मनुष्य योनि को ही समता प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन मान दिव्य कर्म व सत्-पुरुषार्थ करो। इस हेतु मनगढ़ंत कहानियाँ पढ़ने, तर्क-वितर्क वाले उपदेश सुनने से बचे रहो और बचने के साथ-साथ सांसारिक वाद-विवाद से विमुक्त रह समता के आनन्द को प्राप्त करने का यत्न करो।

सारतः समझ लो कि समता ही जीवन है क्योंकि जो चीज़ समता छोड़ती है वह नष्ट हो जाती है। यही नहीं यह काल, कर्म, इच्छा, उत्पत्ति व प्रलय आदि सब अवगुणों से परे है तथा धार्मिक कट्टरता, देशीय कट्टरता, जातिवाद इत्यादि जैसी स्वार्थ भावना, ममता व अभिमान के बंधनों से रहित है। हर वक्त समता में स्थित होकर उसी में ठहरने से इस अनादि विद्या की समझ आती है और समता रूपी स्वराज

को प्राप्त कर जीव सांसारिक बंधन से विमुक्त हो परमानंद में लीन हो जाता है। परन्तु इस हेतु उसे हर हालत में एक रस रह, ग्रहण और त्याग की कामना से सर्वदा विमुक्त रहना होता है। यह जान लो कि इस प्रकार हर परिस्थिति में इन्द्रिय भोगों व पाखंडों से विमुक्त रह समता में बने रहना ही वास्तविक ईश्वरीय भक्ति और आवागमन के चक्र से मुक्ति का साधन है। यही जीव के सब रोग दूर कर प्रेमस्वरूप में लीन करने वाली असली औषधि है ।

हम कह सकते हैं कि मानसिक समता आत्म साक्षात्कार का लक्षण है और जो यह अवस्था प्राप्त कर लेता है वह स्थितप्रज्ञ यानि स्थिरबुद्धि इन्सान जन्म-मरण पर विजय प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार सजनों सम को साधने के लिए स्थितप्रज्ञता की भी आवश्यकता होती है। यह स्थितप्रज्ञता आती है समचित्तता से। अतः आओ अब समचित्तता के अर्थ को भी प्रश्नोत्तर के माध्यम से समझते हैं-

समचित्तता से क्या तात्पर्य है?

समता यानि स्थिरता से युक्त चित्त वाला समचित्त कहलाता है। हम कह सकते हैं कि जिसके चित्त की अवस्था या वृत्ति सब जगह समान रहती हो, वह ही समचित्त होता है। ऐसे मानव का चित्त कभी दुःखी या क्षुब्ध नहीं होता और न ही वह सुखों में सुखी और दुःखों में दुःखी होता है। वह स्थितप्रज्ञ तो सदा विरक्त, तटस्थ यानि उदासीन रह शांतचित्त बना रहता है। ऐसे आत्मतुष्ट, धैर्य युक्त समचेता की प्रज्ञा सदा एक ही विषय पर केन्द्रित रहती है। तभी तो यह दशा प्राणी की उत्तम ज्ञान-दशा मानी जाती है और ऐसे जनों को हंस

या परमहंस भी कहते हैं।

समचित्तता का अनिवार्य तत्व क्या है?

समचित्तता लोक-चेतना से ऊपर उठी हुई लोकोत्तर चेतना है। सामान्यतः लोग भिन्न-भिन्न ढंग से सोचते या अनुभव करते हैं। इन समस्त सोचों-अनुभूतियों में उनके निजी स्वार्थ का प्रभाव अधिक होता है। पर, जब स्वार्थ की संकुचित परिधि से ऊपर उठकर हमारा चित्त अनुभव व विचार करने लगे, तो यह समचित्तता की दशा है। छोटे दायरे में सोचने वाले - 'यह मेरा है, वह तेरा है' इस वृत्ति से परिचालित होते हैं पर ऊँचा उठकर सोचने वाले उदाराशय व्यक्ति सबके दुःख-सुख को अपना दुःख-सुख मानते हैं।

समचित्तता कब आती है?

हृदय में जब आत्मिक ज्ञान उपजता है व उसका बोध होता है तब समचित्तता आती है।

समचित्तता का विधि एवं निषेधपरक प्रयोग स्पष्ट कीजिए?

आत्म के समान यानि अपने जैसा सबको मानना-समझना समचित्तता की मनोदशा है। भेद में अभेद निरखना यानि देखना ही इसकी विधि है। हम सब एक प्रभु की सन्तान हैं। हममें जाति, धर्म, लिंग, वर्ण, वर्ग आदि भेद मिथ्या और बाहरी हैं। यह उत्तीर्ण मनोदशा ही समचित्तता की साधक है और इसके प्रतिकूल मानव-मानव में भेदभाव निरखना इसका विरोधी या निषेधक पक्ष है। परदुःख में दुःखी और सुख में सुखी होना मानव का इष्ट या स्वाभाविक लक्षण है।

यदि परदुःख में कोई सुखी हो, परसुख में दुःखी हो तो समझिये कि यह दुष्ट मनुष्य है। समाज को इससे खतरा होगा। अतः इष्ट के प्रति सहानुभूति यानि सह-अनुभूति होगी और दुष्ट के प्रति घृणा या विरोध या निंषेध भाव होगा।

समचित्तता के विभिन्न भेद स्तर क्या है?

समचित्तता की मनोदशा दो प्रकार की होती है। व्यावहारिक और यौगिक। सामान्य व्यावहारिक जीवन में जब हम सामान्य आचरण करते हुए शेष जगत के सुख मे सुख और दुःख में दुःख मानकर चलते हैं, तो यह व्यावहारिक समचित्तता हुई और जब औसत से ऊपर उठकर दर्शन या योग के क्षेत्र में उत्तीर्ण होकर चित्त की समता का चिन्तन और तद्नुकूल आचरण करते हैं, तब योगी या सन्त-महात्मा की समचित्तता के भागी या अधिकारी बनते हैं। ऐसे योगी सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय सबको समभाव से देखते हैं। उनकी दृष्टि में शत्रु-मित्र, राग-द्वेष सब सम होते हैं। वे समदर्शी भी कहलाते हैं। जब चेतना में ऐसा समभाव आ जाये, तब उसे ही योग भी कहा जाता है।

समचित्तता को विकसित करने के साधन क्या है?

यह एक साधनाजन्य मनोदशा है। सामान्यतः यह चेतना सब में उपलब्ध नहीं होती। इसका उत्तरोत्तर विकास करना पड़ता है। इस भावात्मक आरोहण के लिए चित्त में संयम, अनुशासन, त्याग, उद्वेग-शमन, अहं व लोभ-दमन करना पड़ता है। हममें राग-द्वेष का होना स्वाभाविक प्रकृति है। ऐसे में द्वेष से रहित हो पाना कठिन लगता है। इसके लिए

घोर संयम, शील, संतोष, धैर्य, प्रेम आदि तत्वों/गुणों को अपने स्वभाव में सन्निवेश यानि समावेश करना वांछनीय है। आज के भौतिक परिवेश में धन-प्राप्ति की चाह यानि रईस बनने की आकुलता से बचना कठिन हो गया है। हम परिश्रम छोड़ आराम-तलब हो रहे हैं। ये सब समचित्तता की राह के रोड़े हैं। इनसे अपने को मुक्त रखना होगा। वैराग्य, सादगी, सच्चाई, ईमानदारी आदि दुर्लभ गुण होंगे, तभी समचित्तता आ सकेगी। किसी से कुछ नहीं चाहना भी निःस्पृह स्वभाव का द्योतक है। यह भी समचित्तता का अनिवार्य लक्षण है।

समचित्तता की कसौटी क्या है?

समचित्तता की कसौटी है - महिमा-त्याग। यदि हम सदा महिमा-मण्डित रहने के अभ्यस्त हो गये, तो चाटुकारों से घिरकर तपोभ्रष्ट हो जाएँगे। अतः सज्जनों व योगी-महात्मा को झूठी प्रशंसा से बचना चाहिए। पुनः फलासक्ति भी न व्यापे। यदि हम फलासक्ति से ग्रस्त होकर काम करेंगे तो उसमें बाधा पैरवी करायेगी और हमारी कर्मनिष्ठा बाधित होगी। इसलिए कृष्ण जी ने गीता में अनासक्त या फलमुक्त (निष्काम) कर्मयोग की शिक्षा दी। फल ईश्वराधीन है, कर्म ही हमारा अधिकार है और अन्ततः जय-पराजय जब एक सी हैं तब चिन्ता क्या है। जो होना हो, हो। हम प्राणपण से कार्यरत रहेंगे। अतः इसकी कसौटी निःस्पृहता यानि इच्छा या कामनारहित होने से है।

समचित्तता का महत्त्व व उपयोगिता स्पष्ट करो?

जिसका चित्त सम व शीतल है, निरुद्वेग है, वह सुखी है।

जिसके चित्त में प्राप्ति की चाह जलती है, आशा आकांक्षा, तड़प, बेचैनी है, वह अशान्त, अस्थिर अथवा दुःखी प्राणी है। अतः सुख, सन्तोष और शान्ति प्यारी हो, तो चित्त को सम रखें। यही समचित्तता है और समचित्तता की यही महत्ता एवं आत्मिक उपलब्धि होती है। आदमी निष्काम कर्मयोगी बन जाता है। उसे भोगों से वैराग्य हो जाता है। नाना वासनाएँ व विलासिताएँ उसे प्रति पल अब नहीं ऐंठती या निचोड़तीं। उसके दिल को चैन व सुकून मिल जाता है। जीवन में इसका महत्त्व सर्वोपरि है। मनोरथ की गति जहाँ कम हुई, हम शीतल चित्त का शान्त स्वर सुनने लगेंगे।

इस प्रकार सजनों हम कह सकते हैं कि समचित्तता हमारे चित्त की वह समतल दशा है, जिसमें आत्म-पर, सुख-दुःख, जय-पराजय का भेदभाव मिट जाता है। सब एक समान भासने लगते हैं। इससे ही समदर्शिता पनपती हैं। युग पुरुषों व महापुरुषों ने ईश्वर के ऐसे ही स्वभाव को लक्ष्य कर उन्हें समदर्शी कहा है। यह आत्मा की विकसित सात्विक चेतना का द्योतक है। सर्व साधारण तो यह तेरा है यह मेरा है, के जागतिक भाव में डूबा रहता है। पर जो इनसे ऊपर उठे हुए हैं, उनके चित्त में समत्व आ जाता है। उनके समक्ष शत्रु-मित्र समान हो जाते हैं और ऊपर उठ जाने पर तो वे अजातशत्रु भी कहलाने लगते हैं। अतः इस समत्व की उदात चेतना को हम जितनी ऊँचाई पर चाहे, ले जा सकते हैं। सज्जन सत्पुरुषों में हम इसका ऊर्ध्व यानि उच्चतम विकास देख सकते हैं।

इस सन्दर्भ में सजनों यह भी जान लो कि मानव सतत्

उद्वेगशील, स्पृहारत प्राणी है। उसे शान्त शमित बनने के लिए कठिन संयम, अभ्यास व साधना की अपेक्षा है। जब निरन्तर मनोरथ को लगाम देते रहने पर उसका वेग थमता है, तब समचित्तता आती है। आशा-आकांक्षा की आग शान्त होती है। सब समान, मित्रवत्, एक से भासने लगते हैं। यह मानवीय विकास की दशा है। यही उदात्तता है। इष्ट-अनिष्ट, जय-पराजय व सुख-दुःख का स्वाद अब एक जैसा जँचने लगता है। ऐसी मनोदशा उच्चतर मनुष्यता की है। सन्त, महात्मा, सत्पुरुष व योगी आदि ऐसे ही समबुद्धिशील हो जाते हैं। सीधी भाषा में कहना चाहें तो इसे ऊँची इन्सानियत यानि श्रेष्ठ मानवता भी मान सकते हैं। कोई तपोनिष्ठ ही समचित्तता को प्राप्त कर सकता है। प्रायः लोगों को यश भाता है, अपयश चिढ़ाता है। पर धन्य हैं वे, जो यश-अपयश को एक भाव से चखते हैं। हानि से ग्लानि और लाभ से लाभ मिलता है। पर धन्यवाद तो उन्हें है, जो हानि-लाभ दोनों को समस्वाद से चखते हैं।

उपरोक्त समस्त विवेचना से सजनों स्पष्ट होता है कि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार, संतोष, धैर्य, सच्चाई व धर्म इन चार सवालों को हल करने पर अन्दरूनी व बैहरूनी दोनों वृत्तियों में संतुलन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिससे स्वतः साम्य स्थिति पनपती है। याद रखो ऐसा मानव ही उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल होता है व उसकी वृत्ति, स्मृति, बुद्धि व भाव-स्वभाव रूपी बाणा सदा निर्मल रहता है। इस साम्यता के आधार पर ही योगी, समभाव से युक्त होकर अपने को सब प्रणियों में और सब प्राणियों को अपने में

देखता है। इस संदर्भ में सजनों हम संतुलन के अर्थ को स्पष्ट करते हुए बताना चाहते हैं कि संतुलन दो शब्दों के योग से बना है यथा, सम्+तुलन। इसका शाब्दिक अर्थ है अच्छी तरह तौलने की क्रिया या भाव, तराजू के दोनो पलड़ों पर बराबर या ठीक होना यानि न अधिक-न कम। इसका सर्वमान्य लाक्षणिक अर्थ है- वह स्थिति, जिसमें सभी अंग या पक्ष बराबर के या यथास्थान हों। यह उस अवस्था की सूचक है, जिसमें विभिन्न पक्षों के साथ-साथ शारीरिक, मानसिक अवस्था में भी साम्य स्थापित हो जाता है। इस अवस्था में गति स्थिर हो जाती है और समरसता उत्पन्न होती है। विचारों की समानता साम्य का सूचक होती है।

सजनों प्रकृति की प्रत्येक क्रिया में यह संतुलन दृष्टिगोचर होता है। सुख-दुःख, बाढ़-सूखा, ग्रीष्म-शीत, दिन-रात, शोक-हर्ष संतुलन के ही परिणाम हैं तथा इनके बीच में भी संतुलन रहता है या स्थापित करना होता है। तात्पर्य यह कि जीवन में संतुलन की परम आवश्यकता रहती हैं जिसके मुख्य आधार हैं संतोष, धैर्य, सच्चाई और धर्म। एक इन्द्रियनिग्रही, आत्मसंयमी, आत्मतुष्ट, विवेकी, धीर, सत्यपरायण और धर्मात्मा ही संतुलित रह सकता है। सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित युवावस्था की भक्ति यानि समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार, इन चारों को धारण कर वर्त्त-वर्त्ताव में लाने से भाव संतुलन, मानसिक संतुलन व वैचारिक संतुलन तो पनपता ही है, साथ ही व्यावहारिक संतुलन भी विकसित होता है। फलतः मन शांत रहता है व पारिवारिक, सामाजिक परिस्थितयाँ भी अनुकूल हो जाती हैं। इसके विपरीत इनका संतुलन बिगड़ते ही अनिष्ट की

संभावना बढ़ जाती है और अस्त-व्यस्त जीवन में सुख-शांति मिट जाती है। इसमें न तो मन शांत रह पाता है और न ही व्यक्तिगत जीवन सुखी हो पाता है। अतः संतुलन की स्थिति एक मानव के जीवन की अनिवार्यता है ।

याद रखो सजनों संतुलन अनिवार्यतः कल्याणकारी होता है क्योंकि इसमें स्पर्धा के लिए कोई स्थान नहीं रहता। मन का संतुलन मुख्यतः विवेक पर निर्भर करता है जिसके लिए संतोष, धैर्य अपनाकर, विचारों के मध्य तालमेल बैठाना पड़ता है। चूंकि संतुलन परिस्थितिजन्य अवस्था है इसीलिए यह स्थायी तथा अस्थायी दोनों प्रकार का हो सकता है। उदाहरणस्वरूप प्रकृति में जलवायु, ताप व दाब ऐसे प्रमुख कारक हैं, जिनके अनुकूल या प्रतिकूल होने पर संतुलन बनता या बिगड़ता है। सुख-दुःख, हर्ष-शोक आदि का संतुलन परिवर्तनशील यानि अस्थिर और अस्थायी माना जाता है। ध्यान दो यदि संतुलन स्थाई न हो, उसमें विचलन यानि अस्थिरता हो तो संशयात्मक स्थिति बन जाती है और पुनः असंतुलन की स्थिति उत्पन्न होने का भय उत्पन्न हो जाता है। अतः किसी कारण भी मन में संकल्प-विकल्प की तरंगे न उठें यानि मन संकल्प रहित अवस्था में सधा रहे उसके लिए विवेक द्वारा परिस्थितियों का सही तरीके से आकलन कर सत्यता से निज मानव धर्म पर डटे रहना ज़रूरी होता है। समभाव-समदृष्टि की युक्ति को धारण करने के लिए स्थायी संतुलन नितान्त आवश्यक है क्योंकि संतुलित बुद्धि मनुष्य ही प्राणी मात्र को समान दृष्टि से देखते हुए सभी के साथ एक सा आचरण कर सकता है। याद रखो योगी ही ऐसा व्यक्ति है, जिसमें इस प्रकार का

परम संतुलन पाया जाता है। तभी तो कदाचित् किसी भी परिस्थितिवश या अन्य कारण से उसके मन में ईर्ष्या-द्वेष, भेदभाव, क्षोभ आदि उत्पन्न नही होता अपितु वह तो सर्वत्र शांति की स्थापना करता है।

सारतः सजनों जान लो कि सह-अस्तित्व के लिए संतुलन आवश्यक है। नाना जातियों तथा धर्मों के लोग तभी शांतिपूर्वक रह सकते हैं, जब उनके विचारों में संतुलन हो। संतुलित विचार एवं संतुलित आहार मानव जीवन की सार्थकता की कुंजी हैं। जब अशन-व्यसन तुले हुए रहते हैं, तो ही व्यक्ति सुखी रहता है। संयम संतुलन का सूचक है। इसीलिए तो कहा गया है कि संतुलित व्यक्ति या समाज बहुत बड़ी उपलब्धि है। इस तरह हम कह सकते हैं कि संतुलन स्वीकार्यता है, समझौता है, समरसता है, समानता है व सहजता है और सम को धारने के लिए इसकी नितान्त आवश्यकता है।

अंततः सजनों यह तो सर्वविदित है कि आज का मानव नाना मतान्तरों, विरोधी मतों, आस्थाओं से ग्रस्त है। यह समस्या एक देश की नहीं अपितु समूचा सभ्य विश्व समाज भी सम्प्रदाय विशेष के उन्मादी विस्तारवाद एवं आतंकवाद से त्रस्त है। धर्मों में विभेद व आतंक के कारण भारी विश्व संकट खड़ा हो गया है। ऐसे में समभाव जो भारतीय संस्कृति का आधार है व सभी धर्मों का मूल है, आज के विनाशशील विश्व को ज्ञान दीपक दिखा सकता है यानि समता, एकता और एकरसता का विकास हो, मन-वचन-कर्म में सामंजस्य बना रहे तो मानव-मानव सब मिलकर शांत-सुखान्त मानवता की

संरचना कर धरती पर पुनः सतयुग ला सकते हैं। इस तरह इस धरती से वैर-विरोध, विषमता, दुःख-दैन्य का नामोनिशान मिट सकता है और परस्पर मैत्रीभाव होने के कारण भाईचारे के भाव का विकास हो सकता है।

इस परिप्रेक्ष्य में सजनों यह समभाव और इससे जुड़ अन्य पहलू क्या हैं इसके विषय में आगामी कक्षा में बातचीत करेंगे।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।



सम - (2)
प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

गत सप्ताह सजनों हमने जाना कि समता ही योग है, यानि, आत्मा-परमात्मा की एक अवस्था का प्रतीक है। समता मूलाधार है- समानता, एकरूपता, सदृश्यता, निष्पक्षता व धीरता की। इससे मन में विषमता नहीं पनपती। इस प्रकार शत्रु-मित्र, मान-अपमान, सर्दी-गर्मी, निन्दा-स्तुति, सुख-दुःख के द्वन्द में सम तथा आसक्तिरहित बना रहने वाला तथा मौनी और शरीर-यापन में सन्तुष्ट व स्थिरमति बना रहने वाला, निष्ठाशील मानव ही समचित्त कहलाता है व

ईश्वर का प्रिय होता है। इस संदर्भ में सजनों जानो कि ईश्वर किसी के अवगुणों को नहीं पकड़ता। वह समदर्शी होता है। सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार यह समदर्शिता आती है समभाव अपनाने से। अतः आओ अब सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार समभाव को समझते है-

समभाव अर्थात् समान भाव या प्रकृति वाला, एक जैसा। इसे अंग्रेजी भाषा में 'इक्वेनिमिटी' कहते हैं। यह लैटिन भाषा के शब्द एनिमिटास' से लिया गया है। इस के अंतर्गत 'इक्वेयो' का अर्थ है- सम एवं 'एनिमस' का अर्थ है मन-मस्तिष्क का भाव। इस प्रकार समभाव मन-मस्तिष्क का समान भाव है। समभाव ही समता है, समरसता है। इसके अंतर्गत भावों या विचारों की एकता हो जाती है। कई तो इसे इच्छा, ज्ञान और क्रिया की एकता भी मानते हैं। यह सामंजस्य या मेल भाव का द्योतक है। इसे ही ऋजुता, व्यावहारिक सुगमता, सरलता, ईमानदारी व स्पष्टवादिता का आधार माना जाता है। मन, वचन, शरीर और बुद्धि प्रवृत्त हों या निवृत्त- उनमें समान भाव रखना ही समभाव है, समता है, सामरस्यता है। ऐसे व्यक्ति समस्त जीवों को समभाव से ही स्वीकारते हैं। यह मानवता के बाह्य विभेद को अंदर से पाटने वाली आत्मिक अनुभूति है। तभी तो कहा गया है कि अनंत चेतना में एकीभाव तथा सबमें समभाव से देखने वाला योगी आत्मा को सम्पूर्ण जगत में स्थित और समस्त जगत को आत्मा में स्थित देखता है।

समभाव आने पर मन निर्द्वन्द्व हो जाता है। जड चेतन समरस हो जाते हैं, चेतना एकनोन्मुखी हो जाती है। आनन्द

अखंड और सघन हो जाता है। जान लो कि जागतिक आनन्द द्वंद्वपूर्ण होता है, अतः खंडित ओर विश्रृंखल हो जाता है, अस्थिर हो जाता है। जबकि अद्वैत मनः स्थिति में परा चेतना के पहुँच जाने पर सघन और अखंड आनन्द की स्थाई उपलब्धि हो जाती है। मानव उपराम हो जाता है, आत्मा राम बन जाता है।

स्पष्ट है कि, समभाव राग-द्वेष का उपशमन कर, जन्म-मरण, रोग-सोग, खुशी-गमी, मान-अपमान, अमीरी-गरीबी, दुःख-सुख, विजय-पराजय, लाभ-हानि आदि में, समरस रहने वाला, ऐसा भाव है, जो मनुष्य के हृदय से उपज कर, सम्पूर्ण विश्व को, अपनी शीतल छाया से, आच्छादित करने की क्षमता रखता है। इसी छाया में जब, व्यक्ति का आन्तरिक एवं बाह्य विकास, सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ता है, तो व्यक्ति की अंतरंग यात्रा, यानि इहलोक से परलोक का सफर, आनन्ददायक हो जाता है। सब ओर संशोधन और नव-सृजन की, लहर फैल जाती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि, समभाव का विशाल वट-वृक्ष ही, समता के लौकिक और अलौकिक स्वरूपों में, प्रतिफलित, पल्लवित और पुष्पित होता है। इसीलिए तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

खालस सोना दरखत होया,
वे खालस सोना दरखत होया।
त्रिलोकी विच चानणा दिखावे वे।
जेहड़ा इस दरखत दे नीचे आवे,
चानणे नाल चानणा हो जावे।।

समभाव के विषय में आगे यह भी कहा गया है-

समभाव देखो सजनों, जनचर बनचर,
समभाव देखो जगत जहान।।
ओथे जात पात न अमीरी गरीबी,
एहो दृष्टि सजनों राहवे महान।।

अर्थात् समग्र विश्व के प्रति, जो समभाव का नज़रिया रखता है, वह न किसी का प्रिय करता है, न अप्रिय। ऐसा समदर्शी तो, अपने-पराए की भेद-बुद्धि, व द्वन्द्वों से परे हो, अर्थात्, समस्त क्लेशों, पापों व संघर्षों से छुटकारा पा, सर्वथा निराकुल व शांत हो जाता है। इस प्रकार समभाव की साधना को, परिपक्व तभी माना जाता है, जब समग्र विश्व, एकरूपता से दिखाई देता है। याद रखो, जिसका मन समभाव में स्थित हो जाता है, वह जीते-जी ही हर शै में परब्रह्म परमेश्वर का अनुभव कर, संसार पर विजय प्राप्त कर लेता है। अतः ममत्व बुद्धि से रहित होकर, समभाव अनुरूप जीने की पद्धति को ही अपनाओ, क्योंकि, इससे भिन्न पद्धति को अपनाने पर, न तो जगत की, और न ही जीवन की सार्थकता को प्राप्त करना, संभव हो सकता है। यही अभाव फिर उसके द्वारा, मनगढंत व हानिकारक विचारधारा को, अपनाने का हेतु बनता है। सजनों किसी की पकड़ से सत्य न छूटे, इसके लिए, सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें कह रहा है-

सजनों समभाव समदृष्टि नूं धारण करो,
वैरी दुश्मन शत्रु सारे, इक सजन दृष्टि फड़ो।।

कहने का तात्पर्य यह है कि, जात-पात, ऊँच-नीच आदि के कारण उत्पन्न होने वाली, भेद-प्रवृति त्याग दो, और समभाव से ओत-प्रोत हो, अविलम्ब सबके साथ सहृदयता से, सजनतापूर्ण व्यवहार करना आरम्भ कर दो। याद रखो, अपने सुख-दुःख के समान, दूसरे के सुख-दुःख का अनुभव करना, मानव जीवन की परम श्रेष्ठ अनुभूति है। यही वास्तव में समता का निर्मल रूप है।

इस सन्दर्भ में सजनों जान लो कि प्रत्येक प्राणी को अपना जीवन प्रिय है। इसलिए उसे सुख अच्छा लगता है व दुःख प्रतिकूल। परन्तु जान लो कि सुख-दुःख की यह अनुभूति केवल स्वतः तक ही सीमित है। जीवन के प्रति यह एकांगी व अत्यन्त संकुचित दृष्टिकोण है। यही अनुभूति जब व्यापक रूप धारण करके दूसरे प्राणियों के भी सुख-दुःख का अनुभव करने लगती है तब वह समता का विशुद्ध रूप धारण करती है। अतः जो दुःख खुद को प्रतिकूल लगता है, वह किसी को मत प्रदान करो। इसके स्थान पर सर्व एकात्मा का बोध करते हुए दूसरों के सुख के निमित्त अपने सुख का त्याग करना सीखो। यही निष्कामता से परोपकार करने की व कर्मफल से मुक्त रहने की सर्वोच्च पराकाष्ठा है। तभी तो सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें समझा रहा है कि-

दुःख में सजनों सुख मनाइए,
तां शौह अपने दा दर्शन पाइए।।
जैंदे महाराज दे नैनां नाल नैन मग्न हुए,
ओ सजन चरणों में रैहंदा अस्थित।
उस सजन दी सब तरह से होसी फ़तह और जित्त।।

इस कथन से प्रेरणा ले हमें मन की शान्ति को रक्षित रखते हुए, अपने अन्दर प्रतिकूलता को प्रसन्नता से सहन करने की क्षमता का विकास करने के साथ-साथ, दूसरों की प्रतिकूलता को अनुकूलता में बदल देने की शक्ति भी उत्पन्न करनी है।

स्पष्ट होता है कि समभाव साधना मानव जीवन की महान एवं अनुपम उपलब्धि है। यही धर्म है और यही हृदय प्रकाशित सत्य व सुख-शांति का मूल है। याद रखो एक समभावी, जीवन की हर परिस्थिति में सुख ही सुख का अनुभव करता है। इस प्रकार चेतनात्मक स्तर पर जितना अधिक व सुदृढ़ता से वह समभाव को धारता जाता है उतनी ही तीव्र गति से उसकी सुख-वृद्धि भी सम्पन्नता का रूप लेती जाती है, क्योंकि वह सुख आत्मानन्द में रूपान्तरित हो, शाश्वत रूप धारण करता जाता है। याद रखो मोह-माया से रिक्त मनःस्थिति में सांसारिकता का बीज सूखने लगता है। ऐसा होने पर ही मनुष्य कोई भी अनुचित कर्म नहीं करता यानि सर्वहित को ध्यान में रखते हुए, सब कुछ अकर्त्ता भाव से करता हुआ परमात्म-स्वरूप सदा आत्मानन्द को प्राप्त रहता है। इसलिए सदा याद रखो कि राग-द्वेष रहित अवस्था में न पुण्य का आश्रय रहता है और न पाप का। अतः अपने जीवन उद्धार हेतु समभाव का महत्त्व समझते हुएः-

समभाव समदृष्टि दा सजनों, दिल में अमल लियाओ।
दिल में अमल लिया के सजनों,
दिल में अमल कमाओ, दिल नाल दिल मिलाओ।।

यहाँ हम स्पष्ट कर दें कि जिस समता की हम बात कह रहे

हैं वह सब स्थितियों में भीतरी होनी चाहिए। भीतरी समता से आशय वैचारिक यानि आध्यात्मिक समता से है। यह समता पकड़ी नहीं जाती, न ही बाहर से बनाई जाती है अपितु यह तो साधी जाती है। विचार और आचार की निरन्तर साधना से भीतर की समता पैदा होती व पनपती है। जो एक बार भीतर की समता की सुखमय अवस्था का रसास्वादन कर लेता है वह फिर उस समता के संरक्षण व संवर्धन से कभी विलग नहीं होता। याद रखो मन में इस समता का अनुभाव जब समाविष्ट हो जाता है तो वही अनुभाव (भाव के पीछे उत्पन्न होने वाली चेष्टा) वाणी और कर्म में उतर कर बाहर की समता का सृजन करता है। इस प्रकार आन्तरिक समता जब भीतर से पुष्ट होकर बाहर सजन भाव के रूप में प्रकट होती है तो करुणा, दया, सहानुभूति, सौहार्द, सहयोग आदि सहस्त्र पावन धाराओं में परिवर्तित हो सम्पूर्ण विश्व के समस्त प्राणियों के लिए मंगलमय बन जाती है। वह हज़ारों हृदयों को न केवल सुखद स्पर्श प्रदान करती है अपितु स्वयं में परिवर्तन लाने की प्रेरणा भी देती है। इस प्रकार समता बाहर और समता भीतर समान रूप से बिखर जाती है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में इस अभिव्यक्ति को बड़े सुन्दर तरीके से ब्यान करते हुए कहा गया है-

फिर फिर के देखां मैं दर्शन पावां नज़र आवें सोहणा तूं इक तूं इक तूं ।

इस तरह सजनों समता का सीधा सम्बन्ध है विषमता रहित अवस्था से। दुःख में, सुख में, संयोग में, वियोग में, शत्रु में, मित्र में, जाति में, समाज में, परिवार में और राष्ट्र आदि में

यदि समभाव से नहीं विचरते तो विषमता यानि ऊँच-नीच की हेतु असमानता व प्रचंडता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और सर्वत्र अशांति ही अशांति का वातावरण पनप जाता है। आज हम भले ही परिवार को लें या अखिल ब्रह्मांड को, एक मनुष्य को लें या व्यापक समाज को, सभी के मध्य इस विषमता का तांडव अबाध गति से चल रहा है।

कहने का तात्पर्य यह है कि द्वि-द्वैत, राग-द्वेष, मोह-माया, नफ़रत-घृणा, अन्याय, अनीति, कलह-क्लेश, झूठ-फरेब, युद्ध-संघर्ष, वैर-विरोध, दुःख-अशान्ति आदि का रूप ले यह विषमता वर्तमान युग में सर्वग्राही रूप धारण कर मानवजाति की सुख-शांति, व्यवस्था और समृद्धि को निगल रही है। ऐसे में दुःख की बात यह है कि जिस मानव को समभाव का आश्रय ले, सर्वहित की भावना से ओत-प्रोत हो, धर्म, त्याग और नैतिकता के सिद्धान्तों का साधक बनना चाहिए था वह आज, समत्व के दृष्टिकोण के अविकसित होने के कारण, स्वार्थपरता से ग्रसित हो, विषमता का पोषक बन रोने-झुखने के स्वभाव में बुरी तरह से अटक कर रह गया है।

परिणाम यह निकल रहा है कि विषमता की गर्त में पड़ा, आधि-व्याधि से संतप्त मानव, आज अज्ञानवश, भय, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार व अंधविश्वासों आदि का शिकार हो, चिंता व दुःख की वेदना से कराह रहा है। विषमता अथवा असंतुलन की यह चरम स्थिति है जिसके कारण इस पृथ्वी पर न केवल मनुष्य अपितु समस्त प्राणियों के अस्तित्व यानि मानव-धर्म पर स्थिर बने रहने को लेकर संकट उत्पन्न हो गया है। कब भयावह परिस्थिति से आतंकित मन, भौतिक विज्ञान के घातक हथियारों के अविष्कारों का

इस्तेमाल कर, किस क्षण इस धरा से जीवन का लोप कर दें, कोई कुछ कह नहीं सकता। इस खौफ़नाक परिस्थिति का शिकार होने से पहले मानव जाति के लिए आत्मिक ज्ञान द्वारा निज उद्धार करने का एक ही रास्ता है कि विकास की गति को अब शीघ्रता से भिन्न दिशा में यानि त्याग, प्रेम, सद्भाव यानि समभाव की दिशा में मोड़ दिया जाए। इससे सक्रियता, जागरूकता व आत्मविश्वास बढ़ेगा और आत्मविकास होगा। तभी हर मानव के मन में इन्द्रिय-विषयों एवं बातों के प्रति आसक्ति के स्थान पर विरक्ति पनपेगी और शरीर के भीतर जिस चेतन शक्ति का यानि अजर-अमर आत्मा का निवास है उसका प्रस्फुटन होगा। इस तरह चेतनात्मक स्तर पर प्रत्येक प्राणी को एक समान समझने से, समभाव अपनाने का विचार जाग्रत होगा यानि आत्मीयता के भाव का विकास होगा। याद रखो जैसे ही समभाव उजागर होगा वैसे ही विषयासक्ति की भावना शान्त हो जाएगी। मन अनन्त शक्ति की ओर, दिव्य ज्ञान की ओर, दिव्य प्रकाश की ओर, स्वयं अग्रसर हो जाएगा। यह हर मानव के हृदय में सत्य धारणा द्वारा, सत्य के वर्त्त-वर्त्ताव में बने रह, सच्चाई-धर्म का आदर्श रूप, स्थापित करने की बात है। इसलिए हमारी प्रार्थना है कि सब ऐसा ही बनना सुनिश्चित करो।

याद रखो जहाँ समभाव है-

ओथे संयोग कहाँ और वियोग कहाँ,
ओथे रोग कहाँ और सोग कहाँ।
जेहड़े मन-मन्दिर प्रकाश करेंदे ने,
ओथे खुशी कहाँ और ग़मी कहाँ।।

इस तरह संयोग-वियोग, रोग-सोग, खुशी-ग़मी में समरस रहने वाला साधक कभी भी किसी प्राणी को अपना शत्रु या वैरी नहीं समझता अपितु सभी को अपना मित्र समझ उनसे आत्मीयता का व्यवहार करता है। वह तो कभी भी किसी से पक्षपात नहीं करता। किसी की हिंसा नहीं करता अर्थात् अहिंसा के सिद्धान्त की पालना हेतु तन-मन-धन त्यागने से भी नहीं सकुचाता। इस संदर्भ में वह अहिंसा के वास्तविक अर्थ को समझते हुए, राग-द्वेष और मोह की अनुपत्ति को ही सही अर्थों में अहिंसा मानता है।

समता का साधक कभी भी किसी विशेष मत, पक्ष अथवा वाद का समर्थक नहीं होता, न ही उसके लिए जाति विशेष का कोई महत्त्व होता है। वह तो जनचर-बनचर, जड़-चेतन में समान रूप से उस सर्वव्यापक भगवान का अनुभव करते हुए सबको समान समझता है। इस तरह बुद्धि, मन और आचरण तीनों की समता साधने वाला वह साधक हर परिस्थिति व काल में समबुद्ध व समदृष्टा बना रहता है। तभी तो आत्मभाव से ओत-प्रोत वह मितभाषी सबके लिए सदा हितकारी व मीठे वचनों का प्रयोग करता है यानि उसकी वाणी व उपदेश सापेक्ष होता है। दूसरों के दोष बताने में उसकी वाणी सदा मौन रहती है। ऐसा सच्चा साधक हठी, दुराग्रही तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार के वशीभूत नहीं होता। वह निष्कामी, शांत, क्षमाशील, संयमी और ब्रह्मचारी तो सदैव अपने नित्य, शुद्ध-बुद्ध विलक्षण स्वरूप में स्थित रहता है। तभी तो वह अपने में सबको व सबमें अपने को एकरूप अनुभव करता है व मौत के भय से आज़ाद बना रहता है।

अतः सजनों यदि समभाव को साधना है तो देह अभिमान से ऊपर उठना होगा। तात्पर्य यह है कि शरीर और शरीर से सम्बन्धित वस्तुओं के प्रति जो लगाव है, आसक्ति, मोह-ममता व अज्ञान है, उसे त्यागना होगा। ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि इसके कारण मनुष्य क्षणिक सुखों में फँस, शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति करने में, पूरा जीवन लगा देता है और अनन्त व निर्दोष आत्मा के प्रति विमुख हो, निजी शक्ति, क्षमता, सामर्थ्य व अजरता-अमरता को पहचान नहीं पाता। परिणामस्वरूप जिस आत्मा के विकास के लिए मानव जीवन मिला है, उस उद्देश्य से भटक, समुचित आत्मिक विकास के अभाव में जीवन गँवा बैठता है। अतः सजनों यह सत्य मान लो कि यह शरीर परिवर्त्तनशील है, नश्वर है और आत्मा नित्य एकरस व अजर-अमर-अविनाशी है। फिर इसी सत्य अनुरूप विचार में स्थिर बने रह, मन-वचन-कर्म द्वारा व्यावहारिकता अपनाओ। इस सत्य का बोध कराते हुए सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें कह रहा है किः-

ए देही तेरी ख़ाक दी ढेरी निकल गया चमत्कार।
प्रीति तूं किस नाल करनै, मिथ्या ए संसार,
प्रीति तूं किस नाल करनै।।

समभाव को अपनाने के लिए अन्य जिस चीज़ की आवश्यकता है वह है शान्ति। शान्ति की उत्पत्ति आत्मा की स्वतन्त्रता यानि आत्मतुष्टि से होती है। इसका सम्बन्ध संतोष से है यानि इच्छाओं के विनाश से है व हर प्रकार के दंभ, वासनाओं की गंदगी, तुच्छ स्वार्थ व लिप्सा के भाव के त्याग से है। इसके लिए व्यक्तित्व का रूपान्तरण आवश्यक

है तथा इसका अन्त परम शान्ति है। यह एक ऐसी स्थिति है, जहाँ सुख है न दुःख, घृणा है न ईर्ष्या, अपितु सभी प्राणियों के प्रति समता का भाव है। इस प्रकार शान्ति आत्मा की एक वृत्ति है। ज्यों-ज्यों राग-द्वेष की आकुलता कम होती जाती है त्यों-त्यों अन्तःकरण में इस शान्ति का विकास होता जाता है। याद रखो शान्ति का उद्‌भव वैराग्य से होता है तथा इसका प्रसार दया, साधना, निष्कामता तथा परोपकार की भावना से होता है। याद रखो सजनों शांति चिरस्थाई है तथा दुःखों का नाश कर आनन्द प्रदान करने वाली है। शान्ति के लिए आत्मशुद्धि आवश्यक है क्योंकि मन में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विषय विकारों के आ जाने से विषमता बढ़ जाती है और समता का ह्रास होता है। अतः आत्मविश्लेषण व आत्मनियन्त्रण द्वारा मन में प्रविष्ट दोषों व विकारों का शमन करना अनिवार्य है। इस सदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित इस सत्य को सदा याद रखो कि 'शांति ही शक्ति है'।

आत्मसुधार की इस क्रिया में सजनों मनुष्य की निर्मल भावना भी अतुल्य भूमिका निभाती है। कहते हैं कि व्यक्ति की भावना जैसी होती है वह वैसा ही बन जाता है। भावना की तेजस्विता मनुष्य में साहस, तेज, ओज, मनोबल आदि की वृद्धि करती है तथा भावना की दुर्बलता जीवित मनुष्य को भी निर्जीव, दीन-हीन व क्षीण बना देती है। अतः सजनों संसार के समस्त जीवों के प्रति मैत्री-भावना यानि सजनता का भाव, चित्त को निर्मल बना, व्यावहारिक जीवन में समभाव का सफल साधक बना सकता है। यहाँ मैत्री भावना का आशय स्पष्ट करते हुए बता दें कि यह है—दूसरों के हित व

कल्याण का विचार, उनके प्रति निस्वार्थ प्रेम, बन्धुत्व और आत्मीयता का भाव, यह है दूसरों के सुख-दुःख की अनुभूति, अपनी आत्मा के समान ही करना। याद रखो मैत्री भावना मन, बुद्धि, चित्त और हृदय को पवित्रता से भर देती है। इसमें स्वयं के सुख की, जीने की या स्वयं के स्वार्थ की भावना मुख्य नहीं होती, अपितु मुख्य होती है, दूसरों के सुख, हित या जीने की भावना।

इस प्रकार सजनों सज्जनता यानि मैत्री भावना जब हृदय में व्यापक रूप धारण कर लेती है तो ये सारी क्षुद्रताएँ, संकीर्णताएँ व संकुचित स्वार्थ भावनाएँ आदि समाप्त हो जाती हैं और निर्मल प्रेम, दया, सहानुभूति, आत्मीयता, बन्धुत्व, सहृदयता, करुणा, क्षमा व सेवा आदि दिव्य गुणों का विकास होता है। इस तरह तब आत्मा में व्यापकता और सर्वत्र एकात्मा की भावना घर कर जाती है। ऐसा साधक फिर सहज ही सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार कह उठता है -

एक ही मानो एक ही जानो, सजनों एक ही करो प्रवान।
इक इक ही सारा जग दिस्से इक है ओ सर्व महान।।

सजनों यही समभाव के साधक की सफलता का परिचायक है क्योंकि यह समता और शान्ति के शिखर तक पहुँचने का प्रथम सोपान है। आत्मा को विकसित और विस्तृत बनाने का पुण्य साधन है। इसी तरह आत्मत्व और विश्वत्व में अभिन्नता हो सकती है। फिर विश्व के ज़र्रे-ज़र्रे का ज्ञान, प्रत्येक हलचल का बोध उस त्रिकालदर्शी को सहज ही हो जाता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

समभाव समदृष्टि, समभाव समदृष्टि।
सजन जेहड़ा इक निगाह इक दृष्टि देखे जगत जहान ओजी ओजी।।
कर लैंदा ओ मेरे साजना कर लैंदा ओ मेरे साजना।
कर लैंदा आत्मिक ज्ञान ओजी ओजी।।
समभाव समदृष्टि विच जेहड़ा पक्का हो जावे इन्सान जी पक्का हो जावे इन्सान जी।
बिन औखियाईयों विन खेचलों जेहड़ी गुजर गई
जेहड़ी इस वक्त, जेहड़ी आने वाली
ओ मेरे साजना हो जांदा उस नूं ज्ञान ओजी ओजी।।

स्पष्ट है सजनों सब जीवों मे साम्य चेतना तथा सुख-दुःख को समभाव से लेना योग है। अतः पाप-पुण्य दोनों को त्याग कर निर्मल हो अत्यन्त समता को प्राप्त करो। याद रखो द्वैत पापयुक्त है। अद्वैत परम साम्य या निरतिशय (जिसकी सीमा नहीं) समता का प्रतीक है। अतः सफलता-विफलता को समान देखो। इस सन्दर्भ में सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में समभाव के साथ समदृष्टि शब्द का भी प्रयोग हुआ। समदृष्टि सबको सम या समान दृष्टि से देखने की अवस्था है। आशय यह है कि ऐसी दृष्टि जो सब अवस्थाओं और पदार्थों को देखते समय समान रहे, वही समदृष्टि है। अन्य शब्दों में इसे समदर्शिता भी कहते हैं। यह समदर्शिता क्या होती है आओ प्रश्नोत्तर के माध्यम से इसे भी समझते हैं-

समदर्शिता से क्या अभिप्राय है?

इस यौगिक पद में दो खण्ड हैं, सम और दर्शिता। सम् उपसर्ग जिसका अर्थ समान रूपेण, सम्यक् रूपेण या अच्छी तरह। दूसरे खण्ड में मूल धातु 'दृश' है, जिसका अर्थ है देखना। कुल

पदावली समदर्शिता बनी। इसका अर्थ है सम रूपेण अच्छी तरह देखी गई, सम्यक् रूपेण निरखी गई। संसार में देखते सब हैं, पर सम्यक् रूपेण देखने वाले कम ही होते हैं। अधिकांश बाहर से देखते हैं। कुछ पारखी भीतर तक देख लेते हैं। जो बाहर से देखते हैं, वे उनमें भेद बुद्धि कर लेते हैं। पर, जो भीतर से निरखते हैं, उन्हें सबके भीतर एक चेतन का ही परिदर्शन होता है। उनकी दृष्टि में समत्व होता है। ऐसे देखने को ही समदर्शिता कहते हैं। सबको एक नज़र से देखना समदर्शिता है। इसे भेद भाव विहीन दृष्टि भी कह सकते हैं।

समदर्शिता का अनिवार्य तत्त्व क्या है?

इसमें अनिवार्य तत्त्व है समता। संसार निजत्व मोह और पर भेद से पीड़ित है। अपना अपना है, पराया पराया है। यह सोच और यह दृष्टि सांसारिक है। जो औसत से ऊपर उठे मानव हैं, वे अपने जैसा ही दूसरों को देखते हैं। अपने जैसा समस्त लोक को मानो अर्थात दूसरे का सुख-दुःख अपना ही सुख-दुःख समझो, तो यह आदर्श दृष्टि हुई। समदर्शिता यही है। यह मेरा है, यह दूसरे का है यह विचार तो लघु चेतना वालों का है। उदारचरित के महापुरुष वे होते हैं, जो समस्त वसुधा को अपना कुटुम्ब मानते हैं।

समदर्शिता का विधि एवं निषेधपरक प्रयोग स्पष्ट कीजिए।

अपनत्व, अभेद, अभिन्नता, अपर-प्रत्यक्ष, तदाकारिता, समदृष्टि ये ही इस समदर्शिता के लिए विधि रूप हैं। इनके प्रतिकूल दुराव, परायापन, ऊँच नीच भेद, पर प्रत्यक्ष,

संकीर्ण दृष्टि, भेद भाव, वैषम्य भाव इसके विपरीत पहलू हैं। इनसे बचना चाहिए। सत्पुरुष इनसे बचते हैं। सहजात स्वार्थ वृत्ति को दबा कर अर्जित परार्थवृत्ति या संस्कारगत परोपकार वृत्ति के कारण वे सबको एक जैसा मानते हैं। तभी तो गीता में कहा गया है, 'जो महात्मा दुःख सुख, मिट्टी पत्थर स्वर्ण, प्रिय अप्रिय सबको समरूप देखते हैं वे महान गुणातीत पुरुष हैं।' भेद बुद्धि इन गुणों के आड़े आती है, अतः त्याज्य है। इसके विपरीत समता ग्राह्य है।

समदर्शिता के विभिन्न भेद क्या हैं?

इसके दो भेद किये जा सकते हैं- लौकिक समदर्शिता और यौगिक समदर्शिता। लौकिक व सामान्यतः उदार वृत्ति के सज्जनों-सत्पुरुषों में होती है। वे कौटुम्बिक जीवन में रहकर भी अपने-पराये की भेदबुद्धि से ऊपर होते हैं। संयुक्त परिवार के अभिभावक अपने पुत्र से अधिक अपने भ्रातृपुत्रों का ध्यान रखते हैं। यही आदर्श कौटुम्बिक जीवन-दृष्टि है। इसी से भारतीय जीवन संयुक्त परिवार-व्यवस्था चलती-पलती रही है। यौगिक समदर्शिता योगियों में सद्गुणों के उत्थान और प्रभु के ध्यान से सहज प्राप्य होती है। सबको समभाव से देखने वाला वह योगी सच्चा समदर्शी है। यह समदर्शिता योग द्वारा अर्जित और दुर्लभ है। पर, गृहस्थों की समदर्शिता पशु-पक्षी-परिवार- सबमे समभाव निरखने से संस्कारजन्य और अति दुर्लभ है।

समदर्शिता को विकसित करने के साधन क्या है?

सजनों समभाव अपनाने से हृदय विस्तार होता है और हृदय

विस्तार से समदर्शिता आती है। महापुरुषों की संगति, सत्संग, योग-ध्यान, चित्त-शुद्धि, औदार्य, सन्तोष, धैर्य, सच्चाई, विवेक आदि सद्‌गुणों के उत्थान भी इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस तरह जब इष्ट-अनिष्ट, सुख-दुःख, मिट्‌टी-सोना समान दिखने लगते हैं, तो मानव परमात्मा के सदृश महान बन जाता है।

समदर्शिता की कसौटी क्या है?

एकात्मता इसकी कसौटी है। द्वयता में समदर्शिता कहाँ? समत्व में व्यक्ति के आश्रय और विषय, द्रष्टा और दृश्य, भक्त और भगवान, अतिथि-आतिथेय - दोनों एकमेव हो जाते हैं। यह सत्त्वचित्त की उपलब्ध विभूति है। भेद और दुराव चला जाता है। याद रखो भेद में समत्व नहीं होता, समत्व तो अभेद में ही होता है। समदर्शिता भगवान के पास पहुँचा हुआ सद्‌गुण है।

इसका महत्त्व स्पष्ट कीजिए।

निश्चय ही जहाँ आत्मा में समत्व वृति सघन रूप ले ले और लघुत्व-बोध मिट कर, समता का ऊर्ध्व विकास हो जाए, वहाँ सच्चरित्र्य का उदात्तीकरण अवश्यम्भावी है और किसी व्यक्ति में इस उदात्त तेज का आ जाना निश्चय ही एक महान उपलब्धि है। यह सच्ची संतवृत्ति है, यह योगी की पराचेतना है। इससे जहाँ लोक-जीवन सँवरता-निखरता है वहीं आध्यात्मिक उत्थान भी होता ही है। जैसे साधु-संत समस्त चराचर को अपना स्नेह सिन्चन करते हैं, डूबते बिच्छू को तलहथ पर उठाते है, सर्प को गले में लिपटाते है, उनका

हिंस्त्र भाव भूलकर उन्हें अभय देते हैं, वैसे ही, महात्मा जन अपने-पराये का भेद भुलाकर सबकी कल्याण-कामना करते हैं। अतः इसकी महिमा असंदिग्ध है। ऐसी सहानुभुति और संवेदना के विस्तार से मानवात्मा का भी भरपूर विस्तार होता है। संकीर्णता दूर होती है। समाज में सौमनस्य आता है।

सारतः सजनों जान लो कि समदर्शिता सत्पुरुषों की चेतना की उस उदात्त दशा का नाम है, जिसमें वह सहजात औदार्यवश अथवा अभ्यास द्वारा ऐसी दृष्टि पा जाता है, जिसमें प्रिय-अप्रिय, सुख-दुःख, मिट्टी-सोना, अपना-पराया सब उसका आत्मीय और एक जैसा ही जान पड़ता है। कौटुम्बिक जीवन में समत्व-दृष्टि का निर्वाह तो और भी कठिन है चूँकि इसकी परिधि ममतामय होती है। पर, योग के क्षेत्र में विराग भाव लेकर चले जाने पर मोह तो पहले ही छूट जाता है। अतः अपने-पराये, घर-वन, सुख-दुःख में समत्व चेतना सहज ही विकसित हो जाती है। इस तरह समदर्शिता से चित्त विस्तार हो जाता है। इस विस्तृत चित्त में सारा समाज आत्मवत् प्रतीत होता है। प्रेम की परिधि बढ़ती है। यह अपने आप में व्यक्तित्व-विकास का बड़ा हेतु है। सामान्यतः व्यक्ति का हृदय अपने निजी परिवेश, भौतिक आवरण में होम-बद्ध रहा है। जब सत्संग से उसके हृदय का स्वार्थ-संकुचित कपाट खुलता है, तब उसमें अपने सिवा अन्य प्राणियों की भी प्रतिछवि दिखाई पड़ने लगती है। सम्बन्धों का दायरा इससे बढ़ता है। हृदय-विस्तार व्यक्तित्व-विकास के लिए सार्थक है। समदृष्टि उसमें अपनत्व-विस्तार करती है। और, तब शेष संसार से वह उत्तरोत्तर गाढ़ी प्रीति से जुड़ सकता है। इससे किसी भी व्यक्ति की सामाजिक

लोकप्रियता बढ़ती है, जो सफलता की सीढ़ी के सदृश है। आपसी मेल-जोल से बहुत से जागतिक कार्य-व्यापार फूलते-फलते हैं। व्यक्तित्व परवान चढ़ता है।

ऐसा व्यक्ति निर्भय हो अजातशत्रु बन जाता है यानि उस निर्वैर का कोई वैरी-विरोधी नहीं रहता। जान लो सजनों ऐसे सत्पुरुष सामान्य कोटि में परिगणित नहीं किए जाते अपितु विशिष्ट कोटि में परिगण्य होते हैं। मानवता की यह उच्चता भगवत्ता के पास ही मानी जाती है। फिर भक्त-भगवान में कोई अन्तर नहीं रहता। दोनों समान रूपेण महान हो जाते हैं। तभी तो गीता में भी कहा गया है:-

सर्वव्यापी अनंत चेतना में एकीभाव से स्थित योगयुक्त आत्मा वाला और सबमें समभाव से देखने वाला योगी आत्मा को सम्पूर्ण भूतों में स्थित और सम्पूर्ण भूतों को आत्मा में स्थित देखता है। जो योगी अपनी भांति सम्पूर्ण भूतों में सम देखता है और सुख दुःख को भी सम देखता है वही श्रेष्ठ योगी है।

सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में समभाव-समदृष्टि को युवावस्था की भक्ति के रूप में स्पष्ट किया गया है। इस युवावस्था की भक्ति को अपनाने से नौजवान युवा-अवस्था आ जाती है। उच्च बुद्धि, उच्च ख्याल, भक्ति प्रबल और शक्ति ताकतवर हो जाती है। यह युवावस्था की भक्ति क्या है, कैसे विभिन्न युगों में अवतरित युग पुरूषों ने इस ताकतवर भक्ति भाव को अपना कर फतह प्राप्त की तथा जीवन में इसे अपनाने का क्या महत्त्व है, इसके विषय में अगली सप्ताह जानेंगे।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।



सम - (3)
प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

गत सताह सजनों हमने जाना कि समभाव हर परिस्थिति में अपने मन-मस्तिष्क को संतुलित अवस्था में साधे रखने की शक्ति है। यह प्राणी का मूल या प्रधान गुण है जो उसमें सदा रहता है तथा प्राणी की प्रधान एवं समान प्रवृत्ति है। यह वह अवस्था है जिसमें मनुष्य का किसी एक ओर झुकाव नहीं होता यानि यह रूप, गुण, मान, मूल्य, महत्त्व आदि में अभिन्न यानि समान एवं अपरिवर्तित रहने का भाव है। यही यथार्थता एवं सम्पूर्णता का भाव है तथा मनुष्य की कभी न छूटने वाली विशेषता है। अन्य शब्दों में हम इसे मनुष्य के निष्पक्ष, विरक्त

तथा सद्‌गुणसम्पन्न होने की सर्वोत्तम स्थिति भी कह सकते हैं।

इस तरह समभाव शुद्ध चेतना का प्रादुर्भाव है। यहाँ न प्रियता है न अप्रियता, न अतीत का अनुभव है न भविष्य की चिंता। यह वर्तमान में अर्थात् स्मृति, कल्पना तथा राग-द्वेष से मुक्त क्षण में अफुरता से जीवन जीना है। वर्तमान में जीवन जीने का अर्थ है मन को विश्राम देना अर्थात् कर्म-फल के भार से मुक्त हो मानसिक तनाव से छुटकारा पाना। इस प्रकार यह वीतरागता के क्षण में जीना है जहाँ समता ही प्रतिष्ठित होती है। इसी के साथ हमने यह भी जाना कि समदृष्टि सबको सम या समान दृष्टि से देखने की अवस्था है।

इससे सजनों यह स्पष्ट हुआ कि बिना समभाव के, यथार्थ ज्ञान नहीं होता और यथार्थ ज्ञान को व्यावहारिक रूप दिए बिना, समदृष्टि नहीं होती यानि समभाव मूलाधार है व समदृष्टि आत्मिक स्तर पर साधक की उपलब्धि। याद रखो, जो व्यक्ति इन समस्त नश्वर पदार्थों में, नाशरहित परमेश्वर को, समभाव से स्थित देखता है, वही यथार्थ में समदर्शी होता है। इस प्रकार समभाव अपनाकर, समदृष्टि हो जाने वाला, साधक परमगति को प्राप्त होता है और चहुं और शान्ति व एकता का वातावरण निर्मित करने में निष्कामता से अपना योगदान देता है।

अतः इस महान उपलब्धि के दृष्टिगत सजनों यह आवश्यक हो जाता है कि हम हर पल अफुर अवस्था में एकरस बने रहने के लिए अपने ख़्याल को समभाव यानि मूलाधार से जोड़ें और इसकी तन्मयता से उपासना करें। इस तरह समभाव नज़रों में

कर समदर्शिता अनुरूप सजन-भाव का व्यवहार करने के योग्य बनें। सतर्क रहें कि सांसारिक सम्बन्धों व मायावी प्रभावों से फिर कभी भी किसी भी कारण या परिस्थितिवश यह उपासना न छूटे क्योंकि इस उपासना के छूटने का अर्थ होगा अपने साथ-साथ संगी-साथियों को भी, तनावग्रस्त निरर्थक जीवन जीने के लिए विवश करना। अतः ऐसा मत होने देना।

इस संदर्भ में सजनों, यह तो सब स्वीकारेंगे कि हम सभी, सुख प्राप्त करना चाहते हैं, उसके पीछे दौड़ते हैं, उसको प्राप्त करने के लिए, हर प्रकार का प्रयत्न करते हैं, साधन जुटाते हैं, किंतु वास्तविकता यह है कि, सुख किस वस्तु में है, यह हम जानते नहीं। यही कारण है कि हम, स्थायी आनन्द के स्थान पर, क्षणिक सुख को ही असली सुख मानकर, उसी से खुश हो जाते हैं और उसी में फँस जाते हैं। इस संदर्भ में सजनों, यह याद रखो कि, वास्तविक व स्थायी सुख, आत्मिक आनन्द की प्राप्ति में है, जो मात्र आत्मिक ज्ञान द्वारा, युवावस्था की भक्ति, यानि समभाव-समदृष्टि की युक्ति को अपनाने व सजन-भाव को वर्त्त-वर्त्ताव में लाने से ही, प्राप्त हो सकता है। इस चिर स्थाई सुख की प्राप्ति की ख़ातिर सजनों, समत्वमय ब्रह्म या ईश्वर, जो सबमें एकरस निहित है, उसका बोध करो, क्योंकि यथार्थ बोध ही, ज्ञान और दर्शन की सार्थकता है। इसी से, हृदय निहित समभाव उजागर होता है, यानि भक्ति का सच्चा स्वरूप, प्रगट होता है और सहज ही प्रत्येक प्राणी के प्रति, आत्मवत् दृष्टि यानि समदृष्टि हो जाती है। इसलिए हम कह सकते हैं कि, समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार, जीवनयापन करने से,

एकता और एक अवस्था, बनी रह सकती है। आओ अब जानते हैं कि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में विदित यह समभाव-समदृष्टि की युक्ति क्या है:-

समभाव-समदृष्टि की युक्ति क्या है?

यह युवावस्था की भक्ति है। इसे ही समस्त ग्रन्थों में जीवन लक्ष्य अर्थात् मुक्ति को प्राप्त करने की सबसे उत्तम व एकमात्र भक्ति माना गया है। यह भक्ति आज के युग में प्रचलित भक्ति के विभिन्न प्रकारों में से सबसे श्रेष्ठ एवं सुगम युक्ति की द्योतक है।

समभाव एवं समदृष्टि दोनों शब्द किसकी मूल प्रकृति को प्रदर्शित करते हैं?

आध्यात्मिक दृष्टिकोण से समभाव एवं समदृष्टि दोनों शब्द ईश्वर की मूल प्रकृति को प्रदर्शित करते हैं।

समभाव-समदृष्टि यह भाव अथवा गुण कैसे व्यक्तियों के लक्षण हैं?

यह भाव अथवा गुण अत्यन्त श्रेष्ठ, विशिष्ट एवं परम आदरणीय महान व्यक्तियों के लक्षण हैं।

समभाव-समदृष्टि की युक्ति किस की साधन मानी जाती है?

यह युक्ति समृद्धि, समता एवं शान्ति की साधन मानी जाती हैं।

समभाव-समदृष्टि की युक्ति की विलक्षणता का प्रमुख बिन्दु क्या है ?

यह मात्र व्यक्तिगत स्तर तक सीमित न होकर ईश्वर की

सर्वज्ञता, सर्वव्यापकता व सर्वशक्तिमानता को अभिव्यक्त करती है।यह निर्विवाद है अर्थात् हर प्रकार के तर्क-वितर्क, कुतर्क से रहित है।

समभाव-समदृष्टि की युक्ति को धारण करने की आवश्यकता क्यों है?

अपनी मूल प्रकृति अर्थात् असलियत से विमुख हो काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार जैसे विकारों यानि बुरे भाव-स्वभावों में फँसी मानव-जाति को शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक पतन अवस्था से उबार आद् नैतिक मूल्यों की स्थापना करने हेतु व्यक्तिगत स्तर पर पुनः समभाव-समदृष्टि के सबक का अनुशीलन करने की आवश्यकता है।

समभाव-समदृष्टि की युक्ति का पुनः अनुशीलन करने की आवश्यकता है, यहाँ पुनः शब्द से क्या तात्पर्य है? क्या पहले भी कभी इस भाव को अपनाया जा चुका है? यदि हाँ तो कब ?

समभाव-समदृष्टि हमारी आदिकालीन सभ्यता की श्रेष्ठता व उसकी महानता की परिचायक रही है। इस सर्वोत्कृष्ट भाव को अपनाकर व अमल में लाकर ही आदिकालीन सभ्यता व संस्कृति ने अर्थात् सतयुग के मनुष्यों ने विकास के चरमोत्कर्ष को छू कर जीवन के हर क्षेत्र में चाहे वह आध्यात्म रहा, कला-कौशल रहा, ज्ञान-विज्ञान रहा, शारीरिक-मानसिक अवस्था रही या अन्य कोई क्षेत्र, अपने सम्पूर्णतः विकसित होने का प्रमाण दिया व एकात्मा हो एकता, शांति व आनन्द से जीवन जिया। चूंकि अब भी सतयुग आना है अतः उस युग में प्रवेश पाने हेतु वैसा ही

आचार, विचार व व्यवहार संबंधी विधान अपनाकर तदनुकूल सदाचार दर्शाना अनिवार्य हो गया है जो कि मात्र समभाव-समदृष्टि की युक्ति को अमल में लाने से ही संभव हो सकता है। इसलिए समभाव-समदृष्टि को पुनः अपनाने का आवाहन किया जा रहा है।

सतयुग के अतिरिक्त विभिन्न युगों में समभाव-समदृष्टि की महानता कैसे परिलक्षित होती है?

इस संदर्भ में विभिन्न युगों में श्रद्धेय युग पुरुषों के जीवनचरित्र पर यदि हम एक विहंगम दृष्टि डालें तो हमें ज्ञात होगा कि इस युक्ति को अमल में लाने के कारण ही अर्थात् जीवन की प्रत्येक कठिन व विषम परिस्थिति में अपने मन-मस्तिष्क को सम अवस्था में साधे रखने का पराक्रम दिखाने के कारण ही युग पुरुष दुःख-सुख व शोक-हर्ष में संतुष्ट व धीर बने रह आजीवन स्थिरता से सच्चाई-धर्म व परोपकारिता के मार्ग पर अग्रसर हो पाए और कुल संसार के प्रति सजन-भाव दृढ़ता से निभा पाए। निःसंदेह इस युक्ति ने ही उन निष्कामियों को सत्यनिष्ठा से वज्र अवस्था में बने रह धर्म की रक्षा हेतु सब कुछ त्यागने का बल दिया और वे निर्भय होकर पराक्रमी होने का साहस दिखा पाए।

समभाव एवं समदृष्टि की युक्ति के अनुशीलन से किस सत्य का बोध होता है और यह ज्ञान मानव को क्या बना देता है?

समभाव एवं समदृष्टि की युक्ति के अनुशीलन से ईश्वर व अपनी नित्यता यानि उत्पत्ति और विनाश रहित होने का व संसार की अनित्यता व अस्थिरता का बोध होता है और यह ज्ञान उसे असीम, धनाड्य तथा सबसे ज्ञानी व सजन पुरूष बना देता है।

समभाव एवं समदृष्टि का ज्ञान किस प्रकार मानव को उसके शाश्वत निज के सर्वत्र होने का आभास सरलता से करा देता है?

समभाव एवं समदृष्टि का ज्ञान प्राप्त करने से व्यक्ति को अपने 'शाश्वत् निज' के श्रवण की (सुनने की) बुद्धिमत्ता प्राप्त होती है, परिणामस्वरूप ईश्वरीय आदेश या आज्ञा के प्रति वचनबद्धता के बल की प्राप्ति होती है और वह 'वास्तविक निज' के गुणों को प्रचारित करता है। इस प्रकार वह स्वयं को इस अनुभव के प्रत्यक्ष ज्ञान एवं इस ब्रह्माण्ड में सभी में समता के प्रति समर्पित कर देता है । जिससे 'निज' के पूर्ण ज्ञान को पा लेता है।समभाव-समदृष्टि के अभ्यास में स्वयं को स्थिर कर लेने से सजन का मन-मस्तिष्क बिना किसी तकलीफ व कठिन परिश्रम के अनन्त ज्ञान के स्तर तक पहुँच जाता है अर्थात् वह उस दिव्य अवस्था को पा लेता है जहाँ पहुँच कर उसे भूत, वर्तमान व भविष्य का परिज्ञान सहज ही हो जाता है अर्थात् वह दिव्य प्रकाश को धारण कर लेता है। इस प्रकार इस प्रक्रिया द्वारा वह सजन पूर्णतया प्रकाशमान हो जाता है। फिर यह प्रकाशित व्यक्ति ईश्वर की आधारभूत प्रकृति से सूक्ष्मता से परिचित हो जान जाता है कि उसका शाश्वत निज' सब जगह प्रत्यक्ष है।

समभाव एवं समदृष्टि के अनुशीलन अर्थात् अभ्यास से व्यक्ति किस अवस्था को पा लेता है ?

इसके निरन्तर अभ्यास से सजन उस असीम, अलौकिक आनंदमय अवस्था को पा लेता है जहाँ उसे इस वास्तविकता का ज्ञान होता है कि न जन्म है न मरण, न रोग है न सोग, न

खुशी है न ग़मी, न ग़रीबी है न अमीरी। अन्य शब्दों में वह उस अवस्था को पा लेता है जहाँ उसे इस सत्य की जानकारी हो जाती है कि वह ही सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक व सर्वज्ञ है।

समभाव-समदृष्टि की युक्ति की प्रवानगी एक सामान्य इंसान को भी महान बना देती है, कैसे?

सत्य धारणा द्वारा यह एक सामान्य इंसान को संतोषी व धीर बना सात्विकता से मर्यादित जीवन जीने के लिए प्रेरित करती है और इस प्रकार निष्कामता द्वारा परोपकारी वृत्ति-प्रवृत्ति में ढाल सत्यनिष्ठा से मानव-धर्म का निर्वाह कर सम्पूर्ण मानव जाति के समक्ष मानव का आदर्श रूप रखने में सक्षम बनाती है। यदि गौर से देखा जाए तो यही आदर्श वास्तव में मानव होने की वास्तविक पहचान होती है जिसकी यश-कीर्ति का गुणगान पूर्ण श्रद्धा और विश्वास से युग-युगांतरों तक गाया जाता है। इस प्रकार इस युक्ति की प्रवानगी द्वारा एक सामान्य इंसान की हस्ती भी महान बन जाती है।

आओ महान बनने के लिए अब समभाव-समदृष्टि के विषय में आगे समझते हैं-

'सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ' में समभाव-समदृष्टि को किस प्रकार वर्णित किया गया है ?

'सन्तोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म धारण कर मन-वचन-कर्म को पवित्र व स्वतन्त्र अवस्था में साधे रखना है तात्पर्य है कि नकारात्मकता से विमुक्त हो ईश्वर की सर्वव्यापकता के प्रति

दृढ़ विश्वास रखते हुए जनचर-बनचर, जड़-चेतन में एक निगाह एक दृष्टि रखनी है।'

अपने मन, वचन व कर्म को पवित्र एवं स्वतन्त्र अवस्था में साधे रखने के लिए क्या आवश्यक है?

अपने मन, वचन व कर्म को पवित्र एवं स्वतन्त्र अवस्था में साधे रखने के लिए आवश्यक है कि हम अपनी सत्ता का आधार इस, ब्रह्माण्ड के दिव्य स्त्रोत अर्थात् ईश्वर को बनाएँ तथा उसके दिव्य आदेशों के प्रति वचनबद्धता में स्थिर बने रहें।

समभाव एवं समदृष्टि का अनुशीलन करने हेतु एक मानव के अन्दर क्या विशेषताएँ होनी आवश्यक हैं?

1. बचपन से ही समभाव एवं समदृष्टि का अनुशीलन करने के लिए दृढ़ हो जाएं तथा मन, वचन व कर्म से ईश्वरीय संविधान अनुसार कार्य करना सुनियोजित करें। याद रखो इसका मूल सिद्धान्त है एक दृष्टि-एक दर्शन।

2. 'विचार ईश्वर आप नूं मान, अव विचार ईश्वर इक जान'। इस यथार्थ को सदैव याद रखें।

3. 'शब्द है गुरु, शरीर नहीं है' अर्थात् किसी व्यक्ति के चित्र, मूर्ति या आकृति का ध्यान या उपासना न करें अपितु शब्द को ही अपना गुरु मानें।

4. सन्तोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म तथा इनसे जुड़े अन्य दिव्य गुणों को दृढ़ता से धारण करें।

5. इस सत्य को स्वीकारें कि ईश्वर सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक व सर्वज्ञ है।

6. यह स्वीकारें कि हम सभी समान हैं तथा हमारा मन-मस्तिष्क सभी प्रकार के भेद-भावों व द्वैत भावों अर्थात् जात-पात, रंग-भेद, धर्म, नस्ल, अमीरी-ग़रीबी इत्यादि से परे है।

7. ईश्वरीय गुण धारण करने तथा जीवन की प्रत्येक अवस्था में स्वयं को संतुलित एवं सम अवस्था में बनाए रखने हेतु अपने व्यवहार, आचरण, आदतों व जीवन-शैली को बदलें।

समभाव-समदृष्टि की युक्ति का अनुशीलन करने में प्रवीण सजन किस प्रकार इस संसार में विचरते हुए भी इससे निर्लेप व स्वतंत्र रह शांतिपूर्वक जीवनयापन कर पाता है?

जीव, जगत व ब्रह्म के यथार्थ से परिचित होने के कारण समभाव-समदृष्टि की युक्ति में प्रवीण सजन यह भली-भांति जानता है कि यह संसार निस्सार है और इसके साथ जुड़ने का अर्थ है अपने हृदय में ऐसे क्षणभंगुर अनित्य भाव को उपजने का अवसर प्रदान करना जो अपने आप में संदेहास्पद व परिवर्तनशील हो। इसी आशय से वह जगत में विचरते हुए भी उसके नित्य प्रति बदलते दृश्यों के साथ जुड़ता नहीं अपितु इसके स्थान पर हर क्षण अपने अविनाशी व त्रिकालव्यापी होने के सत्य का बोध कर उसी असलियत स्वरूप में निष्काम-भाव से ठहरा रहता है। यही कारण है कि संसार का हर प्रभाव व प्रयत्न उसके सामने निष्फल हो जाता है और वह शाश्वत भाव से सदा स्वतन्त्र बना रह आनंदमय जीवनयापन कर पाता है।

हम अपने अन्दर इस विश्वास को दृढ़ता से कैसे स्थापित करें कि हम समभाव-समदृष्टि की युक्ति को अमल में ला सकते हैं?

इस हेतु हमें उस ईश्वर का धन्यवाद करते हुए यह स्वीकारना है कि उसने हमें बुद्धि रूपी विशेष गुण प्रदान कर इस ब्रह्मांड की समस्त कलाकृतियों में सर्वश्रेष्ठ बनाया। यही नहीं हम इस विशिष्ट गुण का सदुपयोग कर ब्रह्म, जीव और जगत के सत्य का बोध करते हुए यथार्थता अनुरूप जीवन जीने योग्य बनें इसके लिए उसने हमें विवेकशक्ति भी प्रदान की। तो अपनी इन्हीं विशिष्टताओं के आधार पर हम आत्मिक ज्ञान को आत्मसात् कर सर्व एकात्मा के सत्य को जान सकते हैं यानि समभाव-समदृष्टि की युक्ति को अमल में ला सकते हैं।

समभाव-समदृष्टि की युक्ति अपनाने से एक साधक को क्या लाभ होता है?

वह अपने संकल्प कुसंगी को संगी बना कर उस पर फ़तह पाने में कामयाब हो जाता है।

उसके संतोष, धैर्य और सच्चाई-धर्म के चारों सवाल हल हो जाते हैं।

उसे बल की प्राप्ति होती है व उसकी भक्ति प्रबल व शक्ति ताकतवर हो जाती है।

उसके स्वभावों का घटता-बढ़ता टैम्परेचर सम हो जाता है

शारीरिक, मानसिक व आत्मिक रूप से वह पूर्ण स्वस्थ हो जाता है।

उसका पुरुषार्थ, आत्मविश्वास व पराक्रम नौजवान युवावस्था में आ जाते हैं।

उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल हो उसे अपनी असली ताकत का एहसास हो जाता है।

फलतः मौत का भय समाप्त हो जाता है और वह मृतलोक पर फ़तह पा जाता है।

इस तरह जीवन के प्रमुख उद्देश्य अर्थात् सत्य आत्मज्ञान की प्राप्ति के साथ-साथ पृथ्वी को यथार्थ रूप में शांतमय बनाना संभव हो जाता है।

समभाव-समदृष्टि की युक्ति का अनुशीलन करने वाले मानव को ऊपरवर्णित लाभों के अतिरिक्त सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि क्या होती है?

वह निर्बाध समदर्शी हो जाता है।

सहजता से अपनी हस्ती की अजरता-अमरता का बोध कर अपने त्रिकालव्यापी होने का रहस्य जान सकता है।

उसकी मानवीय हस्ती प्रशंसनीय व प्रेरणादायक हो जाती है।

यश-कीर्ति की प्राप्ति के साथ-साथ वह मानवीय चोले की उपयोगिता को सिद्ध कर निष्कामता व परोपकारिता की आदर्शतम मिसाल कायम करने में यानि सबके लिए सदाचार का मार्ग प्रशस्त करने में कामयाब हो जाता है। यही उसके जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि होती है।

आओ अब समभाव-समदृष्टि की युक्ति का संदेश जो है सजन-भाव का प्रसार व इस महान युक्ति को अमल में लाने का वैज्ञानिक तरीका समझते हैं-

समभाव-समदृष्टि की युक्ति हमें क्या संदेश दे रही है?

सजन-भाव की पढ़ाई व गुढ़ाई द्वारा अपने ख्याल को एक भाव में स्थिरता से साधे रखने में पारंगत हो इस मृतलोक पर फ़तह पाने का संदेश दे रही है।

मृतलोक पर फ़तह, यह कैसे संभव हो पाएगा?

जब हम अज्ञान यानि मोहनिद्रा में सोए हुए, सुचेत हो जगत में भटके हुए अपने ख़्याल को ध्यान द्वारा उस आद् चेतन सत्ता के साथ जोड़ अपने हृदय में वेद-विदित सत्य ज्ञान को पढ़, समझ व धार पाएंगे।

समभाव-समदृष्टि की युक्ति को अमल में लाने के लिए क्या करना है?

सजन शब्द अपनाकर सजनता को हृदय में इस तरह से रमा देना कि वह हमारा मूल गुण बन जाए अर्थात् सजन-भाव को पूरी तरह से मन-वचन-कर्म द्वारा वर्त-वर्ताव में ले आना है।

इस हेतु सजन-भाव का अपने अन्दर वर्धन कर उसको दिल से स्वीकारना होगा और सत्यनिष्ठा से उसके अनुकूल स्वयं को धर्म के रास्ते पर चलने के योग्य बनाना होगा।

सजन-भाव को धारे रखने व अमल में लाने हेतु क्या करना होगा?

इसे अपने स्वभाव के अंतर्गत करना होगा यानि भावोन्नति द्वारा अपने आप को सजन-भाव के अनुकूल आचरण व व्यवहार करने के लिए बाध्य करना होगा।

सजन-भाव के अनुकूल आचरण व व्यवहार करने से क्या तात्पर्य है ?

सर्वव्यापक भगवान को हाज़िर-नाज़िर जानकर परस्पर एक दूसरे के साथ यानि जनचर-बनचर, जड़-चेतन सबके प्रति मित्रवत् व्यवहार करना। अन्य शब्दों में 'सच चानणा है व झूठ अंधेरा है' इस तथ्य का बोध कर अन्दरूनी व बैहरूनी दोनों वृत्तियों में सत्य ज्ञान धारणा द्वारा अपने ख्याल, विचार, बोलचाल, खानपीन यानि आचरण व वर्त्त-वर्त्ताव को सत्य अनुरूप करना।

सजन शब्द के वर्त्त-वर्त्ताव द्वारा समभाव कैसे पकड़ में आ जाता है?

सजन शब्द के वर्त्त-वर्त्ताव से सारा ब्रह्मांड एक सजन हो जाता है जिससे कोई संकल्प बाकी नहीं रहता। हम एक निगाह एक दृष्टि हो अर्थात् सर्वव्यापक ईश्वरीय सत्ता का बोध कर दिव्य-दृष्टि प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार सब भिन्न-भेद समाप्त हो जाते हैं और हम एक आत्मा होकर, आत्मा में जो है परमात्मा उसकी पहचान कर लेते हैं। इस प्रकार समभाव मज़बूती से पकड़ में आ जाता है।

समभाव-समदृष्टि की युक्ति को अमल में लाने का वैज्ञानिक तरीका

समभाव-समदृष्टि की युक्ति को अमल में लाने का वैज्ञानिक तरीका क्या है?

'समभाव नज़रों में कर सजन वृत्ति फड़ियो

सजन भाव नज़रों में कर के सजनों,
सजन भाव प्रकृति में लियाईयो'

अर्थात्

1. सर्वप्रथम 'मैं ब्रह्म हूँ' और यह सारा ब्रह्मांड मेरी ही व्याप्त ब्रह्म सत्ता से क्रियाशील है, का सत्य अपने मन-वचन-कर्म में उतार कर समभाव नज़रों में कर लेना है। ऐसा होते ही अनायास शुभारंभ होगा हमारी हृदयगत वृत्तियों के सजनता अनुरूप ढलने का।

2. तदुपरांत सजन वृत्ति को इस प्रकार अपने आचार-विचार व व्यवहार में संचरित कर अपने स्वभाव के अंतर्गत कर लेना है कि वह फिर कभी छूट न सके। इस कौशल द्वारा हमारा दृष्टिकोण सजन भाव अनुरूप ढल हमारे मूल गुण का रूप ले लेगा यानि हमारी प्रकृति में ढल जाएगा।

3. इस प्रकार हमारे लिए समदृष्टि होना यानि एकात्मा होकर सबको एक सा समझना या देखना सहज हो जाएगा और हम 'सर्व सर्व वही ब्रह्म ही ब्रह्म है, फिर ब्रह्म विशेष भी है निर्लेप भी है और रूप रंग रेखा से बाहर है' इस सत्य को जान जाएंगे।

4. पूर्ण सफलता के लिए इस क्रिया को साधना व ध्यान द्वारा पूर्णतः निष्काम भाव से करना सुनिश्चित करना है।

स्पष्ट है सजनों इस कुदरती वैज्ञानिक तरीके के अनुसार समभाव को नज़रों में करने से सर्व एकात्मा यानि एकत्व का बोध होता है और मन में द्वैत पनपने की कोई गुंजाइश नहीं रहती। हम कह सकते हैं कि जब एक मानव का नज़रिया समभाव अनुरूप ढल जाता है तो स्वतः ही उस समदृष्टि की वृत्ति में सजन-भाव का उद्‌भव हो जाता है। फिर उस मानव के लिए सजन-भाव रूपी गुण नज़रों में कर उसके अनुकूल प्रवृत्ति अपनाना अर्थात् उसे अपने आचार-व्यवहार में लाना सहज हो जाता है।

याद रखो जो भी इस युक्ति को प्रवान कर व्यवहार में ले आता है उसका मन समभाव में स्थित हो जाता है और उस जितेन्द्रिय को परमात्मा में स्थित माना जाता है। इस प्रकार वह इस शाश्वत अवस्था में स्थित बने रह सम्पूर्ण संसार पर विजय प्राप्त कर लेता है। फिर वह हर्ष-शोक, सुख-दुःख, प्रिय-अप्रिय, सिद्धि-असिद्धि, मान-अपमान, संशय-भ्रम, शुभ-अशुभ व राग-द्वेष आदि द्वन्द्वों से रहित समान व स्थिर बुद्धि, उस परमेश्वर में एक ही भाव से नित्य स्थित रहते हुए निर्विकार, निश्चल शांत ब्रह्म को प्राप्त होता है और विश्राम को पा जाता है।

अंत में सजनों हम तो यही कहेंगे कि अगर जीवन लक्ष्य प्राप्त करना चाहते हो तो मानवीय मूल्यों के मूलाधार इस समभाव को समझो और इस हेतु सबसे सरल व प्रभावी समभाव-समदृष्टि की युक्ति के अनुशीलन को दिनचर्या का अभिन्न अंग बनाओ। मत भूलो कि परिस्थितियाँ कभी समान नहीं होंगी। ये तो सदैव बदलती रहेंगी। कभी निराशा होगी तो

कभी प्रसन्नता, कभी सुख होगा तो कभी दुःख। एक से आसक्ति पनपेगी तो दूसरे से विरक्ति। आसक्ति आसानी से पीछा नहीं छोड़ेगी और विरक्ति हम चाहते नहीं। इस प्रकार दोनों ही परिस्थितियों में अन्दर कामनायुक्त कमज़ोर भाव उत्पन्न होगा जिससे जीवन में द्वंद्व व अशांति उत्पन्न होगी। इस नुकसानदायक व द्वन्द्वात्मक स्थिति से बचने का सजनों एक ही उपाय है युवावस्था की भक्ति यानि समभाव-समदृष्टि की युक्ति को प्रवान करना। इस युक्ति की प्रवानगी द्वारा जीवन का प्रत्येक कार्य अकर्त्ता व निष्काम-भाव से करते हुए सम बने रह सकोगे। इस तरह मन में बेकार ही में उठने वाले संकल्पों-विकल्पों से मुक्ति मिलेगी और आत्मस्वरूप में लीन मन-चित्त परम शान्ति का अनुभव करेगा। याद रखो यही शांति ही शक्ति है। इस तरह भक्ति प्रबल और शक्ति ताकतवर हो जाएगी और उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल हो नौजवान युवावस्था आ जाएगी। सजनों यही लक्षण है सतवस्तु का। समभाव-समदृष्टि की युक्ति की इसी महत्ता को समझते हुए ही तो सुरत सतवस्तु के वाली श्री साजन के आगे नतमस्तक होकर प्रार्थना करती है :-

जीवन युग सजन-युग बन जाए,
वैसी सुमति बख़्शो जी।

समभाव हृदय में स्थित हो जाए,
वैसी युक्ति बख़्शो जी।

जो भी करें, सुकर्म कहलाए,
वैसी हस्ती बख़्शो जी।

इस घट में सतवस्तु छा जाए,
वैसी विरक्ति बख़्शो जी

संतोष-धैर्य विचार में आए,
वैसी निर्मलता बख़्शो जी।

सच्चाई धर्म अटलता पाए,
वैसी शक्ति बख़्शो जी।

ख़्याल ध्यान स्थिर हो जाए,
वैसी अफुरता बख़्शो जी।

परउपकार निष्काममय हो,
वैसी निर्भयता बख़्शो जी।

सुरत घर पहुँच विश्राम को पाए,
वैसी मस्ती बख़्शो जी।

समभाव-समदृष्टि की युक्ति के संदर्भ में इससे आगे बातचीत आगामी सप्ताह करेंगे।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 7 फरवरी 2016 का सबक

सम - (4)
प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

अभी तक सजनों हमने सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में विदित युवावस्था की भक्ति यानि समभाव-समदृष्टि की युक्ति की महानता व महत्त्व के विषय में जाना। साथ ही यह भी जाना कि सम सच्चिदानंद निर्दोष परमात्मा का प्रतीक है व समभाव ब्रह्मभाव है, ओजस्वी भाव है। एक मानव के लिए सजन-भाव अनुरूप आचार-व्यवहार में ढलने हेतु इस समभाव को नज़रों में कर परमेश्वर द्वारा रचित जगत की हर रचना यानि जनचर-बनचर-जड़-चेतन को ध्यान से यानि

समचित्तता से समझने का प्रयत्न कर, हर पदार्थ में अपने असलियत प्रकाश को देख उसके साथ अपने यथार्थ संबंध को समझना होता है।

इससे इस सत्य का बोध हो जाता है कि हम सब मिल कर ही एक बनते हैं यानि एकता, एक अवस्था का आभास हो जाता है। तात्पर्य यह है कि सब में उस परमेश्वर के दर्शन का भान होते ही मन में सबके प्रति सज्जनता का यानि आत्मीयता का भाव पनपता है और अपनत्व का एहसास होते ही हृदय एक दर्शन में स्थित हो जाता है। ऐसी अवस्था में जगत का प्रभाव हमारे मन को लिप्त नहीं कर पाता। यह होता है 'एक निगाह एक दृष्टि, एक दृष्टि एक दर्शन' अर्थात् समदर्शी हो, सजन-वृत्ति नज़रों मे कर सजन प्रवृत्ति को सत्यता से अपनाने व उसी अनुकूल व्यवहार प्रदर्शित करने को अपना धर्म मानना। ऐसा होने पर इन्सान भिन्न-भेद से रहित होकर, सबके साथ बराबरी का व्यवहार करता है।

इस संदर्भ में सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ इस युक्ति को अपनाने के प्रति प्रेरित करते हुए हमें कह रहा हैः-

समभाव-समदृष्टि दा शब्द निवे कोई औखा,
पकड़ो सजनों आप नूं होना जे गर सौखा
सजनो एहो चाल दिखा के,
स्कूल खुलया जे, ओ स्कूल खुलया जे।।

इक सजन वृत्ति पकड़ो,
इको करो वर्ताव।
इक बोलचाल, इक स्वभाव दिखाके,
स्कूल खुलया जे, ओ स्कूल खुलया जे।।

अर्थात् 'समभाव-समदृष्टि' के शब्द को अर्थ सहित यानि उसका अभिप्राय समझ इस विश्वास के साथ अपने हृदय व ध्यान दृष्टि में कर अपने मन-वचन-कर्म में उतारना कोई कठिन कार्य नहीं है। इस हेतु तो बस सजन-वृत्ति पकड़नी है और आत्मनिरीक्षण करते हुए यह क्रिया कदम-कदम पर विचार करते हुए दक्षता और धीरता से करनी है। फिर उस वृत्ति को यथार्थता व कुशलता से प्रयोग में लाते हुए इस जगत में विचरना सुनिश्चित करना है।

इस तरह इस क्रिया को अपनी उपासना का विधान समझकर अपने ख़्याल को इस तरह से नित्य निज स्वरूप में एकरस ध्यान स्थित रखना है कि यह क्रिया हमारे स्वभाव के अंतर्गत हो जाए। इसके उपरांत अपनी वृत्ति-स्मृति व बुद्धि को सदैव निर्मल रखने हेतु हमें सावधान होना है कि यह कारण जगत इस उपासना में विघ्न डाल हमारे ख़्याल को उस विधान में निश्चल बने रहने से भटका कर जगत में अटका न दे। याद रखो यदि हम ऐसा करने में सफल न हो पाए तो इस समभाव-समदृष्टि की युक्ति को धारण करने में बाधा उत्पन्न हो जाएगी। वह बाधा क्या होगी, आओ अब इस विषय में जानते हैं:-

समभाव-समदृष्टि की युक्ति को धारण करने में बाधा

समभाव-समदृष्टि की युक्ति को धारने में सबसे बड़ी बाधा क्या है?

हृदय की अशुद्ध अवस्था।

हृदय की अशुद्ध अवस्था का हमारे भाव-स्वभाव पर क्या

प्रभाव पड़ता है?

सजन-भाव का हृदय से लोप हो जाता है।

सजन-भाव का लोप होना किस विकृति के उपजने का सूचक होता है?

भाव विकृति का।

भाव विकृति से क्या तात्पर्य है?

जब समभाव व सजन-भाव के स्थान पर मानव अन्य दुर्भावों को ग्रहण करना आरम्भ कर देता है तो यह अपने आप में भाव विकृति कहलाती है जिसके कारण अन्दरूनी व बैहरूनी वृत्ति में सत्य धारणा प्रक्रिया बंद हो जाती है और हमारा मन-मस्तिष्क अचेतन हो परमार्थ के रास्ते से भटक जाता है।।

अन्दरूनी वृत्ति में सत्य धारणा प्रक्रिया किस प्रकार बंद हो जाती है?

विचार ईश्वर अपने आप का सत्य जब ध्यान की पकड़ से छूट जाता है और हमारा ख़्याल इधर-उधर भटकने लगता है तो ख़्याल ध्यान वल, ध्यान प्रकाश वल समरूपता से नहीं सधा रह पाता। इसी भाव विकृति के कारण अन्दरूनी वृत्ति में सत्य धारणा प्रक्रिया बंद हो जाती है।

बैहरूनी वृत्ति में सत्य धारणा प्रक्रिया किस प्रकार बंद हो जाती है ?

जब दृष्टि दोष उत्पन्न हो जाता है अर्थात् दृष्टि जब जगत में

अपने असली स्वरूप यानि उस ईश्वर का एकात्मा रूप में आभास नहीं कर पाती तो उसकी यह अवस्था समदृष्टि रूपी दिव्य गुण को खोकर भ्रमित दृष्टि से जगत को धारण करने का कारण बनती है तब बैहरूनी वृत्ति में सत्य धारणा प्रक्रिया बंद हो जाती है, और वस्तुओं और व्यक्तियों को देखने व समझने का दृष्टिकोण परिवर्तित हो जाता है।

समभाव-समदृष्टि की युक्ति के अनुरूप हम सत्य ज्ञान धारणा द्वारा हृदय की परिशुद्ध अवस्था बनाए रखने में सक्षम हो सकें, इस हेतु हमें क्या करना होगा?

इस हेतु हमें घरेलू बातों की कचहरी बंद करनी होगी तथा विभिन्न कलुषित यानि बुरे भावों जैसे द्वि-द्वैत, ईर्ष्या-द्वेष, वैर-विरोध, लड़ाई-झगड़ा, तृष्णा, तेरी-मेरी, कामना, वासना, कूड़-कपट, झूठ, चोरी, निंदा, स्वार्थपरता इत्यादि को छोड़ना होगा।

इस संदर्भ में हमें मुख्यतः क्या सावधानी लेनी होगी?

यही कि अपने या किसी के भी जीवन काल में आए दुःख-सुख का वर्णन देख-सुन व पढ़-समझकर द्वि-द्वैत के भाव से भावुक हो हम किसी के भी प्रति वैर-विरोध, ईर्ष्या-द्वेष, घृणा इत्यादि का दुर्भाव न रख बैठें अपितु उस समय अपनी जाँचना-तुलना कर अपने संतोष व धैर्य बल को हर परिस्थिति में सम साधे रखना सुनिश्चित करें। इससे जिस महान युक्ति को हम अपनाने जा रहे हैं उसकी पढ़ाई को बिना किसी कठिनाई के सुगमता से पढ़ सकेंगे अन्यथा संतुलन डोल जाएगा और हम हार खा जाएंगे।

समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुरूप, सत्य ज्ञान धारणा द्वारा हमें क्या लाभ प्राप्त होगा?

1. अन्दरूनी व बैहरूनी वृत्ति यथोचित शुद्धता में सधी रह पाएगी।

2. शरीर रूपी मशीनरी का हर कलपुर्ज़ा विकार वृत्ति से विमुक्त रह सदा स्वच्छ व स्वस्थ बना रहेगा जिससे मानव जो भी इस संसार में करना आवश्यक है वह सब सफलता से कर पाएगा।

3. हृदय में निष्कामता व परोपकारता जैसे सद्गुणों का वर्धन होगा। फलतः हृदय में सतवस्तु प्रगटेगी और हृदय रूपी घर के सचखंड बनते ही मन-मस्तिष्क सतयुग के विधान अनुसार काम करने लगेगा।

4. इस प्रकार गृहस्थ आश्रम ठीक चल पाएगा और बच्चों की पालना भी कुदरती नीति व नियमानुसार करते हुए हम एक अच्छे इंसान बनने में सफल हो जाएंगे।

सजनों हम सब भी ऐसे अच्छे इन्सान बनने में कामयाब हो जाएं और समभाव-समदृष्टि की युक्ति पर निर्विघ्नता से बने रह, वांछित फल प्राप्त कर सकें यानि स्वार्थपरता से हट निष्काम बने रह सकें, इस हेतु जान लो कि उस विधाता ने इस ब्रह्मांड रचना के कार्य के आयोजन व उसकी व्यवस्था को समुचित ढंग से चलाने के लिए सम्पूर्ण मानव जाति को विवेक रूपी विशेष बुद्धि बल प्रदान कर सम आधारित विधान यानि संविधान आत्मिक ज्ञान के रूप में एकरस प्रदान किया ताकि हर मानव के मन में सत्य प्रकाशित रहे और वह

मायावी जगत के प्रभाव से चलायमान हो इस विधान के विपरीत मानव धर्म का उल्लंघन न कर बैठे। यहाँ संविधान शब्द के व्यापक अर्थ को खोलते हुए हम बताना चाहते हैं कि संविधान शब्द दो शब्दों के योग से बना है यथा 'सम्'+'विधान'। 'सम' यहाँ पर सद्गुणसम्पन्न, संपूर्ण, यथार्थ व समान परमेश्वर का प्रतीक है तथा 'विधान' शब्द से आशय नियम, नीति, कानून, व्याख्या, व्यवस्था, कार्य करने की रीति, विधि व प्रणाली से है। इस प्रकार 'संविधान' शब्द का अर्थ उस परमेश्वर द्वारा निर्मित नियमों और नीतियों के समूह, उनकी व्याख्या, व्यवस्था व उनके अनुरूप कार्य करने की रीति, विधि व प्रणाली से है। स्पष्ट है सजनों यह ईश्वरीय विधान है। इस विधान पर दृढ़ता से डटे रहने वाला ही इन्सानियत के चलन के अनुरूप इस जगत में निर्लिप्तता से विचर सकता है।

इस तथ्य अनुसार सृष्टि के आरंभिक काल से इस ब्रह्मांड के शासक ईश्वर के हुक्म अनुसार मानव को समभाव आधारित संविधान के अनुकूल यथार्थ आत्मिक ज्ञान प्राप्त कर, एकरस आचार-विचार व व्यवहार अपनाने का आदेश है। अतः इस विधान अनुरुप परमेश्वर के हर हुक्म को मानना प्रत्येक मानव का सर्वोपरि कर्त्तव्य बनता है। इस कर्त्तव्य का कुशलता से पालन करने पर ही अर्थात् समभाव आधारित विधि के इस विधान को नियमानुसार खुद पर, परिवार पर व कुल समाज पर लागू कर उसको व्यवहार में लाने से ही मानव का मन-चित्त स्वतः एकाग्र हो सकता है और बुद्धि की विवेकशीलता द्वारा, सुख-दुःख हर विषम परिस्थिति में मानसिक संतुलन बना रह सकता है। फलस्वरूप सर्वत्र

शांति व्यवस्था कायम रह सकती है और हम हर प्रकार के मानसिक तनाव से मुक्ति पा सकते हैं।

हमारी आदिकालीन संस्कृति इस तथ्य की साक्षात् प्रमाण है। तभी तो जब तक सम्पूर्ण मानव जाति व्यक्तिगत व सामाजिक रूप से इस सम आधारित विधान यानि संविधान को अपनाकर सर्व एकात्मा के सत्य को अपने भाव व दृष्टि में एकरस प्रकाशित रख तद्नुकूल आचार-विचार व व्यवहार दर्शा पाई तब तक का समयकाल सतयुग कहलाया। इस प्रकार उस संविधान का अनुकरण करने के कारण ही तत्कालीन संस्कृति युगों-युगांतरों तक ज्ञान-विज्ञान व नैतिक उत्कृष्टता के साथ-साथ सर्वांगीण स्वस्थता, सुख-समृद्धि, शांति, एकता व एक अवस्था की सर्वश्रेष्ठ मिसाल कायम रख पाई और आज भी हमें पुनः वही समभाव आधारित संविधान अपनाकर सर्वोत्कृष्टता के उच्चतम शिखर पर पहुँचने के लिए प्रेरित कर रही है। इस संदर्भ में यदि हम युगों-युगान्तरों से प्रकाशित धर्म-ग्रन्थों को देखें तो यह ज्ञात होगा कि समभाव ही सभी युग पुरुषों यानि राम-रहीम, कृष्ण-करीम इत्यादि की गुणवत्ता व पराक्रम का आधार रहा है तथा समस्त धर्म-ग्रन्थ उन्हीं द्वारा आचार-विचार व व्यवहार में दर्शाए समभाव आधारित मूल्यों की महत्ता को उजागर कर रहे हैं।

इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि अपने मन को सम में स्थित रख समदृष्टि होने पर ही एक मानव सुशिक्षित और सज्जन पुरुष बन व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक व वैज्ञानिक दृष्टि से पर्याप्त उन्नत

अवस्था को प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार वह निष्कामतापूर्वक संतोष व धैर्य की शक्ति से खुद को वश में रख सकता है व सबके प्रति समान भाव रखते हुए निर्भयता से सच्चाई-धर्म की राह पर चलता हुआ त्याग व उदारतापूर्वक परोपकार जैसा महान पराक्रम दिखाने के योग्य बन जाता है।

इस परिप्रेक्ष्य में सजनों विडम्बनीय बात तो यह है कि श्रेष्ठतम आदि संस्कृति की उत्कृष्टता के मूलाधार व विभिन्न धर्म ग्रन्थों में विदित पवित्र वाणी के सार 'समभाव-समदृष्टि' की महानता व महत्ता से परिचित होते हुए भी हम क्यों आज तक समभाव-समदृष्टि की युक्ति को अपने जीवन में उतार सार्वभौमिक एकता व शांति स्थापित करने मे सफल नहीं हो पाए हैं ?

इस प्रश्न के उत्तर को सजनों यदि हम ध्यान से खोजें तो ज्ञात होगा कि श्रेष्ठतम आदि संस्कृति की उत्कृष्टता के मूलाधार व समस्त श्रद्धेय धर्म ग्रन्थों को पढ़ने, सुनने व समझने के उपरांत भी हम उनमें वर्णित मूल्यों के सार अर्थात् समभाव-समदृष्टि व सज्जन-भाव को अमल में लाने की आवश्यकता व महत्ता को आज तक सही तरीके से नहीं समझ पाए हैं। इसीलिए तो हम उन धर्म ग्रन्थों में वर्णित आत्मिक ज्ञान को आत्मसात् कर तद्नुकूल आचार-विचार व व्यवहार दर्शाने में सफल नहीं हो पाए हैं। यही मुख्यतः हमारे व मानव जाति की मानसिक अशांति व अनेकता का मुख्य कारण है। इस सन्दर्भ में प्रश्नोत्तर के माध्यम से सजनों हम समभाव-समदृष्टि और वर्त्तमान हालातों पर एक विहंगम दृष्टि डालते हैं:-

समभाव-समदृष्टि और वर्तमान हालात

क्या कारण है कि हम अपनी सनातन वैदिक पहचान यानि अध्यात्म आधारित जीवन शैली, नैतिकता व संस्कार आदि सब भूलते जा रहे हैं और इसका वर्तमान युवा व भावी पीढ़ी पर क्या प्रभाव पढ़ रहा है?

समभाव-समदृष्टि जैसे महान गुण से च्युत होने के कारण ही हम अपनी सनातन वैदिक पहचान यानि अध्यात्म आधारित जीवन शैली, नैतिकता व संस्कार आदि सब भूलते जा रहे हैं। खास तौर पर युवा पीढ़ी तो इससे बिलकुल ही अनभिज्ञ है। भारतीय आद् संस्कृति और परंपरा से अनजान होने के कारण हम सब में भांति-भांति की विदेशी संस्कृतियों के प्रति आकर्षण दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है जिसके प्रभाववश मानव जाति का शीघ्रता से सांस्कृतिक पतन हो रहा है। इस नैतिक पतन के कारण न केवल वर्तमान पीढ़ी मानसिक गुलामी का शिकार हो नाना प्रकार के कष्ट-क्लेश भुगत रही है अपितु आने वाली पीढ़ियाँ भी इसके प्रभाव से अछूती नहीं रहेंगी। यह स्थिति हर मानव के हृदय में अशांति व घोर कलियुग का वातावरण फैलने की सूचक है।

समभाव-समदृष्टि से च्युत हुए आज प्रत्येक मानव की हालत क्या है?

स्वार्थपरता के कारण आज प्रत्येक मानव के ख़्याल की स्वच्छता, जिह्वा की स्वतंत्रता व दृष्टि की कंचनता भंग हो चुकी है।

उसका दृष्टिकोण नकारात्मक व ध्यान अस्थिर हो चुका है।

उसके चित्त की एकाग्रता व मन की शांति भंग हो गई है।

मन-मस्तिष्क की इसी अचेतन व कठिन अवस्था के कारण

वह अपने मूल धर्म से विमुख हो, कुकर्म-अधर्म का रास्ता अपना रहा है यानि नैतिक व चारित्रिक रूप से पतित हो अनीतियाँ व दुराचार कर रहा है।

व्यक्तिगत व सामाजिक व्यभिचार बढ़ रहा है और परस्पर एकता, शांति व आनंद के स्थान पर आपसी द्वि-द्वेष, वैर-विरोध, छल-कपट, लड़ाई-झगड़े, कटुता व अशांति को बढ़ावा मिल रहा है यानि मन-मस्तिष्क सम अवस्था से च्युत हो विषम व अशान्त हो चुका है।

क्या भौतिक ज्ञान-विज्ञान के साधन व उपलब्धियाँ भी इस विषमता व अशान्ति को दूर करने में नाकामयाब हैं ?

निःसंदेह जैसा कि प्रतीत होता है कि वर्तमान काल में देश-विदेश में हुई भौतिक ज्ञान-विज्ञान की उपलब्धियों ने अनेकानेक सुख-साधन प्रदान कर आज मानव-मानव के बीच की दूरियाँ कम कर दी हैं और उसे आरामपरस्त बना दिया है किन्तु यदि ध्यान से देखा जाए तो इन भौतिक उपलब्धियों के कारण प्रत्येक मानव के अन्दर असंतुष्टि, अधीरता, प्रतिस्पर्धा, वैमनस्य, ईर्ष्या-द्वेष, कटुता, आतंकवाद, दुराचारिता, अमीरी-गरीबी, रंग-रूप व जाति-पाति आदि की द्वि-द्वेष युक्त भावना प्रबल हो चुकी है। फलस्वरूप बैहरूनी दृष्टि से जो सुख प्रतीत हो रहा है, वह हकीकत में सुख नहीं अपितु दुःख का ही हेतु है। इसी कारण ही तो प्रत्येक व्यक्ति अपने आचार-विचार व व्यवहार को दुर्भावों से रक्षित व सम रखने में असमर्थता का अनुभव कर रहा है और शीघ्रता से पतन की गर्त में जा रहा है। कहने का आशय यह है कि भौतिकवादिता के कारण उत्पन्न हुई यह परस्पर द्वैत व भिन्नता की विकट व असमंजस

स्थिति व्यक्तिगत स्तर पर मानव के मन-मस्तिष्क को तनावयुक्त कर मानव-धर्म की विकृति का कारण बनती जा रही है।

ये हालात अब कहाँ तक बिगड़ चुके हैं?

हालात यहाँ तक बिगड़ चुके हैं कि हकीकत में आज वैश्विक स्तर पर सम्पूर्ण मानव जाति इस विडम्बना का शिकार हो चुकी है और शारीरिक-मानसिक-आत्मिक-सामाजिक व वैश्विक पतन की इस अवस्था से उसे उबारने वाला अब कोई राजा-महाराजा, कोई धर्मशास्त्री यानि ऋषि-मुनि सहायक नज़र नहीं आ रहा।

आप के विचार में इन हालातों से उबरने का क्या साधन है?

अब तक हुई समस्त विवेचना के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि इन तमाम हालातों से उबरने का एकमात्र साधन समभाव-समदृष्टि की युक्ति का अनुशीलन ही हो सकता है क्योंकि एकमात्र इसी युक्ति को अपनाने से मानव धर्म के विरुद्व निषेधात्मक भाव-स्वभाव अपनाने में मानव की रुचि नहीं पनपती और वह आध्यत्मिक उन्नति कर, एक बुद्धिमान व पराक्रमी इंसान की तरह इस जगत में तृप्त रहते हुए निर्लिप्तता से विचर पाता है। अतः इस के लिए व्यक्तिगत स्तर से अपने आचार-विचार व व्यवहार के रूप का सत्यता से आत्मविश्लेषण करने की आवश्यकता है ताकि हम अपनी उसी श्रेष्ठतम आदि संस्कृति को यथारूप पुनः स्थापित कर सकें। तात्पर्य यह है कि हमें एक वैज्ञानिक की तरह अपने हृदय का शोधन कर, अब तक अपनाए दोषों को त्यागने का पराक्रम दिखाना है और आत्मसंयम द्वारा उन दोषों से मुक्त

रह अपने मन-वचन-कर्म द्वारा मानव-धर्म अनुरूप व्यक्तित्व दर्शाना है। यह होगा आत्मसुधार कर एक अच्छा इंसान बनना व पुनः नैतिकता को अपनाकर दुराचार व कष्ट-क्लेश के कारणों से अपनी व सबकी रक्षा करना।

मानव को उसकी दुर्भाग्यपूर्ण, दुःखद व अधम अवस्था से उबार पुनः उसकी श्रेष्ठता का युक्तिसंगत एहसास करा, नैतिक व चारित्रिक रूप से सर्वोत्कृष्ट बनाने के लिए कुदरत ने क्या प्रावधान किया है?

वसुन्धरा परिसर में 'ध्यान-कक्ष' अर्थात् 'समभाव-समदृष्टि के स्कूल' का निर्माण कर वहाँ पर समभाव-समदृष्टि की युक्ति' एवं 'सजन-भाव' की पढ़ाई व गुढ़ाई युक्तिसंगत कराने का प्रावधान किया है।

समभाव-समदृष्टि के इस स्कूल को खोलने के प्रमुख उद्देश्य क्या हैं?

1. हर मानव को उसके जीवन के प्रधान उद्देश्य के प्रति जाग्रत कर उसकी प्राप्ति के प्रति युक्तिसंगत प्रेरित करना ताकि उसके ख़्याल व ध्यान में उसके जीवन-लक्ष्य की जानकारी बनी रहे।

यानि

प्रत्येक मानव के ख़्याल को नित्य गुरु रूपी शब्द के साथ जोड़कर ध्यान शक्ति द्वारा उस आद् जोत से प्रकाश ग्रहण करने की क्रिया में सकुशल बनाना ताकि उसकी बुद्धि प्रकाशित हो और वह अपने असली तत्व यानि 'आत्मा में है परमात्मा' का बोध कर सके।

2. धर्म विमुख हो चुकी मानव जाति को धर्म के मार्ग पर अग्रसर कर पुनः धर्म की स्थापना करना।

3. प्रत्येक मानव को जीवन के परम पुरुषार्थों यथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को सिद्ध करने के लिए प्रेरित कर चहुं ओर एकता, शांति व आनंद का वातावरण निर्मित करना।

4. इस प्रकार हर एक के हृदय में 'सजन युग की बुनियाद' रख उसे परस्पर 'सजन-भाव के वर्त-वर्ताव द्वारा' पक्का करना जोकि लक्षण होगा सतवस्तु के आगमन का।

5 अतः समभाव-समदृष्टि की युक्ति में प्रवीणता द्वारा हर मानव की हस्ती को प्रशंसनीय व प्रेरणादायक बना देना ही इस स्कूल को खोलने का मुख्य मकसद है।

आओ अब इस स्कूल की पढ़ाई व वर्त्तमान समय में इस युक्ति को अपनाने की आवश्यकता के विषय में समझते हैं:-

समभाव-समदृष्टि के स्कूल की पढ़ाई क्या है?

सजन शब्द चलाओ जित्तो मृतलोक को।

इस स्कूल द्वारा इस दिशा में अब तक क्या प्रयत्न किया जा रहा है?

इस द्वारा अब तक समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार आत्मनिरीक्षण, आत्मनियन्त्रण व आत्मसुधार की प्रक्रिया द्वारा हर मानव के हदय में घर कर चुकी भिन्नता का उन्मूलन कर, सभी को मानवता के प्रतीक एक ही भाव यानि 'सजन-भाव' अपनाने के प्रति उत्साहित किया जा रहा है ताकि सम्पूर्ण मानव जाति एक जैसा व पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर

एकरस आचार-विचार व व्यवहार प्रणाली अपना सके और हर मानव सुव्यवस्थित, ईमानदार व नेक इंसान बन चारित्रिक उन्नयन द्वारा अपने व्यक्तित्व में पूर्ण निखार ला समदृष्टि जैसे महान गुण का इस्तेमाल कर मानव जीवन की सर्वोत्कृष्टता को भी साकार कर सके।

समय के इस दौर में समभाव-समदृष्टि की युक्ति को बिना एक पल गँवाए अपनाना हमारी नितांत आवश्यकता क्यों बन गया है?

क्योंकि कुदरती साइंस के अनुसार आगामी स्वर्णिम युग-सतयुग की लहर चारों दिशाओं से आरम्भ हो चुकी है अर्थात् सौरमंडल में इस प्रक्रिया का शुभारंभ हो चुका है। अतएव समय रहते ही अपने बचाव हेतु सचेत हो समभाव-समदृष्टि की युक्ति को अपनाकर सतयुगी आद् नैतिक संस्कृति के अनुरूप विशुद्ध भाव अपनाने व तद्नुकूल आचार-विचार व व्यवहार ढालने में ही समझदारी है।

अगर इतनी सचेती मिलने के बावजूद भी हम सावधान नहीं होते और पहले की तरह आचार-विचार व व्यवहार का ढंग अपनाए रखते हैं तो अंत नतीजा क्या होगा?

नतीजा यह होगा कि परिस्थितियाँ बद से बदतर हो जाएंगी और सम्पूर्ण मानव जाति को महाविनाश के भयावह अंत से बचाना दुष्कर हो जाएगा।

वर्तमान स्थितियों में समभाव-समदृष्टि की युक्ति को चरितार्थ करने के लिए हमें तत्क्षण व्यक्तिगत स्तर पर क्या करना होगा?

इस हेतु सर्वप्रथम तो हमें अतीत अर्थात् त्रेता से लेकर अब तक जीवनयापन हेतु निर्धारित की हुई परंपराओं, रूढ़िवादी मान्यताओं व कट्टरपंथी जीवन मूल्यों को भूलना होगा और भविष्य जो सतयुग है उसको दृष्टिगत रखते हुए उस समयकाल के अनुरूप सदाचार युक्त नैतिक जीवन शैली को वर्तमान में अपने भाव स्वभावों में ढाल कर दिखाना होगा। निःसंदेह यह तभी हो पाएगा जब हम समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार सजन-भाव की पढ़ाई व गुढ़ाई खुद करेंगे व आगे अपनी संतानों को भी इसके प्रति जाग्रत करने की हिम्मत दिखाएंगे।

संक्रमण के इस महत्त्वपूर्ण काल में समभाव-समदृष्टि की युक्ति के प्रति व्यक्तिगत स्तर पर किए जा रहे प्रयत्नों के अतिरिक्त और किस स्तर पर प्रयास किए जाने की आवश्यकता है?

सभी स्वीकारेंगे कि समभाव-समदृष्टि की युक्ति को स्वयं अपनाने व अन्य इंसानों को अपनाने के प्रति प्रेरित करने के लिए अब न केवल व्यक्तिगत, सामाजिक व राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास किए जाने की आवश्यकता है अपितु अब तो समय वैश्विक स्तर पर एकजुट हो हिम्मत दिखाने का है। इस हेतु सम्पूर्ण विश्व के बुद्धिजीवियों को एकजुट हो मानव जाति के उत्थान के निमित्त किए जा रहे इन अभूतपूर्व प्रयासों में निष्कामता से अपना सहयोग देना बनता है।

इस सर्वहितकारी समभाव-समदृष्टि की युक्ति का सबको एक जैसा व पूर्ण ज्ञान प्रदान कर इसको अमली जामा पहनाने के प्रति सरकार व सभी प्रबुद्धजनों का क्या कर्त्तव्य

बनता है?

सबका कर्त्तव्य बनता है कि वे उच्च स्तर की विशेष बैठक बुला कर एक समिति गठित करें और समयानुसार इस विषय पर पवित्र धर्म-ग्रन्थों में वर्णित ज्ञान पर गहन वैज्ञानिक शोध कर उसे एक पुस्तक या ग्रंथ का रूप दें ताकि वैश्विक रूप से समभाव-समदृष्टि को ही अर्थात् सतयुगी आचार-संहिता को ही संविधान के रूप में लागू किया जा सके और मानव जाति पुनः एकछत्र शासन के अंतर्गत एकात्मा का आभास करते हुए सुख, शांति व आनन्द से जीवन व्यतीत कर सके।

याद रखो जब समस्त मानव जाति एकता व समरसता की राह पर एकजुट होकर अग्रसर होगी तभी बाह्य एवं आन्तरिक दोनों आयामों में उन्नति एवं विकास करने के मार्ग स्वतः खुल सकेंगे और मानव जाति सहृदयता से जीवन जीते हुए विजय पथ पर अग्रसर हो सकेगी। इस संदर्भ में सजनों हम सबको यह कहना चाहते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इस व्यवस्था को लागू करने की आवश्यकता अब सबको समझनी होगी तभी दम तोड़ती मानवता फिर से जाग्रत होगी और दानव बन रहे मानव इन्सानियत को धार पुनः देवत्व को धारण कर सकेंगे।

सारतः सजनों जान लो कि वर्तमान हालातों में समभाव-समदृष्टि की युक्ति ही निज यथार्थता में बने रहने हेतु एकमात्र कारगर उपाय है। युवावस्था के भक्ति-भाव के नाम से जाना जाने वाला यह भक्ति-भाव वास्तव में, अपने आप में

उपासना या आराधना का वह उपाय है जिसमें मानव को अपने अन्दर सदा युवकों जैसे ओजस्वी, उत्साही व ज़िंदादिल होने का एहसास होता है। यही उसके पुष्ट, शक्तिशाली, उच्च बुद्धि व उच्च ख़्याल होने का सुदृढ़ आधार होता है।

इसी के द्वारा मानव संतोष, धैर्य का श्रृंगार पहनकर सच्चाई-धर्म की राह पर निष्कामता से चलते हुए परोपकार कमा सकता है। अन्य शब्दों में इसी युक्ति को प्रवान करने से तीनों तापों का टैम्परेचर जो घटता-बढ़ता रहता है वह समाप्त हो जाता है और हमारे सब सवाल हल हो जाते हैं। फिर समभाव जो एक निगाह एक दृष्टि देखनी होती है बिना यत्न के उसकी प्राप्ति हो जाती है। सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार यह है जन्म की बाज़ी को जीत लेना। ऐसा सजन फिर सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार सहसा ही कह उठता है-

'एक हूँ एक हाँ, एक नज़रों में एक ही एक हर अन्दर सुहा रहा, जनचर बनचर जड़ चेतन ओ हर्षा रहा इको रूप तुम्हारा, इको रूप तुम्हारा, शरीर दी बनावट अलग अलग कोई पतला कोई भारा कोई गोरा कोई काला।'

अंत में सजनों हम परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि नैतिक उत्थान के लिए वह हम सबको समभाव-समदृष्टि की इस युक्ति को धारण कर वर्त्त-वर्त्ताव में लाने के लिए बल, बुद्धि व सद्मार्ग बख्शें ताकि हर मानव के हृदय से अज्ञान के कारण उत्पन्न हुए कलियुगी भाव-स्वभाव जड़ से समाप्त हो जाएँ और उसका हृदय समभाव व सजन-भाव से ओत-प्रोत हो सतयुग का प्रतीक बन जाए।

इस संदर्भ में सजनों आखिर में हम आप सबसे एक सवाल पूछना चाहते हैं कि समभाव में इन्सान निरन्तर निर्विघ्न कैसे बना रह सकता है ताकि फिर उसके लिए सम कोई सवाल न बने?

संकल्प कुसंगी पर फतह पा जब इंसान संतोष, धैर्य, सच्चाई-धर्म के चार सवाल हल कर लेता है तो फिर उसके लिए सम का कोई सवाल नहीं रहता।

इस संदर्भ में सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ यह भी कह रहा है कि जैसे बुखार घटता-बढ़ता रहता है वैसे हमारे स्वभावों का टेम्प्रेचर भी घटता-बढ़ता रहता है। अगर हम संतोष पर काबू पाते हैं तो धैर्य छूट जाता है। धैर्य पर काबू पाते हैं तो सच्चाई-धर्म छूट जाता है। निःसंदेह ऐसा होने पर हम सम अवस्था में स्थित नहीं रह पाते। परिणामस्वरूप इन्सानियत के चलन के विपरीत बुराई का चलन अपना बैठते हैं और नेकी का रास्ता अपनाने के स्थान पर बदी के रास्ते पर चल पड़ते है।

ऐसा किसी के साथ न हो इसीलिए हम आप सबको यह समझाना चाहते हैं कि कुदरत के विधान अनुसार प्रत्येक वस्तु/जीव के लिए आवश्यक होता है कि वह अपनी बनत के अनुरूप, आजीवन अपनी गुणवत्ता बनाए रखे क्योंकि इसी गुणवत्ता के कारण उसकी कद्र होती है यानि वह अपनी इज्जत बनाए रख पाता है। सम पर डटे रहने के लिए भी सजनों मानव होने के नाते हमारे लिए बनता है कि हम अपनी बनत के अनुरूप अपने मूल गुण मानवता यानि

इन्सानियत पर मज़बूती से सुदृढ़ बने रहे। याद रखो यदि मात्र इतना कर लिया तो अपने इन्सान होने का कमाल देख सकोगे और उस कमाल का जलवा जब प्रदर्शित होगा तो आपकी यश-कीर्त्ति की सुगंधि चारो तरफ फैल जाएगी। इसीलिए तो सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है:-

सम मानो सम जानों, सम लवो पहचान, समदृष्टि जानो
अतः इन्सानों इस युक्ति को करो प्रवान।
यह युक्ति है सबसे आसान
इस तरह अपना आप लवो पहचान।

जानते हो अब तक हम ऐसा क्यों नहीं कर पाए?

स्वार्थपरता के कारण, निजी कामनाओं के कारण ही, हम संकल्प-विकल्प से रहित हो, निष्काम नहीं हो पाए। यह स्वार्थपरता ही हमारी सम अवस्था को नहीं बने रहने देती। इसीलिए सजनों जीवन उद्धार हेतु हमारे लिए बनता है कि हम अविलम्ब स्वार्थ का रास्ता छोड़ परमार्थ का रास्ता अपना लें। इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए अगली कक्षा में निष्कामता के विषय में बताकर इस सवाल का हल आपको बताया जाएगा। तब तक आप जो अब बताया है उसे वर्त्त-वर्त्ताव में ले आना।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

निष्कामता
प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

सजनों आत्मज्ञान द्वारा अपने असलियत स्वरूप की पहचान कर इस दुलर्भ मानव जीवन के सर्वोत्कृष्ट सत्य को सिद्ध करने के संदर्भ में हमने अभी तक सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित युवावस्था की भक्ति यानि समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार परस्पर सजन-भाव का व्यवहार सुनिश्चित करने हेतु क्रमशः संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म के सवाल हल कर कैसे सम पर खड़े होना है, इसके विषय में जाना। निःसंदेह सजनों जितना महत्त्वपूर्ण इन मानवता के अनुकूल व सद्-चरित्रता से परिपूर्ण जीवन मूल्यों के विषय में जानना

है, उससे कई अधिक महत्त्वपूर्ण इन्हें विचार में ला युक्तिसंगत अमल में लाना है। इस तरह खुद को, परिवार को व कुल समाज को निष्काम कर्म करने के योग्य बना उन्नति व मुक्ति की राह पर प्रशस्त करना है। इस संदर्भ में सजनों यह सर्व सिद्ध है कि बिना निष्कामता के इन दिव्य मूल्यों को व्यवहार में लाने का औचित्य सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि यदि निष्कामता नहीं तो मन को संतोष नहीं प्राप्त हो सकता। मन में संतोष नहीं तो धीरता से सम अवस्था में बने रह सच्चाई-धर्म के नीति नियमानुसार व्यवहार अपनाना असंभव सी बात हो जाती है। अतः इस मायावी जगत में निर्विकार, निर्वैर, निर्भय, निरासक्त व निष्कलंक जीवन व्यतीत करने हेतु 'निष्काम' रूपी इस बहुमूल्य गुण को समझना अति अनिवार्य है। आओ आज इसके विषय में जानते हैं-

सजनों यह तो सर्वविदित है कि जीव स्वभाव वश कर्म अभिमानी है। इस कर्म अभिमान से वासना प्रकट होती है और वासना के वशीभूत हुआ इन्सान फिर कर्म करता है। इस दुष्चक्रव्यूह में फँसा इन्सान संसारी पदार्थों के प्राप्त होने पर भी और न प्राप्त होने पर भी संतुष्टि व शान्ति प्राप्त नहीं कर पाता। इससे छूट कर आत्मतुष्टि व अखंड शान्ति प्राप्त करने के लिए उसके पास एक ही साधन होता है और वह होता है दृढ़ता से परमतत्व की परायणता यानि प्रभु परायण होकर तमाम कर्मों के सुख-दुःख रूपी फलों को उसके हुक्म यानि आज्ञा पर छोड़ कर अकर्त्ता व निष्काम भाव से हितकारी कर्म करने में प्रवृत्त हो जाए। यही जीवन जीने का असली तरीका है। निःसंदेह इस प्रकार निष्काम कर्म करने

से मानव के अन्तःकरण के दोषों का व दुष्ट वासनाओं का अन्त हो जाता है और उसके हृदय में निर्मल भाव-भावनाएँ पनपती है। इन निर्मल भावनाओं से उसकी बुद्धि, वृत्ति व स्मृति निर्मल और निश्चल हो जाती है जिसके फलस्वरूप उस व्यक्ति विशेष के लिए निज शाश्वत धर्म पर यथा बने रहना संभव हो जाता है। इस प्रकार आत्म स्वरूप में स्थिति से उसे निज के सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान व सर्वज्ञ होने का सत्य बोध हो जाता है जिससे जगत में सब कुछ करते हुए भी उसके लिए कर्त्तापन के अभिमान से मुक्त हो जीवन के परम लक्ष्य यानि मोक्ष को पा, अचल शान्ति प्राप्त करना सहज हो जाता है। निष्काम कर्म की इसी महत्ता को जानते-समझते हुए ही सब धर्म ग्रन्थों ने इसें मानव जीवन का निष्कंटक रास्ता माना है व कल्याण का सर्वश्रेष्ठ साधन कहा है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में भी कहा गया है-

निष्काम रस्ते ते आना रे दर्शन हमारा पाना रे,
निष्काम रस्ता है बड़ा सुखाला,
फकीरपना हटाना रे हाँ दर्शन हमारा पाना रे।।

इस सन्दर्भ में विडम्बना तो सजनों यह है कि यह सब जानने-समझने के पश्चात् भी हम वासनायुक्त हो स्वार्थपर कर्म करने में प्रवृत्त हो जाते हैं। यद्यपि हमारा दिल करता है कि हम हिम्मत करें और इससे उबरने का यत्न करें तथापि संसार के झटके खा-खा हमारा प्रयत्न फिर-फिर अवनत हो जाता हैं। इस सन्दर्भ में सजनों मत भूलों कि नीचे गिरना जितना आसान है, ऊपर चढ़ना उतना ही कठिन। अतः

हिम्मत से काम लो और सतत् प्रयत्न द्वारा ऊपर चढ़ने का अदम्य पुरूषार्थ दिखाने से मत घबराओ। इस तरह निष्कामता के प्रति दृढ़ संकल्प हो जाओ। इससे बुद्धि चलायमान नहीं होगी और आपके लिए मानव धर्म पर बने रहना सहज हो जाएगा। फलतः जीवन बनाने का कार्य सहजता से सिद्ध हो जाएगा।

आओ अब प्रश्नोत्तर के माध्यम से निष्कामता के हर पहलू को समझते हैं-

निष्काम से क्या तात्पर्य है?

निष्काम का शाब्दिक अर्थ है कामनाओं से रहित, इच्छा रहित, सब सांसारिक वासनाओं से रहित, जो फल की भावना की कामना से न किया जाए। यही मन की संकल्प रहित अवस्था होती है।

इस अर्थ से वह काम जो बिना किसी कामना अथवा फल की इच्छा के किया जाए, निष्काम कहलाता है तथा वह मनुष्य जिसमें किसी प्रकार की कामना, आसक्ति या इच्छा न हो निष्कामी कहलाता है।

निष्कामी कामनाशून्य होने के कारण समस्त सांसारिक इच्छाओं/बन्धनों, आकांक्षाओं व वासनाओं से रहित होता है। इसीलिए वह निस्वार्थी व संतुष्ट इन्सान कर्मफल द्वन्द्व की आसक्ति से मुक्त हो खुशी और ग़मी दोनों से ऊपर उठ जाता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है कि निष्कामी ही ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने का अधिकारी होता है।

धर्म ग्रन्थों के अनुसार निष्काम कर्म करने से चित्त शुद्ध होता है और मुक्ति प्राप्त होती है। निष्काम कर्म को अन्य शब्दों में निस्वार्थ कर्म, निस्पृहता व निरासक्ति भी कहते हैं।

निष्कामता क्या है?

निष्काम होने की अवस्था या भाव को निष्कामता कहते हैं। इस प्रकार यह हर प्रकार की कामना व आसक्ति से रहित होने का भाव है।

निष्काम रास्ता कैसा रास्ता है?

हर प्रकार की बाधा, आपत्ति या झंझट आदि से रहित निष्कंटक व निर्विघ्न रास्ता है। तभी तो सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है-

सुलभ पकड़ो निष्काम रस्ता,
जिस पकड़िया मिलन श्री राम।

निष्कामता का भाव मनुष्य के अन्दर कब उत्पन्न होता है?

जब अखंड शान्ति की प्राप्ति हेतु मनुष्य स्वार्थपरता की भावना से उठता है तो उसके अन्दर निस्वार्थ यानि निष्काम कर्म की भावना उदित होती है। यह अपने आप में परमार्थ के रास्ते पर प्रशस्त होने की बात होती है।

आज के युग में निष्कामता का भाव अपनाना कठिन क्यों लगता है?

क्योंकि भौतिकवादी इस युग में प्रत्येक इन्सान अधिकाधिक

सुख प्राप्त करना चाहता है। सुख चाहने की यह मानसिक प्रवृत्ति उसे इन्द्रियों के विषयों की ओर आकर्षित कर, असंख्य पदार्थों की प्राप्ति की इच्छा यानि मनोरथ सिद्धि की काम/कामना उसके अन्दर जगाती है। इस विषय भोग की कामलिप्सा ही उसे कामान्ध यानि कामवासना की अधिकता से विवेकहीन या अन्धा बना देती है। फलतः इन्सान को भले-बुरे, सत्य-असत्य का ज्ञान ही नहीं रहता और वह निष्काम कर्म करने की अवधारणा से भटक कर, अन्य द्वि-द्वेष युक्त विकारी भावों अनुसार उद्देश्य प्राप्ति या फल की इच्छा से किए जाने वाले काम्य कर्म करने लगता है।

यह काम-कामना क्या है?

यह इन्द्रियों की अपने-अपने विषयों की ओर प्रवृत्ति है। इसे मनोरथ सिद्धि की इच्छा भी कहते हैं। इससे कर्त्तापन का अभिमान अन्दर जाग्रत होता है।

निष्कामता के स्थान पर काम-कामना को अपनाने वाला कैसे दुःखों की गर्त में धँस जाता है, स्पष्ट करो?

इस संदर्भ में जान लो कि विषयों के ध्यान से उनके प्रति आसक्ति, आसक्ति से उनकी कामना, कामनाओं की पूर्त्ति न होने पर क्रोध व पूर्त्ति होने पर लोभ व मोह, क्रोध-लोभ-मोह से भेदभाव, मूढ़ता व स्मृतिनाश, स्मृतिनाश से बुद्धि का सर्वनाश यानि विनाश हो जाता है। इस तरह काम्य कर्मों को करने वाला मानव, मानवजीवन की अनमोलता को नकार कर दुःखों की गर्त में जा फँसता है। तभी तो सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

अपने आप ते न चल बेटा,
महाराज जी दे वचनां नूं फड बेटा।
सजन निष्काम रस्ता लवन ओ फड़ बेटा,
फिर झगड़े रोग हो जावन
हल बेटा तदो विश्राम सजन पा जावेगा।

काम हमारे ऊपर हावी न हो और हम निष्कामी बने रहें इसके लिए हमें क्या सावधानी लेनी है?

कामना की अग्नि से छूटने का एक ही साधन है और वह है आत्मबोध यानि सर्व एक दर्शन का अनुभव करते हुए दूसरों के सुख व हित की ख़ातिर अपने सुखों व हित का परित्याग करना सीखना। जैसे-जैसे दूसरों के सुख की ख़ातिर निजी सुखों का त्याग करना सीख जाओगे और सेवा में प्रवृत्त होगे त्यों-त्यों तूं-मैं का सवाल मिटता जाएगा और निष्काम अवस्था को प्राप्त होते जाओगे। इससे अन्दर आनन्द अवस्था बनेगी और मन पर काबू पाना सहज हो जाएगा। इस संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है:-

पहले निष्कामी वल ब्रह्मज्ञानी,
जद फकीरपना हटाओगे
त्याग दी कुर्सी ते इस्थर हो के,
जोत नाल मेल तुसां खावोगे।

अतः इन्द्रियों की अपने-अपने विषयों की ओर प्रवृत्ति को ध्यानपूर्वक समझकर संयमित व मर्यादित जीवन जीने के लिए अपने आपको बाध्य करो। याद रखो कि संयमित व मर्यादित मन ही इच्छाओं व आवश्यकताओं के मध्य के सूक्ष्म

अंतर को समझ अनर्थकारी यानि अवैध क्रियाओं में लिप्त होने से बचा रह पाता है और इस तरह अपनी दुर्बलताओं पर फ़तह पा, आत्मोत्कर्ष तथा किसी अन्य की भलाई व सहायता करने के निमित्त अपने सुखों का त्याग कर, परमानन्द की अनुभूति करने में समर्थ हो पाता है। ऐसा मानव फिर न राग ग्रस्त होता है न द्वेष ग्रस्त, न उसे हर्ष प्रतीत होता है और न विषाद। उसके मन में फिर न किसी के लिए ईर्ष्या होती है और न द्वेष। मन की ऐसी स्थिति मन पर पूर्ण विजय के बाद ही बनती है। वास्तव में तो यही एक निष्काम मन की स्थिति होती है। अतः आध्यात्मिक प्रगति द्वारा आत्मज्ञान को आत्मसात् करो। तभी सुदृढ़ता व निर्भयता से द्वंद्व विमुक्त रह अपने धर्म यानि निष्काम रास्ते पर डटे रहने का पराक्रम दिखा पाओगे। इस संदर्भ में घबराओ नहीं क्योंकि सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ इसके प्रति हमें प्रेरित करते हुए कह रहा है:-

गृहस्थी हो गए निष्कामी,
गृहस्थी हो गए ब्रह्मज्ञानी सार आत्मपद दी ओन्हां जानी।

एक निष्कामी किस प्रकार इस मार्ग पर बढ़ते हुए सफलता से अपना हर कार्य सिद्ध करने के साथ-साथ जीवन-लक्ष्य प्राप्त कर लेता है?

एक निष्कामी अपने जीवनकाल में प्रत्येक कार्य पूर्ण निष्ठा, तत्परता व निर्भीकता से करता है। इस प्रकार निष्कपट, करुणामय, निर्लिप्त और निष्कलंक रह साफ़-सुथरा जीवन जीते हुए वह सदैव सदाचारी बना रहता है यानि अपने चित्त को दोषरहित यानि शुद्ध व पवित्र रख हृदय को ख़ालिस सोना यानि सचखंड बना लेता है। सब कुछ करने की उसमें सामर्थ्य

होती है और इसी शक्ति द्वारा वह स्थिरता से, आत्मविश्वास के साथ, आगे बढ़ते हुए अपनी मंज़िल को सुगमता व सहजता से प्राप्त कर सर्वात्मा में परमात्मा रूपी हीरे की सार पा लेता है यानि ब्रह्म पदवी पाकर कर्त्ता-अकर्त्ता आप हो जाता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

निष्काम नूं धारण करके जेहड़ा निष्काम हो जावे
बिन औखयाईयों, बिन खेचलों,
बिन तकलीफों पार हो जावे निर्भय निर्वैर,
ओ ऐसे पद नूं पाये, ओ चमक रिहा,
चमके कुल जहान,

जपो भगवान जपो भगवान
निर्वाण पद नूं पाय के जोती नाल जोत हो जावे
बिन फुरनियों बिन सूरजों सर्व प्रकाश हो जावे
ओ चमके सचखण्ड ब्रह्माण्ड, ओ सर्व सर्व ही जान,
जपो भगवान जपो भगवान

निष्कामता का आधार क्या है?

निस्वार्थता।

निःस्वार्थता से क्या अभिप्राय है ?

यह स्वार्थ की भावना से रहित निजी इच्छा, हित, प्रयोजन या उद्देश्य से ऊपर उठकर किसी सर्वहितकारी या पवित्र उद्देश्य के निमित्त काम करने का भाव है। इसके लिए धन, दौलत, राजपाट, यशोलिप्सा और कभी-कभी जीवन का भी त्याग करना पड़ता है। इसीलिए तो कहते हैं कि निःस्वार्थी

धन ऐश्वर्य यानि भौतिक लिप्सा से अपने को मुक्त रखते हुए जीवनयापन करने की क्षमता रखता है। यही नहीं वह तो देश, काल के मुताबिक निजी स्वार्थ यानि अपने पुराने तौर-तरीके छोड़ कर निःस्वार्थता के साथ नया जीवन प्रारंभ करने की भी सामर्थ्य रखता है। याद रखो ईश्वर साक्षात्कार के लिए निःस्वार्थ होना यानि सांसारिक व्यापारों से मुक्त होना आवश्यक है क्योंकि सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

श्री राम गोदी विच रैहंदे निष्कामी ब्रह्मज्ञानी,
रैहंदे अनुरागी और त्यागी।
श्री राम गोदी विच रैहंदे सन्यासी और उदासी।।

निःस्वार्थता का अनिवार्य तत्त्व क्या है?

निःस्वार्थता तत्त्वतः भाव है और भाव मानसिक होता है। यह मन के स्तर पर जन्म लेती है। तदुपरांत इसका प्रकाशन भौतिक स्तर पर होता है। इसकी उत्पति का कारण जितना प्रबल होता है, उतनी ही प्रबल निःस्वार्थता की भावना होती है। इसके मूल में त्याग की भावना काम करती है। जो त्यागी नहीं होगा, वह निःस्वार्थ भी नहीं हो सकता। दोनों में कारण-कार्य या जनक-जन्य भाव-संबंध है। इसके कुल चार तत्त्व उभर कर सामने आते हैं निःस्वार्थता का भाव, निःस्वार्थता का आधार यानि आश्रय, निःस्वार्थता का आधेय यानि आलंबन तथा निःस्वार्थता का तरीका/साधन। जिसमें निःस्वार्थता का भाव पलता है, उसे आधार कहते हैं।

जिसके लिए स्वार्थ का त्याग किया जाए, उसे आलंबन

कहते हैं। यह व्यक्ति से लेकर राष्ट्र एवं ईश्वर तक हो सकता है। जिस तरीके या साधन का सहारा लेकर निःस्वार्थता का अनुपालन किया जाए, वह निःस्वार्थता का साधन कहलाता है। इसके कई तरीके या साधन हो सकते हैं, जैसे रूपए-पैसे का त्याग, जमीन का त्याग, बाग-बगीचे का त्याग, वस्त्राभूषण का त्याग, राजपाट का त्याग, जीवन का त्याग। उदाहरणस्वरूप राजा हरिश्चन्द्र ने सत्यनिष्ठा का पालन करने के लिए अपना समस्त राजपाट तक त्याग दिया।

निःस्वार्थता का विधि एवं निषेधपरक प्रयोग स्पष्ट करो?

निःस्वार्थता का जो रूप पवित्र उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अपनाया जाए, वह विधिपरक कहलाता है। पीड़ित मानवता की भलाई के लिए यदि अपने स्वार्थों की बलि चढ़ानी पड़े तो यह निःस्वार्थता का श्रेष्ठतर रूप होगा। दूसरी तरफ कुछ लोग नामवरी या दिखावे के लिए निःस्वार्थ बनते हैं। ऐसी स्थिति में निःस्वार्थता निषेधपरक कहलाती हैं। निःस्वार्थता प्रथमतः और अंततः विधिपरक होती है।

निःस्वार्थता के कितने भेद हैं?

व्यक्ति की मनःस्थिति के आधार पर इसके तीन भेद किए जा सकते हैं– सात्विक, राजसी एवं तामसी। शुद्ध मन/हृदय से स्वार्थ के परित्याग को सात्विक निःस्वार्थ कहेंगे। इसमें मन/हृदय शुद्धता की उच्चतम भूमि पर स्थित रहता है। इसमें लोकमंगल की भावना प्रधान रहती है। जब दिखावे के लिए स्वार्थ का त्याग किया जाए, तब निःस्वार्थता का यह रूप राजसी कहलाएगा। लेकिन जब क्रोध, शोक आदि तुच्छ मनोवृत्तियों के वशीभूत होकर स्वार्थ का त्याग किया जाए,

तब उसे तामसी रूप कहेंगे। इसमें मन का क्षुद्र अंश प्रधान होता है। फलस्वरूप इस तरह की निःस्वार्थता स्थायी नहीं होती।

निःस्वार्थता के भाव को विकसित करने के साधन क्या हैं?

निःस्वार्थता विकसित करने के दो साधन हो सकते हैं- आंतरिक और बाह्य। मूलतः आंतरिक (मानसिक) भाव होने के कारण निःस्वार्थता के विकास के लिए निर्मल हृदय का होना आवश्यक है। परदुःख कातरता और त्याग की भावना व्यक्ति के निर्मल हृदय को और भी दृढ़ करती है। बाद में चलकर बाह्य साधन जैसे सत्संगति, धर्मग्रंथों की वाणी की मननकारी आदि उसे मूर्त्त रूप प्रधान करते हैं। धर्म ग्रंथों के अनुसार सत्संगति स्वार्थी से स्वार्थी इन्सान को भी निःस्वार्थ बना देती है।

निःस्वार्थता की कसौटी क्या है?

व्यक्ति का विवेक ही इसकी सर्वोत्तम कसौटी है। पात्र, काल, देश व परिस्थिति इसका निर्माण करते हैं। यह देखना ज़रूरी हो जाता है कि हम जिस व्यक्ति, वर्ग या देश के लिए ज़मीन, राजपाट, पदाधिकार या जीवन का परित्याग करने जा रहे हैं, वह उसका दुरुपयोग तो नहीं करेगा। उदाहरणस्वरूप आपसे धन आदि का त्याग करा कर कोई उसे राष्ट्र विरोधी अथवा मानवता विरोधी गतिविधियों में तो खर्च नहीं करने जा रहा, विवेक की कसौटी पर इस बात का परीक्षण करके ही धन का परित्याग करना उचित माना जाएगा।

स्पष्ट है सजनों मानव जिन आंतरिक गुणों से अपने जीवन

काल और उसके बाद भी पूजनीय बनता है, उसमें निःस्वार्थता का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। प्रकृति के विभिन्न घटक इसका पालन कर मानवों को अहर्निश यानि दिन-रात यही संदेश देते रहते हैं। फूल निःस्वार्थ भाव से सबको सुगंध बाँटता है। बादल निःस्वार्थ भाव से पानी बरसाता है। वृक्ष खुद धूप में खड़े रहकर अपनी शरण में आने वालों को छाँव प्रदान करते हैं। प्राकृतिक जगत से हटकर देखें, तो हमारा मानवीय इतिहास भी ऐसे महामानवों से भरा-पड़ा है, जिन्होंने लोकहित में अपने स्वार्थ की बलि चढ़ा दी।

निःस्वार्थ भावना ही व्यक्ति को उदात्त यानि महानता की भूमि पर प्रतिष्ठित करती है। स्वयं के लिए हर कोई सोचता और करता है। लेकिन, जो लोग औरों के लिए जीते और मरते हैं, वे सचमुच महान होते हैं। वे मरकर भी अमर रहते हैं। उनका यह आत्मविस्तार न केवल उन्हें विश्व नर के रूप में प्रतिष्ठित करता है, अपितु ईश्वर के करीब भी ले जाता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

जेहड़ा निष्काम रस्ते ते आ जाता है,
ओ दीदार महाराज जी दा पाता है।

अतः याद रखो स्वार्थ की ग्रंथियों से मुक्त ऐसे उदात्त लोग ही संसार की पवित्र धरोहर होते हैं। इस संदर्भ में सजनों निस्पृहता व अनासक्ति को भी निष्काम का पयार्य माना जाता है आइए निष्काम के संदर्भ में सूक्ष्मतः इन्हें भी समझते हैंः-

निस्पृहता से क्या अभिप्राय है?

निस्पृहता चाहना व लोभ लालसा का अभाव है। वस्तुतः

निस्पृहता सांसारिकता से आंशिक या पूर्ण उदासीनता है। जिस व्यक्ति की सारी इच्छाएँ पूर्ण हो गई हों उसके लिए निस्पृह बनना कठिन नहीं किन्तु भौतिक संसार में इच्छाओं का नियमन, इन्द्रियों पर अंकुश से सामान्य जीवन में निस्पृहता संभव है। इस प्रकार निस्पृहता मोह माया के बंधन से छुटकारा है।

इस सन्दर्भ में याद रखो निस्पृहता इच्छाशून्यता नहीं है। यह इच्छाओं को नष्ट करने का कृत्रिम प्रयास भी नहीं है क्योंकि जीव कभी इच्छाशून्य हो ही नहीं सकता। निस्पृहता के लिए तो व्यक्ति को अपनी इच्छाओं की गुणवत्ता बदलनी पड़ती है। संग्रह के स्थान पर अपरिग्रह, विलासिता के स्थान पर सादा जीवन उच्च विचार को महत्त्व देना पड़ता है। इस प्रकार यह भाव मनुष्य की स्वार्थान्धता, लोलुपता, कामेच्छा और हिंसात्मक विचारों का उन्मूलन करके उसे परोपकारी, निर्भय, परिश्रमी और अहिंसावादी बनने की प्रेरणा प्रदान करता है।

निस्पृहता के अनिवार्य तत्व क्या हैं?

संग्रह प्रवृत्ति का त्याग, मायामोह के भ्रमजाल से दूर रहने की उत्कट अभिलाषा, अध्यात्म की ओर उन्मुखता ये ही इसके अनिवार्य तत्व हैं। इन अनिवार्य तत्वों के होने पर ही स्वार्थपरता, संकीर्णता व दुष्ट विकारों से छुटकारा मिलता है और इन्सान के अन्दर भोगविलासों से दूर रह जीवन के परम पुरुषार्थों यथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को कर्मनिष्ठा द्वारा सिद्ध करने की भावना उत्पन्न होती है।

निस्पृहता कितने प्रकार की होती है?

यह दो प्रकार की होती है।

1. भौतिक दृष्टि से इच्छाशून्य व्यक्ति यह जानता है कि प्रत्येक वस्तु ईश्वर की है। अतः वह किसी वस्तु पर अपना स्वामित्व नहीं जताता। उसे ज्ञात होता है कि वह ईश्वर का अंश मात्र है। अतः उसकी शाश्वत स्थिति कभी न तो ईश्वर के तुल्य है न उनसे बढ़कर। इस प्रकार का ज्ञान वास्तविक शांति का मूल सिद्धान्त है। यह आध्यात्मिक ज्ञान तथा ईश्वरीय जीवन का मार्ग है जिसे प्राप्त कर मनुष्य आकर्षणों से मोहित नहीं होता। यह स्थिति ब्रह्म प्राप्ति जैसी है और जीव को भौतिक बन्धनों से मुक्ति दिलाने वाली है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

निष्काम रस्ते ते विश्राम असां पाया ओ दाता।
निष्काम रस्ते ते ब्रह्म दा ज्ञान आवे,
महाराज दे दर्शन करवाये ओ दाता।

2. दूसरे प्रकार के निस्पृह आत्मनिरीक्षक मुनि होते हैं। ऐसे लोग आध्यात्मिक अनुशीलन की क्रमिक उन्नति में दिव्य आनन्द का अनुभव करते हैं। आत्मनिरीक्षक मनुष्य सुख तथा दुःख के प्रति अनमना भाव रखते हैं। वे घात-प्रतिघात से अविचल रहकर आत्मसाक्षात्कार के कार्यो में लगे रहते हैं और मोक्ष की कामना भी नहीं करते। ऐसे सजनों के लिए सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है-

पकड़ो निष्काम रास्ता, रस्ता पकड़ो निष्काम।
फिर भक्ति शक्ति चमके महान।।

निस्पृहता को विकसित करने का साधन क्या है?

निस्पृह व्यक्ति जो कुछ प्राप्त करता है, उसी में सन्तुष्ट रहता है। वह न तो किसी से कुछ माँगता है न उधार लेता है। वह अपने श्रम से प्राप्त में ही स्वतन्त्र व सुखी रहता है। वह ईश्वर में विश्वास करता है और इतना निष्काम होता है कि सफलता और असफलता दोनों में समभाव रखता है। मनुष्य की ऐसी स्थिति दिव्य ज्ञान कराने वाली है। ऐसे निरासक्त व निष्कामी व्यक्ति के समस्त कर्म ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

आप कर्म करने वाले सच्चे योगी बनें, निष्काम कर्म करें और अपने ज्ञान की अग्नि में अज्ञानता का नाश करें क्योंकि जीवन उसी का सुखी है जो मन-वचन-कर्म द्वारा सब कामों को सच्चाई और निष्काम भावना से करता है, वरना मनुष्य का तन मन सदा व्याकुल रहता है।

साथ ही सजनों यह कुदरती ग्रन्थ हमें यह भी संदेश दे रहा है कि-

संसार में सब कामों में लीन होते हुए भी जो निष्कामी है वही ब्रह्म है।

अतः निस्पृहता यानि निष्कामता को विकसित करने के लिए विनीत और जिज्ञासु होने के साथ साथ शब्द गुरू का आश्रय करके दिव्य ज्ञान ग्रहण करना चाहिए। इसी के साथ काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार को वशीभूत करके स्वयं को अंतर्मुखी बनाने की आवश्यकता है। याद रखो इस प्रकार निष्काम व अनासक्त होने पर ही सत्य का साक्षात्कार होता

है और व्यक्ति में समभाव जैसी दिव्य ज्योति का ज्ञान उदय होता है। इस संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

महाबीर श्री साजन जी नूं रस्ता बताया निष्काम
सुन्दर नाम और युक्ति दे के, कैसा ओ चमके परमधाम।।

इस विवेचना से सजनों यह स्पष्ट होता है कि निस्पृह व्यक्ति इच्छाओं के प्रति निश्चेष्ट रहता है। उसे भौतिक वस्तुएँ पाने की लालसा नहीं होती। वह सागर तुल्य होता है—स्वयं में सदैव पूर्ण। यह निष्कामता का विशेष गुण है। सब कुछ देकर भी निष्कामी सदा भरपूर रहता है। इच्छाएँ उसके समीप आती हैं किन्तु वह निश्चल रहता है, जबकि मुमुक्ष और योगी सभी सिद्धि प्राप्ति के इच्छुक होते हैं और अपूर्ण इच्छाओं के कारण दुःखी रहते हैं। इसीलिए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

कर्म काण्ड करो कई कई साधना न पाये मन विश्राम,
रस्ता पकड़ो निष्काम।

इसके विपरीत निस्पृह व्यक्ति भवबंधन से मोक्ष प्राप्ति की कामना भी नहीं करता क्योंकि वह तो बंधन रहित यानि मुक्त होता हैं। ममता, अहंकार से रहित भावनाओं से मुक्त होकर वह स्थितप्रज्ञ बन जाता है। वह अपनी इच्छानुसार विषयादिकों से रहित होकर अंतर्मुखी होने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। वह तीनों गुणो यथा सतो , रजो, तमो से तथा त्रय तापों यथा दैहिक, दैविक, भौतिक के भय से मुक्त होकर समस्त द्वन्द्वों से मुक्त हो आत्मपरायण हो जाता है। इस संदर्भ

में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

आहा निष्काम रस्ते चढ़ आय के ते पहुँच गया जे दसवें द्वार सजनों इस संदर्भ में गीता में कहा गया है मनुष्य को कर्म यानि कर्त्तव्य करने का अधिकार है किन्तु कर्म के फलों का वह अधिकारी नहीं यानि मनुष्य कर्मों के फलों का कारण नहीं है। अतः उसके अन्दर कर्म न करने के प्रति आसक्ति उचित नहीं। उसे सब प्रकार की आसक्तियों का परित्याग कर केवल समभाव से निष्काम कर्म करने की आवश्यकता है। आओ इस संदर्भ में अब जानें कि अनासक्ति क्या है-

अनासक्ति का क्या अर्थ है?

अनासक्ति का अर्थ है आसक्ति यानि लगाव का अभाव।

अनासक्ति का अनिवार्य तत्व क्या है?

ईश्वर की शक्ति में दृढ़ आस्था अनासक्ति का अनिवार्य तत्व है। वास्तव में अनासक्ति आसक्ति का नितांत अभाव नहीं है बल्कि यह आसक्ति के अतिरेक का नियमन है। मनुष्य जब भौतिकवादी दृष्टि के प्रति पूरी तरह अर्पित हो जाता है तब वह वस्तु जगत को ही पूर्ण सत्य समझ बैठता है और स्वयं को नियामक एवं कर्त्ता समझने लगता है। उसे भ्रम हो जाता है कि वही अपने और अपने संबंधियों के समस्त प्रकार के योगक्षेम का संवाहक है तथा धन आदि भौतिक संपत्तियों की उपलब्धि करके वह स्वयं को किसी भी संकट से बचा सकता है। यहीं से आसक्ति का अंकुर फूटता है और मनुष्य लोक में आसक्त होता चला जाता है किंतु यदि इस भ्रामक चिंतन के विपरीत ईश्वरीय शक्ति के प्रति श्रद्धा और विश्वास

मन में जागता है, तो मनुष्य स्वयं को कर्त्ता नहीं समझता और अपना योगक्षेम ईश्वर पर छोड़कर अनासक्त भाव से चिंतामुक्त होकर अपने कर्त्तव्यों का समुचित पालन और दायित्वों का निर्वाह करता है। इस प्रकार ईश्वरीय शक्ति में आस्था और विश्वास से अनासक्ति की पुष्टि होती है।

अनासक्ति को विकसित करने के उत्तम साधन क्या हैं?

ज्ञान सत्संग और विवेक अनासक्ति को विकसित करने के उत्तम साधन हैं। ज्ञान की प्राप्ति से मनुष्य लोक की निस्सारता, उसकी नश्वरता की प्रतीति होती है तथा उससे अतिरिक्त मोह नहीं रहता। ज्ञान की दिव्यदृष्टि उसे संसार में उस सत्य का साक्षात्कार कराती है जिसका दर्शन अन्य जन प्रायः नहीं कर पाते। सत्संग भी ज्ञानार्जन का सशक्त साधन है। ज्ञान और सत्संग से विवेक की पुष्टि होती है। इससे सत् और असत् के निर्णय में सहायता मिलती है और अनासक्ति का विकास होता है।

अनासक्ति की कसौटी क्या है?

सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है-

निष्काम भक्ति है तुं ही तुं ही, किस नूं पूजा ते किस नूं न पूजा।

आगे यह भी कहा गया है-

निष्कामी तेरा भक्त कहावे, सब विच वसनैं तुं ही तुं ही।

अर्थात् निष्कामता यानि कर्मफल के प्रति तटस्थता अनासक्ति की कसौटी है। कर्मरत रहते हुए भी कर्मफल की आकांक्षा से मुक्त रहना अर्थात् कर्म के स्वामी भाव यानि कर्त्ता भाव का

त्याग कर देना अनासक्ति का सही रूप है। किसी कार्य के प्रति अनासक्त भाव आते ही हम उसके लाभ-हानि, शुभ-अशुभ से मुक्त हो जाते हैं। फिर हमें वह कार्य करने को मिले या न मिले हमें कोई चिंता नहीं रहती। यही तटस्थता अनासक्ति की कसौटी है। अनासक्ति की कसौटी यह भी है कि फिर उस वस्तु के अभाव में हम कष्ट का अनुभव न करें। ज्ञात हो कि कष्ट की अनुभूति सदा कर्मफल में आसक्ति के कारण ही होती है। आसक्ति जितनी अधिक होती है, कष्ट की मात्रा भी उतनी ही बढ़ जाती है। इस मानसिक पीड़ा से मुक्ति के लिए अनासक्ति आवश्यक है।

अनासक्ति का मानव जीवन में महत्त्व स्पष्ट करो?

आसक्ति बंधन है और अनासक्ति मोक्ष। अनासक्ति चिंता और चाहों से मुक्ति का एकमात्र साधन है, अतः इसे मानसिक शांति का द्वार समझना चाहिए। जब तक मनुष्य चाहों और चिंताओं के सूत्रों से निर्मित आसक्ति की दृढ़ रज्जु यानि डोरी से बँधा है, तब तक वह करोड़ों प्रयत्न करने पर भी शांति लाभ नहीं प्राप्त कर सकता। अतः व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों प्रकार की शान्ति प्राप्त करने एवं जटिल संघर्षों से मुक्ति पाने के लिए अनासक्ति का महत्त्व है।

अनासक्ति मनुष्य को पाप से बचाती है। पाप का कारण लोभ को बताया गया है अर्थात् लोभ पाप का हेतु है, प्रेरक तत्व है। अनासक्ति इसी लोभ रूप व्याधि की अचूक औषधि है। जिस प्रकार औषधि सेवन करने से बड़ी से बड़ी व्याधि मिट जाती है उसी प्रकार अनासक्ति का आश्रय लेने से मन को लोभ प्रभावित नहीं कर पाता है तथा मनुष्य दुष्कर्मों की ओर

प्रवृत्त नहीं होता। तभी तो धर्म ग्रन्थों में कहा गया है कि-

अनासक्ति मनुष्य का वह नेत्र है जो उसे अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। अनासक्ति से सम्पन्न व्यक्ति तत्व को समझ कर आचरण करते हुए उदात्तता की ओर उन्मुख होता है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

सजनों उपरोक्त जितनी भी बातचीत हुई उसे सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार अब सूक्ष्मतया बताने लगे हैं, ध्यान से सुनो-

सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है?

'साधना करो ते लावो ध्यान, रस्ता पकड़ो निष्काम'

आशय यह है कि निष्काम यानि हर प्रकार की कामना, आसक्ति व इच्छा रहित होकर ही हमारा ख़्याल ध्यान वल व ध्यान प्रकाश वल जुड़ा रह सकता है। यही हकीकत में वह ध्यान साधना है जिसके द्वारा हम नीति अनुसार हर कर्म न्यायसंगत अकर्त्ता भाव से करते हुए, फल प्राप्ति के प्रति तटस्थ व अनासक्त बने रह पाते हैं। फलतः सुख-दुःख, राग-द्वेष, मान-अपमान, रोग-सोग लाभ-हानि, हार-जीत आदि द्वन्द्वों के प्रभावों से मुक्त हो अपने कर्त्तव्यों का सम्यक् निर्वाह कर पाते हैं। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में यह भी कहा गया है-

न रहेगी गरूरी न रहेगी मगरूरी, रस्ता पकड़ो निष्काम।

इस सन्दर्भ में जान लो कि स्वार्थ सिद्धि व कर्त्तापन की भावना से रहित होकर कर्म का सम्यक् निर्वाह करना

निष्कामता की परिसीमा है। प्रायः लोग कर्त्तव्य से पलायन को वैराग्य या पलायन मान लेते हैं परन्तु यह भ्रम है। निष्कामता द्वारा मानव जगत के विषयों के प्रति अनासक्त हो जाता है परन्तु यह अनासक्ति कर्म की अवेहलना या कर्त्तव्य से पलायन करना नहीं सिखाती। वह तो हर कर्म करते हुए भी उससे निर्लेप रहने की कला सिखाती है। उदाहरणस्वरूप कमल जल में जन्म लेता है, जल में ही निवास करता है किन्तु उसका ऊर्ध्वभाग जल से आर्द्र नहीं होता।

यही स्थिति अनासक्त संपन्न मनुष्य की है। वह सिर से पैर तक कर्म के सागर में डूबा रहता है, किन्तु उसकी ऊर्ध्वमुखी चेतना उससे यानि कर्मफल से मुक्त रहती है। वह कर्म करके भी कर्त्ता नहीं बनता। यही अनासक्ति का मर्म है। अतः कर्त्तव्य के निष्काम निर्वाह को अनासक्ति की सीमा समझना चाहिए। इस परिप्रेक्ष्य में गीता में कहा गया है, जिस व्यक्ति ने इंद्रिय तृप्ति की समस्त इच्छाओं का त्याग कर दिया है यानि जो इच्छाओं से रहित यानि निष्काम रहता है और जिसने सारी ममता त्याग दी है तथा अहंकार से रहित है, वही वास्तविक शान्ति को प्राप्त कर सकता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

सजनां दे मेल खावणे दा तरीका,
एहो हिवे इन्सान रस्ता पकड़ो निष्काम।

अतः सजनों कर्मफल की इच्छा का पूरी तरह से त्याग कर, सिद्धि-असिद्धि में समान भाव रखते हुए, निर्लिप्तता से निष्काम कर्म करने में प्रवृत्त होवो। निश्चित ही वर्तमान जीवन में समभाव-समदृष्टि की युक्ति के अनुशीलन के अनुरूप इस

प्रकार अकर्त्ता भाव से निष्काम कर्म करते हुए ही जीव कर्मबन्धन से स्वतन्त्र हो सकता है। यह निष्काम कर्म ही उसके जन्ममरण के चक्र से मुक्त होने का एकमात्र साधन सिद्ध हो सकता है। इसी निष्काम रास्ते पर चलकर वह ईश्वरत्व को सहज पा सकता है।

इस तरह वास्तव में जीवन की सफलता और सार्थकता निष्काम कर्म करने से ही प्राप्त होगी। इस परिप्रेक्ष्य में याद रखना निष्काम कर्म का परित्याग सुख-आनंद का परित्याग है, जीवन का परित्याग है। दूसरी ओर भली-भांति निष्काम कर्म को अंगीकार करने वाला व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को निखार सकता है। ऐसा कर्मठ लोक-परलोक में यशस्वी होता है। इतिहास में भी उन्हीं का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है, जिन्होंने निष्काम कर्म करने के महत्त्व को समझा है और जो इस प्रयोजन के निमित्त परोपकार प्रवृत्ति से आजीवन कर्मरत रहे हैं। अतः लोक कल्याण ही निष्काम कर्म का सर्वोत्तम निष्कर्ष है। इस लोक कल्याण यानि परोपकार के विषय में अगले सप्ताह जानकारी प्राप्त करेंगे।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 21 फरवरी 2016 का सबक

परोपकार-1
प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव कर एक अच्छे इन्सान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

हम घर साजन आए हमारे, हमरा भाग्य जगाने को
जीवन का इक मकसद दे कर परोपकार कराने को।

जैसा कि सजनों हम सब जानते ही है कि सजन श्री शहनशाह महाबीर जी के इस ऊँचे व सुच्चे द्वारे पर लगे होने के नाते, इस समभाव-समदृष्टि के स्कूल में आने का हमारा एकमात्र मकसद, सजन-भाव की पढ़ाई के अनुरूप सम, संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म के सवाल हल कर, सच्चाई-धर्म के निष्काम रास्ते पर अग्रसर होते हुए अंततः परोपकार

प्रवृत्ति में ढलना है। अतः आज हम जीवन के इसी सबसे महत्त्वपूर्ण विषय के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे ताकि हम अपने जीवन के इस सर्वोत्कृष्ट लक्ष्य के प्रति जाग्रत हो सके और फिर उसे तद्नुरूप अपने आचार-विचार व व्यवहार द्वारा दर्शा सके। तो आओ अब सब मिल कर बोलें-

नेकियाँ नेकियाँ करो सदा नेकियाँ
ये न चाहो कि बदले में, हमें कुछ मिले
नेकियाँ नेकियाँ करो सदा नेकियाँ।

सजनों गत सप्ताह हमने निष्कामता के विषय में जाना और हमें यह भी ज्ञात हुआ कि विभिन्न युगों में धर्मनाशक शक्तियों का विनाश कर, कुल सृष्टि को पुनः सच्चाई-धर्म की राह दर्शाने वाले युग पुरुषों ने अपने निष्काम धर्म पर सुदृढ़ता से डटे रहने के लिए परोपकार रूपी उत्तम कर्म कमाया। इस संदर्भ में सजनों परोपकारी, भक्त शिरोमणि सजन श्री शहनशाह हनुमान जी की आदर्शतम मिसाल हमारे सामने ही है जिनके अपार ज्ञान, अतुलित बल एवं विशेष बुद्धि के सहयोग द्वारा प्रत्येक युग में धर्म स्थापना करना संभव हो पाया। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

जगत हितकारी हुये, न्यायकारी हुये,
परोपकारी ओ दुनियां ते दिखा करके।

आगे यह भी कहा है-

अपार है यह आपदी कृपा, अपार है यह आप दी दृष्टि
अपार है यह आपदी महिमा, अपार है यह प्रवृत्ति।

उपकारी पर उपकारी ओ हाँ ओ हाँ,
प्रवृत्ति परउपकारी ओ हूँ ओ हूँ।

इसीलिए अशान्ति के दुष्प्रभाव से त्रस्त सुरत सजन श्री शहनशाह महाबीर जी को प्रार्थना करते हुए कहती है-

मोह माया दी निंद्रा विच सोई,
सारी उमर बिना नाम दे खोई
हुन नाम वसाया गदाधारी,
स्वामी नाम वसाया गदाधारी
नाम दा प्याला पिलाओ बनके उपकारी
शांति दा मार्ग दिखाओ-बन के उपकारी।

सजनों हम कह सकते हैं कि परोपकार यानि लोक कल्याण ही निष्काम कर्म का सर्वोत्तम निष्कर्ष है। आओ अब इस परोपकार के विषय में समझते हैं-

सजनों यह तो सर्वविदित है कि मनुष्य रूप में शरीरधारी आत्मा यानि जीव ईश्वर का अभिन्न अंश है। ईश्वर ने इस सम्पूर्ण सृष्टि की रचना की। यहाँ तक कि सम्पूर्ण प्राणवान सृष्टि को उसने मानव जाति के लिए बनाया है। वह हर वस्तु का उचित प्रयोग करने आनन्दमय जीवन व्यतीत करने में सक्षम बने इस हेतु मनुष्य को उसने अन्य जीवों से बढ़कर विवेक बुद्धि और अध्यात्मिक शक्ति भी दी। यही नहीं उसे विशाल हृदयता की अपार दौलत भी दी है और भावना और कल्पना का वरदान भी दिया है। आख़िर क्यों?

मौन।

क्योंकि ईश्वर चाहता है कि जैसे उसने संतान के रूप में सदा मानव के हित की चिंता की, वैसे ही वह भी सृष्टि की सदा सर्वदा चिंता कर, उसका संरक्षण करने के योग्य बन सके। यहाँ विचारना यह है कि क्या आज का जो हमारा अविचारी व्यावहारिक चलन है उस अनुरूप विचरते हुए ऐसा कर पाते हैं?

नहीं।

क्यों?

मौन

क्योंकि हम उपयोग व उपभोग के मध्य के सूक्ष्म अंतर को नहीं समझते। यही कारण है कि अपनी व सब की भलाई के निमित्त कुदरत प्रदत्त संसाधनों का निष्कामता से अपनी जरूरत अनुसार उपयोग करने के स्थान पर उसका उपभोग करना आरम्भ कर देते हैं। फलतः जीवन की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति के साथ-साथ, अप्राप्य भौतिक पदार्थों को पाने की अनुचित कामना यानि इच्छा हमारे मन में जाग्रत हो जाती है और हम उनके प्रति आसक्त हो उनमें ही लिप्त हो कर रह जाते हैं। यही कारण है कि फिर हमारी भाव-भावनाओं में अपने-पराए, तेरी-मेरी की दुर्भावना के कारण संकीर्णता जन्म ले लेती है और हम केवल अपना भला ही सोचते हैं। इससे यह बात साफ़ हो जाती है कि हम जब तक स्वार्थ का परित्याग नहीं करेंगे, तब तक हमारे चरित्र का उत्कर्ष सम्भव नहीं। यदि हम अपना चारित्रिक विकास चाहते हैं तो हमें संकीर्ण मानसिकता का त्याग कर,

परोपकारता की भावना का अपने अन्दर विकास करना होगा। इस हेतु कुदरत प्रदत्त उपलब्ध साधनों का अनुचित रूप से संग्रह करने के स्थान पर सर्वहित के निमित्त उनका समरूपता से इस्तेमाल करना होगा ताकि भिन्न-भेद, वैर-विरोध, दुई-द्वेष आदि मिट सके और हम ईश्वरीय विचारधारा के विपरीत अपनाए अनुचित चलन का परित्याग कर, मानवीय चलन के अनुरूप, मानव-धर्म पर सुदृढ़ता से डटे रह अपनी विशेष परोपकारी प्रवृत्ति दर्शा सकें।

इस संदर्भ में क्या आप यह जानना चाहोगे कि यह परोपकार है क्या ?

हाँ जी।

तो ध्यान से सुनो-

परोपकार का अर्थ है पर का उपकार अर्थात् दूसरों की सहायता, भलाई या कल्याण करना। यह लोकहित, लोककल्याण व परहित का भाव है, दूसरों का हित-साधित करने का भाव है, जो धन कमाने या स्वार्थ के उद्देश्य से नहीं अपितु सेवा की भावना से किया जाता है यानि परोपकार दीन-दुखियों की निःस्वार्थ सेवा का भाव है। यह अभावग्रस्त की सहायता, दीन-दुखी की सेवा और सहानुभूति का द्योतक शब्द है।

सांसारिक जीव प्रायः अपने हित या स्वार्थ की चिंता पहले करते हैं। अपने भरण-पोषण, रहन-सहन की सुख-सुविधाओं से हट कर कुछ लोग ग़रीबों की सहायता या

बेसहारों की सेवा का थोड़ा बहुत ख़्याल करते है। जो स्वार्थ और परार्थ यानि निजहित और परहित का समानता से और कुछ तो कभी-कभी परहित को ही आत्महित से अधिक महत्त्व देते हैं, तब उसे परोपकार कहते हैं। यह निश्चल-निःस्वार्थ भाव से किया जाना चाहिए। दान देकर भूलना श्रेयस्कर, पर उसका प्रतिदान लेना परोपकार का खंडन या हनन है। अतः योग्य असहायों को दान तो करो परन्तु उसके बदले में उनसे अपनी सेवा कराने की अपेक्षा कभी मत करो। यही नीति गुरु-चेले पर भी लागू होती है। यदि गुरु नाम-दीक्षा देने के पश्चात् कुछ प्राप्ति की माँग करे या अपेक्षा रखे तो यह हकीकत में परोपकार की नीति के विरूद्ध है। अतः ऐसे अज्ञानी के चंगुल में कदाचित् नहीं फँसना।

याद रखो परोपकार के समान अन्य कोई धर्म नहीं माना जाता। अतः मनुष्य को अपने इस धर्म का पालन निष्ठापूर्वक करना चाहिए। इस हेतु अपने लिए कुछ भी मत चाहो, सब दूसरों के लिए करो। नेकी कर दरिया में डाल वाली कहावत परहित की ही द्योतक है। सदैव दूसरों की भलाई सोचना, दूसरों की भलाई करना और इस भलाई को करने में यदि प्राणों की बाज़ी लगानी पड़े तो भी उसके लिए तैयार रहना वास्तव में परहित है। परहित की भावना से व्यक्ति स्वार्थ से परमार्थ की ओर बढ़ता है। उसमें त्याग की भावना जागृत होती है। परहितैषी व्यक्ति ही समाज में प्रतिष्ठा यानि यश-कीर्ति प्राप्त करने का सच्चा अधिकारी होता है।

सारांशतः सजनों परोपकार हृदय की वह निश्छल दया या त्यागवृत्ति का क्रिया रूप है, जिसमें ज़रूरतमंद दीन-दुखियों

के उपकार के कार्य नाना प्रकार से किए जाते हैं। यह जीव-जन्तु से लेकर समस्त पीड़ित मानवता के लिए बढ़ाया गया सहायता का हाथ है। यहाँ हम सबको इसके प्रति सावधान करते हुए यह कहना चाहते हैं कि इस सहायतार्थ उठाए गए कदम से दूसरों की मदद अवश्य करना पर उसके मोह बन्धन में मत फँस जाना। इस प्रकार निष्काम भाव से किए परोपकार के अंतर्गत परहित की भलाई या कल्याण का विचार या कार्य करते हुए आत्म या स्व का भाव तिरोहित हो जाता है और उस के स्थान पर सर्व की सत्ता प्रतिष्ठित हो जाती है। फलतः 'सब सुखी रहें', ऐसी मंगल भावना जाग्रत हो जाती है। तभी तो परोपकारी, अणु से परमाणु तक, जड़ से चेतन तक, कीड़ी से हाथी तक, ब्रह्मा से तृण तक सबके अभ्युदय यानि उन्नति का सद्भाव स्पष्टतः प्रकट करता है। इस प्रकार जो तन-मन से लोक कल्याण में जुट जाता है, उसके लिए और कुछ करना शेष नहीं रह जाता।

परोपकार की इसी अद्वितीय महत्ता को समझते हुए ही सजनों सजन श्री शहनशाह हनुमान जी के द्वारे पर सेवारत प्रत्येक सजन के लिए समभाव-समदृष्टि के सबक अनुसार, निष्कामतापूर्वक परोपकार का चलन अपनाने का विधान रखा गया है। इसके अंतर्गत 'तूं-मैं' का कोई सवाल नहीं अपितु हर सजन को अपना यह कर्त्तव्य निःस्वार्थ-भाव से निभाते हुए ध्यान रखना है कि इस संस्था का एक-एक पैसा संस्था की उद्देश्य पूर्त्ति हेतु व मालिक के प्यारों की अमानत है। अतः इसे खर्च करने या जाँच-पड़ताल के बाद योग्य सफ़ेदपोश ज़रुरतमंदों को राशन, कपड़ा, दवाई आदि किसी भी रूप में बाँटते समय बुद्धिमत्ता व समभाव से काम

लेना होता है ताकि भूलकर भी अमानत में ख़यानत न हो जाए। चूँकि सजनों वह ईश्वर हर समय हमें देख रहे होते हैं इसलिए कोई भी चीज़ लेते समय आपस में सलाह करके ठीक कीमत पर लेने का ही नियम बनाया गया है। अतः इस नियम के अंतर्गत सेवारत प्रत्येक सजन को यह समझना है कि संस्था का पैसा संस्था के सदस्यों के लिए आग के समान है इसलिए किसी ने एक पैसा भी अपने लिए नहीं इस्तेमाल करना। आमदनी और खर्चे का नियमानुसार ध्यान व हिसाब रखना है। इस नीति पर शत्-प्रतिशत् खरा उतरने के लिए अपनी नीयत साफ़ रखनी है व यहाँ के पैसे का दुरुपयोग न हो इसके प्रति सावधान रहना है। इसके प्रति कदापि लापरवाही नहीं दिखानी। यह भी याद रखना है कि एक भी पैसा पहले आपकी जेब व बाद में पेट में न चला जाए क्योंकि जहाँ यह पैसा मालिक के प्यारों के लिए अमृत समान है वहीं यह पैसा हमारे और आपके लिए विष के समान है। सब ठीक इसी तरह से निष्कामता से सुख बाँटने का परोपकार करने हेतु सदा सुमति में बने रह सुख-शांति को प्राप्त हों इसके लिए आओ अब परोपकार के विषय में विस्तार से प्रश्नोत्तर के माध्यम से समझते हैं-

परोपकार का अनिवार्य तत्त्व क्या है?

परोपकार चेतना सर्वप्रथम व्यक्ति के मानसिक स्तर से जुड़ती है और दूसरे स्तर पर भौतिक कार्यों से अपना रिश्ता कायम करती है। पहले मन में परोपकार का भाव आना चाहिए, उसका कारण जितना प्रबल तथा अनिवार्य होगा, परोपकार की भावना भी उतनी ही प्रबल होगी। व्यक्ति में

परोपकार करने की सामर्थ्य भी होनी चाहिए, अन्यथा भाव व इच्छा के होते हुए भी वह सामर्थ्य के अभाव में परोपकार नहीं कर सकता। भाव तथा सामर्थ्य की इच्छा के बाद परोपकार का तीसरा तत्त्व है आलंबन अर्थात् पात्र, कारण या लक्ष्य, जिसके लिए परोपकार किया जाए। चौथा महत्त्वपूर्ण तत्त्व है उपकार करने का साधन - वह भी औचित्यपूर्ण होना चाहिए। इस प्रकार उपकार के ये घटक जितने निःस्वार्थ होंगे, उपकार उतना ही वरेण्य यानि प्रधान व श्रेष्ठ होगा। तभी तो कहा गया है:-

परउपकार करो तुम मन से,
पूरी लगन में आ कर के
परउपकार करो तुम तन से,
अनथक परिश्रम दिखा कर के।

इस प्रकार सभी प्रकार से दूसरों की भलाई करने का भाव परोपकार का अनिवार्य तत्त्व है। दूसरों की भलाई करते समय प्राणों की बाज़ी भी लगानी पड़ सकती है। यह तभी संभव है, जब परहित को पुण्य या धर्म समझा जाए। इस संदर्भ में सदैव याद रखो कि मनुष्य शरीर इसीलिए मिला है कि परहित किया जाए। परहित करने वाले की सभी प्रशंसा करते हैं। सूर्य, चंद्र, बादल, वृक्ष, नदी, ये सब परहित के लिए ही बनाए गए हैं। जानो कि परहित की भावना से शून्य व्यक्ति का जीवन अधम माना गया है। तभी तो ठीक ही कहा है कि 'जीवन प्रेम है और जब मनुष्य दूसरों के प्रति भलाई करना बंद कर देता है, तो उसकी आध्यात्मिक मृत्यु हो जाती है।' इससे स्पष्ट है कि परहित जीवन का पर्याय है।

वह मनुष्यता की पहचान है क्योंकि यह मानवीय व्यक्तित्व के उदात्तीकरण का सशक्त साधन है।

परोपकार का भाव मनुष्य के हृदय में कब जाग्रत होता है?

यह परोपकार का भाव मनुष्य के हृदय में तब ही जागता है, जब उसे यह ज्ञान प्राप्त हो जाता है कि जो जीवन वह संसार में जी रहा है, वह दूसरों के उपकारों पर आधारित है। जन्म से लेकर मृत्यु तक मनुष्य पर न जाने कितने लोगों का अहसान चढ़ चुका होता है। उन्हें चुकाना इतना सरल नहीं होता। इसीलिए, अपने आसपास के वातावरण में जहाँ तक सम्भव हो सके, सर्वहित का कार्य सम्पादन करके संतोष अर्जित किया जा सकता है। मनुष्य यूँ तो अत्यंत स्वार्थी प्राणी है। वह परमार्थ अथवा भगवान की पूजा भी इस संसार के दुःखों से छुटकारा पाने के स्वार्थ के वश में होकर करता है। वह यह चाहता है कि सद्कर्मों का लाभ उसे भौतिक जगत में ही मिल जाए, तो अच्छा है, किन्तु सच्चा सर्वहितैषी भाव रखने वाला व्यक्ति इसकी रंच मात्र भी चिंता नहीं करता, अपितु वह सर्वहितकारी कर्मों का निष्पादन करके मानसिक शांति पाने की चेष्टा करता है। तभी तो वह दूसरे के दुःख को अपना दुःख समझता है अर्थात् यह सोचना कि उसका कष्ट मेरा कष्ट है, इसलिए उसे दूर करना ही मेरा धर्म होगा। इस संदर्भ में सजनों कहा गया है कि:-

संयम हो अपना मज़बूत इतना किसी से न हो लेना या देना।
जो भी हमें इस जग से मिला है आओ वह सब जग को लौटा दें।

लेने की आदत ने लालच सिखाया लालच दिखाके मोह में फँसाया
देंगे जो वापिस तो संतोष होगा, तभी तो यह मन खामोश होगा।

परोपकार को मनुष्य की बुनियादी आवश्यकता क्यों माना गया है?

क्योंकि इससे मन को परम संतोष, आनन्द व शान्ति मिलती है व यही सभी के कल्याण की भावना का प्रतीक है।

परोपकार का विधि एवं निषेधपरक प्रयोग क्या है?

दया और त्याग परोपकार का विध्यात्मक पक्ष है, तो स्वार्थ और निर्दयता इसका निषेधात्मक पक्ष।

इसके अतिरिक्त दूसरों की भलाई करने के बदले में प्रत्युपकार की आशा या इच्छा न करना विधिपरक परोपकार कहलाता है। यदि किसी स्वार्थवश दूसरे का भला किया जाता है यानि ऊपरी होता है और अंतःकरण को शुद्ध रखे बिना किया जाता है, तो वह निषेधपरक परोपकार कहलाता है। याद रखो जब जब परोपकार को कर्त्तव्य समझा जाता है, तभी उसकी सार्थकता है।

परोपकार के विभिन्न भेद स्तर क्या है?

जैसे भक्ति के दो भेद होते हैं– सकाम और निष्काम भक्ति, वैसे ही परोपकार के भी दो भेद हो सकते हैं– स्वार्थी और परार्थी। स्वार्थी में परोपकार कर उससे प्रतिदान भी पाने की इच्छा रहती है। इसमें अधिकांशतः राजनीतिक उपक्रम आते हैं, जैसे चुनाव के चंदे, दौड़-धूप, प्रचार, उपहार या उनके

परिजनों की खातिरदारी आदि। परार्थी में निःस्वार्थ भाव से यानि फल की आकांक्षा किए बिना किया गया परोपकार आता है। द्रव्य, अन्न, वस्त्र, आवास, सेवा आदि अनेकविध परोपकार किए जाते हैं।

परोपकार को विकसित करने के साधन क्या है?

परोपकार की भावना को विकसित करने के लिए सर्वप्रथम मानव के लिए सहृदय होना आवश्यक है। जब व्यक्ति सहृदय होगा, तभी वह दूसरों के दुःखों से द्रवित होगा। जब तक उसमें दूसरों के दुःखों का अनुभव करने की क्षमता ही न होगी या बहुत कम होगी तो वह त्याग करने के लिए तैयार ही न होगा। उदारता उसकी इस सहृदयता को केवल अपने ही स्तर तक सीमित न रखकर व्यापक बनाने में सहायता करेगी। तब जाकर उसमें दुःखी या अभावग्रस्त व्यक्ति के प्रति सहानुभूति उत्पन्न होगी। यही सहानुभूति जब दया में परिणत होगी तो वह उपकार करने के लिए प्रेरित हो उठेगा। तब उसका दयालु अन्तर्मन स्वार्थ से ऊपर उठकर निःस्वार्थ हो जाएगा और सेवा व क्षमा जैसे मूल्यों से समृद्ध हो वैरी-शत्रु के प्रति भी परोपकारिता का ही व्यवहार करेगा। इस प्रकार सभी के प्रति समभाव में स्थित हो जाने के कारण उसे सभी में परमतत्त्व के दर्शन होने लगेंगे जिससे सभी के प्रति आत्मीयता का भाव विकसित होगा। यही आत्मीयता, निष्काम भाव को विकसित कर व्यक्ति को निष्काम सेवा करने के लिए प्रेरित करेगी। साहस और धैर्य होने पर यह सेवा परमार्थ के माध्यम से परोपकार की चेतना को विकसित करती है। तभी तो कहा गया है-

परउपकार है उत्तम भक्ति, परउपकार ही आत्मिक शक्ति
परउपकार से समझ सकोगे, अपना बल और अपनी हस्ती।

स्पष्ट है मन की निष्कलंकता, मन की दृढ़ता, प्राणिमात्र के लिए करुणा ये ही परोपकार के साधन हैं, जिनके बल पर परोपकार की भावना को विकसित किया जा सकता है। जान लो कि परोपकार की भावना संक्रामक होती है। कुछ लोग तो सहज संस्कारवश भी सहायता करते हैं, पर कुछ देखा-देखी भी करते हैं। पहले बेमन से तो बाद में आदत से। परोपकार के विकास में भावनात्मक और साधनात्मक उपलब्धता भी होनी चाहिए। सामाजिक सौहार्द और सौमनस्य से यह पनपता है और जब परोपकार के हाथ बढ़ते हैं, तो चारों ओर बढ़ते ही जाते हैं। अतः यह संक्रामक है।

परोपकार की कसौटी क्या है?

सजनों मानव बुद्धिसम्पन्न प्राणी है। अपना भला-बुरा तो पशु भी भली-भांति जान लेता है परन्तु मनुष्य की मनुष्यता तो इस बात में है कि वह अपने विवेक को जाग्रत रखें और केवल निजी लाभ की बात न करे। अतः समझो कि जो निर्बल हैं, ज़रूरतमंद हैं और निरीह हैं उनकी सेवा करना मनुष्यमात्र का धर्म है। परोपकार की कसौटी निस्वार्थ सेवा या त्यागवृत्ति है। आत्मोत्सर्ग करके भी परोपकार किया जाए, यही धर्म है। स्वार्थ भाव का अभाव लोक कल्याण की सच्ची कसौटी है। जो कार्य प्रच्छन्न यानि गुप्त या प्रकाशित रूप में किसी स्वार्थ से प्रेरित होकर किए जाते हैं, उन्हें परोपकार के अंतर्गत नहीं माना जाता।

परोपकार करने के लिए ईश्वर ने हमें क्या साधन प्रदान किए हैं?

परोपकार करने के लिए ईश्वर ने, न केवल हमें धन वरन् तन और मन भी दिया है। मनुष्य संतोष, धैर्य अपना कर यदि सच्चाई और धर्म की राह पर निष्कामता से चलते हुए औरों को भी अपने आचार-विचार व्यवहार द्वारा इसके प्रति प्रेरित करें तो यह भी परोपकार कहलाता है।

परोपकार किस भाव से किया जाना चाहिए?

कहते हैं-

परउपकारी नाम नहीं चाहता,
परउपकारी मान नहीं चाहता
वह तो अकर्ता भाव में रहकर,
बनता है सबका सुख दाता।

अर्थात् निष्काम व अकर्त्ता भाव यानि निस्पृहता से बिना किसी भी प्रतिदान की अपेक्षा के किया गया परोपकार ही सार्थक होता है।

परोपकार करने वाले परोपकारी को अनेकानेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है, इनमें से मुख्य का वर्णन करो?

परोपकारी के मार्ग में मुख्यतः दो प्रकार की बाधाएँ सामने आती हैं, एक तो दुष्टों द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली बाह्य बाधाएँ और दूसरे स्वयं की मानवीय दुर्बलता से उत्पन्न आन्तरिक बाधाएँ। जब कोई व्यक्ति परोपकार में प्रवृत्त होता

है, तब निश्चित रूप से उसी क्षण से लोकविरोधी दुष्कर्मों में व्यस्त दुष्टों की आँख की किरकिरी बन जाता है, क्योंकि उसके लोक कल्याण पालन से उनके स्वार्थबाधित होते हैं। अतः अपने दुष्कर्मों की बाधाओं का निराकरण करने के लिए दुष्ट शक्तियाँ संगठित होकर परोपकारी के पथिक का पथ कंटकाकीर्ण करने का प्रयत्न करती हैं। संसार में कोई महापुरुष ऐसा न होगा, जिसे लोक कल्याण के सुरभित सुमन चुनते हुए कठोर कंटकों ने लहूलहान न किया हो। अनेकों परोपकारी साधकों को तो इस पथ पर अपने प्राणों का भी उत्सर्ग करना पड़ा। इससे सिद्ध होता है कि परोपकार में दुष्टों द्वारा बाधाएँ उत्पन्न की जाती हैं। स्वयं की दुर्बलतायें भी परोपकार में कम बाधक नहीं बनतीं। लोभ, स्वार्थ और भय मनुष्य की सहज किन्तु दुनिवार्य यानि सहसा न रोके जाने वाली दुर्बलतायें हैं। इनके कारण बहुत से लोक कल्याण के पथ से भटक जाते हैं। आज के नेताओं में बहुत से ऐसे हैं, जिन्होंने लोक सेवा की पतली गली से लोक कल्याण के राजपथ पर प्रवेश किया है, किन्तु अन्त में कहीं अर्थ लोभ के कारण और कहीं सत्ता मोह के कारण उस सेवापथ से भटक कर भ्रष्टाचार की गहरी अंधेरी खाई में उतर चुके हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि मनुष्य की चारित्रिक व्यक्तिगत दुर्बलतायें भी उसे परोपकार के पथ पर आगे बढ़ने से रोकती हैं पर निष्काम भाव पर अटल बने रहने वाला सच्चा परोपकारी मार्ग की इन बाधाओं में अटक कर रुक नहीं जाता अपितु संतोष में बने रह, धीरता व आत्मविश्वास से इन लौकिक बाधाओं पर फ़तह पा अपने जीवन का मकसद सिद्ध कर लेता है।

सच्चा परोपकारी कौन है?

अपने को परे रखकर दूसरों का हित-साधन पहले सोचने और करने वाले ही सच्चे अर्थों में परोपकारी होते हैं।

परोपकारी के लिए लोक कल्याण के साथ-साथ और किस महत्त्वपूर्ण बात का ध्यान रखना आवश्यक होता है?

परोपकारी के लिए यह याद रखना आवश्यक होता है कि समाज सेवा का पाठ घर से ही शुरू होता है, अर्थात् बच्चा पहले अपने परिवार मे आज्ञा-पालन और बड़ों की सेवा सहायता करना सीखता है फिर परिवार से बाहर जाकर आस-पड़ोस में धर्म की पुष्टि करता हुआ समाज सेवा की ओर बढ़ता है।

यही बात लोक कल्याण पर भी प्रभावी होती है। लोक कल्याण करने वाले को अपने शरीर और अपने परिवार के कल्याण पर भी आवश्यक ध्यान देना चाहिए, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वह स्वयं और स्वजन के कल्याण तक सीमित हो जाय, जैसा कि आज के अधिकतर लोक कल्याण सक्षम अधिकारसम्पन्न जन कर रहे हैं। इसका अभिप्राय मात्र इतना ही है कि यदि लोक कल्याण कर्ता अपने स्वास्थ्य की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं देगा, तो उसकी व्यस्तता उसके शरीर को जीर्ण कर देगी और वह असमय ही काल का ग्रास बन जाएगा। ऐसी स्थिति में वह लोक कल्याण के पथ पर दूर तक नहीं जा सकेगा। शरीर समस्त धर्म साधन का प्रथम साधन है, अतः लोक कल्याण करते हुए इसकी आवश्यकताओं का भी उचित ध्यान रखना चाहिए।

अपने स्वास्थ्य के समान ही अपने पारिवारिक दायित्वों का सफल सम्पादन भी आवश्यक है अन्यथा व्यक्ति लोक कल्याण करता रह जाता है और उसका परिवार सम्यक् देख-रेख के अभाव में बिगड़ जाता है। वह जितना लोक कल्याण नहीं करता, उसकी बिगड़ी संतति उससे अधिक लोक-अहित कर डालती है। शिवाजी के पुत्र संभाजी और राणा सांगा के पुत्र उदय सिंह के चरित्र में अपने जन्मदाताओं के उदात्त कृतित्त्व की छाया तक नहीं दिखती। इसका कारण उपर्युक्त महापुरुषों का अति व्यस्ततावश अपने पुत्रों पर ध्यान न दे पाना है। निष्कर्ष यह है कि स्वयं की और अपने परिवार की कल्याण कामना का सम्यक् निर्वाह करते हुए लोक कल्याण में प्रवृत्त होना परोपकार की सही दिशा है।

परोपकार प्रवृत्ति मनुष्य किन विकारों से बच जाता है?

निःस्वार्थ भाव से परोपकार करने वाला सर्व राम रूप मानता है इसलिए मान-अपमान, वड-छोट, अमीरी-गरीबी को मान्यता नहीं देता। यही कारण है कि उसके मन में काम-क्रोध, लोभ-लालच, तेरी-मेरी, ईर्ष्या-द्वेष, वैर-विरोध, अहंकार जैसी बुराइयाँ नहीं पनपती। फलतः वह संतोष-धैर्य पर मज़बूत रहता है और सजनता के वर्त-वर्ताव द्वारा सच्चाई-धर्म के रास्ते पर निर्भयता से चलता है। यही नहीं इस द्वारा वह परोपकारी मोह-माया के बंधन में फँसने से भी बचा रहता है और सांसारिक कामों और सुख भोगों के प्रभाव से विरक्त बना रहता है। तभी तो ऐसे निर्वैर, निर्विकारी, निर्लिप्त मनुष्य के लिए जीवन के चारों पुरुषार्थ लक्ष्य यानि

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को प्राप्त करना कोई कठिन नहीं रहता।

स्पष्ट है कि परोपकार सामाजिक जीवन का महत्त्वपूर्ण आधार है। समाज के व्यापक पटल पर फैले कष्ट कंटकों का निवारण बहुत कुछ इस मानवीय मूल्य की समृद्धि से ही संभव हो पाता है। मानव में यदि उपकार की चेतना का प्रादुर्भाव हो जाय, तो उसे उसके उत्कर्ष का आधार माना जा सकता है। इस चेतना के उदित होने पर व्यक्ति न केवल सांसारिक भोगों एवं ऐश्वर्य के प्रति विवेकशील बुद्धि से काम लेता है वरन् उसके उपभोग एवं उपयोग में भी औचित्य का आश्रय लेता है।

ऐसा करने से वह व्यक्तिगत जीवन में आनन्द प्राप्त करता है और समाज में भी समादृत होता है। इस तरह स्वार्थ से ऊपर उठ कर वह निःस्वार्थी बन जाता है, जिससे उसकी उदार और व्यापक दृष्टि अभावग्रस्तों की सेवा-सहायता करने और उन्हें ऊपर उठाने का यथासंभव प्रयत्न करती है। इससे उसमें जो व्यापकता आती है, उससे वह सृष्टि के कण-कण में सृष्टा का दर्शन कर मनःसंतोष प्राप्त करता है।

इस तरह धीरे-धीरे उसकी प्रभु से आत्मीयता बढ़ती जाती है। इस प्रकार उपकार उसके जीवन का अभीष्ट लक्ष्य हो जाता है। अंततः उपकार ही उसके जीवन का अभ्युदय और निःश्रेयस का कारण सिद्ध हो जाता है। सम्भवतः मानव की सबसे बड़ी उपलब्धि निष्काम भाव से परोपकार कमाना है। अतः इसे ही मानव जीवन का साध्य मान सकते हैं।

परोपकार के इसी महत्त्व को समझते हुए अंत में सजनों हम यही कहना चाहेंगे कि परोपकार ही पुण्य है और परपीड़ा ही पाप है। अतः सतयुगियों की भांति परोपकार रूपी यह उत्तम पुण्य कर्म कमाओ। इस हेतु अपने अतिरिक्त औरों को भी हँसते हुए देखना सीखो और दूसरों की हँसी में भी अपना ही सुख मानो। सबको सुखी बनाने के लिए यदि अपने अपार सुख में से कुछ त्यागना भी पड़े तो मत सकुचाओ। आत्मत्याग करके भी दूसरों को सुखी कर सको तो समझो यह तुम्हारे सुख का ही विस्तार है अर्थात् परोपकार स्वार्थ से भी अधिक सुखद है। इस सुख को यदि मानोगे तो निश्चित ही बिना किसी भक्ति के सत्-चित्त-आनन्द को प्राप्त कर लोगे। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

पर उपकार जेहड़ा कमावेगा पर उपकारी नाम कहावेगा।
सोयां होयां नूं जागृति में लियावेगां,
परउपकारी ओ नाम कहावेगा।
जेहड़ा सजन असां ताईं ओ मिलना चाहवे, मुख मोड़े जगत दे
फुरने वल्लों, जे मिलना चाहवे
ख़्याल असां ताईं ओ जोड़ लवे, ख्याल असां ताई जोड़ लवे,
परउपकारी ओ नाम कहावेगा।

परोपकार के विषय में इससे आगे सजनों अगले सप्ताह जानेंगे।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 28 फरवरी 2016 का सबक

परोपकार भाग-2
प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव कर एक अच्छे इन्सान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

सजनों गत सप्ताह हमने जाना कि परोपकार जीवन का परम धर्म सिद्ध करने हेतु परस्पर सज्जनता अनुरूप आत्मीयता का आचार-व्यवहार करते हुए, एकता-एक अवस्था में सुदृढ़ता से बने रहने की बात है व सामाजिक सुख का सच्चा आधार है। इससे सम्पूर्ण मानव जाति एक रस आनन्दमय बनी रह सकती है। सुख का जन्म शान्ति की पवित्र कोख से होता है। अतैव जो अपनी इस शांति रूपा माता से श्रद्धापूर्वक प्रेम करते हुए, उसका आदर करता है व उसे अपने मन में एक रस बनाए रखता है, हकीकत में

उसका वह सपुत्र ही सुख का अधिकारी बनता है व शक्तिशाली होकर अफुरता से इस जगत में विचर सकता है। इसीलिए यदि सुखमय रहना चाहते हो तो मन की शांति बनाए रखो। याद रखो यह शान्ति संघर्षहीनता की गोद में पलती है। लोक कल्याण सामाजिक संघर्ष की विष व्याधि का अमोघ उपचार है। अन्य शब्दों में यह मन की संकल्प रहित यानि पूर्ण संतोष प्राप्त होने पर शांतमय बने रहने की अवस्था का प्रतीक है। इसके सद्प्रभाव से मन में किसी प्रकार के संर्घष व द्वन्द्व उत्पन्न होने की गुंजाइश नहीं रहती। इस प्रकार दुई भाव अन्दर उत्पन्न नहीं हो पाता और समभाव बना रहता है।

जानो कि संघर्ष, व्यक्तिगत हितों और स्वार्थों की रक्षा के लिए होता है। वर्त्तमान युग में सब स्वार्थवश, इन्सानियत के विपरीत, अपनी सुख सुविधाओं को प्राथमिकता देकर औरों की सुख सुविधा में कटौती करना चाहते हैं। यहीं से संघर्ष प्रारम्भ होता है। परोपकार में व्यक्तिगत हित चिन्तन के लिए कोई स्थान नहीं है, अतः यहाँ संघर्ष भी नहीं है इसीलिए शांति विराजती है और सुख के सुगंधित सुमन महकते हैं। परोपकार के अभाव में हम सामाजिक सुख शांति की कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। अतएव परोपकार का मूल्य सर्वोपरि है।

इसी सन्दर्भ में सजनों जान लो कि विश्व रूप में प्रकट ईश्वर की निःस्वार्थ सेवा ही कल्याण का साधन है। यह भक्ति का सर्वश्रेष्ठ स्वरूप है। सबका कल्याण हो ऐसी सद्भावना करने की प्रबल इच्छा और तद्नुसार प्रत्यक्ष कृति (सेवा,

भक्ति) सर्वहितकारिता कहलाती है। सर्वहितकारिता परोपकार का ही पर्याय है। सर्व शब्द की व्यापकता का यथार्थ दर्शन होने के पश्चात् ही सर्वहितकारिता का मर्म समझ में आता है। यह जीवन का सर्वदेशीय, सर्वकालिक, सर्वोच्च मूल्य है। यही सर्वोच्च व्रत यानि प्रतिज्ञा व संकल्प है। उसको अफुरता से निभाने के लिए व्यक्ति में कायिक, वाचिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक सामर्थ्य होना आवश्यक है।

याद रखो जिसके अन्दर शांति है उसके अन्दर स्वतः यह सामर्थ्य पनपता है जिसके फलस्वरूप रोम-रोम, रग-रग में निर्मलता का प्रवाह होता रहता है और बुद्धि, वृत्ति, स्मृति सब स्वच्छ बनी रहती है। अतः इस सन्दर्भ से परोपकार की महिमा अतुलनीय है।

सर्वहितकारिता मनुष्य को पशुबुद्धि एवं आसुरी भाव से ऊपर उठाकर, उसे सच्ची मनुजता यानि मनुष्यत्व प्राप्त करा देती है। सर्वहितकारिता का समष्टि भाव मनुष्य को नर कोटि में ले जाता है। सर्वहितकारिता के कर्म जब विश्वकल्याणार्थ परमेष्टि बुद्धि (परमेश्वर के निमित्त बुद्धि) से होने लगते हैं, तब नर नारायणत्व की ओर बढ़ता है यानि 'ईश्वर है अपना आप प्रकाश' यह सत्य स्वीकारने लगता है। व्यष्टि, समष्टि और परमेष्टि इन तीनों भावों में सर्वहितकारिता संसार का दुःख, दारिद्र, अशांति दूर करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है और धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदि चारों पुरुषार्थों की सिद्धि का साधन मानी जाती है। तभी तो कहा गया है-

परउपकार सजन-भाव का सूचक,
परउपकार भगवान का द्योतक
इसीलिए कहते हैं सबसे, परउपकार अपनाओ तुम।

सर्व में आप सहित सम्पूर्ण चराचर सृष्टि का अंतर्भाव होने से 'मैं ही सम्पूर्ण विश्व हूँ', 'मैं ही सर्वरूप हूँ', यहाँ पराया कोई नहीं है, सर्वत्र मैं ही मैं हूँ, इस अनुभूति में द्वैतभावना का पूर्णतया लोप होने से परोपकार की भावना भी लय को प्राप्त होती है। इस प्रकार अहंकार-रहित, निरपेक्ष विश्वसेवा ही सर्वहितकारिता की सच्ची कसौटी है।

सजनों मत भूलो कि आज विषमता, साम्प्रदायिकता, धर्मान्धता एवं संकुचित राष्ट्रवाद से मानवता शतशः सहस्त्रशः खण्डित हो रही है। ऐसे में सर्व-हितकारिता ही मानवता को अखंड विश्वात्मकता में जोड़ सकती है।

व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र, जगत और विश्व में सुख-समाधान-आनंद का दृश्य निर्माण करने में सहायक हो सकती है। याद करो आज तक श्रेष्ठ विभूतियों, सन्तों और नारायण स्वरूप महामानवों ने ही सर्वहितकारिता के विचार-आचार-व्यवहार द्वारा समाज की धारणा एवं उन्नयन किया है। अतः उनकी तरह आप भी सर्वहितकारी बन अपना व सबका कल्याण करो।

मान लो कि सर्वहित में मेरा और मेरे परिवार का भी हित समाविष्ट है। 'विश्व ही हमारा परिवार है', इस धारणा को दृढ़ करने के लिए हरेक परिवार, विद्यालय, विश्वविद्यालय, सांस्कृतिक संस्थानों, समाज और शासन-प्रशासन व्यवस्था

में सर्वहितकारिता मूल्य की स्वीकृति, उसके प्रति अचल निष्ठा और तदनुसार निःस्वार्थ सेवाभाव अनिवार्य रूप से अपनाना होगा। तभी सर्वहितकारिता यानि परोपकारिता का निष्कामता से पालन कर मानव निज धर्म एवं विश्वधर्म का सर्वोच्च आदर्श कायम कर पाएगा। इसीलिए तो ठीक ही कहा गया है कि 'जो पुरुष स्वयं को विश्व रूप देखता है, वह अनन्य भाव से सर्व का हित (कल्याण) करता हुआ विश्व रूप यानि ईश्वरमय ही हो जाता है।' इस तरह निःस्वार्थ सेवा विश्व कल्याण की संज्ञा है। दूसरा समझकर सच्ची सेवा नहीं होती, आत्मरूप जानकर की गई सेवा ही सच्ची सेवा कहलाती है। आत्मरूप जानकर की गई सच्ची सेवा से ही सेवक के विषय में सेव्य को प्रियत्व उत्पन्न होता है। इससे वह आलसी नहीं बनता, किन्तु सब प्रकार से पुरुषार्थी बनता है। अतः ऐसा पुरुषार्थी बन परोपकार कमाने की हिम्मत दिखाओ। इस संदर्भ में सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है-

पुरुषार्थ सजनों यत्न करो,
ओन्हां इक सवाल समझाया है
अनेक सवाल छुड़ाए के ओ नगर निवासियों,
महाबीर जी पर उपकार दिखाया है।।

आओ अब परोपकार के विषय में आगे जानते हैं-

सर्वहितैषिता को भी परोपकार का पर्यायवाची माना जाता है, इससे क्या तात्पर्य है?

मानव हृदय में अवस्थित वह भाव विशेष जो समाज के

उपकार को पहचानकर, समाज में सबके हित की कामना को सर्वश्रेष्ठ मानता है, सर्वहितैषिता कहलाता है। यह भाव, किसी व्यक्ति को वंशानुगत संस्कार के रूप में भी प्राप्त हो सकता है और इसे वह समाज के मध्य स्थित रहकर आवश्यकतानुरूप विकसित भी कर सकता है।

हृदय की कोमलता को परोपकार के लिए आवश्यक माना गया है, स्पष्ट करो?

हृदय की कोमलता और स्वस्थ चिन्तन लोक कल्याण के लिए अनिवार्य माना गया है क्योंकि हृदय की कोमलता से ही दया की भावना प्रस्फुटित होती है और परोपकार का विचार पुष्टि पाता है। जब तक हृदय की भावभूमि उर्वर नहीं होती, तब तक उसमें करुणा का कोमल बीज अंकुरित नहीं हो सकता। उसके अंकुरित हुए बिना दया के पुष्प और परोपकार के फल भी नहीं लग सकते। अतः याद रखो जिनका हृदय कोमल होता है, वे ही परायी पीड़ा पर द्रवित होते हैं, उन्हीं के मनोराज्य में चिन्ता की झंझाओं यानि तेज आँधियों और दुःख एवं करुणा की घनघोर-घटाओं के बीच लोक कल्याण की विद्युल्लता यानि बिजली चमकती है और सारे संसार को चमत्कृत तथा प्रभावित कर लेती है।

स्वस्थ चिंतन परोपकार के लिए आवश्यक क्यों है?

स्वस्थ चिन्तन यानि विचार व ध्यान परोपकार के लिए इसलिए आवश्यक है क्योंकि इसके अभाव में हृदय की कोमल भूमि असिंचित रह जाती है और स्वार्थ की कड़ी धूप उसे बंजर बना डालती है। अधिकांश लोग हृदय से कोमल

होते हैं, भावुक होते हैं किन्तु स्वस्थ चिन्तन के अभाव में लोभ, मोह, स्वार्थ, पक्षपात जैसे क्षुद्र भावों-विचारों के मकड़जाल में उलझकर अपनी भावुकता खो बैठते हैं। हृदय उन्हें परोपकार की ओर अग्रसर करता है, किन्तु स्वस्थ चिन्तन दृष्टि के अभाव में स्वार्थ-बुद्धि उन्हें उस पथ पर प्रशस्त होने से रोकती है। भावगत कोमल बुद्धि, स्वार्थ बुद्धि के कठोर अंकुश से आहत हो जाती है और मनुष्य परोपकार के दिव्य मूल्य से वंचित रह जाता है। अतः लोक कल्याण के शुभ पथ पर हृदय का कोमलता के साथ स्वार्थ रहित स्वस्थ चिन्तन का शुभयोग अनिवार्य है।

परोपकार को क्रियान्वित करने यानि व्यवहार में लाने के लिए मूलतः किसकी आवश्यकता है?

इसे क्रियान्वित करने में स्वभावतः त्याग करना पड़ता है। अतः मूल तत्त्व है- त्याग। इस त्याग भाव के जगने पर जो स्वाभाविक क्रिया द्वारा सहायता या सेवा की जाती है, वही वास्तव में परोपकार कहलाता है। स्पष्ट है, त्याग आंतरिक भाव है और परोपकार उसका व्यावहारिक रूप।

त्याग क्या है, स्पष्ट कीजिए?

इसका मूल अर्थ है त्यागना, छोड़ना। जब व्यक्ति अपने अभीष्ट किसी भाव, पदार्थ, पद, अधिकार आदि को अपनी इच्छा व निस्वार्थ भाव से छोड़कर उससे किसी प्रकार का संबंध नहीं रखता, तब उसे सच्चे अर्थों में त्याग कहा जा सकता है। इसका अनेक रूपों में प्रयोग होता है, जैसे

1. किसी पदार्थ से अपना अधिकार समाप्त करना ही वास्तविक त्याग है।

2. किसी कार्य से लगाव या संबंध हटाने के अर्थ में भी त्याग का प्रयोग होता है।

3. मन में वैराग्य उत्पन्न होने पर सांसारिक व्यवहार को छोड़ना भी त्याग ही कहा जाता है।

4. लोकहित के लिए अपने सुख का भी त्याग करना पड़ता है।

5. दुर्व्यसनों से मुक्ति पाना भी त्याग की कोटि में ही आता है।

त्याग के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि अभ्यास से ज्ञान, ज्ञान से ध्यान और ध्यान से सब कर्मों के फल का त्याग श्रेष्ठ है, क्योंकि इस सच्चे त्याग से ही अनन्त शांति की प्राप्ति होती है। मूल्य-परायण व्यक्ति बनकर वास्तविक सुख प्राप्त करते हुए जीवन को सफल और सार्थक बनाने के लिए सच्चे त्याग को समझना और अपनाना आवश्यक है।

धर्म के संदर्भ में दया और परोपकार में मूलतः क्या अन्तर है?

दया को धर्म का मूल माना गया है और परोपकार को धर्म का एक रूप। इस नाते से दया परोपकार का भी मूल ही है। जिसके दिल में दया होगी, वही तो दीन-दुखियों का दुःख देखकर द्रवित होगा और तब परोपकार या दान की इच्छा को क्रिया में लाएगा।

उपकार व परोपकार में क्या अंतर है?

उपकार व परोपकार में अंतर मात्र इतना ही है कि परोपकार दूसरों की भलाई के लिए निमित्त रूप से किया जाता है जबकि उपकार दूसरों का व अपना, दोनों का ही हो सकता है। इस

आधार पर उपकार के दो स्वरूप होते हैं। एक प्रकार का उपकार स्वयं के उत्कर्ष तथा दूसरे के सहयोग, सहायता व भलाई के लिए होता है, जैसे वृक्षों के द्वारा फल-प्रदान करना तथा बादलों के द्वारा जल प्रदान करना उनके निःस्वार्थ उपकार के उत्तम उदाहरण हैं और दूसरे प्रकार का उपकार अपने दोषों से छुटकारा पाने के लिए होता है। उपकार करने की प्रवृत्ति आने पर काम, कोध, लोभ, मोह और अंहकार के भाव स्वतः नष्ट हो जाते हैं। इस तरह इसमें स्वार्थ-लाभ का भाव होता हैं। सचमुच, यह व्यक्ति को श्रेष्ठ मानव बनाने का ही सत्-प्रयास है। ऐसा न करने पर व्यक्ति भोग-परायण वृत्तियों में फँसकर अपने मानवीय स्वरूप को विकृत कर लेता है। इस संदर्भ में रावण जैसे विद्वान का उदाहरण हमारे सामने ही है जिसने काम-वृत्ति के वशीभूत होकर अपना विनाश खुद ही कर लिया।

उपकारशीलता, मित्रता व दयालुता में क्या सम्बन्ध है?

मनुष्य केवल दो कारणों से प्रेरित होकर उपकारशीलता में प्रवृत्त होता है- या तो वह मैत्री संबंधों के निर्वाह और उनकी पुष्टि के लिए परोपकार का आश्रय लेता है या फिर किसी पीड़ित निर्धन के प्रति दयालु होकर उपकारशीलता का परिचय देता है। उपकारशीलता मित्रता का फल है और उपकारशीलता और मित्रता परस्पर आश्रित हैं। मित्रता उपकारशीलता का अनिवार्य तत्त्व हैं और उपकारशीलता मित्रता की प्रेरणा भूमि है, क्योकि जो उपकार करता है, उसके प्रति मैत्री भाव की ज्योति किरण अंतर्मन में अवश्य फूटती है। यहाँ समझने की बात यह है कि यह

उपकारशीलता अधिकतर प्रत्युपकारक सापेक्ष उपकारशीलता की श्रेणी में आती है जिसके अंतर्गत प्रत्युपकार की प्रत्याशा में उपकारशीलता का व्यवहार होता है, किन्तु इसे हम सच्ची उपकारशीलता कहने में संदेह का अनुभव करते हैं, क्योंकि यह तो एक प्रकार का विनिमय होता है। हकीकत में तो जो निष्काम भाव से किसी का उपकार करता है, वही साधु कहलाता है इसके विपरीत जो किसी वस्तु की इच्छा से उपकार करता है, वह निरर्थक होता है। इस तरह प्रत्युपकार निरपेक्ष उपकारशीलता ही सच्ची उपकारशीलता है। इसका व्यवहार हम बिना अपने-पराये का विचार किए करते हैं। इसका द्वार सबके लिए खुला है और इसका वरदान सभी को सुलभ है, अतः उपकारशीलता की यही दिशा वांछनीय है।

कहते हैं उपकारशीलता दोहरा वरदान है, कैसे?

उपकारशीलता दोहरा वरदान है। वह उपकारक और उपकृत दोनों के व्यक्तित्व को उदात्त बनाती है। जो मनुष्य दूसरे का उपकार करता है, वह अपना भी उपकार न केवल परिणाम में अपितु उसी कर्म में करता है क्योंकि अच्छा काम करने का भाव ही स्वयं उचित पुरस्कार है। वास्तव में उपकारशीलता एक ओर उपकारक को अच्छा कार्य करने की संतुष्टि देती है, तो दूसरी ओर उपकृत के कष्ट का निवारण करके उसे सुखी बनाती है, उसके मन में कृतज्ञता के भाव की पुष्टि करके उसका उदात्तीकरण करती है।

लोक कल्याण भी परोपकार का पर्याय है, इसका क्या अर्थ है?

व्यक्तिगत स्वार्थ से पूर्णतया रहित तथा सर्व सामान्य के हित की कामना से प्रेरित भाव, विचार और क्रिया की संज्ञा लोक कल्याण है।

आज के समय में परोपकार का भाव अपनाना क्यों कठिन लगता है?

यद्यपि परोपकार पूर्णतया मानसिक एवम् आध्यात्मिक वह भाव है जिसकी उत्पत्ति सभी मनुष्यों के हृदयों में होनी चाहिए, तथापि सभी मनुष्य इस उदात्त भाव को धारण करने वाले और उदारमना नहीं होते क्योंकि आधुनिक युग में स्वार्थ का सर्वत्र बोलबाला है। परहित चिंता का तो विचार भी कम लोगों में जागता है। ऐसी स्थिति में सबके हित की बात करने अथवा इस भावना की प्रशंसा करने वाला मूर्ख या सनकी ही समझा जाता है।

इस प्रकार यदि परमार्थ से विमुख होकर समाज में प्रत्येक व्यक्ति स्वार्थी हो जाए, तो क्या समाज की सभी चिंताएँ मिट सकती हैं?

नहीं।

फिर हम कैसे कह सकते हैं कि परोपकार सामाजिक जीवन का एक अनिवार्य तत्व है?

इस संदर्भ में जान लो कि स्वार्थ चिंतन के बाद भी स्वार्थों की पूर्ति के लिए जिस सामर्थ्य की आवश्यकता होती है, वह भी अनेक के पास नहीं होती। ऐसी स्थिति में उसके परमुखापेक्षी होने में यानि दूसरों पर निर्भर रहने में देर नहीं लगती और

तब अनुभव होता है कि व्यक्ति को दूसरों के हितों की रक्षा चाहे-अनचाहे करनी पड़ती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सर्वहितैषिता सामाजिक जीवन का एक अनिवार्य तत्त्व है। अतः मनुष्य को संकीर्ण हृदय और संकुचित विचारों का नहीं होना चाहिए। इसके विपरीत परोपकार यानि सर्वहितैषिता की भावना जो भारतीय संस्कृति का मूल और प्राण है उसे उदारमना होकर आत्मसात् कर लेना चाहिए।

क्या परोपकार को सीमाबद्ध किया जा सकता है?

परोपकार मनुष्य के व्यक्तित्व और सामाजिक उत्थान का इतना महत्त्वपूर्ण कारण है कि उसे सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता।

परोपकार का बाधक तत्व क्या है?

विपत्तियों से घबराने वाला परोपकार नहीं कर सकता क्योंकि विपत्ति आने पर उसका समस्त ख़्याल, ध्यान, क्षमता और साधन अपनी ही विपत्ति के निवारण में लग जाते हैं। ऐसे में जब वह अपनी मानसिकता को स्वार्थ की भावना से मुक्त ही नहीं रख पाता तो वह दूसरों की भलाई के विषय में विचार कैसे करेगा। इसी तरह जो केवल उपदेश देते हैं और आचरण करके नहीं दिखाते, वे परहित नहीं कर सकते।

परोपकार के विषय में इतना सब कुछ जानने-समझने के बाद हमारा क्या कर्त्तव्य बनता है इस संदर्भ में सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

सजनों सुतयां नूं जगायो, कुरस्ते पै गया जेहड़ा सजन,

रस्ते धर्म दे ते ले आयो
पर उपकारी नाम कहाओ, जित्तो मृतलोक नू,
आहा जित्तो मृतलोक नूं
इस तरह
अपनी अक्ल दे नाल कुल दुनियां नूं जगाओ,
कुल दुनियां नूं जगाओ
अपनी अक्ल दे नाल, दुनियां ते बुझिया दीपक जगाओ,
दुनियां ते बुझिया दीपक जगाओ
अपनी अक्ल दा है प्रकाश,
परउपकार कुल दुनियां ते दिखायो,
परउपकार कुल दुनियां ते दिखायो।
इस हेतु
सजन शब्द चलाओ ते चलदे जाओ,
ऐसा पराक्रम दिखायो, परउपकारी नाम कहाओ।

अर्थात् यह हम सबका फ़र्ज़ बनता है कि हम समभाव-समदृष्टि की युक्ति के प्रसार द्वारा कुल दुनियां में सुख-शांति व आनन्द की स्थापना करने हेतु निष्काम भाव से परोपकारी प्रवृत्ति अपनाकर सजन भाव का संदेश कुल दुनियां तक पहुँचाएँ और इस प्रकार सजन युग की बुनियाद पक्की कर दें। इस तरह इस प्रवृत्ति में सुदृढ़ हो एक अच्छे समाज की स्थापना में निःस्वार्थ भाव से अपना योगदान दें।

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि परोपकार, उपकार भी है, सेवा भी है, दान भी है, दया भी है, करुणा भी है और सहानुभूति भी है। इसके अनेक नाम हैं पर काम एक ही है परउपकार। यह धर्म का मूल है। पर यह तभी संभव हो सकता है, जब हम आत्मत्याग करें। जब तक आत्मत्याग की भावना नहीं आएगी, तब तक परोपकार सध नहीं सकता।

परोपकार है अपनी हैसियत अनुसार दूसरे को ज़रूरत के मुताबिक कुछ देना। वह हम तभी दे सकेंगे, जब अपने स्वत्व का कुछ त्याग करेंगे। कहते हैं कि अपने लिए तो सब जीते हैं पर आनंद तो तब है, जब दूसरों के लिए जिया जाए। अतः याद रखो जो व्यक्ति अपने स्वार्थों की चिंता न करके औरों के हित की भी चिंता करे, वही आदरणीय एवं अनुकरणीय है।

इस संदर्भ में सजनों हम प्रायः सांसारिक मोहपाश में आबद्ध रहते हैं। उदारता का एक झोंका-सा, जैसे ही पीड़ित मानवता को देखकर आता है, वैसे ही हमारी बद्धवृत्ति को खोल देता है। हृदय कपाट खुल जाता है और असलियत स्वरूप का दर्शन हो जाता है। तभी तो कहा गया है कि परोपकार हृदय की वह उदार चेतना है, जिससे व्यक्तित्व की पंखुड़ियाँ दल पर दल खुल जाती हैं। फलतः उस मानव विशेष की यश-कीर्ति की सुगंधि देवलोक की सुगंधि को भी मात करती हुई, चारों दिशाओं में फैलती है। इस प्रकार यह परोपकार बद्ध आत्मा के कपाट को खोलने वाला उदार भाव है।

यह भाव जब हिंसक पशु को हितकारी बना देता है तो मानवों में आपसी सद्भाव और भाईचारे का संचार तो अनायास करेगा ही। अतः परोपकार सभ्य मानव संसार का सर्वोपरि गुण है। परोपकार की भावना का मानव हृदय में जागरण, उसके व्यक्तिगत स्वरूप को उत्कर्ष की दिशा प्रदान करता है। इसकी महत्ता अपार है क्योंकि यह मनुष्य की मनुष्यता है। दुनियां भर के धर्मों का सार है। यदि अधिकांश जनों में देखा-देखी ही सही, यह उपकार भाव स्वार्थ को दबा कर संचरित हो जाए, तो समझो कलियुग यानि भ्रष्टयुग विदा हो जाएगा और दुनियां में सतयुग आ जाएगा। विश्व वेदना सिमट जाएगी और सुख-

समृद्धि का वातावरण छा जाएगा। यही इसकी सबसे बड़ी मूल्यवत्ता है।

सारांशतः सजनों हम कह सकते हैं कि मानव को सर्वश्रेष्ठ प्राणी कहलाने का श्रेय उसकी भौतिक सम्पन्नता ने नहीं अपितु आंतरिक गुणों की सम्पन्नता ने दिया है। इन आंतरिक गुणों में परोपकार का महत्त्व अत्यधिक है। 'जियो और जीनो दो' का सिद्धांत आरम्भ से यही कहता है कि जब सबके हित की चिंता होगी, तब कोई भी अनदेखा या उपेक्षित नहीं रह पाएगा।

सृष्टि के सभी तत्त्व आपस में एक दूसरे के साथ सामंजस्य न रखें, तो इस संसार का यह रूप, भला, क्या रह पाएगा। सूर्य अपनी दाहकता को समेट ले या चाँद अपनी चाँदनी की अमृत वर्षा रोक ले, तब भी क्या हम यूँ ही स्थिर रह पाएँगे? प्रकृति का यही संदेश है कि सर्वहितैषिता में ही संसार के प्राण बसते हैं।

न नदियाँ अपना जल स्वयं पीने के लिए बहती हैं, न वृक्ष अपने फल स्वयं खाने के लिए फलते हैं, न ही बादल वर्षा से खेत में उपजा हुआ अन्न स्वयं खाते हैं यानि ये सब दूसरों की भलाई यानि परोपकार के लिए ही कष्ट उठाते हैं। महान लोगों का यही विशेष गुण होता है।

परोपकार का यही महत्त्व है और यही उसकी उपयोगिता है कि हम संसार के सभी प्राणियों के हित की मंगल कामना करते हुए सर्वदा निष्कामी बने रहें। इसी से हम सुखी, हमारा परिवार सुखी व समाज सुखी हो सकता है। आओ

अब सब मिलकर बोलें-

हम घर साजन आए हमारे, हमरा भाग्य जगाने को
जीवन का इक मकसद दे कर, परउपकार कराने को।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।



दिनाँक 6 मार्च 2016 का सबक

सज्जनता
प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

अभी हम सबने सजन श्री शहनशाह महाबीर जी से बल, बुद्धि व सुमति माँगी ताकि हम सजन भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इन्सान की तरह जीवन जीने के योग्य बन सके। इसी सन्दर्भ में आओ अब सजन-भाव को समझते हैं।

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार सजनों 'समभाव समदृष्टि दा स्कूल खुलया जे, खुलया जे शहर पर शहर और जगह-जगह। इस स्कूल की पढ़ाई क्या है?

सजनों सुनो- सजन शब्द चलाओ जित्तो मृत्तलोक नूं'। इस हेतु सजनों-

सजन सदो सजन सदाओ, सजन ही पहरेवा पाओ
सजन करो वर्त वर्ताओ, जित्तो मृतलोक नूं
जिव्हा स्वतन्त्र संकल्प स्वच्छ, इक निगाह इक दृष्टि दिखाओ
सजन शब्द चलाओ, जित्तो मृतलोक नूं
सजनों पकड़ो आप नूं, खालस सोना हो जाओ
अपने प्रकाश नूं पाओ, जित्तो मृतलोक नूं
कदम कदम ते विचार, विचार नाल होवे प्यार
दिव्य दृष्टि सजनों दिखाओ, जित्तो मृतलोक नूं
सजन शब्द चलाओ ते चलदे जाओ, सजनों ऐसा पराक्रम दिखाओ
परउपकारी नाम कहाओ, जित्तो मृतलोक नूं

अर्थात् सजन शब्द बड़ा महान शब्द है। जिह्वा से सबको सजन बुलाओ और सजन ही सदवाओ। स्वभावों में सजनता अपनाओ और आपसी वर्त-वर्ताओं में सजनता का भाव दर्शा सदाचारी बन जाओ। फिर वैर-विरोध, द्वेष भाव से दूर हो, जिह्वा स्वतन्त्र, संकल्प स्वच्छ, दृष्टि कंचन कर इस प्रकार अपने आपको पकड़ते जाओ कि इस बदन से खोट दूर हो और खालस सोना हो जाओ। ऐसा करने पर अपने असलियत प्रकाश को पा सकोगे। फिर कदम-कदम पर यानि जीवन के हर पहलू में विचार शब्द पकड़ो ताकि बुद्धि विचार प्रबलता धारण करे और दिव्य दृष्टि हो जाए। इस तरह अपने व सबके सुख के लिए सजन शब्द चलाओ और

चलते जाओ अर्थात् सर्वव्यापक भगवान के सत्य पर निरंतर मजबूत बने रह, एकात्मा के भाव में ठहरे रहो और सबके साथ आत्मीयता का व्यवहार करो। ऐसा पराक्रम दिखाने के प्रति कदाचित् कमज़ोर मत पढ़ो यानि सावधान रहो कि दूसरे भाव आपके अन्दर घर न कर जाए। तभी परउपकारी बन सकोगे और मृतलोक को जीत सकोगे।

स्पष्ट है सजनों दिव्यता से जीवन जीने के लिए समभाव एवं समदृष्टि की युक्ति हमें यह संदेश देती है कि हम वास्तविक अर्थों में 'सजन' बनें अर्थात् ऐसे श्रेष्ठ आदर्श पुरुष बनें जो सजनता से ओत-प्रोत हों तथा कष्ट-क्लेश आने पर भी अपनी सजनता न छोड़े। इस संदर्भ में सजनों सज्जनता को समझना अति अनिवार्य है। आओ समझतें हैं सज्जनता को।

सज्जनता शब्द से क्या तात्पर्य है?

सज्जन होने के भाव को सज्जनता कहते हैं। यह व्यापक अर्थ में मनुष्य की चारित्रिक अच्छाई का प्रतिशब्द है। याद रखो जो व्यक्ति समाज में नैतिक मूल्यों का पालन करते हुए आदर्श चरित्र बन जाता है, उसके स्वभाव को हम सज्जनता का प्रतीक मानते हुए, उसके आचरण को सज्जनता का दृष्टांत मानते हैं।

सज्जन शब्द का मूल अर्थ क्या है?

सज्जन शब्द का मूल अर्थ है भला आदमी, भद्र पुरुष, अच्छा इन्सान, श्रेष्ठ मनुष्य, सर्वगुणसम्पन्न मानव और पुण्यात्मा। सजन व्यक्ति अपना व सबका हितचिंतक होता है। वह प्रत्यक्षता व व्यवहार में सौम्य व सुशील होता है तथा सदैव

दूसरों का आदर करते हुए उनके साथ उचित, सौम्य और नेक व्यवहार करता है। इस प्रकार वह सभी परिस्थितियों में विनम्र, मृदु एवं सचेत बना रहता है। तभी तो सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है-

सजन है कुल चानणा, सजन है कुल दीपक

सज्जनता के लिए अनिवार्य तत्व क्या है?

इसका अनिवार्य तत्व है तन-मन की शुचिता। जो व्यक्ति मन, वचन और कर्म से शुद्ध, सच्चा और सरल है उसे सज्जन पुरुष कहते हैं और जिस स्वभाव के कारण ऐसा होता है वह है उसकी सज्जनता। यह मूलतः स्वभाव की निश्छलता का द्योतक है। सांसारिक जीव सामान्यतः छल-झूठ-कपट से घिरे रहते हैं, निंदा-ईर्ष्या में डूबे रहते हैं। उन्हें दूसरे का सुख नहीं सुहाता और दुःख भाता है। ऐसे लोगों से भिन्न जिनकी प्रकृति शान्त और सुशील होती है जो निर्वैर होते हैं, किसी की निंदा-चुगली नहीं करते, वे ही सज्जन कहलाते हैं। ऐसे मानव किसी से झगड़ते नहीं, प्रतिकार, प्रतिशोध नहीं लेते अपितु आत्मतुष्ट व धीर होते हैं। उनके चरित्र से उदारता व साधुता चरितार्थ होती है। इस संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें कह रहा है-

सजन शब्द है बड़ा महान,
हुण वैरी दुश्मन शत्रु है कौन।
सजन शब्द है जगत जहान,
हुण वैरी दुश्मन शत्रु है कौन।
सजन शब्द सारी सगली जान,
हुण वैरी दुश्मन शत्रु है कौन।

सजन शब्द करो प्रवान,
हुण वैरी दुश्मन शत्रु है कौन।

सज्जनता के कितने भेद किए गए हैं?

सज्जनता के तीन भेद किए गए हैं मन से सजनता, वचन से सजनता और कर्म से सजनता।

1. सज्जन व्यक्ति पहिले मन की चंचलता को समाप्त करने की चेष्टा करता है, काम, क्रोध, मद, लोभ, अहंकार इसी की उपज है। मन में सजनता के गुण तभी उदित होंते हैं, जब मन एकाग्र होता है। मन के एकाग्र होने पर व्यक्ति अनासक्त भाव से बिना फल की आकांक्षा किए सात्विक त्याग करने को तत्पर हो जाता है। यही व्यक्ति का मन से सजनता ग्रहण की विधि है। इसमें लोक कल्याण और परहित का भाव कहीं न कहीं अवश्य रहता हैं।

2. वचन से सजनता तभी आती है, जब व्यक्ति अपनी वाणी से मीठे व हितकारी वचन बोलता है। शिष्टाचार के अनुकूल परस्पर बातचीत के दौरान जी-जी व सजन शब्द का इस्तेमाल करता है। इस प्रकार जिह्वा सज्जन होने से व्यक्ति का अपना मन तो शीतल होता ही है साथ ही दूसरों को भी सुख मिलता है।

3. तीसरे प्रकार की सजनता वह होती है, जो सत्कर्मों से प्राप्त होती है। ऊँचे कुल में जन्म लेने मात्र से व्यक्ति न तो सज्जन बनता है और न उसमें सज्जनता जैसे गुण ही उदित होते हैं। सज्जनता के लिए निष्कामता से सत्कर्मों का संपादन करना आवश्यक है। याद रखो जो इस तरह

कर्मफल की आकांक्षा किए बगैर सत्कर्म करता है वह ही हकीकत में सज्जन कहलाता है। इसीलिए तो सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है-

जिह्वा सजन ख्याल सजन,
सजन नज़रों में पहचान।
हम हैं सजन तुम हो सजन,
सजनों सजन सजन ही मान।
सजनों सजन बोल चाल ही सीखो,
सजनों सजन करो प्रवान।।

स्पष्ट है सजनों मन-वचन-कर्म ही मनुष्य को श्रेष्ठ बनाते हैं। सजनता गुण इन्हीं से विकसित व पल्लवित होता हैं। सजनता से ही व्यक्ति को सुख-शांति की प्राप्ति होती है। मूल्यपरायण व्यक्ति बनकर वास्तविक सुख-आनंद-शांति प्राप्त करते हुए उसे सजन बनने का उपक्रम करना चाहिए। जीवन को सफल और सार्थक बनाने के लिए हरेक व्यक्ति के लिए सज्जनता को समझना और उसे अपनाना आवश्यक है।

सज्जन बनने के लिए किसका त्याग करना अनिवार्य है?

सज्जन पुरूष बनने के लिए अपने मन की संकीर्णताओं को त्यागना जरूरी है क्योंकि मन की संकीर्णताओं के त्यागने के बाद ही मनुष्य निरंतर अच्छा मानव बनने का सद्प्रयास कर सकता है अन्यथा भोगपरायण वृत्तियाँ काम, क्रोध, मद, लोभ, झूठ, ठगी, ईर्ष्या, हिंसा, निंदा-चुगली, वैर-विरोध आदि अच्छे मनुष्य को भी भ्रष्ट कर देती हैं। इनके रहते आपसी सद्भाव नष्ट हो जाता है और सामाजिक वातावरण संघर्षमय बन जाता है।

सज्जनता को विकसित करने के साधन क्या है?

यह प्रश्न तो आदि काल से उठता रहा है, कि मानव बनने का क्या प्रयोजन है? मनुष्य सच्चे अर्थों में मनुष्य बना रहे, यही तो उसकी प्रयोजनीयता और सार्थकता है। सर्वप्रथम मनुष्य बनने के लिए व्यक्ति के लिए सहृदय अर्थात् संवेदनशील होना आवश्यक है। जब व्यक्ति संवेदनशील होगा, तभी वह दूसरों के दुःख से द्रवित होगा। द्रवित होकर ही मनुष्य उदार और सहृदय बनता है। उदारता और सहृदयता से मनुष्य में सज्जनता आती है। सजनता वह गुण है, जो मनुष्य को व्यष्टि के धरातल से ऊपर उठाकर समष्टि के धरातल पर प्रतिष्ठित कर देता है। इस स्थिति में पहुँचकर वह समाज, देश और लोक यानि विश्व का अंग बन जाता है। वह स्वार्थी नहीं, निःस्वार्थी बन जाता है। निःस्वार्थी बनकर वह वैश्विक कल्याण से जुड़ जाता है। इस विषय में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है-

सजन सजन दा है गहणा।
सजन सजन दा है सिंगार।।
सजन है जे आत्मा में परमात्मा।
है ओ सिरजनहार है ओ सिरजनहार।।

इस सोपान पर पहुँचकर उसमें विश्व के दुःखी व अभावग्रस्त लोगों के प्रति जो प्रेम व सहानुभूति जागती है, वह अंततः दया व करूणा में परिणत हो जाती है। निष्काम सेवा की चेतना इसी से उद्भूत होती है, जिससे प्रेरित होकर मनुष्य परोपकार की राह पकड़ लेता है। तभी तो कहा गया है कि सज्जनता गुण से परिपूर्ण व्यक्ति दूसरों की भलाई के लिए

ही स्वार्थ त्याग करते हुए परोपकार करते हैं। इसके अतिरिक्त सज्जनता सत्संग से भी विकसित होती है।

सज्जनता की कसौटी क्या है?

सत्यता, ऋजुता, सहजता, उदारता, सहृदयता, कर्मठता, परोपकारिता, विवेकशीलता यही सज्जनता की कसौटी है। सत्य ही वह ज्ञानचक्षु है जिससे उचित-अनुचित का विवेक जाग्रत होता है। उचित मार्ग अर्थात् सत्मार्ग पर चलने से सज्जनता आती है।

सज्जनता का असली रूप कब निखरता है?

जब व्यक्ति 'मैं और मेरा' जैसे भावों से ऊपर उठ जाता है तब ही सजनता का असली रूप निखरता है।

इस सन्दर्भ में सजनों जान लो कि परमात्मा सम है जबकि जीवात्मा शरीरधारी है। इस शरीरधारी जीव ने, सबके साथ आत्मीयता का यानि सज्जनता का व्यवहार करने हेतु, परमात्मा का व्यवहार आत्मा के द्वारा जीवन में उतारना है। इस हेतु पहले समभाव नज़रों में करना है और फिर समदृष्टि हो सबके साथ सजन भाव का वर्त-वर्ताव करना है। यह निर्भयता से जगत में निर्वैर, निरासक्त, निर्विकारी हो निष्कलंक विचरने की बात है।

अतः इस प्रयोजन सिद्धि के लिए 'विचार ईश्वर आप नूं मान' कर सम पर खड़े हो जाओ और कदाचित् किसी भी कारणवश डोलायमान न होवो। इस तरह सम अवस्था में बने रह, शक्तिशाली बनकर जीवनयापन करो और आपसी

सम्बन्ध प्रेम-प्रीति व सद्भावना से निभाओ। इस तरह सजनता व्यवहार में उतरेगी और शरीरधारी आत्मा, सजन पुरूष बन, सज्जनता की प्रतीक बन जाएगी। तभी आत्मा में जो है परमात्मा यानि जिस परमात्मा की शक्ति से हम चल-फिर रहे हो, उस परमात्मा का खुद को सदा बोध रहेगा दूसरा हमारे मन-वचन-कर्म द्वारा किए आचार-व्यवहार द्वारा सबको उसका दर्शन होगा।

इसलिए कहते हैं कि जीवन का मकसद बड़ा महान है यानि यह जीवन कोई खेला नहीं है। जीवन तो आनन्द स्वरूप है यानि यह तो आजीवन अपने असलियत स्वरूप में मग्न रह, जीवन का वास्तविक आनन्द उठाने की बात है। तभी हम सम अवस्था में बने रहने का महत्त्व जान सकते हैं।

स्पष्ट है सजनों सज्जनता सत्पुरुषों के उदारशय चरित्र, निश्चल स्वभाव और लोकहितकारी कर्मो की वह त्रिवेणी है जो उनके मन-वचन-कर्म द्वारा सदैव निर्झरित होती रहती है। यह वह साधु स्वभाव है जिसे छल-कपट, ईर्ष्या-द्वेष, निंदा-प्रतिशोध, दुर्वाद, दुष्टता आदि दुर्गुण छू तक नहीं सकते। यह तो सत्य, क्षमा, दया, संयम व सहनशीलता का प्रतीक है। याद रखो जिसके मन-वचन और कर्म सज्जनता के अनुकूल शुद्ध हो जाते हैं, उसी को आत्म साक्षात्कार होता है। इस तरह हम कह सकते हैं कि सज्जनता मनुष्यता की विभूति है। सांसारिक जीवन में इसी से सौमनस्य आता है, पारस्परिक सौहार्द पनपता है। अतः यदि सुख-शांति की चाह हो तो इसी का मूल्यवान् अवलम्बन कीजिए। सज्जनता को समझने के बाद आओ अब सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के

अनुसार सजन-भाव को समझते हैं-

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में सजन के साथ 'भाव' शब्द का प्रयोग किया है, 'भाव' शब्द से क्या तात्पर्य है?

'भाव' शब्द का शाब्दिक अर्थ है मन में उत्पन्न होने वाला कोई विचार या प्रवृत्ति, ख्याल, अंतःकरण में छिपी हुई गूढ़ इच्छा आदि। भाव किसी अवस्था या स्थिति विशेष को भी जताता है। किसी व्यक्ति की विवेकशीलता उसके मन-मस्तिष्क के भाव के स्तर को जन्म देती है जो कि अन्ततः उसकी प्रकृति, सिद्धान्त, प्रवृत्ति, आदत, स्वभाव, गुण या चरित्र बन जाता है।

सजन-भाव का क्या अर्थ है?

सजन-भाव हृदय में उत्पन्न होने वाला ऐसा सात्विक भाव या ख्याल है जो भगवान की सर्वव्यापकता जनाता है।

इस तरह एकता, एक अवस्था का प्रतीक यह मैत्री-भाव निर्वैर, निर्भय, निर्विकार बने रहने की भावना को अभिव्यक्त करता है। यह वह निर्मल बाणा है जो वृत्ति, स्मृति, बुद्धि व वाणी को निर्मलता में संजोए रखता है। परिणामस्वरूप कुल जहान निर्मल भासता है। इस प्रकार सजन-भाव की ताकत द्वारा आत्मा सदा निर्मल बनी रहती है और निर्वाण प्राप्ति सहज हो जाती है। सूक्ष्मतः याद रखो-

सजन है आत्मा, श्री साजन है परमात्मा।

सजन-भाव का आधार क्या है?

1. समभाव-समदृष्टि जो कि ईश्वर का मूल गुण है।

2. जिह्वा स्वतन्त्र अर्थात् शब्दों की निर्भयता पूर्ण सार्थक अभिव्यक्ति।

3. संकल्प स्वच्छ अर्थात् भाव को निर्मल रखने का दृढ़ निश्चय।

4. दृष्टि कंचन अर्थात् देखने की शक्ति या वृत्ति की पवित्रता व स्वच्छता।

5. अपने आप को पकड़ना अर्थात् हर क्षण अपने ख़्याल पर पहरा देना।

6. कदम-कदम पर विचार अर्थात् प्रति क्षण अपनी जाँचना-तुलना करना।

सजनता युक्त भाव हमें किस प्रकार प्रभावित करते हैं ?

सजनता युक्त भाव सदैव न केवल हमारे अस्तित्व पर सकारात्मक प्रभाव डालते हैं बल्कि जीवात्मा, मन-मस्तिष्क और शरीर के अतिरिक्त हमारे गुण, चरित्र व जीवन का सिद्धान्त बनाने वाली भावना, मनोवृत्ति, चित्त-वृत्ति, आत्मविश्वास व आस्था आदि को भी सकारात्मक स्वरूप प्रदान करते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'सजन भाव' के मूलाधार पर आश्रित यानि पले-बढ़े व्यक्ति का चरित्र पूर्णतया सकारात्मक गुणों व श्रेष्ठताओं से परिपूर्ण होता है। जान लो कि सतयुग के सजनों का परस्पर आचार-विचार व व्यवहार इसी 'सजन भाव' पर ही आधारित होता है।

सजन भाव का व्यवहार करने वाला मनुष्य कैसा होता है?

ऐसा व्यक्ति पूर्णरूपेण विवेकशील, समझदार, श्रेष्ठ,

कुशाग्रबुद्धि, आत्मविश्वासी, चतुर, ज्ञानवान, कुशल और दक्ष होता है। वह अपने ज्ञान के सही प्रयोग द्वारा तथ्यों की यथार्थपूर्ण विवचेना कर पाता है और ईश्वरीय गुणों व हुक्म का स्वयं सफलतापूर्वक प्रदर्शन करते हुए सरलता से उन्हीं गुणों का प्रसार करने में समर्थ हो पाता है।

सजन भाव अपनाना क्यों आवश्यक है?

सजन भाव अपनाना इसलिए आवश्यक है क्योंकि यह हमें-

1. केवल एक सर्वोच्च ईश्वरीय सत्ता पर दृढ़ विश्वास रख, जनचर-बनचर, जड़-चेतन एक ही रूप है इस सत्य से परिचित करा, मानवता में बन रहने का पाठ पढ़ाता है और नकारात्मक विचारों से दूर रखता है।

2. मन-मस्तिष्क की उग्र अवस्था के उन्मूलन हेतु हमें अहंकार व स्वार्थ युक्त कलियुगी चंचल स्वभावों से परे रखता है अर्थात् सतयुग के शान्त एवं स्थिर स्वभावों में ढलने के लिए भी प्रेरित करता है।

3. संकल्प पर फ़तह पा, जीवन की किसी भी विपरीत परिस्थिति में हमें विषाद, रोने-झुखने व नकारात्मक सोच आदि में जाने से रोकता है।

4. पशुओं एवं अल्पबुद्धि जीवों से विभेदित कर इस विश्व को एक सामंजस्य एवं सौहार्द्र पूर्ण ग्रह बनाने में सहायक सिद्ध होता है।

5. अपना शासक स्वयं बन, निर्भयता से स्वतन्त्रता पूर्वक इस जगत में विचरने, एवं मृतलोक को जीतने अर्थात्

आवागमन के चक्र से मुक्त होने के लिए प्रेरित करता है।

स्पष्ट है सजनों सर्वप्रथम मानवीय दुर्बलताओं से छुटकारा पा जीवन उत्कर्ष के लिए सजन भाव अपनाना नितान्त आवश्यक है। दूसरा मानव होने के नाते प्रत्येक मानव का जो अन्य मानवों के प्रति धर्म है, उस धर्म का निष्कामता से निर्वाह करने हेतु यानि पर सहायतार्थ, सहयोग तथा भलाई के लिए इसको धारना आवश्यक है।

सजन भाव अपनाना किसका द्योतक है?

1. सतवस्तु का।

2. आत्मा-परमात्मा की एकता एवं अखंडता का।

3. निर्विकारता, निष्कामता, विशालहृदयता एवं परोपकारता का।

4. शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक विकास का।

सजन-भाव अपनाने से हमें क्या लाभ प्राप्त होगा?

सजनों सजन भाव अपनाने से हमारा अंतःकरण स्वच्छ हो जाएगा व हमारे अन्दर सात्विक गुणों का विकास होगा। फलस्वरूप ईश्वरीय गुणों से सुसज्जित हो हमारे विचार, संस्कार, आचार, व्यवहार व स्वभाव सब सुसंस्कृत हो जाएँगे और लोक-परलोक में यश-कीर्ति की प्राप्ति होगी। इस संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है कि 'सजन शब्द बुलाने से सारा ब्रह्माण्ड एक सजन हो जाएगा और मौत का भय नहीं रहेगा। सजन शब्द बुलाने से बाकी

कोई संकल्प नहीं रहेगा। एक निगाह एक दृष्टि होकर हमारी दिव्य दृष्टि हो जाएगी और एक आत्मा होकर परमात्मा से मेल खाकर ज्योति स्वरूप जो अपना आप है उसकी पहचान कर सकेंगे औ रौशन हो जाएंगे।'

सजन-भाव के विषय में यह सब सुन-समझ कर अब हमारा क्या कर्त्तव्य बनता है?

यही कि मन-वचन-कर्म द्वारा सजन-भाव का प्रयोग करें। अपना आन्तरिक और बाह्य व्यवहार मधुर रखते हुए सदा प्रेममय बने रहें व सजन आप हो जावें और सजन सबको बनावें यानि हमारे हृदय का वातावरण सजनता से पूर्ण हो और जो सजन व्यक्तियों के गुण हैं वे हमारे गुण हो। इस तरह सजन युग का पहरेवा डाल कर सजन युग की बुनियाद को पक्का कर दें। याद रखो तभी हम सतवस्तु में प्रवेश कर सकेंगे। इस हेतु हिम्मत दिखाओ और कष्ट-क्लेश आने पर भी मत घबराओ। दुःख-सुख, मान-अपमान, सब हँस कर झेल जाओ। न किसी से जुड़ो न किसी से नफरत करो। इस तरह मन को अखण्ड परमतत्व में लीन कर लो और आत्मीयता में बने रहो। तभी संकल्प रहित हो सकोगे और मौत का भय समाप्त होगा। इस तरह अजर-अवस्था को प्राप्त कर सुखी हो जाओगे।

इस विवेचना से सजनों यह स्पष्ट होता है कि सजन भाव का युक्तिसंगत अनुशीलन मन-मस्तिष्क की क्षमता और योग्यता का सम्पूर्णतः विकास करने के लिए, प्रभाव-उत्पादकता और आध्यात्मिक दृष्टिकोण प्रदान करने के लिए, सर्वशक्तिमान व सर्वज्ञ भगवान यानि ब्रह्म के सद्‌गुणों को सक्षमता से

समझने के साथ-साथ स्वयं उसी स्तर की बुद्धिमत्ता, असीमित शक्ति और ज्ञान सरलता से विकसित करने की क्षमता धारने के लिए अति आवश्यक है। इस संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है-

सजन शब्द अफुर अवस्था कोई विरला धारण करदा ए ।
सजन शब्द उच्चारण करके ओ किसे कोलों नही डरदा ए।।

अतः सजनों भय और दुर्बलता से बचने के लिए, अपनी प्रसन्नता और शांति को सुरक्षित रखने के लिए तथा मृत्तलोक पर फ़तह पाने के लिए यानि जन्म-मरण के चक्रव्यूह से आज़ाद होने के लिए अपने अन्दर सजन भाव का विकास करो।

निःसंदेह यह सज्जनता पहले स्तर पर मानसिक होगी और दूसरे स्तर पर भौतिक। अतः सर्वप्रथम अपने मन में सज्जन बनने का भाव उत्पन्न करो। सज्जन बनने का भाव व कारण जितना प्रबल होगा सज्जनता की भावना भी उतनी ही प्रबल होगी। याद रखो भाव और इच्छा के होते हुए भी यदि सज्जनता को ग्रहण करने की सामर्थ्य नहीं होगी, तो सजन नहीं बन सकोगे। इसीलिए सज्जन बनने के लिए सहनशीलता को धारण कर, सज्जनता के गुण को ग्रहण करने की सामर्थ्य उत्पन्न करो। भाव, इच्छा और सामर्थ्य तत्त्व के बाद मनुष्य में वह पात्रता भी होनी चाहिए। पात्रता के अभाव में भी व्यक्ति सज्जन नहीं बन सकता। इसी के साथ सज्जन बनने के लिए कारण और लक्ष्य को भी सामने रखो। निःसदेह इसके लिए त्याग करना पड़ सकता है। यही त्याग का साधन ही सज्जन बनने का वह चौथा तत्व है, जिसका

औचित्यपूर्ण होना आवश्यक है। याद रखो त्याग के घटक जितने निःस्वार्थ होंगे, सज्ज्नता उतनी ही महान होगी।

अंत में सजनों जान लो कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार का त्याग सज्जनता के बलबूते पर ही संभव है। सादगी, साधुता, सहजता, विनम्रता, सरलता, स्पष्टता और सहृदयता जैसे तत्त्वों के समागम से ही सज्जनता के गुण प्रादुर्भूत होते हैं। इसी गुण के आने से व्यक्ति परोपकारी बन सकता है। परोपकारी बनकर व्यक्ति संत और साधु के समान धर्मी बन जाता है क्योंकि इस प्रकार सज्जनता से युक्त व्यक्ति संतों के समान अपने गुणों के कारण स्वयं प्रकाशित हो जाता है और उसमें सज्जनता के प्रतीक सभी सद्‌गुणों के एक साथ दर्शन हो जाते हैं।

इस संदर्भ में हम तो यही कहेंगे कि यदि जीवन लक्ष्य प्राप्त करना चाहते हो तो विकार वृत्तियों के साथ-साथ, मानव-धर्म पर डटे रहने हेतु अपना सब कुछ न्योछावर करने के लिए तत्पर हो जाओ। यहाँ तक कि माता-पिता, बच्चों में भी यही भाव भरो। बच्चों को अपने मोह पाश में बन्धनमान मत करो। उन्हे सर्वहित के लिए जीना सिखाओ। इस हेतु आरम्भ से ही बच्चों को यह शिक्षा दो कि आपका जीवन, मात्र अपनी स्वार्थ पूर्त्ति के लिए नहीं अपितु सब की सेवार्थ है। अतः स्वतन्त्रता से सबका हित करो। आत्मीयता का चलन भी हमें यही सिखाता है कि हम सबके हैं और सब हमारे हैं। सब के सेवार्थ जीना ही हकीकत में सज्जनता का व्यवहार करना है। इसी के द्वारा परोपकार के निमित्त, सजन भाव का वर्त-वर्त्ताव करते हुए, अपने जीवन का अर्थ सिद्ध कर सकते हैं और हमारी यश-कीर्ति की सुगंधि सर्व-सर्वत्र फैल सकती है।

सजन-भाव की इस महत्ता को समझते हुए सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें यह महत्त्वपूर्ण संदेश दे रहा है-

सजन हम हैं सजन तुम हो, सजन दृष्टि मान लवो।
सजन मानो सजन जानो, सजन बुद्धि पहिचान लवो ।।

तो आओ इसी महत्त्वपूर्ण संदेश को सत्यनिष्ठा से अपने जीवन में उतारें। सब की जानकारी के लिए सजन-भाव के विषय में इसके आगे क्रमशः अगले सप्ताह बताया जाएगा।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो

ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।



सज्जनता-2

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्म-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

गत सप्ताह सजनों हमने जाना कि श्रेष्ठ गुणों को जीवन में उतारना और तद्नुसार जीना सज्जनता कहलाता है। जान लो कि जैसे मानवता को धारण करने वाला मानव कहलाता है ठीक वैसे ही सज्जनता को धारण करने वाला व्यक्ति सज्जन कहलाता है यानि सज्जन उसका पद हो जाता है व सज्जनता गुण। इस प्रकार गर्भावस्था से ही जिस व्यक्ति की प्रकृति सजन भाव रूपी बीज से प्रस्फुटित होती है वह व्यक्ति सदैव सकारात्मक व सर्वगुण सम्पन्न होने के साथ-साथ श्रेष्ठता व उत्कृष्टता का प्रतीक बन जाता है। उसकी मानसिकता हर

परिस्थिति में यानि सुख-दुःख, अमीरी-ग़रीबी व मान-अपमान में सदैव सामंजस्यपूर्ण, स्थिर व संतुष्ट बनी रहती है। इस तरह यह भाव मनुष्य को ईश्वर की तरह शुद्ध और पवित्र बनाए रखने के लिए विवेकशीलता प्रदान करने के साथ-साथ स्वाभाविक मानसिक स्थिरता भी प्रदान करता है जिसके प्रभाव से मनुष्य सदैव सत्यनिष्ठ और धर्मपरायण बने रहकर अनुकूल आचरण को ही प्रवान करता है और अपने जीवन में माता/पिता, भाई/बहन, पति/पत्नी आदि के रूप में अपनी भूमिका का भली-भाँति निर्वाह कर पाता है। सजन-भाव की इसी महत्ता के दृष्टिगत ही तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

समभाव नज़रों में कर सजन वृत्ति फड़ियो
सजन भाव नज़रों में करके सजनों
सजन भाव प्रकृति में लियाईयो।।

अर्थात् समभाव नजरों में कर लेने से हृदय में सजन-भाव अनुसार वृत्तियाँ पनपती है और फिर वह सजन उन वृत्तियों पर पकड़ रखते हुए सजन-भाव के रूप में हृदय उपस्थित आत्मस्वरूप को नज़रों में करने की सामर्थ्य जुटा पाता है यानि उसको आत्मबोध हो जाता है। उसकी यही समर्थता ही निज को सबका सजन व सबको निज का सजन मानने की प्रकृति यानि स्वभाव में ढालती है। तभी तो वह इस सजनता परिपूर्ण चलन यानि वर्त-वर्ताव को अपनाकर एक निगाह एक दृष्टि द्वारा कदम-कदम पर विचारसंगत अपनी परख करता हुआ, आत्मनियंत्रण करके अपनी जिह्वा स्वतंत्र, संकल्प स्वच्छ व दृष्टि कंचन रख दिव्य-दृष्टि का सबक प्राप्त कर पाता है यानि जनचर-बनचर-जड़-चेतन में एक ही दर्शन कर

पाता है। इस तरह भिन्न-भेद, तेरी-मेरी आदि समाप्त हो जाती है और वह व्यक्ति एकता, एक अवस्था में बने रह सबके साथ निर्लिप्तता से विचरते हुआ सदा संतुष्ट बना रह पाता है। फिर कोई भी प्रलोभन या प्रभाव किसी तरह से उसकी निर्विकारता व सदाचारिता भंग नहीं कर पाता। स्पष्ट है कि यही सजन-भाव अनुरूप चलन ही निष्कामतापूर्वक परोपकारिता के लिए पराक्रम दिखाने की उसकी शक्ति होती है जिसके द्वारा वह श्रेष्ठ परमपद को प्राप्त होता है। ऐसे सजन के लिए सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है-

आप तरे कुल सगली तारे,
सोई सजन परमपद पावे।
ओ पहुँच गए परमधाम नूं,
उन्हां पा लिया अपने स्थान नूं।।

अर्थात् जो सजन किसी से किसी प्रकार का कोई भिन्न-भेद नहीं करता और एक दर्शन में स्थित हो जाता है वह आप तो इस संसार सागर से तरता ही है साथ ही अपने परिवार व कुल सगली का भी तारक बनता है। संक्षेपतः सजनों हम यह कह सकते हैं कि 'सजनता' सभी प्रकार के सद्गुणों जैसे सद्चरित्र, सद्व्यवहार, विशुद्धता, शौर्यता, बहादुरी, योग्यता, सामर्थ्यता का बीज-स्त्रोत है और यह किसी व्यक्ति के सजन पुरुष यानि भला आदमी बनने के लिए आवश्यक है। आओ अब हम प्रश्नोत्तर के माध्यम से यह जानते हैं कि सजन व्यक्ति आपस में वर्त्त-वर्त्ताव कैसे करते हैं-

सज्जन व्यक्ति आपसी बातचीत के दौरान किस शब्द का प्रयोग करते हैं और क्यों ?

सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ सजनों कह रहा है-

आओ जी, बैठो जी, खाओ जी वे सजनों, सजनों वे
साडा सजन जी होवे बोल।
जी जी, दा होवे वर्त वर्ताव, अपनी जिह्वा नूं बुलाओ
जी, जी जी दा पहरेवा सजनों पाओ।।

साथ ही यह ग्रन्थ हमें यह भी कह रहा है-

सजनों सजन बोल चाल ही सीखो,
सजनों सजन करो प्रवान
कंचन हूं मैं आप, कंचन कुल जहान,
कंचन जड़ चेतन प्रकाशे, कंचन कुल सगली मान ।

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए सज्जन व्यक्ति 'जी' और 'आप' दोनों ही शब्दों को सजन भाव का प्रतीक मानते हुए आपसी बातचीत के दौरान इनका प्रयोग करते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि इन आदर-सम्मान व प्रेम सूचक शब्दों का प्रयोग करने से उनका परस्पर आदर भाव मज़बूत होता है। इस प्रकार वे दूसरों को सम्मानित करने हेतु 'तूं' और 'तुम' के स्थान पर 'आप' और 'सजन जी' शब्द का प्रयोग करते हैं।

'सजन जी' और 'आप' दोनों शब्दों के इस्तेमाल करने से होने वाली लाभ प्राप्ति का विस्तार से वर्णन करो ?

मन-वचन-कर्म द्वारा इन शब्दों के संयुक्त प्रयोग से परस्पर आदर भाव मज़बूत होता है।

मनुष्य के मन मस्तिष्क में स्वयमेव आवश्यक मानवीय सद्‌गुणों का सर्वांगीण विकास हो जाता है।

हमारी जीवात्मा, मन-मस्तिष्क और जीवन सकारात्मक ऊर्जा व उत्साह से भरपूर हो जाते हैं।

आपसी संबंधों को प्रेम-प्रीति और धैर्य से निष्पादित करने का साहस और दृढ़ निश्चय प्राप्त होता है।

इन शब्दों से युक्त विशुद्ध, हितकर, सजनतायुक्त, विनम्र व कर्णप्रिय वाणी जहाँ वातावरण को शांतमय बनाए रखती है वहीं इसके प्रयोग से व्यक्ति दयालु, स्नेही, शिष्टाचारी, सर्वसम्मत व आनंदमय भी बना रहता है।

सज्जन व्यक्ति परस्पर अभिवादन किस प्रकार करते हैं और क्यों ?

सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है-

जब कोई सजन चाहे वह परिवार के हों, बालक हों, वृद्ध हों, गरीब हों या अमीर हों-उसे जय सीता राम, नमस्ते या सत श्री अकाल बुलाते ही दृष्टि उस सजन के हृदय की तरफ देखे और उस में अपनी असलियत प्रकाश को देखें। बातचीत करते समय ख्याल उसी प्रकाश में ठहरा रहे। बातचीत करने से मुस्कराहट आयेगी, बदन प्रफुल्लित होगा, हृदय खिड़ेगा और मुख चमकेगा।'

इस कथन के अनुरूप सज्जन व्यक्ति परस्पर एक दूसरे का आदरपूर्वक अभिवादन करते समय नमस्कार, नमस्ते, शुभप्रभात, जय सीता राम जी, सतश्रीअकाल इत्यादि कहकर सम्बोधित करते हैं। वे ऐसा करना एक दूसरे को सहृदयता से सम्मान देने के साथ-साथ हर प्रकार के पूर्वाग्रह को त्यागने के लिए आवश्यक समझते हैं। यही नहीं यह मनुष्य के सद्‌गुण

युक्त होने का सूचक भी होता है क्योंकि यह स्मरण कराता है कि ईश्वर सर्वव्यापक है। इस प्रकार इस आंतरिक वृत्ति की सार्थकता अभिवादन के शब्दों जैसे नमस्ते इत्यादि में निहित होती है जिसका अर्थ होता है "मैं अपने समस्त बुद्धि-बल, बाहुबल, आत्मिक बल एवं प्रेम से आपकी अन्तरात्मा का हार्दिक अभिनंदन करता हूँ"। यही नहीं इस प्रक्रिया द्वारा वस्तुतः एक व्यक्ति दूसरे के हृदय में अपने ही असलियत स्वरूप का दर्शन करता है।

'सजन' पुरुष दूसरों के साथ व्यवहार करते समय क्या नहीं करता ?

सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ सजनों कह रहा है-

जिह्वा गाली गलूचे न कढ ओय,
सब नूं सजन भाव तूं सड ओय।
जिह्वा सजन सजन सड ओय,
निंदिया चुगली करनों बच ओय।।

इस बात को दृष्टिगत रखते हुए 'सजन' पुरुष दूसरों के साथ व्यवहार करते समय कदापि अशिष्ट, उग्र व कर्कश नहीं होता। कभी असत्य, कटु, अप्रिय, अनर्थक वचन नहीं बोलता और न ही किसी की निंदा-चुगली करता है।

'सजन' पुरुष कभी भी असत्य, कटु, अप्रिय, निरर्थक वचन क्यों नहीं बोलता ?

'सजन' पुरुष कभी भी असत्य, कटु, अप्रिय व निरर्थक वचन इसलिए नहीं बोलता क्योंकि वह इस तथ्य के प्रति सचेत

होता है कि बिना सोचे, समझे व विचारे बोले हुए शब्द दूसरों के लिए विषाक्त सिद्ध होते हैं और ये सब अवगुण उसके विचारों व वाणी को विकृत कर न केवल उसकी मानसिक शांति को अपितु वातावरण की शांति को भी भंग कर देते हैं।

सजन पुरुष का आदर-सम्मान करते हुए सब उसे सहजता से क्यों स्वीकार लेते हैं ?

सजन पुरुष का आदर-सम्मान करते हुए सब उसे सहजता से इसलिए स्वीकार लेते हैं क्योंकि वह अपनी वाणी का कभी भी दुरुपयोग नहीं करता अर्थात् बिना सोचे, समझे व बिना विचारे कभी नहीं बोलता और इस प्रकार मानवीय उत्कृष्टता का प्रतीक बना रहता है।

सज्जनता की परख कैसे हो सकती है?

याद रखो सज्जनता का संबंध हृदय की निष्कलुषता, मर्यादा-पालन, सदाचरण और सामाजिक मूल्यों के सम्यक् निर्वाह से हैं। जिनमें उपर्युक्त गुणों का व्यापक विस्तार मिलता है, वे ही सज्जन कहलाते हैं। इसके विपरीत जो बड़े-बड़े सफेदपोश संभ्रान्त नागरिक इन गुणों से शून्य होकर, सज्जनता का दंभ भरते हैं और झूठा मुखौटा लगाकर बड़े-बड़े अपराध करते हैं, उनके द्वारा समाज प्रायः छला जाता है और लोकमंगल की क्षति होती है। ऐसे सजनों के लिए ही तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

हुण पल विच शत्रु नज़र आंदा है,
होश आई ते सजन बन बैहंदा है।।
नाले ओ शोर मचांदा है,
ज़िन्दगी घुले जिवें पताशा है।।

सजन व्यक्ति के प्रमुख लक्षण बताइए?

सज्जन व्यक्ति सरल और सहज हृदय होता है। वह आत्मतत्व की भक्ति-भाव से उपासना करता है और जनचर-बनचर-जड़-चेतन सबमें उसी को देखते हुए सबकी आत्मा का समान रूप से आदर करता है। उसका आत्मसंयम महान होता है। इसीलिए उसका कोई शत्रु-वैरी, अपना-पराया नहीं होता और वह किसी की निन्दा-उस्तत नहीं करता, न ही किसी से लड़ाई-झगड़ा करता है। वह तो सबके प्रति समान रूप से प्रेम व सहानुभूति रख एक सा सजनतायुक्त शिष्ट व विनम्र व्यवहार करता है। वह संतोषी होता है तथा वह अपनी हैसियत में बने रहने में ही प्रसन्नता का अनुभव करता है। इस तरह वह दूसरों को कष्ट देकर या दूसरों की आर्थिक सहायता लेने के स्थान पर, साग को कड़ाह समझकर, उसी अनुसार अपनी जीविका चलाता है।

दूसरों का उत्कर्ष उसको खलता नहीं इसीलिए वह दूसरों के पास क्या अधिक है उसे देखकर जलता नहीं। स्पष्ट है कि उसका हृदय-पात्र विशाल व दृष्टिकोण विस्तृत होता है। विपत्ति काल में भी वह कभी अपना धैर्य नहीं खोता। दुर्जनों के संसर्ग से अपने को दूर रख वह सदैव सत्संगति करता है और दूसरों के दोष देखने के स्थान पर उनकी अच्छाई यानि गुणों को ही देखता है। इसीलिए तो वह सच को देखने-सुनने व कहने की सामर्थ्य रखता है। यही नहीं पतिव्रत-पत्नीव्रत धर्म का पालन करते हुए वह सदा अपनी पत्नी/पति में ही अनुराग रखता है। स्वार्थ को वह कभी भी अपने रास्ते की बाधा नहीं बनने देता अपितु निष्काम कर्म द्वारा सच्चाई धर्म की राह पर चलता है। इस तरह वह सदाचारी सदैव निष्काम कर्म करता

है तथा दूसरों का हितचिंतन तथा परोपकार ही उसके जीवन का लक्ष्य होता है क्योंकि वह जानता है कि परोपकार ही परमार्थ की सीढ़ी है। सजनता के अभाव में परोपकार संभव नहीं होता इसीलिए वह त्याग और विवेक के बल पर सज्जनता का आदर्श कायम करता है और वैश्विक मनुष्यों को इसके प्रति जाग्रत करता है।

सज्जनता व्यक्ति और समाज दोनों के लिए किस प्रकार महत्त्वपूर्ण है?

याद रखो सज्जनता के अभाव में ही सारी समस्याएँ जन्म लेती हैं। सजन भाव के स्थान पर द्वेष भाव से युक्त होने के कारण ही मनुष्य की सोच निम्नगामी बनती है और वह पाप परायण होकर अपने और समाज के लिए संकट खड़े करता है। सज्जनता के अभाव में ही स्वार्थपरता, कुटिलता, भ्रष्टाचार, शोषण, उत्पीड़न आदि असंख्य विकार जन्म लेते हैं और पग-पग पर मानवता का तन छेदते हैं। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

साजन जी क्या-क्या बताऊं दुनियां दी हालत।
पल में सजन पल में दुश्मन, पल में कर दे मुखालफ़त,
पल में करदे मुखालफ़त।

इसके विपरीत स्वच्छ चिंतन के माध्यम से सजनता, व्यक्तित्व को निर्भय बनाती है और कुठांओं से मुक्ति देकर उसका उदात्तीकरण करती है। वह नकारात्मक सोच को हतोत्साहित करती है और सकारात्मक सोच को बढ़ावा देती है। इससे समस्याओं के सही समाधान का पथ प्रशस्त होता है। इसका लाभ व्यक्ति और समाज दोनों को मिलता है। याद रखो

सजनता सम्पन्न व्यक्ति अपराध वृत्तियों से कोसों दूर होता है, इसलिए वह किसी से नहीं डरता। वह अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठाने में सक्षम होता है। वह न्याय के पक्ष में संघर्ष करता है तथा लोकहित में अपने मानवीय गुणों की पुष्टि करता हुआ अपने व्यक्तित्व का उदात्तीकरण करता है। इस तरह सज्जनता ही न्याय को आधार देती है। न्याय की छत्रछाया में सुख, शांति विलासती है और शांति के निर्देशन में समृद्धि का प्रसाद निर्मित होता है। इस अर्थ से सामाजिक सुख और समृद्धि सजन-भाव पर ही निर्भर करती है। तो क्या आप सब सजन समृद्धशाली बनना चाहते हो?

हाँ जी।

तो अब सजन भाव अपना लेना।

स्पष्ट है सजनों वास्तविक सज्जनता स्थायी होती है यानि उसमें कदाचित् पराएपन का भाव नहीं होता। यह तो तन-मन, भीतर-बाहर, मन-वाणी सबसे झलकती है। इसका विकास अंतरतम से, फिर क्रमशः वाणी और कर्म से किया जा सकता है। सज्जन भाव मनुष्य को स्वार्थान्धता से ऊपर उठाकर प्रकाशमय जीवन की ओर अग्रसर करता है और इस तरह आचार और विचार दोनों को पवित्र करने वाला है। इस तरह यह मानव चरित्र का आभूषण है। अतः दुष्टों व दुर्जनों द्वारा उद्वेलित किये जाने पर भी कभी सज्जनता का दामन नहीं छोड़ना चाहिए। इस संदर्भ में सदा याद रखो कि सज्जनता समृद्धि से गर्वयुक्त यानि अभिमानयुक्त नहीं होती। सज्जन व्यक्ति भाव, पदार्थ, पद व अधिकार से प्राप्त होने वाले सभी सुखों को सुख नहीं मानता। इस तरह वह न केवल

सांसारिक भोगों एवं ऐश्वर्य के प्रति विवेकशील बुद्धि से काम लेता है अपितु उनके उपभोग एवं उपयोग में भी औचित्य का आश्रय लेता है। इस कर्म से वह समाज में समादृत होता है और व्यक्तिगत व पारिवारिक जीवन में आनन्द का अनुभव करता है। हम कह सकते हैं कि परोपकार और सत्कर्म ही उसका वास्तविक सुख होता है। हकीकत में यही सुख विरासत में अपनी औलादों को देना चाहिए। इस संदर्भ में सजनों सज्जनता के लिए आत्मीयता/अपनापन इन शब्दों का प्रयोग भी होता है आओ अब सज्जनता को ठीक से समझने के लिए इनके विषय में भी जानते हैं-

आत्मीयता को भी सजनता का पर्याय माना जाता है, आत्मीयता से क्या तात्पर्य है?

आत्मीयता आत्मीय होने या मानने का भाव या दशा है। यह निजत्व है, परायेपन का अभाव है। आत्मीयता निकटता या सन्निकटता का भाव हैं। स्वजनों से जो प्रिय व्यवहार किया जाता है, वह स्वजनता है, किन्तु अन्यों के साथ मृदु आचरण सजनता है। आत्मीयता के फलस्वरूप व्यक्ति को अपने आसपास के व्यक्तियों से व आसपास की वस्तुओं से प्रेम हो जाता है। वह उनमें अपना प्रतिबिंब पाता है, इसलिए वह उनसे प्रेम करने लगता है। अन्य व्यक्ति से मधुर सम्बन्ध बनाना, उसे अपने जैसा मानना व समझना यही निजत्व है, यही आत्मीयता है। आत्मीयता प्रदर्शित करने की वस्तु नहीं है, यह तो व्यक्ति के व्यवहार से टपकती है।। याद रखो आत्मीयता जताने से पशु-पक्षी तक प्रभावित होते हैं।

आत्मीयता का अनिवार्य तत्त्व क्या है?

आत्मीयता का अनिवार्य तत्त्व है मन में ऐसी उदारता का विकास जिससे कोई भी व्यक्ति या जीव अपने जैसा लगने लगे। वस्तुतः इसमें अपनी पहचान छिपी रहती है। जो गुणी होता है, उसे अपने गुण पता होते हैं। दूसरे गुणी व्यक्ति की पहचान करके उसे अपने समान मानना, उसे आदर देना, उसका सम्मान करना, उसके साथ मित्रता का भाव रखना आत्मीयता के लक्षण हैं।

आत्मीयता का उदय किस तरह के लोगों में बिलकुल नहीं होता?

जो कठोर-हृदय होते हैं, जो संदेह करने वाले हैं, जो ईर्ष्या-द्वेष रखने वाले होते हैं, उनमें कभी भी आत्मीयता का उदय नहीं होता क्योंकि वे अपने से भिन्न व्यक्ति को पराया मानते हैं। अन्यों के साथ भेदभाव बरतना पराएपन का सूचक है। परायेपन का अभाव ही आत्मीयता का मानदण्ड है। प्राचीन काल में ऋषि-मुनि अपने आश्रम के पशु-पक्षियों तक से आत्मीयता रखते थे।

आत्मीयता के भाव में कब अंतर आता है?

आत्मीयता में तभी अंतर आता है जब उसमें छल-कपट को स्थान दिया जाता है।

आत्मीय बनने या बनाने के लिए क्या आवश्यक है?

आत्मीय बनने या बनाने के लिए मनुष्य को गुणों का पारखी होना चाहिए। केवल मृदु शब्दों के बल पर आत्मीयता उत्पन्न नहीं की जा सकती। आचरण की शुद्धता से आत्मीयता की परख की जाती है।

आत्मीयता के भाव को विकसित करने का साधन क्या है?

आत्मीयता के विकास हेतु मन को निर्मल बनाने की सर्वाधिक आवश्यकता होती है। इसके बाद बाह्य पदार्थों के प्रति संबंध बनाने की भावना का होना आवश्यक है। अपने में ही रमना अपनत्व नहीं। दूसरों को अपना बनाना, उन्हें अपना मानना ही अपनत्व या आत्मीयता है।

इस संदर्भ में याद रखो कि जिस प्रकार भगवान के लिए इस ब्रह्मांड के सभी चराचर अपने हैं और वे सभी पुण्यवान और पापियों को समरूप/समदर्शी दृष्टि से देखते हैं वैसे ही आप भी इष्ट-अनिष्ट सबको जब समरूप देखेंगे तो अनिष्ट भाव कुंठित हो जाएंगे और आत्मीयता का विकास होगा।

आत्मीयता की कसौटी क्या है?

आत्मीयता की कसौटी निश्चलता है, व्यक्तित्व की पारदर्शिता है। यह निष्कलुषता का प्राकट्य है। अन्यों को अपने जैसा मानने के लिए स्वार्थ, द्वेष, छल व कपट का परित्याग आवश्यक है। मन से, वचन से तथा कर्म से प्रेम का प्राकट्य आत्मीयता का गुण है। अतः जिस व्यक्ति की कथनी और करनी में अंतर हो, उसे आत्मीयता के निकष पर खरा नहीं कहा जा सकता अर्थात् जैसा चित्त में हो, वैसी वाणी हो, जैसा वाणी में हो, वैसी ही क्रियाएँ हों। सजनों के चित्त, वाणी और क्रिया में इसी तरह की एकरूपता होती है। यही एकरूपता आत्मीयता की कसौटी है। इसीलिए तो सजन प्रत्यक्षतः और परोक्षतः समस्त प्राणियों को अपने समान देखते हुए परस्पर समान ही व्यवहार करते हैं।

आत्मीयता का भाव किसका सूचक है ?

आत्मीयता का भाव उदारता, विशालहृदयता, शीलता, निष्कलुषता व निष्पक्षता का प्रतीक है। इससे स्वार्थ का, पक्षपात का व आसक्ति का लोप हो जाता है और चतुर्दिक सुख उत्पन्न होता है।

आत्मीयता कौन प्रदर्शित कर सकता है?

आत्मीयता दिखावा नहीं होता अतः वे व्यक्ति ही आत्मीयता प्रदर्शित करते हैं, जिनका चरित्र अत्यंत निर्मल होता है।

संक्षेपतः सजनों हम कह सकते हैं कि जब व्यक्ति अध्यात्म की ओर उन्मुख होता है और स्व या निज को आत्मा रूप में देखता है तो उसे हर प्राणी आत्मवत् लगता है। उसे आत्मा में ही परमात्मा के दर्शन होने लगते हैं। इस तरह दिल-दिमाग की एकता हो जाती है और एक अवस्था में स्थित इन्सान, द्वैत के सारे विभेद मिटकर, अद्वैत के पारम्परिक संबंध में एकीभूत हो जाता है।

इसीलिए तो कहते हैं कि आत्मीयता/सज्जनता वह भाव है, वह प्रवृत्ति है, जो स्वतः उत्पन्न होती है, जिसके वशीभूत होकर जीव अपनी स्थिति को समझता है। वह अपने-पराये में भेद नहीं करता। उसे दूसरा व्यक्ति उतना ही आकृष्ट करता है जितना उसके निजी परिजन। निजी परिजनों के प्रति भी निजत्व का भाव इसीलिए जगता है, क्योंकि वह अपने को उनसे अभिन्न पाता है। उनके सुख-दुःख का वह सहभागी होता है। अतः जब समाज के हर व्यक्ति के साथ ऐसी ही सहभागिता की जाती है, उसे अपनाने का बोध होता है तो

सज्जनता यानि आत्मीयता की अपनेपन की सृष्टि होती है। मनुष्य चाहे तो अपने में ही व्यस्त रहे, किन्तु सामाजिक प्राणी होने के नाते वह पशु-पक्षी, लता-वृक्ष को भी उस तरह से अपनाता है जिस तरह पारिवारिक जनों और समाज के अन्य प्राणियों को। मनुष्य बुरे लोगों से दूर रहना चाहता है, किन्तु जो दीन-दुःखी हैं उनके प्रति करुणा उत्पन्न होने से वह उनको अपनाना चाहता है, उनको ऊपर उठाना चाहता है। मनुष्यत्व या मानवता का यही तकाज़ा है। मनुष्य जब मनुष्य के लिए उत्सर्ग यानि उत्थान का यत्न करता है तो यही असली अपनापन है, आत्मीयता है व सज्जनता है। इस प्रकार सज्जनता से युक्त होकर जो व्यक्ति संपूर्ण विश्व को आत्मवत् मानता है वह सचमुच महान होता है। उसमें दिव्य गुणों का ही संचार और उत्तरोतर विकास होता है। याद रखो सांसारिकता तो स्वार्थपरता में है। इसके संकुचित दायरे में घिरा व्यक्ति केवल परिवार का होकर जीता और मरता है पर, अपनत्व का विस्तार कर उसे समष्टि के व्यापक दायरे में जीने वाला सज्जन पुरुष मर कर भी अमर हो जाता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

संहसर हिन तेरे नाम जगत विच,
कई विरले ही तैं तारे
विरले सजन कई जीवन बना गये,
कई अमर हो गए सारे।

इस अमर पद को प्राप्त करने के लिए ही सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें इसके प्रति उत्साहित करते हुए कह रहा है-

तू आप सजना ओ, त्रिलोकी दा सिंगारिया।
मिथ्या घर विसारिया, अपना आप संवारिया।।
त्रिलोकी दा सिंगारिया, त्रिलोकी दा सिंगारिया।
तूं आप सजना ओ, त्रिलोकी दा सिंगारिया।।
सुखाँ दा है दाता तूं, सुखां दी है पदवी,
सुखाँ दा साज बना लिया, त्रिलोकी दा सिंगारिया।
सिंघासन तेरा तूं, सिंघासन दा मालिक,
कई सूरजाँ दा सूरज चढ़ा लिया, त्रिलोकी दा सिंगारिया।
जगमग जगमग, त्रिलोकी दा तूं चानणा,
चिराग़ तेरा ही नज़र आ रिहा, त्रिलोकी दा सिंगारिया।
विश्व तेरा तू सारी, विश्व दा मालिक,
अचरज ठाठ रचा लिया, त्रिलोकी दा सिंगारिया।

अंततः सजनों सजन शब्द की महानता को समझते हुए अब से परस्पर सजन-भाव का वर्त-वर्ताव करना सुनिश्चित करो ताकि द्वि-द्वेष, तेरी-मेरी, वड-छोट, लड़ाई-झगड़े, वैर-विरोध व ईर्ष्या इत्यादि जैसे निकृष्ट भावों के स्थान पर हमारा हृदय सर्वव्यापकता के भाव से ओत-प्रोत हो स्वच्छ व निर्मल हो जाए और हम परस्पर एकता और एक अवस्था द्वारा मित्रता, प्रियता व सहृदयता का व्यवहार कर सकें। इस तरह दिल से दिल मिलाकर एकजुट होकर आगे बढ़ो। इसलिए सब सजनों से प्रार्थना है कि जो अब तक जीवनापयोगी सजन-भाव की पढ़ाई के बारे में समझा है, उसकी विधिवत् गुढ़ाई आरम्भ कर दो ताकि परम पवित्र जीवन जीते हुए आने वाली संतानों को भी ऐसा ही मानवीय चलन अपनाने के प्रति प्रेरित कर सको।

सबकी जानकारी के लिए सजन-भाव के विषय में इसके आगे क्रमशः अगले सप्ताह बताया जाएगा।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।



दिनाँक 20 मार्च 2016 का सबक

सज्जनता-3
प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्म-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

सजन-भाव के विषय में अभी तक हमने जो भी पढ़ा व समझा उससे सजनों ज्ञात हुआ कि सजन-भाव हृदय में उत्पन्न होने वाला वह सात्विक भाव है जिसको अपनाने से ईश्वर की सर्वव्यापकता का बोध होता है। इस संदर्भ में सजनों जान लो कि ईश्वर की सर्वव्यापकता का भान होने के कारण ही सतयुगवासियों को ईश्वर का विशेष गुण, समभाव सर्वप्रिय होता है और इसी कारण वे इन्सानियत में बने रह पाते है। बाल्यावस्था से ही उनके हृदयों में युक्तिसंगत ढंग से भाव-स्वभाव रूपी वृक्ष के बीज, समभाव का रोपण किया जाता है

अर्थात् उन्हें समभाव का अर्थ व्याख्या व जीवन में उसका महत्त्व समझा दिया जाता है। इस प्रकार हृदय में समभाव रूपी बीज के प्रस्फुटित होते ही वृक्ष को थामने के लिए सजन-भाव रूपी जड़ फैलती है तो वृक्ष रूप लेता है। उस पर सद् भाव-स्वभावों के पत्र-फल-पुष्प लगते हैं जिनसे चारों दिशाएँ व पूरा वातावरण एक रस सुगंधित हो उठता है। यहाँ ध्यान से समझने का प्रयत्न करो कि सजन-भाव द्वारा ख़्याल को साधे रखने की क्रिया चलती है जो दृश्यों के दृष्टिगोचर होते हुए भी ख़्याल को उनमें फँसने नहीं देती अपितु अपने असलियत स्वरूप में लीन रखती है।

जैसे-जैसे सजन भाव रूपी जड़ पातालों-पाताल यानि मन की गहराईयों तक फैलती जाती है वैसे-वैसे भाव-स्वभाव रूपी वृक्ष आकाशों आकाश फैलता जाता है। इस तरह कुदरत ने जो मानव की एड़ी से चोटी तक शारीरिक व्यवस्था बनाई है वह समभाव से पूर्णतया ओत-प्रोत रहती है। इस प्रकार जब ख़्याल, भाव के स्वभाव, यानि जन्म लेने, रहने, बढ़ने व परिणाम को प्राप्त होने की क्रिया से परिचित हो जाता है तो वह भिन्न-भिन्न भावों के सकारात्मक व नकारात्मक प्रभावों से विज्ञ हो जाता है। यह विवेक उसे कलियुगी कुप्रवृत्ति अर्थात् पापी और दुराचारी भाव-स्वभावों में फँसने से बचाता है। फिर सजन केवल सत्य-धर्म परिपूर्ण भाव-स्वभाव ही अपनाता है। ध्यान से समझो कि इन सात्विक भाव-स्वभावों के वर्त-वर्ताव के समय संतोष और धैर्य सुरक्षा कवच का काम करते हैं तभी तो सतयुग के सजन संतोष और धैर्य का श्रृंगार पहनकर सच्चाई-धर्म के रास्ते पर निरंतर सुगमता से अग्रसर रहते हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सम अविनाशी ईश्वर का द्योतक होने के नाते, जहाँ समभाव सभी सद्भावों का बीज-स्त्रोत है वही सजन-भाव दिलों को जोड़ने का हेतु है। समभाव-समदृष्टि की इसी युक्ति के अनुरूप, परस्पर सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव दर्शाने के कारण ही सतयुगी नैतिकता सर्वश्रेष्ठ व अनुकरणीय कहलाई। इस युक्ति से विकसित सजनों के व्यक्तित्व का अनुमान तत्कालीन सजनों की शारीरिक स्वस्थता, बौद्धिक विकास व उन्नत चरित्र के सर्वश्रेष्ठ स्तर को देखकर ही लगाया जा सकता है।

निःसंदेह यह सब जानने के पश्चात् सजनों आपके अन्दर भी समभाव-समदृष्टि की युक्ति जो है सजन भाव की पढ़ाई, उसे आत्मसात् कर सजन व्यक्ति बनने की उमंग जाग्रत हो रही होगी?

हाँ जी।

इस सन्दर्भ में जानो कि इस युक्ति के अनुसार सजन व्यक्ति बनने के लिए सर्वप्रथम संकल्प को स्वच्छ कर यानि उसे सजन व संगी बनाकर, उस पर फ़तह पानी होगी। इस हेतु सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार संकल्प के हर पहलू को सूक्ष्मतया समझकर उस पर फ़तह पाने के तरीके की जानकारी होनी आवश्यक है। तो आइए अब प्रश्नोत्तर के माध्यम से इसके विषय में विस्तार से जानते हैं-

संकल्प शब्द का मूल अर्थ ज़रा खोल कर बताओ?

संकल्प कार्य करने की वह इच्छा है जो मन में उत्पन्न होती है। दृढ़ निश्चय, पक्का विचार या इरादा, कल्पना आदि भी इसके

पर्याय हैं। सरल शब्दों में संकल्प शब्द का मूल अर्थ है इच्छा शक्ति, कामनाशक्ति, मानसिक दृढ़ता। इस अर्थ से यह अनेक प्रकार से प्रयुक्त होता है-

1. मन में आए किसी विचार को दृढ़ता से क्रियान्वित करने के लिए।

2. सामान्यरूपेण कामना या इच्छा के लिए।

3. प्रयोजन यानि उद्देश्य के लिए।

4. चिंतन, विचार-विमर्श के लिए।

5. कोई धार्मिक कार्य करने की प्रतिज्ञा के लिए।

6. मन का किसी ऐसी वैचारिक क्रिया से जुड़ना जिसका सहजात विकल्प हो।

7. किसी विचार का प्रारंभिक रूप जिसका विकल्प या निषेध संभव हो।

जान लो सजनों हमारा मन ही सभी संकल्पों का आश्रय है। उपनिषदों में कहा गया है कि संकल्प ही मन का स्वरूप है, अतः संकल्प को ही मन समझो। आज तक कोई भी संकल्प और मन को अलग नहीं कर सका है। संकल्प पर फ़तह मन पर फ़तह है। इसीलिए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

पंज ज्ञान इन्द्रियाँ, पंज कर्म इन्द्रियाँ जित के ते, मन जीतियां जग जीतिया जान।

जित लिया उस कुल जहान सारा,
उन्हां दा दुनियां ते हो गया नाम सजनों।।
जान लो सजनों यह संकल्प पहले मन में अभिव्यक्त होता है।

तदनंतर वाणी या क्रिया के रूप में प्रकट होता है। पहले मन में सम्यक् कल्पना या कामना उदित होती है, फिर अभिलषित लक्ष्य की पूर्त्ति हेतु उसका वाचिक प्राकट्य होता है और अंततः यह क्रियारूप में पूर्ण यानि समाप्त होती है। सभी संकल्पों के नष्ट हो जाने पर आत्मस्वरूप ही रह जाता है।

संकल्प कब पैदा होता है?

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार सतवस्तु में संकल्प नहीं होता। लेकिन त्रेते में स्वभावों में तबदीली होने के कारण संकल्प पैदा हो जाता है।

संकल्प के पैदा हो जाने के साथ-साथ क्या शुरू हो जाता है?

संकल्प के पैदा हो जाने के साथ-साथ झुखना शुरू और रोना उग जाता है।

झुखता कौन है और रोता कौन है?

संकल्प झुखता है और इन्सान रोता है।

संकल्प कब बढ़ता है?

द्वापर युग में स्वभावों में तबदीली होने के कारण संकल्प बढ़ना शुरू हो जाता है इसलिए झुखना अधिक होता है और रोना बढ़ जाता है। सजन कलुकाल के युग में संकल्प बिलकुल बढ़ जाता है और झुखना ही झुखना और रोना ही रोना हद से ज्यादा हो जाता है।

इस कठिन परिस्थिति से उबरने का क्या रास्ता है?

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार सजनों इस कठिन

परिस्थिति से जीवों को उबारने हेतु ही आती है, युवावस्था की भक्ति अर्थात् समभाव-समदृष्टि की युक्ति। इस युक्ति के वर्त्ताव से ही हमने संकल्प पर फ़तह पाकर रोना बन्द करना है।

इस युक्ति के अनुसार हमें क्या करना होता है?

दो साल पढ़ाई व पाँच साल गुढ़ाई।

दो साल पढ़ाई क्या है?

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार दो साल पढ़ाई यह है सजनों सुनों, कुसंग (बुरा संग) हमारा कोई भी नहीं कुसंग हमारा संकल्प ही है। संकल्प कुसंगी को संगी बनाओ और संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म के सवाल हल करके फ़तह पाओ।

संकल्प को कुसंगी क्यों कहा गया है?

क्योंकि संकल्प से ही समस्त अच्छी या बुरी काम/कामनाएँ उत्पन्न होती हैं। इस तरह संकल्प में विधि के साथ निषेध का भाव भी है। यही नहीं संकल्प का विकल्प भी संभव होता है। विकल्प शब्द से यहाँ तात्पर्य विपरीत या विरुद्ध कल्पना व मन में पहले कोई बात सोचकर फिर उसके विरुद्ध और-और बातें सोचने से है। इसे धोखा या भ्रम भी कहते हैं। संकल्प की यही प्रतिकूलता उसे अपवित्र व अप्राकृतिक होने के नाते वर्ज्य एवं त्याज्य बना देती है। इस सन्दर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

संकल्प-विकल्प ते मन दे तरंगे भैणों,
शान्ति बक्षी ते क्लेश हटाये बलधारी सारे।।

संकल्प कुसंगी कैसे हो जाता है?

इस संदर्भ में सजनों जानो कि ज्ञानेन्द्रियों के पदार्थ के सन्निकर्ष यानि सम्पर्क में आते ही भाव के माध्यम से प्राणियों के मन में जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं यथा रोटी, कपड़ा, मकान इत्यादि की स्वाभाविक पूर्ति के अतिरिक्त विषयों की प्राप्ति की अनुचित कामना यानि इच्छा भी जाग्रत हो जाती है। इन्ही अनुचित इच्छाओं व कामनाओं के वशीभूत हुआ इंसान जब स्वार्थ सिद्धि हेतु क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि मनोविकारों का आश्रय ले संकीर्ण और आक्रामक हो जाता है तो उसका संकल्प कुसंगी हो जाता है। अन्य शब्दों में स्वार्थ संपूर्त्ति मूलक व दंभ यानि अहंकार आदि के प्राधान्य से युक्त संकल्प, कुसंगी कहलाता है। ऐसे सजन जिनका संकल्प कुसंगी हो गया है, उन्हें सचेती में लाने के लिए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

गाफ़िल सुतियों हुन सजनों, कर लौ विचार ओये।
अपना सिंहासन अपना, हिवे दरबार ओये।

संकल्प की स्वच्छता से क्या अभिप्राय है?

संकल्प की स्वच्छता से अभिप्राय, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार के कुसंग से अपने भाव, इच्छा व इरादे को बचाए रख उसे निर्मल रखने से है। अन्य शब्दों में प्रत्येक काम को करते समय अपना विचार या इरादा पवित्र व निष्कपट रखना ही संकल्प की स्वच्छता है। इस संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है कि-

शारीरिक स्वभावां नूं जे जितना चाहो,
कुसंगी संकल्प नूं सजन बनाओ।
फिर झुखना तुहाडा हट ही गया,
सन्तोष वल्लों जित पाओ।

अर्थात् संकल्प को स्वच्छ करो। संकल्प को पकड़ना है और उसको सजन और संगी बनाना है।

संकल्प को कैसे पकड़ना है?

कदम-कदम पर विचार शब्द पकड़कर यानि प्रति क्षण अपनी जाँचना-तुलना कर हर क्षण अपने ख़्याल पर पहरा देने से हम अपने संकल्प को पकड़ सकते हैं। ध्यान देना कि कोई ऐसा कदम न उठे या कोई ऐसा ख़्याल घर न कर जाए जिससे समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई का उल्लंघन हो जाए। तात्पर्य यह है कि हम जो भी काम करें या बात करें विचार से करें यानि पहले अपने आप को तोलें और तुल खड़ोवे और अफुर हो जाएँ। क्षण प्रतिक्षण ऐसा करेंगे तो विचार से जीवन जीना आ जाएगा। इस प्रकार अविचार के चंगुल में फँसने से बच जाएँगे और हमारा संकल्प शनैः-शनैः स्वच्छ होना आरम्भ हो जाएगा।

संकल्प को सजन और संगी बनाने से क्या अर्थ है?

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार सजन क्या हैः- 'जो मन मन्दिर, सो ही महाराज का रूप सारे जग अन्दर, जनचर-बनचर, जड़-चेतन एक ही रूप'। इस सत्य को आत्मसात् कर लेने से हमारा संकल्प सजन और संगी हो जाता है। तभी तो इस पावन ग्रन्थ में कहा गया है-

जैंदा सजन हो गया संकल्प,
ओ संकल्प पकड़िया गया।
जो मन मन्दिर देखे सजन प्रकाश,
उसदा संकल्प पकड़िया गया ।।

संकल्प को स्वच्छ यानि सजन और संगी बनाने हेतु क्या प्रयत्न करें?

इस हेतु सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है कि 'संकल्प प्रभु की तरफ़ हो, जिस तरफ संकल्प उसी तरफ़ दृष्टि, एक दृष्टि ओ एक दर्शन'।

दृष्टि से क्या तात्पर्य है?

ध्यान।

संकल्प प्रभु की तरफ़ कैसे हो पाएगा?

जब हर समय वह महाराज जी को लोचेगा तो वह प्रभु की तरफ़ हो जाएगा।

संकल्प के प्रभु की तरफ़ होने से क्या होगा?

हमारी दृष्टि भी प्रभु वल हो जावेगी। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

जब संकल्प लोचे प्रभु नूं ते दृष्टि प्रभु वल हो जावेगी। जेहड़े पासे संकल्प उस पासे दृष्टि ओ सजनों उस पासे दृष्टि ओ सजनों उस पासे दृष्टि, जो संकल्प प्रभु नूं लोचे दृष्टि किवें न जावे प्रभु वल ओ सजनों दृष्टि किवें न जावे प्रभु वल।

संकल्प महाराज जी को लोचे, इस हेतु क्या युक्ति अपनाएं?

इस हेतु अलफ़ जो है आद् अक्षर उसको पकड़ लो। हर पल उसी अलफ़ की रटन लगाओ ताकि प्रकाश हो जाए। सजनों जब प्रकाश हो जावे तो उस प्रकाश को खड़ा कर लो और विचार करो कि हम कितने भूले रहे हैं। जो प्रकाश हमने देखा है वही प्रकाश या चमत्कार असलियत मेरा अपना आप है। कार व्यवहार करते हुए निगाह उस चमत्कार के साथ हमेशा के लिए जुड़ जावे। जुड़ कर उस असलियत को पूरी तरह स्थिर कर लेवें। दो साल उस चमत्कार को पूरी तरह देखते रहने से इन्सान पूरी तरह स्थिर हो जाता है। जब अलफ़ में खड़ा होकर परिपक्क हो गया तो अनादि जोत की प्राप्ति हो जाती है। जिन सजनों को प्रकाश नहीं होता वे यत्न करें कि इस तरीके से उनका संकल्प महाराज जी को लोचे। हर समय महाराज जी का ध्यान लगाने से उनको भी प्रकाश हो जाएगा और उसके बाद वे भी उस चमत्कार में खड़े हो जाएँगे।

संकल्प के पूर्ण रूप से सजन हो जाने पर क्या होता है?

जब हमारा संकल्प पूर्ण रूप से सजन हो गया तो फिर घर भी सजन, परिवार भी सजन व कुल संसार भी सजन हो जाता है। फिर हमारा झुखना बंद हो जाता है। झुखने का अर्थ है रोना। संकल्प के सजन हो जाने पर सजनों दृष्टि अपने आप ठीक हो जाएगी और संतोष का सवाल हल हो जाएगा'।

ऐसा होने पर हमारे अंदर उठने वाला हर संकल्प हमारी पकड़ में होगा और हम अन्दरूनी वृत्ति में युवावस्था को प्राप्त करेंगे तथा अपनी जीवात्मा से सुरति के रूप में सम्पर्क

स्थापित कर पाएंगे। जीवात्मा से सम्पर्क स्थापित होने का अर्थ होगा धीरे-धीरे संकल्पों अर्थात् फुरनों की समाप्ति जो कि लक्षण है सतवस्तु का। तब कुदरत का सत्य हमें स्पष्ट होना आरम्भ हो जाएगा तथा हमारा ख़्याल और दृष्टि उस सत्य में प्रवेश कर अपने जीवन के सत्य को खोज लेगी। इस परिप्रेक्ष्य में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है-

जिन्हां दा संकल्प तां सजन हो गया ,
नैन जुड़े रैहन साडे नैनां दे नाल
जद नैन जुड़े साडे नैनां दे नाल,
फिर कई सूरजां दा सूरज चढ़ पवेगा,

फुरने दी सृष्टि वल्लो हो जावनगे आज़ाद ।

इस तरह समभाव-समदृष्टि की युक्ति प्रवान कर हम समस्त बन्धनों से आजाद हो जाएंगे। क्या सब आजाद होना चाहते हो?

हाँ जी।

तो अपने मन को आजाद करने हेतु जो विषय-विकार, जगत के माध्यम से आपके अन्दर घर कर गए हैं उनके साथ युद्ध करो और सम, सन्तोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म, अपनी समस्त पाँचों शक्तियाँ लगाकर, उन्हें मार मुकाओ। इस सन्दर्भ में जानो कुसंग और कुमति यह सज्जनता के पथ की बड़ी बाधाएँ हैं। वास्तव में कुसंग में पड़ा व्यक्ति विवेक खो देता है और ऐसे कामों में उलझ जाता है, जो उसकी सज्जनता पर प्रश्न चिन्ह लगाते हैं। इस प्रकार कुसंग सज्जनता की पुष्टि में बाधा डालता है। संकल्प कुसंग से कुमति का अंकुर फूटता है

और कुमति अच्छे से अच्छे व्यक्ति को भी पतन के गहरे गर्त्त में गिरा देती है। तभी तो कहा गया है कि जहाँ स्वार्थपरता व कामना से युक्त कुसंगी संकल्प मानव को अधोपतन की गर्त्त में धकेल देता है वहीं सजन और संगी संकल्प समष्टि के व्यापक हित की भावना से युक्त होने के कारण मनुष्य के उत्थान का सूचक होता है। इसीलिए तो भक्ति जो एक लौकिक एवं आध्यात्मिक तत्व है उसके अंतर्गत अनुकूल व स्वच्छ संकल्प की अवधारणा पर बल दिया जाता है। इसके बिना भक्ति का व्यापक विधान संभव नहीं हो पाता। इस प्रकार संकल्प की स्वच्छता मानव की व्यर्थ उड़ान को रोककर उसे प्रगति की ओर उन्मुख करती है। फिर सजनों क्या होता है-

वैरी, शत्रु, दुश्मन हिन सारे, ओ हुन लगन सजन प्यारे।

इस प्रकार संकल्प स्वच्छता के प्रति दृढ़ता यानि प्रतिबद्धता से मानव में नियमनिष्ठता एवं तत्परता तो आती ही है, साथ ही लक्ष्य के प्रति उसकी आस्था भी बलवती होती है।

इस संदर्भ में सजनों यह भी जान लो कि सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ संकल्प को स्वच्छ कर कदम-कदम पर विचार को पकड़ने का निर्देश दे रहा है। ऐसा इसलिए क्योंकि संकल्प मानस व्यापार है, जबकि विचार आत्मिक व्यापार है व उस में बुद्धितत्व की प्रधानता है। विचार के सन्दर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

'विचार महाराज जी के मुख की वाणी है और विचार ही सजनों जीत और फ़तह है।

विचार ही कुदरती आई है।'

इस प्रकार विचार में निर्णय की स्थिति है। संकल्प विचार का पूर्व रूप है। दृढ़ संकल्प और विचार समानार्थक हैं। संकल्प में आवेग जैसी तेजी नहीं है, पर संकल्प में निरन्तरता है। संकल्प का विकल्प होता है पर निश्चय, निश्चय होता है, वह अनिश्चय में परिवर्त्तित नहीं हो सकता। इसी तरह दृढ़ संकल्प का भी विकल्प नहीं होता। प्रण यानि दृढ़ निश्चय और दृढ़ संकल्प परिणाम की दृष्टि से समान है, पर प्रण में समय सीमा नहीं होती, जबकि संकल्प प्रायः कालसम्बन्ध होता है।

संकल्प की स्वच्छता व विचार को पकड़ने के साथ-साथ सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें एक निगाह एक दृष्टि, एक दृष्टि एक दर्शन द्वारा, संकल्प पर पूरी तरह से फ़तह पा, फ़र्स्ट निकल कर, दिव्य दृष्टि लेकर, आवागमन के चक्कर से बचने का निर्देश भी दे रहा है। इस हेतु एक निगाह, एक दृष्टि व दिव्य दृष्टि को भी समझना अनिवार्य है। अतः आओ जानें ये क्या हैं?

एक निगाह एक दृष्टि का क्या अर्थ है?

एक निगाह एक दृष्टि से तात्पर्य उस दृष्टि से है जो सर्वव्यापक भगवान को देखते हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म व स्थूल से स्थूल हर पदार्थ के यथार्थ को जान जाती है अर्थात् सत्य की पारखी होती है। अन्य शब्दों में इसे सूक्ष्मदृष्टि यानि विवेकपूर्ण दृष्टि भी कहते हैं जो छोटी-छोटी बातें भी सहजता से समझ व देख लेती है। तभी तो इस गुण से अलंकृत सजन अपने व इस ब्रह्मांड के सत्य को कुशाग्रता से जान जाता है और बहुत बुद्धिमान कहलाता है।

एक निगाह एक दृष्टि कैसे हो सकती है?

सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार जो मन मन्दिर प्रकाश है जग अन्दर, जनचर-बनचर, जड़-चेतन सबमें उसी प्रकाश को देखने से एक निगाह एक दृष्टि सजनों पन्द्रह दिनों के अन्दर हो सकती है। इसलिए हमें पूरी तरह से यत्न करना चाहिए।

जो मन मन्दिर प्रकाश है जग अन्दर, जनचर-बनचर, जड़-चेतन सबमें हमें वही प्रकाश निगाह आवे, यह कैसे संभव हो पाएगा?

इस संदर्भ में सजनों सच्चेपातशाह जी कहते हैं कि शब्द विचार को पकड़ो अर्थात् यह मानो कि चमत्कार एक है, एक ही विशेष ओ सजनों एक है, सर्वव्यापी है भगवान। जब भगवान है तो वही चमत्कार हर एक में है। इस तरह विचार के साथ सजनों दृष्टि एकता वाली करो यानि बाल, वृद्ध, ग़रीब, अमीर हर एक में चमत्कार यानि भगवान निगाह आवे अर्थात् सर्व भगवानमय दृष्टि हो जावे। जनचर-बनचर, जड़-चेतन सबमें एक भगवान हो जावे। यह है सर्वव्यापी भगवान को मानना। इसी पर दृष्टि को खड़ा कर लवो। इस तरह एक दृष्टि-एक दर्शन हो जाओ।

जब एक दृष्टि-एक दर्शन हो गया तो फिर

1) क्रोध किससे करोगे? भगवान के साथ।

2) निन्दया किस की करोगे किसकी सुनोगे? भगवान की। क्योंकि करने वाले में भी भगवान है, सुनने वाले में भी भगवान है और जिसकी करोगे उसमें भी भगवान है।

3) वैरी-दुश्मन किसको समझोगे? भगवान को

4) झूठ किससे बोलोगे, भगवान से चोरी कैसे करोगे? क्योंकि भगवान सर्वव्यापी है। सब कुछ देख रहे हैं। इस तरह सजनों विचार को पकड़ने से अफुर अवस्था हो जाएगी और दृष्टि विराट् रूप हो जाएगी। दृष्टि उजली हो गई तो चमक पड़ोगे।

दृष्टि उजली हो जाएगी, इसका क्या अर्थ है?

इस परिप्रेक्ष्य में सच्चेपातशाह जी कहते हैं कि सजनो पहले है आँखों की सफ़ाई, दृष्टि की मैल उतरने से आँखें उजली होंगी, उजली होने पर लाईट आवेगी और आँखें चमक उठेंगी। याद रखो दृष्टि है ध्यान। दृष्टि चमक पड़ी तो चतुर्भुजधार का प्रकाश ही प्रकाश और चमत्कार सब सजनों में निगाह आवेगा। जो प्रकाश हो उसे हृदय में ठहरा लेना है और इस तरह से शुद्ध रहकर उस ज्योति स्वरूप भगवान जिसने सजनों हमारी बनत बनाई है उस भगवान के साथ भगवान होकर जीवन सफ़ल करना है।

एक निगाह एक दृष्टि होने पर क्या होता है?

इक निगाह एक दृष्टि होने पर एक दर्शन हो जाता है अर्थात् सर्व-सर्वत्र यानि जनचर, बनचर, जड़ चेतन सर्वव्यापक भगवान का बोध हो जाता है। इस तरह फिर सम का कोई सवाल नहीं रहता और दिव्य दृष्टि का सबक मिल जाता है। इस सबक को परिपक्वता से धारण करने पर सजन एक ख़्याल हो एक दर्शन में अर्थात् अपने असलियत स्वरूप में स्थित हो जाता है और इस प्रकार संकल्प पर फ़तह प्राप्त कर परमानंद की प्राप्ति कर लेता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

जैंदी एक निगाह एक दृष्टि ओ एक दर्शन ओ पा लवे आत्मिक ज्ञान नी ओ।

एक निगाह एक दृष्टि, एक दृष्टि एक दर्शन से सम का सवाल किस प्रकार हल हो जाता है?

इस युक्ति द्वारा सूक्ष्म से लेकर विराट तक सब मेरा असलियत स्वरूप ही सदृश्य हो रहा है, इस यथार्थ का ज्ञान हो जाता है और ईश्वर ही सम है सम ही ईश्वर है यह स्पष्ट बोध हो जाता है। इसलिए सम का कोई सवाल नहीं रहता।

जो सजन इस यत्न में पूरी तरह से सफल नहीं हो पाते और एक निगाह एक दृष्टि में फ़र्स्ट, सैकिन्ड और थर्ड डिवीज़न में पास होते हैं , उन सजनों का क्या होता है?

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार एक निगाह एक दृष्टि में फ़र्स्ट, सैकिन्ड और थर्ड डिवीज़न में पास होने वाले सजन फिर सतवस्तु में इन्सान हो जाते हैं, मगर सतयुग के अन्त में जो कि तीन युगों के बराबर है उसके बाद थर्ड डिवीज़न वाले सजन गिर जाते हैं। सैकिन्ड डिवीज़न वाले सजन भी अपने नम्बरों के अनुसार उनके साथ गिर सकते हैं। फ़र्स्ट डिवीज़न में पास होने वाले सजन फिर जन्म लेकर अपने जीवन को बना सकते हैं। इस संदर्भ में ही सजनों कहा गया है-

इस वक्त दी शुद्ध कमाई दे मुताबिक ओ सजनों सतवस्तु में मौज उड़ानी जे, ओ मौज उड़ानी जे। सतवस्तु में एक दृष्टि एक दर्शन।

हम सब सजन इस जन्म-मरण के चक्रव्यूह से बच जावें इस

हेतु सजनों इस ग्रन्थ में हमें प्रेरित करते हुए कहा गया है कि 'सजनों हम सबको चाहिए कि संकल्प पर पूरी तरह से फ़तह पा जावें और फ़र्स्ट निकल कर दिव्य दृष्टि लेकर आवागमन के चक्कर से बच जावें' अर्थात् आवागमन के चक्कर से बचने के लिए दिव्य दृष्टि प्राप्त करना आवश्यक है। दिव्य दृष्टि प्राप्त करने के लिए संकल्प पर फ़तह पाना अनिवार्य है और संकल्प पर फ़तह पाने के लिए एक निगाह एक दृष्टि, एक दृष्टि एक दर्शन होना आवश्यक है।

दिव्य दृष्टि का सबक, यह क्या है?

अपनी असलियत की पहचान। जेहड़ा मन मन्दिर प्रकाश, ओही असलियत ज्योति स्वरूप मेरा अपना आप। एक निगाह ओ एक दृष्टि, ओ एक दृष्टि ओ एक दर्शन। जनचर बनचर, ओ जड़ चेतन, ओ एक दर्शन ओ एक दर्शन। दिव्य दृष्टि के सबक पर परिपक्व हो जाने पर दिव्य दृष्टि हो जाती है।

दिव्य दृष्टि क्या है?

वह अलौकिक दृष्टि जो गुप्त अर्थात् बहुत दूर के या छिपे हुए पदार्थों या बातों को समझने व देखने में समर्थ हो। यह दृष्टि कुछ विशिष्ट अवस्थाओं या कुछ विशिष्ट व्यक्तियों में ही होती है। इसे ज्ञानचक्षु भी कहते हैं। सबकी जानकारी हेतु सतवस्तु में सब इस दिव्य दृष्टि से सम्पन्न होते है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

सतवस्तु सच बोलचाल है, सच ओ कमावे
सच दी खुराक ओ खा कर, दिव्य दृष्टि ओ पावे।।

दिव्य दृष्टि हो जाने पर क्या होता है?

दिव्य दृष्टि प्राप्त होने से सजन को तीनों कालों की पहचान हो जाती है अर्थात् जो गुज़र गई, जो इस वक्त, और जो आने वाली है सबका ज्ञान हो जाता है। फिर वह कर्त्ता भी है और अकर्त्ता भी। संसार में विचरता भी है और नहीं भी विचरता। इस तरह संकल्प पर पूरी तरह फ़तह पा सजन आवागमन के चक्रव्यूह से आज़ाद हो जाता है। इस सन्दर्भ में सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है-

दिव्य दृष्टि निगाह कर लौ सजनों,
फिर मेल खाओ रे असी तुसी।।

इसीलिए तो सजनों गीता में भी कहा गया है कि 'संकल्पों के त्याग के बिना कोई योगी नहीं हो सकता अर्थात् परमतत्व से सम्बद्ध नहीं होता।' यद्यपि संकल्प का यह त्याग लौकिक स्तर से जुड़ा हुआ है क्योंकि योग में कर्म की कुशलता अपरिहार्य (अत्याज्य) और अनिवार्य है और परमार्थ सिद्धि हेतु कृत कार्य भी संकल्प के बिना नहीं होता तथापि यह समझने की बात है कि योगसम्पन्नता की स्थिति में संकल्प निर्मित ही नहीं होता क्योंकि हर कार्य ईश्वरीय प्रेरणा से युक्त होकर, अकर्त्ता व निष्काम भाव से किया जाता है।

इस विवेचना से सजनों स्पष्ट होता है कि संकल्प को ठीक करने से ख़्याल महाराज जी के साथ जुड़ जाता है और रोना मिट जाता है। परिणामस्वरूप हर रूप में, हर रंग में, हर अवस्था में, हर खेल में उसी एक आत्मेश्वर की अनुभूति कर मन सदा आत्मतुष्ट बना रहता है। यहाँ तक कि फिर लौकिक व पारलौकिक सुख-सम्पदाओं को देखते हुए भी उन क्षणभंगुर

अर्थात् नश्वर भोग्य पदार्थों को प्राप्त करने की इच्छा जाग्रत नहीं होती और मन सदा उनके प्रति उदासीन (संसारी कामना से रहित व निर्लिप्त) बना रह अनंत और अखंड सुख व शांति की प्राप्ति करता है। सजनों यही तरीका है समभाव व समदृष्टि की युक्ति अनुसार सजन भाव की पढ़ाई व गुढ़ाई द्वारा संकल्प कुसंगी को सजन व संगी बना धीरे-धीरे संकल्पों पर फ़तह पाने का। इसीलिए तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

सजन शब्द अफुर अवस्था अपना आप लवो पहचान।
ओही है रौशनी ओही है चानणा रौशन कर लौ अपना नाम।

अर्थात् सजन शब्द बुलाने से बाकी कोई संकल्प नहीं रहेगा और एक निगाह एक दृष्टि होकर हमारी दिव्य दृष्टि हो जाएगी और एक आत्मा होकर परमात्मा से मेल खाकर ज्योति स्वरूप जो अपना आप है उसकी पहचान कर सकेंगे औ रौशन हो जाएंगें।

अतः इस युक्ति की महानता को समझते हुए सजनों मूलमन्त्र शब्द को गुरु मान कर, जगत के समस्त कार्यव्यवहार करते हुए उसी के अजपा जाप द्वारा, अपना ख़्याल ध्यान वल व ध्यान प्रकाश वल जोड़े रखो ताकि प्रकाश हो जाए। जहाँ ख़्याल है वहाँ दृष्टि रखो। जिसे खुला प्रकाश है वह नीचे लिखी हुई युक्ति को धारण करे। जो प्रकाश महाराज जी का हृदय में देखो, वह असलियत प्रकाश मेरा अपना आप है समझो। आगे मैं भूला रहा, अब मेरी भूल दूर हो गई है। यही प्रकाश कुल दुनियां में है, अलफ़ जो आद् अक्षर है उससे प्रकाश होता है 'ये' में खड़े होने से मेल महाराज जी से होता

है। सजनों मोटी मोटी बातों का संकल्प तो हट गया परन्तु सूक्ष्म बातें इस युक्ति को धारण करने से हट जाएंगी। यह घटता-बढ़ता हुआ टेम्प्रेचर समाप्त हो जाएगा।

अंततः सजनों आज की सारी बातचीत को अमल में लाने हेतु, सच्चेपातशाह जी के वचन प्रवान करो और विचार के साथ एकता पकड़ो। स्वार्थ की ओर से घर में एकता करो फिर परमार्थ की तरफ़ से भी सारी सँगत में एकता दिखाओ। इसके बाद परिवार में एकता और फिर कुल संसार में एकता दिखाओ। 'चमत्कार एक है, एक ही विशेष है सजनो एक है', यही विचार ही आपको एकता में खड़ा करेगा। इसलिए कदम-कदम ते विचार-विचार नाल होवे प्यार। एकता आप पकड़ो और सजनों को पकड़ाओ। इन वचनों पर आप चलो और सब सजनों को चलवाओ।

आपकी जानकारी के लिए आगामी सप्ताह, आपको मूलमन्त्र आद् अक्षर की महत्ता व उसको युक्तिसंगत चलाने का तरीका युक्तिसंगत समझाया जाएगा।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 27 मार्च 2016 का सबक

ओ३म् मूलमन्त्र आद् अक्षर प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

जीवन के परम लक्ष्य को सिद्ध कर परमपद प्राप्त करने हेतु सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ प्रत्येक सजन को कह रहा है-

ना किसी से प्यार कर, ना किसी से वैर रख
दोस्ती ला लै तूं आद् दे नाल दिलों दुई भाव नूं छड।।

यहाँ आद् शब्द से तात्पर्य सृष्टि के उस मौलिक, प्रथम, प्रधान व मुख्य कारण से है जो कि वेदान्तियों के अनुसार ब्रह्म यानि सबसे बड़ी चेतन सत्ता है तथा जगत का मूल कारण और सत्,

चित्त्, आनंदस्वरूप मानी जाती है। ओ3म् के ब्रह्म पर्याय के द्वारा उसकी सर्वरूपता सिद्ध है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

ओ३म् ब्रह्म हूँ, ब्रह्मा दा वी ब्रह्म हूँ,
क्या सोहणा साज है बिन सूरजों प्रकाश सुरीली सज रही।

इसी आद् को हिन्दी में प्रणव/आ३म्/अक्षर/ब्रह्मबीज, उर्दू में अलिफ, गुरुमुखी में ओंकार आदि नाम से सम्बोधित किया जाता है। नाम चाहे कुछ भी हो परन्तु हकीकत में इसे ही अत्यन्त पवित्र, नित्य, स्थिर, दृढ़, अनश्वर, अविनाशी, स्वयंभू व परब्रह्मवाचक यानि परमात्मा को व्यक्त, प्रकट या सूचित करने वाला शब्द माना जाता है। इसी से सृष्टि यानि जगत की उत्पत्ति होती है, पालन होता है व अंततः इसी में उसका लय हो जाता है। इस प्रकार सूक्ष्म आत्मस्वरूप होने के कारण यही संपूर्ण संसार को एक रस प्रकाशित करता हुआ ब्रह्म सत्ता के रूप में, सभी प्राणियों में प्रवेश करता है और एक होकर भी अपने आपको अनेक रूपों में सृजित कर लेता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

असलियत स्वरूप है जे ब्रह्म जैंदा रूप रेखा नहीं रंग,
ओ३म्, ओ३म् विच विशेष हूँ ओ३म् तूं निर्लेप हूँ,

अर्थात् ब्रह्म ही मेरा वह असलियत स्वरूप है, जिसका कोई रूप, रेखा व रंग नहीं। वह परमेश्वर ईश्वरवाचक शब्द ओ३म् में विशेष होते हुए भी उससे निर्लेप है यानि कर्त्ता होते हुए भी अकर्त्ता है। इस तरह सर्वव्यापक यही सर्वत्र गमन करता है व समस्त प्राणियों के विचार को जानने वाला सर्वज्ञ परमेश्वर कहलाता है। इस विषय में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह

रहा है-

ओ३म् है सारे भूमण्डल विच जैंदा है ओ नज़ारा।
रूप रंग न रेखा राहवे उस जोत दा हर जगह चमकारा।।

याद रखो त्रिलोक एवं कालत्रयी में जो भी समाहित है वह सब ही ओम् में ही अंतर्भूत है। अतः यह जो कुछ भी भूत, भविष्यत् और वर्तमान है, उसी की व्याख्या है। इसके अतिरिक्त जो अन्य त्रिकालातीत वस्तु है, वह सब भी ओ३म् ही है। इस प्रकार यह त्रयात्मक जगत् प्रणव ओ3म् से ही परिव्याप्त है।

वेद हो या पुराण, उपनिषद हो या धर्म शास्त्र, रामायण हो या गीता, गुरू ग्रंथ साहिब हो या कुरान, बौद्ध हो या जैन संप्रदाय समस्त ग्रन्थ व वेद-शास्त्र इसी अक्षर की व्याख्या करते हैं और ओ३म् को ही सृष्टि का बीज मंत्र बताते हैं। इसीलिए तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

वेद पुराण कुरान सजनों, सब कोई अलफ़ दा मन्त्र बतांदा है।
एहो मूल मन्त्र दा सिमरन करके फिर ओ 'ये' नूं पांदा है।।
साथ ही यह भी कहा गया है
चार वेद कुदरती आये, छः शास्त्र कुदरत ने रचाये।
इन्हां विचों इन्सानों अलफ नूं पा लीजियो।
अलफ़ अक्षर नूं जप जप के, ईश्वर दी पहचान कीजियो।

अर्थात् समस्त वेद, पुराण, कुरान व शास्त्रों की व्याख्या के स्थान पर, सजनों इसी मूलमंत्र को पकड़ो और अपने ख़्याल को उसी के साथ जोड़ो ताकि प्रकाश हो जाए। ध्यान दो जिस प्रकार बाहर सूरज का प्रकाश होने पर यह बैहरूनी जगत और इसकी हर वस्तु निगाह आने लगती है, ठीक उसी प्रकार

जब अलफ अक्षर के अजपा जाप से, आत्मा रूपी सूरज के प्रकाश का हृदय में उदय होता है, तो अन्दरूनी जगत दिखाई देने लगता है। गहराई से उस प्रकाश में देखने पर, आत्मा में जो बिन सूरजों जगमगा रहा है परमात्मा, वह भी दृष्टिगोचर हो जाता है। ऐसा होने पर निज ईश्वरत्व की पहचान हो जाती है और कुछ अतिरिक्त प्राप्त करने की इच्छा बाकी नहीं रहती। इस तरह स्वयं में ही भरपूरता यानि परिपूर्णता का एहसास होने से, परमानन्द प्राप्त हो जाता है और सजन इस भाव से कि 'मैं ईश्वर स्वरूप इस जगत में शरीर धारण कर, इस जगत को सजाने व सँवारने के लिए आया हूँ,' उसी हेतु सर्व कार्य निष्कामता से करते हुए संसार में निर्विकारता से विचर पाता है। अतः सजनों अपने असलियत स्वरूप की पहचान कर परमानन्द प्राप्त करने हेतु, बाल्यावस्था से ही इस मूलमंत्र आद् अक्षर को युक्तिसंगत चलाने की युक्ति सीख लो।

इसी सन्दर्भ में वेदों के अनुसार जैसे बीज से वटवृक्ष उत्पन्न होता है, उसी प्रकार ओ3मकार रूपी बीज से सृष्टि की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार ओ3म् को ही एकाक्षर ब्रह्म कहा जाता है तथा ब्रह्मप्राप्ति के लिए निर्दिष्ट विभिन्न साधनों में इसी की उपासना मुख्य व सर्वोत्तम मानी जाती है। माना जाता है कि अक्षर वह है जिसका कभी विनाश नहीं होता तथा इस अनादि, अनंत, शाश्वत, चिरंतन और दिव्यविभूति को जान लेने के बाद सब कुछ प्राप्त हो जाता है। अतः सजनों मूलमंत्र आद् अक्षर को प्राप्त करके भी, आध्यात्मिकता की तरफ से कंगाल मत बने रहो। अगर हकीकत में जीवन का आनन्द उठाना है तो इसका अजपा जाप करो।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मूलतः यह माना जाता है कि यही

शब्द ही ब्रह्मांड का नाद है एवं मनुष्य के हृदय में स्थित परमात्मा का प्रतीक है। इस तरह शब्द और स्वर यानि संगीत की उत्पत्ति भी ओम् के गर्भ से ही मानी जाती है। इसलिए तो न केवल सम्पूर्ण ब्रह्मांड में अपितु हमारी-आपकी, हर श्वास से सदा ओ3म् की ध्वनि निसृत होती रहती है और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से यही ब्रह्मांड व हमारे श्वास की प्रत्येक गतिविधि को नियंत्रित करती है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

ओ३म् ओ३म् दियां आवाज़ा आवन।
जोत दा विच प्रकाश रामा जोत दा विच प्रकाश।
साज ताज ही समझो सजनों, उसे दा प्रताप।

इस नाते से ओ३म् समस्त प्राणियों का शासक है तथा सांसारिक क्रियाओं का संचालक है। यहाँ तक कि गुप्तातिगुप्त शब्दों का भी यही श्रोता है व ज्ञाता है तथा मूलतः हर ध्वनि में व्याप्त है। सर्वत्र व्याप्त होने के कारण ही यह दिलों की जानने वाला अंतर्यामी है।

यह माना जाता है कि यही ओंकार ही सत् नाम है तथा समस्त चराचर जगत का अधिष्ठान-स्वरूप है। इसकी उपासना, ब्रह्म की उपासना मानी जाती है जिसके आलोक से निर्गुण आत्मतत्व यानि दिव्य ज्ञान रूप ज्योति का साक्षात्कार होता है। इसके जाप से मन-चित्त एकाग्र होता है तथा शांति की प्राप्ति होती है। इस तरह यही अंधकार का विनाशक, सत्यस्वरूप का प्रकाशक, भक्तों का निज संबंधी, अज्ञानियों एवं पापचारियों का विनाशक, दाता, आधारस्थल तथा सृष्टि को बढ़ाने वाला माना गया हैं और जीवन के परम पुरूषार्थों

यथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का प्रदायक माना गया है। गीता में इस संदर्भ में यहाँ तक कहा गया है कि जो ओ३म् अक्षर रूपी ब्रह्म का उच्चारण करता हुआ शरीर त्याग करता है वह परम गति प्राप्त करता है। स्पष्ट है कि आनंदघन होने के कारण यही ओ३म् स्वरूप परमात्मा सबको प्रसन्न करता है यानि भक्तों को तृप्त कर संसार सागर से उनकी रक्षा करता है। तभी तो इसके अजपा जाप में मस्त रहने वाले, भक्त संतोष, धैर्य पर बने रह सच्चाई-धर्म के निष्काम रास्ते पर चलते हुए परोपकारी होते हैं।

पुराणों के अनुसार ओम् के अ, उ और म् क्रमशः विष्णु, शिव और ब्रह्मा के वाचक माने गए हैं। भूलोक, अंतरिक्ष लोक और स्वर्गलोक तीनों इसी में समाहित हैं। यह अक्षर त्रय तीन वर्ण, तीन वेद, तीन लोक, तीन गुण आदि का बोधक है। माना गया है कि समस्त कलाएँ ओम् में ही निहित हैं। इसीलिए तो हर मंत्र को शुद्ध और शक्ति सम्पन्न बनाने हेतु उसके पहले ओ3म् शब्द लगाने का विधान है। इस तरह भारतीय संस्कृति, साधना और जीवन में ओ३म् का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह शब्द सभी साधना-पथों एवं जप-पथों और जप-प्रविधियों का मूल है। यह परमेश्वर, परमब्रह्म, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक आदि सबका वाचक है। प्राचीनकाल से लेकर आज तक इसकी महत्ता अक्षुण्ण है।

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार ओ3म् शब्द मूल मंत्र आद् अक्षर है। यह अमर आत्मा है और इस आत्मा में परमपिता परमात्मा है। इस संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

ओ३म् ओ३म्, ओ३म् विच जड़या होया हां।
ओ३म् ओ३म्, ओ३म् विच खड़ा होया हां।।

इस प्रकार यह ही अजर-अमर आत्मा का निराकार रूप है। यह ही सृष्टि का वह मूल पहला आद् अक्षर है जोकि इस ब्रह्मांड के मूल से प्रकाशित हो प्रकृति के कण-कण को यानि सारे जगत को अपने प्रकाश से एकरस प्रकाशित कर रहा है। इसीलिए ख़्याल को ध्यान वल व ध्यान को प्रकाश वल रखने के लिए कहा गया है। याद रखो इसकी रोशनी ही चारों दिशाओं व तीनों लोकों में फैली हुई है। यही आद्, मध्य और अनंत तक फैला हुआ है। यही ओ3म् ही वह सत्य ब्रह्म स्वरूप है जो निर्गुण, निर्विशेष, गुणातीत, लोकातीत, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान व सर्वज्ञ परमेश्वर का वाचक है और सत्-चित्त-आनन्द स्वरूप है। तभी तो कहा गया है-

आदि ओ३म् अन्त ओही है,
आप ही हो विराट, रामा आप ही ओ विराट।
आप हो सारे भूमण्डल में,
आप दिन और रात।।

सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार यही शब्द ही वह केन्द्र बिन्दु है जहाँ से ब्रह्म, जीव, जगत के सत्य यानि आध्यात्मिक (आत्मिक) व भौतिक ज्ञान का प्रकटन हो रहा है। यही अन्दरूनी व बैहरूनी उन्नति का एकमात्र साधन है और यथार्थ में दिव्यता की खिड़की खोलने की कुंजी है। यही सुरत व शब्द के मिलन का व विलीन होने का केन्द्र बिन्दु है। अतः हमारे लिए बनता है कि हम प्रतिपल इसी आद् अक्षर का विचार यानि चिन्तन व मनन करें ताकि इसके अजपा जाप

द्वारा हम अपना हृदय प्रकाशित रख, अपने मन तथा इन्द्रियों को निर्मल कर, वश में रख सकें और चित्त को भोग-विलास की वृत्ति से बचाए रखने हेतु उसमें सत्य का संचार करने योग्य बन सकें। इस प्रकार सब प्रकार की इच्छाओं व कामनाओं का दमन कर हम, मन को संकल्प रहित रखते हुए, निष्कामी बन सकें व फिर मन-चित्त को ओ3मकार शब्द यानि परमात्मा में लीन कर ब्रह्मज्ञानी बन सकें। ओ3म् शब्द की इसी महत्ता को जानते-समझते हुए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में सजन श्री शहनशाह हनुमान जी ने इसी आद् अक्षर को मूलमंत्र शब्द गुरु बता कर, यह कहा है कि हे इन्सान ! यह तेरी ही ब्रह्म सत्ता है, अगर तूं इस महान सत्ता को ग्रहण कर ले तो तूं खुद ही भगवान है। हनुमान जी के इसी आदेश की पालना के प्रति हमें बाध्य करने के लिए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया किः-

आहा मेरी ब्रह्म सत्ता हनुमान जी दे वचन करो प्रवान,
अपना आप लवो पहचान ओ मेरी ब्रह्म सत्ता

ओ हर अन्दर प्रकाशे कोने-कोने डाली-डाली,
हर अन्दर ओ जापे ओ मेरी ब्रह्म सत्ता

ब्रह्म सत्ता पकड़ो इन्सान पा लवो सजनो आत्मिक ज्ञान,
ब्रह्म सत्ता हिवे हाज़रा हज़ूर निकट हिवे निवे कोई दूर।

ब्रह्म सत्ता है अजपा जाप हम तो हैं सारा जग प्रकाश,
ओ मेरी ब्रह्म सत्ता आहा मेरी ब्रह्म सत्ता

ब्रह्म सत्ता है बड़ी महान खुद हूँ मैं आप भगवान,
ओ मेरी ब्रह्म सत्ता आहा मेरी ब्रह्म सत्ता

ओ हर अन्दर प्रकाशे कोने-कोने डाली-डाली,
हर अन्दर ओ जापे मेरी ओ ब्रह्म सत्ता।

याद रखो सजनों मात्र ऊपरवर्णित विचारों को पकड़ कर धारण करने से समभाव-समदृष्टि का सबक हल हो सकता है। अतः सजनों इसी आद् अक्षर ओ३म् को ही जप-तप यानि आध्यात्मिक साधना/तपस्या व पूजा यानि उपासना/आराधना का सर्वश्रेष्ठ साधन मानकर, इसका ख़्याल से घड़ी की टकटक की तरह निरंतर जाप करो ताकि आत्मबोध कर निज ईश्वरीय स्वरूप की पहचान कर सको। इस संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

ओ३म् तत् ओ३म् सत्,
ओ३म् जप ओ३म् तप।।
ओ३म् दा है विस्तारा, ओ३म् जपो,
जपो ओ३म् ओंकारा ओ३म् जपो।।

निश्चित ही इन पक्तियों के माध्यम से परमेश्वर हमें 'विचार ईश्वर है अपना आप' के भाव पर स्थित कर, कलियुग में प्रचलित विभिन्न कर्मकांडों व आडम्बरयुक्त कठिन भक्ति-भावों के बंधनों से बचा, स्वतन्त्र व सरल युक्ति द्वारा, आत्मिक ज्ञान व परमानन्द की प्राप्ति हेतु, दिव्य गुणों की खान, शब्द गुरु रूपी आध्यात्मिक पथप्रदर्शक के साथ ख़्याल को, अफुरता से जोड़ने का निर्देश दे रहे हैं। याद रखो ऐसा सुनिश्चित करना, न केवल विचार शुद्धि के लिए आवश्यक है बल्कि आचार-व्यवहार तथा आहार शुद्धि द्वारा सर्वांगीण स्वस्थता प्राप्त करने के लिए भी अति आवश्यक है।

अतः सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार सजनों अपनी असलियत को अर्थात् आत्मा में प्रकाश रहे परमात्मा स्वरूप को जानो व इस हेतु कलियुग में फैले अनेकानेक कर्मकांडयुक्त बन्धनमान आडम्बरी भक्ति भावों से आज़ाद रह, मूलमंत्र आद् अक्षर को ठीक से चलाओ ताकि मन उपशम, चित्त शांत व ख़्याल अफुर हो जाए। इससे समभाव-समदृष्टि का सबक सहजता से समझ आ जाएगा और सजन-भाव की पढ़ाई पढ़ने में दिलचस्पी बनेगी। इस प्रकार समदृष्टि हो दिव्य दृष्टि का सबक प्राप्त करने के योग्य बन अपने ख़्याल को एक दर्शन में ठहराए रख सकोगे।

सजनों यह है ओ३म् शब्द की व्यापकता उसकी महानता व उसकी महत्ता। इस महत्त्व को समझने वाला ही निरन्तर, हर श्वास इसी मूलमन्त्र के अजपा जाप के प्रभाव से, परमार्थी व स्वार्थी दोनों राज्य प्राप्त कर, अमीरों का अमीर हो, उत्तम पुरूष कहलाता है। आओ अब इसे अपने व्यावहारिक जीवन में कैसे उतारना है, उसके विषय में प्रश्नोत्तर के माध्यम से समझते हैं और तद्नुसार अपना सुधार करते हैं-

अलफ़ अर्थात् अक्षर क्या है?

अक्षर है मूलमंत्र शब्द गुरु। सजनों अलफ़ ही हमारी पढ़ाई है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

शब्द गुरु जो जानियों शब्द गुरु करो प्रवान,
शब्द गुरु है मूल मन्त्र शब्द गुरु है महान।

शब्द गुरु के रूप में सूक्ष्मतः इसकी महानता स्पष्ट करो?

सजनों शब्द अर्थात् सार्थक ध्वनि, गुरु अर्थात् विद्या या कला सिखाने वाला। सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार कहा गया है-

ओजी शब्द गुरु मन लवो,
अपना आप ही पहचानो
फिर प्रीत उसे नाल बढ़ाओ,
ओजी ओ ओजी ओ ध्यान उसे दा लावो।।

अर्थात् सार्थक ध्वनि के रूप में आत्मिक ज्ञान प्रदान करने वाला हमारा यह नित्य, अजर-अमर, अविनाशी गुरु ही न केवल हमारे नित्य असलियत स्वरूप की पहचान कराने में अपितु उस ब्रह्म और इस ब्रह्मांड का हर रहस्य जनाने में पूर्ण सक्षम है तथा एकमात्र ऐसा स्रोत है जो सर्व को एक सूत्र में बाँध, सबके मन-मस्तिष्क को एक ही तरह के आत्मिक ज्ञान के प्रवाह से भरपूर कर, सर्व कला सम्पूर्ण बना देता है। कहने का अर्थ यह है कि फिर तेरी-मेरी, अपना-पराया, भिन्न-भेद, वैर-विरोध सब समाप्त हो जाते हैं और समभाव आ जाता है। इस प्रकार इस द्वारा प्राप्त विचार द्वारा ही हमारा आचार व व्यवहार सत्य-ज्ञान की मर्यादा में सदैव सधा रह सकता है और हम सजन-भाव और गृहस्थ धर्म के वचनों पर परिपक्वता से खड़े होकर इस जगत में अपना फ़र्ज़-अदा निर्लिप्तता से संकल्प रहित होकर, हँसकर निभा सकते हैं।

किसी शरीरधारी को गुरु मानने का क्या अर्थ है ?

किसी शरीरधारी को गुरु मानने का अर्थ है आत्मतत्व से

नाता तोड़ मिथ्या तत्वों से सम्बन्ध जोड़ आध्यात्मिकता के मार्ग से भटक जाना अर्थात् अज्ञानियों की तरह सांसारिक स्वार्थपूर्ण अन्तहीन इच्छाओं की ओर आकर्षित हो मृतलोक में आवागमन के दुष्चक्र में तब तक फँसे रहना जब तक कि अंतिम इच्छा पूर्ण न हो जाए।

अलफ़ के मिलने से पहले इन्सान कैसा होता है?
कठिन होता है यानि उसको संसारी कन रस होता है।

अलफ़ के मिलने के बाद इन्सान कैसा हो जाता है?
वह नर्म हो जाता है यानि उसको शास्त्र का कन रस पड़ जाता है।

अक्षर क्यों चलाना है?

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

ओ३म् तत् सत् ब्रह्म स्वरूप मेरा,
ओजी ओ३म् हरे ओ३म् ओ३म् हरे

चूंकि अपने स्वरूप की पहचान करनी है और सच्चाई-धर्म के रास्ते पर अटल रह, असलियत को पाना है, इसलिए अक्षर को चलाना है। इसको चलाने से ही संकल्प के कुसंग से बचे रह सकोगे और उस चमकते हुए ख़ालिस सोने के साथ प्रीति करोगे जिससे बुद्धि खिड़ेगी और अपने स्थान को पा लेगी। याद रखो अक्षर में निरन्तर जुड़ने पर ही 'हौं-मैं' का रोग मिटेगा। अतः अक्षर निरन्तर चलाओ ताकि प्रकाश ही प्रकाश हो जाए और फिर अपने ख़्याल को ध्यान वल और ध्यान को उसी प्रकाश वल कर सत्यमय हो जाओ।

अलफ़ आद अक्षर की रटन लगाने से क्या होता है ?

प्रकाश होता है और संकल्प कुसंगी सजन और संगी बनने लगता है। मन उपशम हो जाता है, चित्त एकाग्र हो जाता है, बुद्धि निर्मल हो जाती है और ख़्याल अफुर हो जाता है। इस तरह मोटी-मोटी बातों का संकल्प हट जाता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

मूलमन्त्र है जे ओ आद अक्षर,
जेहड़ा सजन इक रस हो के चलावेगा।
युवा-अवस्था नाले बल दी प्राप्ति,
शक्ति वल्लों ओ ताकतवर हो जावेगा
मूलमन्त्र है जे आद अक्षर,
जेहड़ा सजन इक रस हो के चलावेगा।
जेहड़ा मन मन्दिर है जे ओ चमत्कार,
ओही असलियत है जे ओ अपना आप।
प्रकाश नाल प्रकाश हो जावेगा ओ प्रकाश
नाल प्रकाश हो जावेगा।।

सजनों जब प्रकाश हो जावे तब क्या करें ?

उस प्रकाश को खड़ा कर लो और विचार करो कि हम कितने भूले रहे हैं। जो प्रकाश हमने देखा है वही प्रकाश या चमत्कार असलियत मेरा अपना आप है। कार व्यवहार करते हुए निगाह उस चमत्कार के साथ हमेशा के लिए जुड़ जावे। जुड़ कर उस असलियत को पूरी तरह स्थिर कर लेवें। दो साल उस चमत्कार को पूरी तरह देखते रहने से इन्सान पूरी तरह स्थिर हो जाता है।

प्रकाश में कौन विद्यमान होता है?

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में श्री साजन जी कह रहे हैं-

ओ३म् दे विच मैं चमक रिहा,
ओ३म् दे विच है मेरा स्थान।
ओ३म् दे विच है जोत मेरी,
ओ३म् दे विच मैंनूं ही जान।।

इस कथन के अनुसार प्रकाश में अपना असलियत चमत्कार जो ज्योति स्वरूप है, वह विद्यमान होता है। इस तरह इस प्रकाश में हमें अपनी सुरत नज़र आती है और तब होता है, अपनी असलियत स्वरूप की पहचान का सिलसिला आरम्भ। ज्यों-ज्यों सुरति अक्षर से उत्पन्न प्रकाश की शक्ति से संवरती सजती और निर्मलता के प्रवाह से, निखर कर युवा अवस्था ग्रहण करके बल की प्राप्ति करती है, तो सजन को अपना आप जो ज्योति स्वरूप परमेश्वर है, उसकी समझ आती है और सजन एक आत्मा होकर देखता है कि सर्व-सर्व वही ब्रह्म ही ब्रह्म है, फिर ब्रह्म विशेष भी है, निर्लेप भी है और रूप रंग रेखा से बाहर है। इस तरह सर्व-सर्वत्र में अपने असलियत स्वरूप का दर्शन होता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में यह भी कहा गया है-

जेहड़ा सजन उस चमत्कार अपने प्रकाश नाल दोनों नैन मिला के दो साल परिपक्क हो जावेगा।
विराट नगरी कुल दुनियां अन्दर अपना प्रकाश ही ओ पावेगा अपना प्रकाश ही ओ पावेगा।।

मूल मन्त्र है जे ओ आद अक्षर, आद अक्षर इक रस हो के चलाया, सर्गुण दा नज़ारा उस सजन ने पाया, सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित इस कथन से क्या तात्पर्य है?

आद् अक्षर जब एक रस चलता है तो एक ज्योतिपुंज बनकर जगमगा उठता है। फलतः सजन को यह समझ आ जाती है कि उसकी असलियत किस प्रकार से अखिल ब्रह्माण्ड को प्रकाशित किए हुए है। इस यत्न से उसकी दृष्टि उस सर्व विराजित ईश्वर को देख लेती है। ऐसी अवस्था होने पर अन्दर सर्गुण रच जाता है यानि सुरत और शब्द का साक्षात्कार हो जाता है। इस अवस्था में स्थिर बने रहने पर आपसी बातचीत का सिलसिला आरम्भ होता है।

यह अवस्था अति आनन्ददायक होती है क्योंकि वहाँ सुरत और शब्द एकान्त में होते हैं। फिर शब्द परमात्मा उस सर्गुण के खेल-खेल में अपने सर्व गुण सुरत को धीरे-धीरे दर्शाता है। जैसे-जैसे सुरत शब्द के गुणों को अपना, संवरती सजती जाती है वैसे-वैसे ही वह परमात्मा अपने गुण दर्शाता हुआ उसे अपने जैसा बनने के लिए उत्साहित करता हुआ अपनी चाल, अपने भाव, श्रृंगार और स्वरूप से उसे प्रसन्न और प्रफुल्लित अवस्था में ले आता है। इस प्रकार इस क्रिया से सुरत के स्वभाव पहले उत्तम अवस्था को धारण करते हैं और फिर धीरे-धीरे श्रेष्ठ अवस्था में पहुँचते ही सुरत कुदरत की असीम सुन्दरता से भर जाती है, जिसे देख वह शब्द उस सुरत को अपना लेता है। इस तरह से सुरत सर्गुण के खेल खेलते हुए परम आनन्द को प्राप्त कर लेती है। यह होता है मन का परमेश्वर में लीन रहना।

जिन सजनों को प्रकाश नहीं होता वे क्या यत्न करें ?

उनका संकल्प महाराज जी को लोचे। हर समय महाराज जी का ध्यान लगाने से उनको भी प्रकाश हो जाएगा और उसके बाद वे भी उस चमत्कार में खड़े हो जाएँगे। इस संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में यह भी कहा गया है-

जिस सजन को प्रकाश नहीं वह सजन यत्न कर के ख़्याल ध्यान वल, ध्यान प्रकाश वल जोड़े ताकि प्रकाश हो जाए। जहाँ ख़्याल है वहाँ दृष्टि रखें।

जिन सजनों को खुला प्रकाश है, वे सजन क्या यत्न करें ?

जिसे खुला प्रकाश है वह जो प्रकाश महाराज जी का हृदय में देखे, वह असलियत प्रकाश मेरा अपना आप है समझे। आगे मैं भूला रहा। अब मेरी भूल दूर हो गई है। यही प्रकाश कुल दुनियां में है।

सजनों मोटी-मोटी बातों का संकल्प तो हट गया परन्तु सूक्ष्म बातें इस युक्ति को धारण करने से हट जाएंगी और यह स्वभावों का घटता-बढ़ता हुआ टेम्प्रेचर समाप्त हो जाएगा। इस तरह युगों से चली आ रही रोने-झुखने की बीमारी समाप्त हो जाएगी। ऐसा होते ही मनुष्यत्व अनुरूप, मानवीय स्वभावों पर बने रहना सहज हो जाएगा।

अक्षर चलाने की विधि क्या है?

अक्षर का जाप ख़्याल ने करना है जिह्वा ने नहीं। चाहे सजन कार्य व्यवहार कर रहा है, कहीं आ जा रहा हो या सुख-दुःख में हो, अक्षर घड़ी की टक-टक की तरह निरन्तर हृदय में

चलता रहे और सजन घंटे-घंटे बाद अपनी जांचना करते रहें कि उनकी अक्षर चलाने की निरन्तरता टूटी तो नहीं। इस तरीके से ध्यान स्थिर होकर हाथ से काम काज करते रहें पर साथ ही 'अक्षर' हृदय में चलाते रहें। धीरे-धीरे ख़्याल शब्द वल, और ध्यान महाराज जी वल जोड़े रखने के यत्न में परिपक्वता लाने का यत्न करें। परिपक्वता आने पर हम उस परमपिता परमात्मा को देख सकेंगे और असलियत अपने प्रकाश की पहचान कर सकेंगे। इस तरह मन-चित्त शांत हो जाएगा और अफुर अवस्था बनेगी। इस संदर्भ में याद रखो कि अक्षर के अजपा जाप के प्रभाव से हमारे ख़्याल का दिव्य ज्ञान स्रोत से सम्पर्क स्थापित हो जाएगा और जो सार्थक ध्वनि इस ब्रह्मांड में व हमारे हृदय में निरंतर गुंजायमान है उसकी हमें समझ आने लग जाएगी। इस दिव्य प्राप्ति उपरान्त हमें ब्रह्म, जीव और जगत की रमज़ समझ आ जाएगी और हम निषंग, निर्लिप्तता से इस जगत में विचरते हुए जीवन का आनन्द उठा सकेंगे। यह हृदय के अंधकार के छँटने व हृदय के पुनः प्रकाशित होने का प्रतीक होगा। अतः याद रखो-

अन्दर ख़्याल अक्षर वल, दृष्टि लोचे महाराज जी नूं इससे बाहर की दृष्टि जो फुरने की है, वह भी ागवानमय हो जाएगी।

अक्षर चलाने के अभ्यास द्वारा सजन क्या यत्न करता है?

इस अभ्यास द्वारा वह स्वयं द्वारा स्वयं को देखने का प्रयत्न करता है अर्थात् आत्मा के द्वारा आत्मा में जो है परमात्मा, उसको देखने का यत्न करता है। इस विषय में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है-

अपना आप तैं ही जाना अपना आप ही पहचाना।
हो ओ३म् दे ही अन्दर सिरजनहार है नाम तुम्हारा।।

अक्षर कब चलाना चाहिए?

भगवान फ़रमाते हैं कि युक्ति के अनुसार सारा दिन यानि हर समय, अक्षर का अजपा जाप होता रहे और ध्यान उसी प्रकाश में जुड़ा रहे।

अक्षर चलाने के लिए किस चीज़ की आवश्यकता है?

शारीरिक-मानसिक स्थिरता, ध्यान की एकाग्रता व ख़्याल की अफुरता अति आवश्यक है।

क्या संसारी कार्य व्यवहार करते समय अक्षर चलाने से कार्य में बाधा उत्पन्न नहीं होती?

यह सोचना नादानी है कि अक्षर निरन्तर चलाने से संसारी कार्य व्यवहार में कोई बाधा आ सकती है। अगर युक्ति के प्रति नासमझी होगी तो ऐसा हो सकता है। अतः कार्यव्यवहार करते हुए हथ कार वल व चित्त यार वल रखो। याद रखो अक्षर चलाने की युक्ति ठीक प्रकार से धारण कर लेने से विचार शुद्धि के साथ-साथ आहार और व्यवहार शुद्धि भी हो जाती है। इस प्रकार वह मनुष्य परमार्थ पर बने रहते हुए संसारी कार्य भी कुशलता पूर्वक करने में सक्षम रहता है। इस संदर्भ में सच्चेपातशाह जी कहते हैं-

'साडी भक्ति इतनी सुखाली है कि घर दा काम करदियां करदियां ही भक्ति हो जांदी है। जिवें रोटी पकादियां होयां वी नाम चलाओ, ते अक्षर चलाओ। अगर असीं नाम चलांदे रोटी

पकावांगे ते अन्न दे विच, इन्हां पक्कियां होइयां रोटियां दे विच नाम रूपी कीटाणु पैदा हो जानगे। फिर असीं ओही रोटी खावांगे, ते सानुँ अच्छी बुद्धि मिलेगी, बच्चयां नूं अच्छी बुद्धि मिलेगी। इस तरह साडा घर सतयुग बन जाएगा। अगर असीं फुरना करदे करदे रोटी बनावांगे ते फुरने वाले कीटाणु, बीमारी वाले कीटाणु साडे हथां विच पैदा हो जानगे। फिर असीं ओन्हां हथाँ दी पक्की रोटी खावांगे ते साडे अन्दर अनेक प्रकार दियां बीमारियाँ पैदा होनंगियाँ। इस तरह साडा घर स्वर्ग दे बदले नर्क बन जाएगा। इस वास्ते ऐसी नाम रूपी खुराक खाओ जैंदे नाल घर विच बीमारियाँ न होवन। इस वास्ते सारा दिन घर दा काम करदे असीं अपने इष्ट देव नूं मिल सकदे हाँ।'

आओ अब बताई विधिनुसार अक्षर चलने का अभ्यास करें-

1. सर्वप्रथम शारीरिक-मानसिक स्थिरता साध लें अर्थात् न शरीर हिले, न जिह्वा हिले और न ही दिमाग में कोई हलचल हो यानि कोई भी पिछली बीती-विहाणी अन्दर अशान्ति न उत्पन्न कर सके।

2. अन्दरूनी व बैहरूनी दोनों वृत्तियों में शान्त हो जाएं और ध्यान को अपने लक्ष्य की तरफ़ एकाग्र कर लें तभी इस क्रिया द्वारा जो भी प्राप्ति होने वाली है, उसे प्राप्त कर सकोगे। इस हेतु यदि आँखें बंद करना चाहें तो अवश्य बंद कर लें परन्तु जाग्रति में रहें।

3. फिर अन्दर ख़्याल अक्षर की तरफ़ कर लें और उसका अफुरता से जाप करते हुए उसके प्रकाशित रूप का अनुभव

करें। गहनता से यह अनुभव करते जाएं और अपने ख़्याल को गहराई में उतारते जाएं। यह कार्य अत्यन्त ध्यान से करें क्योंकि यदि बीच में फुरना आ गया तो काम बिगड़ जाएगा।

4. ऐसा करते समय यह याद रखें कि हीरा गहराई में ही होता है, उस अमोलक हीरे को जिसको सतवस्तु कहते हैं, प्राप्त करने हेतु अक्षर का अजपा जाप करते हुए ध्यान स्थिर रहें और ख़्याल हीरे की सार को पाने के लिए गहराई में उतर जाए। ऐसा होने पर ही अक्षर का प्रकाशित स्वरूप दृष्टिगोचर होगा और आपको अपने अन्दर एक अजीब सी शक्ति, प्रकाश और प्रफुल्लता का अनुभव होगा।

5. इस तरह शक्तिशाली, प्रकाशमय और प्रसन्न चित्त होने का अनुभव करें और प्रसन्न चित्त होते जाएं। यह प्रसन्नता आपकी मुख मुद्रा से भी समझ में आए। याद रखें कि जितनी आपकी मुख मुद्रा खिलेगी उतनी ही अन्दरूनी व बैहरूनी दोनों वृत्तियों में प्रफुल्लता आएगी और आप सुन्दर लगने लगोगे।

6. जिन सजनों को जाप के दौरान कोई फुरना या घरेलू बात रूकावट डाल रही हो, वह उस जाप की गति तेज कर लें और फिर धीरे-धीरे उसी सम गति में अफुर अवस्था बनाते हुए आ जाएं। अगर बार-बार प्रयत्न करने पर भी प्रसन्नता नहीं आ रही तो अपने साथ जबरदस्ती करें और आत्मविश्वास के साथ इस क्रिया को करते हुए प्रफुल्लता में आ, अफुर हो जाएं। जाप और प्रफुल्लता के तालमेल को समझें।

7. अब अक्षर चलाने की गति तेज कर दें। जैसे-जैसे अक्षर चलाने की गति बढ़े, वैसे-वैसे प्रफुल्लित अवस्था भी बढ़ती

जाए, बढ़ती जाए और ख़्याल द्वारा अक्षर, जो अभी तक हृदय में चल रहा है, उसको पूरे शरीर में फैलाते हुए नीचे से ऊपर ले जाएं। याद रखें इस अक्षर में क्षमता है कि वह एक बिन्दु पर भी केन्द्रित हो सकता है और पूरे शरीर में भी एक साथ रमण कर सकता है।

8. इस प्रकार इस क्रिया से यह शरीर के कण-कण, रोम-रोम, रग-रग, को छूता हुआ चेतना से संजो दें। निश्चित ही ऐसा होने पर आपका पूरा तंत्रिका तंत्र यानि नाड़ी तंत्र खुल जाएगा।

9. अब प्रकाश से असलियत स्वरूप के दर्शन की ओर बढ़ना है। दर्शन होने पर दृष्टि को वही ठहरा लेना है। इस हेतु नीचे से ऊपर दोनों आँखों और दोनों भृकुटियों के बीच जहाँ दर्शन केन्द्र है, ख्याल को खूब भीतर गहराई तक ले जाएं और केन्द्रित करें। यह क्रिया ख़्याल को ध्यान वल व ध्यान को प्रकाश वल रखकर, गहरी एकाग्रता और सजगता के साथ करनी है। ऐसा करने पर ही वांछित परिणाम प्राप्त कर सकेंगे। इस क्रिया के दौरान जो अनुभव हो, उसे जानने का यत्न करें क्योंकि यहाँ से आप अक्षर के प्रकाश का चारों दिशाओं में फैलाव देखने योग्य बन सकते हो और आत्मप्रकाश को पा सकते हो।

यहाँ बाकी रह जाती है मात्र शान्ति, सुखमय शान्ति। इस शान्ति के बाद ही होता है कुदरती ज्ञान के प्रवाह के समझ आने का शुभ आरम्भ।

संक्षेपतः सजनों जान लो कि यदि आपकी अक्षर चलाने की गति व प्रसन्नता का तालमेल ठीक रहा तो आप अवश्य ही इस

अभ्यास द्वारा अफुर अवस्था में आ सकोगे और अंतर्निहित कुदरती ज्ञान को प्राप्त करने के अधिकारी बन सकोगे। याद रखो जो सजन इस प्रकार अभ्यास करके अजपा जाप करने की क्रिया में निपुण हो जाएगा वह फिर पल-प्रतिपल समस्त कार्यव्यवहार करते हुए भी अपने असलियत स्वरूप में स्थित रह सकेगा और दुःख-सुख में एकरस समान बना रहेगा। हम मानते हैं कि चाहे आरम्भ में इस क्रिया में सफल होने के लिए थोड़ा सावधानी के साथ यत्न, अवश्य करना पड़ता है परन्तु सतत् रूप से अभ्यास करने पर यह क्रिया स्वचलित हो जाती है। अतः सजनों बार-बार यत्न करने पर भी यदि फुरना सताए तो हिम्मत मत हारो अपितु अक्षर चलाने की गति तेज करके प्रफुल्लता में आ जाओ। फिर जब अक्षर समरस चलने लगे तो शरीर के रोम-रोम में, कण-कण में उसको रमाते हुए चेतना से भरपूर हो जाओ।

सजनों इस अभ्यास द्वारा आपको स्पष्ट हो गया होगा कि ओ3म् ही रसों में श्रेष्ठ परम प्रिय अमृतरस है। इसकी उपासना सर्वकामप्रदा है यानि ओ3मकार साधक जो चाहते हैं, वह सब कुछ प्राप्त कर लेते हैं। उनकी इहलोक और परलोक की सभी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। वे सर्वथा भयमुक्त व शत्रुरहित हो जाते हैं। भूत-प्रेत, जादू-टोना, दुःस्वप्न आदि किसी प्रकार का भय उनके सामने नहीं आ पाता। यहाँ तक कि भवभय यानि मृत्यु का भय भी समाप्त हो जाता है क्योंकि ऐसे साधक प्रणवोपासना रूप कवच से सर्वथा सुरक्षित हो जाते हैं। जान लो कि जो विद्वान् इस ओ3म् अक्षर की साधना करते हैं वह उस अमृतमय अभय स्थान में प्रवेश कर अमरता को प्राप्त होते हैं। हम कह सकते हैं कि इस अक्षर का साधक

परम समृद्धि, परम सुख, परम-मोक्ष, परम तृप्ति एवं परम आनंद को प्राप्त हो महिमा युक्त हो जाता है यानि ब्रह्म लोक को प्राप्त हो अमरकीर्ति वाला हो जाता है और इस तरह जन्म-मृत्यु रूपी सांसारिक बन्धनों से मुक्ति प्राप्त कर लेता है। यही कारण है कि ओ3मकार एकाक्षर ब्रह्म ही सभी मुमुक्षुओं का लक्ष्य रहा है। इसीलिए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार ईश्वर कहते हैंः-

ओ३म मकान ओन्हां दा ओ३म स्थान है,
ओ३म दी रटन लगाओ सजनों नित।

आओ अब आगे जानते हैं-

सारा दिन घड़ी की टक-टक की तरह अक्षर चलाने की निरन्तरता पर क्यों जोर दिया जाता है ?

ताकि फुरना अफुर हो जाए और हम 'मैं ब्रह्म हूँ' के भाव में एक रस बने रहें। इस विषय में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

जेहड़ा सजन ईश्वर नूं मिलना चाहवे,
अलफ़ है अक्षर ओ ठीक चलावे।
ख़्याल महाबीर जी नाल जुड़या ओ राहवे,
ओ प्रकाश दी पहचान करदा राहवे, प्रकाश नूं पावे।।

याद रखो इसी यत्न से मन जो संकल्प-विकल्प की तरंगे उठा, ख्याल को फुरने में घेरे रखता है व बुद्धि को अज्ञान रूपी अन्धकार में डाले रख जीव को कष्ट प्राप्ति कराता है, उससे ख्याल स्वतन्त्र बना रहता है। अन्य शब्दों में ध्यान द्वारा अक्षर

में ख्याल का निरन्तर जुड़े रहना, मन में सदा सत्य को प्रकाशित रखता है। इस प्रकार चंचलता रहित मन सदा अपने कार्य में अफुरता से व्यस्त रहता है। यही मनः शान्ति उसको राग-द्वेष और वाशना जो सब झगड़ों की खान है, से बचाए रखती है। इस प्रकार इन्सान निर्विकारी हो जाता है।

अक्षर के निरन्तर जाप में मुख्य बाधा क्या है?

फुरना। यह फुरना मिथ्या जगत की धारणा की उपज है व मन में असंतोष पैदा करता है।

कहते हैं कि अक्षर चलाने में मन की चंचलता भी बाधक है, इस बाधा से बचने के लिए क्या करें?

इस मन को मज़दूरों की तरह हर समय ऐसे काम में लगाए रखो, जिसमें वह व्यस्त रहे व शान्त रहे और इसकी संकल्प-विकल्प उठाने की शक्ति क्षीण हो जाए। याद रखो यह कार्य अक्षर का निरन्तर जाप ही कर सकता है क्योंकि अक्षर के निरन्तर जाप में कार्यरत रहने से उसे एहसास होगा कि उसकी करनी पर उसका मालिक निगरानी रख रहा है। याद रखो यह क्रिया मन को नियन्त्रण में रखने के लिए आवयश्यक है।

फुरने से क्या तात्पर्य है?

किसी वस्तु या बात पर किसी क्रिया के होने वाले परिणाम या प्रभाव को फुरना कहते हैं। फुरना किसी व्यक्ति की शक्ति, प्रताप, सम्मान, अधिकार आदि पर होने वाले असर द्वारा हृदय में स्फुटित व विकसित होता है। यह विशुद्ध अंतःकरण

को किसी ओर यानि अच्छाई व बुराई की ओर प्रवृत्त करने का गुण होता है।

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार फुरना हकीकत में अज्ञानता व अविचार की देन है। इसके कारण जब इंसान को सत्य-असत्य की परख नहीं रहती तो मन में असंख्य सवाल खड़े हो जाते हैं और हमारे मन-मस्तिष्क के आगे अज्ञान के बादल छा जाते हैं जिससे एक तो बुद्धि-भ्रमित हो जाती है और दूसरा बुद्धि-भ्रंश नामक रोग लगने की संभावना बनी रहती है। याद रखो इस प्रकार मन के वश में न रह पाने के कारण आत्मविश्वास टूटता है और इन्सान अन्य साधनों पर निर्भर हो पराश्रित हो जाता है। इसी विवेकहीनता के कारण हमारा अपना आप ही, हमारे लिए एक सवाल बन रहस्यमय हो जाता है।

फुरने क्यों उठते हैं?

जब इस विषयी जगत को देखकर हम कामुक व स्वेच्छाचारी हो जाते हैं और हमारे मन में समभाव के स्थान पर द्वि-भाव घर कर लेता है तो उसके क्रियाशील होते ही अनगिनत फुरने हमारे ख़्याल के अन्दर उठने लगते हैं। अन्य शब्दों में इस भौतिक जगत में आने के पश्चात् जब हम जगत की रमज़ नहीं समझ पाते और अपना ख़्याल ध्यान वल-ध्यान प्रकाश वल ठीक से रख, जीवन का वास्तविक सत्य समझने में असक्षम हो जाते हैं तो फुरने हमारे अन्दर उठते हैं।

फुरने उत्पन्न होने पर क्या होता है ?

फुरने के उत्पन्न होते ही हृदय में अंधकार छा जाता है और

ख़्याल परमात्मा की ओर ध्यान स्थिर नहीं रह पाता। इसी कारण जब अन्दरूनी वृत्ति द्वारा आत्मिक ज्ञान सहित कुछ भी प्राप्त कर पाना असंभव हो जाता है तो हमारी बुद्धि, मनोवृति, स्मृति, विचार व विवेकशक्ति आदि जड़ता को प्राप्त होना आरम्भ हो जाते हैं। धीरे-धीरे यही अचेतनता हमारे सज्ञान शून्य होने का कारण बनती है और हमारा ख़्याल मायावी जगत से जुड़ता जाता है। यहीं से अज्ञान धारणा का सिलसिला आरम्भ होता है। यह अज्ञान फिर हमारे अंतःकरण के आगे बादल का रूप ले छा जाता है जिससे हमें घटित यथार्थ का बोध होना बंद हो जाता है। तभी हम सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण कर अपनी विकृतियों के प्रति न तो सावधान हो पाते हैं और न ही उनको ठीक करने के प्रति सजग हो पाते हैं।

फुरने से निवृत्ति कैसे प्राप्त हो सकती है?

उठते बैठते, सोते-जागते, चलते-फिरते यानि समस्त कार्यव्यवहार करते हुए मात्र आद् अक्षर का अजपा जाप करने से। अतः याद रखो-

ओ३म् दा ही मन्त्र है ओ३म् ही स्वतन्त्र है।
ओ३म् दे हिन चार वेद द्दः शास्त्रां दा प्रकाश है।।
ओ३म् दे हिन चार वेद द्दः शास्त्रां दा प्रकाश है।
ओ३म् तों निर्लेप है उसे दा जप जाप है।।

अक्षर के जाप के समय यदि फुरना सताए तो क्या करें?

फुरना उठते ही अपने ख़्याल को अन्दर इष्ट की उपमा में

जोड़ दो और फिर जैसे ही अफुर अवस्था आ जाए, उस अवस्था को धारण कर के अक्षर चलाने लगो। ऐसा करने से प्रकाश अवस्था जल्दी आ सकती है। प्रकाश अवस्था से दर्शन अवस्था में आने के लिए अपनी दृष्टि प्रकाश की ओर बनाए रखें और उस प्रकाश में अपने इष्ट का अनुभव करते हुए उससे तोतली-तोतली बातें करें। इस अभ्यास से सत्य के पारखी बन जाओगे।

बार-बार यत्न के बावजूद भी अक्षर ठीक से न चला पाना क्या दर्शाता है ?

यह दर्शाता है कि या तो सजन में प्रेम की कमी है या फिर वह नाम अक्षर लेने के बावजूद, सत्संग पर आने के बावजूद, वह सच्चे पातशाह जी की युक्ति को सांसारिकता में फँस व मोह के कारण हकीकत में नहीं अपना पा रहे। वह जितना भी नाम अक्षर चलाते हैं व सत्संग पर आते हैं उनका यह सब आने-जाने का मकसद सिर्फ सांसारिक सुखों की पूर्ति हेतु है। ऐसे सजनों को सचेती में लाने के लिए सच्चेपातशाह जी कहते हैं-

जेहड़ा आद जिह्वा ते अक्षर लिखया सी,
उसनूं क्यों तुसां छोड़ दिया।
उसनूं क्यों तुसां छोड़ दिया,
उस वल्लों क्यों मुख मोड़ लिया।।
आद अक्षर नूं छोड़ दिया,
सुकर्म धर्म वल्लों मुख मोड़ लिया।
योग साधना दे दो अक्षर,
उन्हां वल सजनों तुसां ध्यान न दिया।।
आद अक्षर नूं छोड़ दिया,

जन्म अपने नूं क्यों रोल दिया।
आद अक्षर नूं याद करके,
भूलियां जन्मां दा जीवन बनाय लिया।।
आद अक्षर बड़ा बलवान है जी,
ओही साथी ओही शान अक्षर साडे नाल जासी।
युक्ति लै के रमणे वालड़े नूं,
रोम रोम दे विच रमा लिया सी।।
दुनियां वालियो आद अक्षर जैं पहिचान लिया,
अमर उसने अपना नाम किया।
सर्व आत्मा विच परमात्मा नूं,
उसने ही सजनों जान लिया।।

अलफ में परिपक्वता से खड़ा होने पर यानि अलफ़ के अजपा हो जाने पर क्या होता है?

अनादि जोत की प्राप्ति हो जाती है और सजन की भक्ति युवा अवस्था को धारण कर लेती है। फिर बल की प्राप्ति होती है, जिससे शक्ति ताकतवर हो जाती है। फलतः अलफ़ छूट जाता है और 'ये' मिल जाता है और सजन शब्द विचार पर खड़ा हो जाता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

अलफ़ पढ़े इन्सान फिर ओ ये नूं पा जांदा है।
अफ़सर होके इन्सान फिर ओ कुर्सी ऊपर बैहंदा है।।
फिर ओ कुर्सी ऊपर है बैहंदा, ज्योति स्वरूप।
ज्योति स्वरूप है अपना आप, हम तो ओही हैं प्रकाश।।
मूल मन्त्र जप के इन्सान फिर ओ ये नूं ही पा जांदा।
जन्म दी बाज़ी जित्त के, ओ जीवन सफल बनैंदा।।
फिर ओ जीवन सफल है बनैंदा, ज्योति स्वरूप।

ज्योति स्वरूप है अपना आप,
हम तो ओही हैं प्रकाश।।

'ये' के मिलने पर इन्सान की कौन सी अवस्था आ जाती है?

'ये' के मिलने पर इन्सान वज्र हो जाता है यानि फिर उस पर ईंट रोड़ा कोई प्रहार नहीं कर सकता।

अफुर अवस्था कब आती है?

जब न अलफ़ रहता है न 'ये' रहता है। इस परिप्रेक्ष्य में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कहता है-

ओथे अलफ़ ये दा सवाल नहीं,
बिन सूरजों प्रकाशे।
ओहदा रूप रंग न रेखा कोई,
ओ घट घट विच निवासे।।
अलफ़ ये फिर मुक गया,
होर चीज़ न रही कोई बाकी।
सर्व जग मग जग रिहा,
ओ जगे दिन ते राती।।
फिर ओ जगे दिन ते राती,
ज्योति स्वरूप।
ज्योति स्वरूप है अपना आप,
हम तो ओही है प्रकाश।।

अफुर अवस्था आने पर क्या होता है?

ख़्याल अपने घर में स्थित हो जाता है और इस प्रकार सजन

गगन मण्डल में जहाँ रूप रंग रेखा नहीं महाराज जी के साथ मेल खा जाता है। बिन औखियाइयों बिन खेचलों, बिन तकलीफों वह जन्म की बाज़ी को जीत लेता है। यहाँ पर तीनों तापों का टैम्परेचर जो घटता बढ़ता रहता है वह समाप्त हो जाता है। जैसे बुखार घटता बढ़ता रहता है इसी तरह हमारे स्वभावों का टैम्परेचर भी घटता बढ़ता रहता है। अगर हम संतोष पर काबू पाते हैं तो धैर्य छूट जाता है। धैर्य पर काबू पाते हैं तो सच्चाई-धर्म छूट जाता है। इस युक्ति पर चलने से तीनों तापों का रोग मिट जाता है और हमारे सब सवाल हल हो जाते हैं। फिर समभाव जो एक निगाह एक दृष्टि देखनी होती है बिना यत्न के उसकी प्राप्ति हो जाती है। यह होता है जन्म की बाज़ी को जीत लेना। इस तरह सजन संसारी व परमार्थी दोनों राज्य प्राप्त कर लेता है। तभी तो कहा गया है -

ओ३म् आनन्दम, ओ३म् आनन्दम,
ओ३म् आनन्दम ओ३म्।
हे दुःख भंजन, हे दुःख भंजन,
हे दुःख भंजन ओ३म्।
सर्वव्यापी ओ३म्, ओ३म् आनन्दम ओ३म्।।

इस समस्त विवेचना से सजनों यह स्पष्ट होता है कि ओ३म् ही पद है। यही आलंबन है। यही ब्रह्म है। यही आत्मा है। इसी से ही वाणी परिव्याप्त है। यही सत्य है। यही संपूर्ण है। यही परम ब्रह्म है यानि निर्विशेष पूर्णब्रह्म का द्योतक है। इसी में परब्रह्म है। सभी पूजा, सभी कर्म इसी से प्रवर्त्तित होते हैं। अतः इसी का जप व उपासना ही मुक्ति पाने का श्रेष्ठ साधन

है। इस संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अध्याय में कहा गया है-

'मेरी जोत को कोई विरला ही ऐसा जीव पहचानेगा जो निर्वाण पदवी में जाएगा। उस सार को प्राप्त करने से अन्दर से ही ओ३म् ओ३म् की आवाजें आती हैं और बिना सूरज के हर वस्तु में चमकने लगता है।'

इस संदर्भ में जान लो कि पूर्ण हर स्थिति में पूर्ण ही रहता है। चाहे उसमें कुछ अंश निकाला जाए अथवा उसमें कुछ अंश जोड़ दिया जाए, वह तो सर्वथा वैसा ही रहता है। यह असीम है अर्थात् उसे शब्दों की किसी सीमा में नहीं बाँधा जा सकता पर योग साधना द्वारा साधा अवश्य जा सकता है। इस संदर्भ में सजनों जान लो कि इस साधना के लिए हृदय की पवित्रता के साथ-साथ, ख़्याल की अफुरता व ध्यान की स्थिरता की अति आवश्यकता होती है। सबकी जानकारी के लिए आगामी कक्षा में हम इसी विषय में बातचीत करेंगे।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 3 अप्रैल 2016 का सबक

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

गत सप्ताह सजनों हमने सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार मूलमंत्र आद् अक्षर के विषय में जाना और साथ ही यह भी जाना कि जीवन लक्ष्य अर्थात् परमपद प्राप्ति हेतु सतत् रूप से ख़्याल को ध्यान वल व ध्यान को प्रकाश वल जोड़े रखना अनिवार्य है। इसके लिए परम आवश्यकता है, कदम-कदम पर विचार शब्द को पकड़ एकाग्रचित्तता को साधे रखने की। तभी हम एक निगाह, एक दृष्टि, एक दृष्टि एक दर्शन हो एक ख़्याल हो सकते हैं और महाराज जी से मेल खा सकते हैं। आत्मिक ज्ञान की पढ़ाई में ख़्याल व ध्यान के महत्त्व को देखते हुए, आओ आज इन्हें ही क्रमशः समझते हैं।

सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ सजनों कह रहा है-

ख़्याल जदों अपने घर विच राहवे,
तदों जीव विश्राम नूं पावे,
जेहड़े इन्सान यत्न करन, यत्न करन,
ख़्याल जदों अपने घर विच राहवे,
इन्सान ध्यान इस्थर हो जावे।
संग लक्ष्मी चतुर्भुजधारी दा दर्शन पावे,
कोई विरले दर्शन करन दर्शन करन।

अर्थात् अपने सच्चे घर में स्थित होने पर ही इन्सान का ख़्याल, एकाग्रचित्त हो अपने असलियत स्वरूप के दर्शन में स्थिर हो पाता है। इसी सन्दर्भ में आखिर यह ख़्याल है क्या, आओ अब इसके विषय में जानें?

ख़्याल वह सशक्त वायविक (वायु प्रधान) काल्पनिक माध्यम (कार्यसिद्धि का उपाय या साधन) है जिसके द्वारा जीव का अपने वास्तविक स्वरूप ब्रह्म और भ्रांतिजन्य मायावी जगत से सम्पर्क स्थापित होता है।

अन्य शब्दों में जीव इच्छानुसार स्वार्थ या परमार्थ में अपना यह सम्पर्क तरह-तरह की कल्पनाओं के माध्यम से स्थापित करता है। इन कल्पनाओं की विविधता के कारण ख़्याल का रूप-स्वरूप बनता-बिगड़ता रहता है और यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक कि ख़्याल यथार्थ बोध में तबदील हो उस अखंड चैतन्य बोध में ठहर नहीं जाता।

इस हेतु शरीर में व्याप्त ख़्याल चैतन्य यानि ब्रह्म अथवा चेतन आत्मा की चेतना शक्ति जिसे होश/सुध अथवा बोध या ज्ञान

कराने की वृत्ति कहते हैं, उसका इस्तेमाल करता है।

इसी चैतन्य सत्ता के साथ अटूट संबंध होने के कारण ख़्याल का आवागमन सम्पूर्ण वायुमंडल में सर्वत्र यानि कहीं भी सुगम हो जाता है। अपनी इसी विशिष्टता के फलस्वरूप यह ख़्याल समस्त भौतिक पदार्थों के साथ जुड़ने के अतिरिक्त अपने वास्तविक ब्रह्म स्वरूप से जुड़कर एकाकार होने में भी सक्षम होता है।

ख़्याल की प्रत्येक क्रियाविधि में अभिन्न रूप से उसका सहायक होता है ध्यान (अन्दरूनी दृष्टि) जिसकी सहायता से यह अप्रत्यक्ष व इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष रूपों या भावों को अंतःकरण में उपस्थित करता है। इस प्रकार अन्तःकरण में नित नई और अनूठी वस्तुओं को हाज़िर करके ख़्याल भांति-भांति की नवीन रचनाएँ करता है, उन के साथ ध्यानपूर्वक जुड़ कर अनुमान द्वारा उन्हें रंग-रूप देता हुआ सजाता-सँवारता है। उसका यह अनुमान भूतकाल की स्मृतियों व वर्तमान में अर्जित अनुभवजन्य ज्ञान पर आधारित होता है। यही ख़्याल की क्रियाविधि है।

यहाँ विशेषतः समझने की बात यह है कि ख़्याल की क्रियाविधि की समाप्ति के पश्चात् ही उस द्वारा उपस्थित रूप-स्वरूप व भावों पर अंतःकरण के समस्त विभाग यथा मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार चेतनता के स्तर के आधार पर उस रूप या भाव विशेष पर अपने-अपने कार्य अनुसार सामूहिक क्रिया करते हैं और तत्पश्चात् उस क्रिया के अनुरूप उसका बोध कराते हैं।

स्पष्ट है कि जहाँ ख़्याल है वहीं ध्यान होता है। ख़्याल और ध्यान जब संयुक्त होकर प्रकाश यानि आत्मतत्व के साथ जुड़ते हैं तो निज चेतन सत्ता का बोध होता है पर यही ख़्याल और ध्यान जब संयुक्त होकर ज्ञानेन्द्रियों के विषयों के साथ जुड़ते हैं तो विषयी जगत का बोध उपलब्ध कराते हुए जीव को उसके भ्रम जाल में फँसा देते हैं।

इस संदर्भ में जान लो कि ख़्याल को निज चैतन्य स्वरुप के साथ जोड़ कर परमार्थ की राह पर अग्रसर होना या फिर सांसारिक विषयों के साथ जोड़ कर स्वार्थपर बन जाना, यह व्यक्तिगत चयन प्रक्रिया पर ही निर्भर करता है स्वतन्त्रतापूर्वक किए गए इसी चयन के आधार पर ही एक मानव सदाचारी या दुराचारी बनता है। यदि भूल से भी इस चयन-प्रक्रिया में लेश मात्र भी चूक हो जाए तो शेर के समान, सशक्त ताकतवर जीव, जगत के भ्रम जाल में कैद हो जाता है। फिर ऐसा भ्रमित जीव अपने असलियत स्वरूप के स्थान पर मिथ्या जगत को ही सत्य समझने लगता है और व्यर्थ ही मिथ्या जगत को तूल देता हुआ उसकी कल्पना में उलझ, फुरनों में फँस जाता है। परिणास्वरूप मानव की बुद्धि भ्रमित हो जाती है और विवेकशक्ति क्षीण हो जाती है। यहाँ तक कि इस कल्पना में उसे अपने शाश्वत अजर-अमर स्वरूप की भी विस्मृति हो जाती है और मौत से भयभीत वह, माया का ग़ुलाम बन कर जगत में विचरता है। तभी कहा है-

कल्पना छोड़ जगत दी सारी,
ख़्याल कृष्ण नाल जोड़ लवो,
ओही हिन साडे ओ साथी,
मुख जगत वल्लों मोड़ लवो'।

इस सन्दर्भ में आगे ग्रन्थ कहता है कि-

'मिथ्या घर विसारिया ते अपना आप सँवारिया'।

अर्थात् जगत की तरफ़ से मुख घुमा कर ईश्वर की तरफ़ करना है। निःसंदेह माया रचित प्रत्येक पदार्थ की आकर्षण शक्ति की तरफ़ आकृष्ट जीव के ख़्याल को ही फिर पुनः स्वतन्त्र करने के लिए विशुद्ध ध्यान बल की प्रबलता की आवश्यकता पड़ती है। इसी ध्यान बल की प्रबलता बनाने हेतु ही नाम-अक्षर चला कर, ख़्याल को अफुर अवस्था में ला, एकाग्रचित्तता से समरूपता में साध, आत्मप्रकाश के प्रभाव से, आत्मबोध कराने का प्रयत्न होता है। इसी प्रयत्न द्वारा ही जीव पाँच ज्ञानेन्द्रियों की भोग-प्रवृत्ति का दमन करके यानि टप्पा मारकर, ख़्याल को उनके तीव्र आकर्षण से बाहर निकाल लेता है और इस प्रकार उसे जगत के चलायमान दृश्यों की तरफ़ से मोड़ कर पुनः आत्मा में जो है परमात्मा उस संग जोड़ देता है। इस तरह शरीरी जीव अपने असलियत ब्रह्म स्वरूप में स्थित व स्थिर रहता है। अन्य शब्दों में ख़्याल अपने घर में पहुँच कर शांत हो जाता है जीव विचारवान बन विश्राम अवस्था में आ जाता है। इसी से उसका परमार्थ के निष्काम रास्ते पर बने रहना सहज हो पाता है। इसी संदर्भ में सजनों कहा गया है-

न लगाव हो, न झुकाव हो ख़्याल का,
ओजी ख़्याल का, दृश्यों की ओर
मानवता के उत्थान हेतु मोड़ लो,
मोड़ लो, मोड़ लो, ख़्याल साजन जी की ओर
श्री साजन की ओर, हाँ ईश्वर की ओर

जी मोड़ लो ख़्याल, श्री साजन की ओर
श्री साजन की ओर, हाँ ईश्वर की ओर

आओ अब प्रश्नोत्तर के माध्यम से ख़्याल के विषय में समझते हैं-

ख़्याल को परिभाषित कीजिए?

ख़्याल अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है कल्पना। ख़्याल जो भी कल्पनाएँ करता है, वह फर्जी यानि बनावटी होती हैं और बनती-बिगड़ती रहती हैं।

ख़्याल का उत्पत्ति स्थान कौन सा है?

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है 'दासी दे दिल विच ख़्याल जो आवे, विच संगता दे आ धमकान' इससे स्पष्ट होता है कि ख़्याल दिल में उपजता है।

ख़्याल की उत्पत्ति का कारण क्या है?

अहंता के रूप में द्वि-भाव की उत्पत्ति होते ही ख़्याल उपजता है तथा समभाव-समदृष्टि की युक्ति द्वारा अपने असलियत ज्योति स्वरूप में लय होते ही यानि भाव रहित होने पर इसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

एक आम मानव का ख़्याल किस के मध्य जकड़ा रहता है?

पाँच ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों के आकर्षण रसों के मध्य ही मुख्यतः यह जकड़ा रहता है। तभी तो ग्रन्थ कह रहा है कि 'पंज ज्ञान इन्द्रियां पंज कर्म इन्द्रियां, विच है ख़्याल तुम्हारा, मनुराज नूं छड के सजनों टप्पा मारो ज्ञान इन्द्रियां दा पावो स्थान हमारा'

ख़्याल की विशेषताएँ बताइए?

1. ख़्याल की गति बड़ी तीव्र है जिसके कारण यह इधर-उधर भटकता रहता है अर्थात कहीं भी आ जा सकता है। इस संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में निर्देश दिया गया है:-ख़्याल जिधर किधर न भज ओय।

2. गति से स्पष्ट होता है कि यह वायविक यानि वायु प्रधान है। इस सन्दर्भ में स्पष्ट कर दें कि वायु के गतिमान होने के कारण ही वस्तुओं में गतिशीलता आती है।

3. ख़्याल को जिधर चाहें स्वार्थ अथवा परमार्थ उधर जोड़ा जा सकता है। जुड़ाव की इसी विशेषता के कारण ख़्याल इन्द्रिय-रसों का रसपान कर फुरनों से ग्रसित हो अस्वच्छ भी हो जाता है व शब्द के साथ जुड़कर स्वच्छ तथा शनैः-शनैः अफुर होने पर विशुद्ध भी हो जाता है।

4. संकल्प-विकल्प के कुसंग में फँसा फुरनों से ग्रसित अस्वच्छ ख़्याल ही निकृष्ट ख़्याल है। ऐसा ख़्याल जीव की कठिन अवस्था को दर्शाता है।

5. शुभ विचारों व शुभ संकल्पों से युक्त स्वच्छ व निर्मल ख़्याल ही उच्च ख़्याल है। ऐसा ख़्याल जीव की नम्र अवस्था को दर्शाता है।

6. संकल्प-विकल्प से रहित अफुर विशुद्ध ख़्याल ही निर्विकार ख़्याल है। ऐसा ख़्याल जीव की वज्र अवस्था को दर्शाता है और सर्वव्यापक भगवान यानि यथार्थ का बोध होने से समभाव में स्थित रहता है।

7. ख़्याल की परिशुद्धता की कोई सीमा नहीं। यह सत्य के साथ जुड़ सत्यमेव हो जाता है। इसके सत्यमेव होने से बुद्धि, वृत्ति, स्मृति, आचार-विचार-व्यवहार सब सत्यमेव हो जाता है इसलिए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में ख़्याल की स्वच्छता एवं कंचनता बनाए रखने पर सर्वाधिक बल दिया गया है।

8. ख़्याल में प्रक्षेपण का अर्थात टप्पा मारकर भूमण्डलीय आकर्षण से बाहर निकलने का अद्‌भुत गुण है।

9. जहाँ ख़्याल होता है वहाँ ध्यान अवश्य होता है। ध्यान ही ख़्याल यानि कल्पनाओं का दृश्यांकन करता है। इसलिए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है कि 'जहाँ ख़्याल वहाँ दृष्टि (ध्यान)।'

10. ख़्याल एकाकार हो शून्यता को प्राप्त हो सकता है।

ख़्याल कैसा होना चाहिए ?

ख़्याल खालिस हो यानि उज्जवल हो, उच्च यानि उन्नत व महान हो, कमाल यानि परिपूर्ण व सर्वोतम हो व अफुर हो।

विचार ईश्वर आप नूं मान कर, शब्द के साथ जुड़कर, समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई अनुसार सजन-भाव में स्थिर होने वाला निर्विकारी ख़्याल ही अपनी असलियत स्वरूप की पहचान कर, उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल हो सकता है। इस परिप्रेक्ष्य में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है कि एकता हो गई उस सजन दी कमाल, फिर एक पकड़ो ओ विचार। फिर ओहदी उच्च बुद्धि ते उच्च ख़्याल, ओ सूरज चढ़ पिया जे।'

सब की जानकारी के लिए सतवस्तु में सभी सजनों का ख़्याल व ध्यान आत्म प्रकाश से जुड़ा होने के कारण इसी प्रकार स्वच्छ और उच्च होता है। फलतः उनके बुद्धि, वृत्ति, स्मृति, आचार-विचार-व्यवहार सब निर्मल होता है और जीवन सुखमय व शांत होता है। तभी तो ग्रन्थ कह रहा है कि 'सतवस्तु दी जनता आई होइए, कैसा सज रिहा सिंगार। ओन्हां दे स्वच्छ हैन ख़्याल, ओन्हां दे स्वच्छ हैन ख़्याल।'

वर्त्तमान युग में आज के मानव के ख़्याल की क्या दशा है ?

आज साधारण मनुष्य का ख़्याल मनुराज के चक्कर में फँसकर संकल्प-विकल्प के फुरने में फँस कर रह गया है जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य आधि-व्याधि यानि शारीरिक-मानसिक रोगों से पीड़ित हो तनाव व अवसादग्रस्त हो नाना प्रकार के रोगों का शिकार हो गया है। उसकी आरबला यानि आयु इन भयंकर रोगों का शिकार हो घट गई है। और तो और वह तो अब इस हालत में भी नहीं रहा कि अपने ख़्याल को पकड़ कर सही राह पर ला सके। इस विषय में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है कि 'ख़्याल डिग्गा संकल्प विकल्प विच तेरा, पा लिया गल जगह जगह दा झमेला। घर-घर दियां लाकां लैंदा ओ जेहड़ा।' साथ ही यह भी कहा गया है 'दुनियां दी घट गई आरबला, ओ किस तरह पकड़न ख़्याल।'

ख़्याल का जुड़ाव कहाँ हो?

जगत की कल्पना को छोड़कर, ख़्याल को ईश्वर यानि आत्म-स्वरूप के साथ जोड़ना है। तभी तो सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है 'सजनों ख़्याल महाराज नाल जोड़ लवो,

फुरने दी सृष्टि दे ख़्याल वल्लों मुख मोड़ लवो।'

ख़्याल को कंचन करने की युक्ति क्या है?

सर्वव्यापी भगवान पर सुदृढ़ यानि विचार ईश्वर अपना आप पर स्थिर बने रह कर अपने ख़्याल को हर समय शब्द के साथ जोड़े रखना है। इस प्रकार हर समय ख़्याल अपने घर में ठहरा रहे और अफुर अवस्था को धारण कर ले। इस हेतु अन्दर अक्षर निरंतर घड़ी की टक-टक की तरह चलाना है। इसी के साथ-साथ अपने स्वभावों को पकड़ते जाना है और अपनी सुरत को कंचन कर खालस सोना कर लेना है। इस संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है 'सुरत कंचन होवे, हो सुरत कंचन होवे, फिर नाम ते ध्यान किवें न होवे, भक्ति फिर शक्ति होवे, भक्ति फिर शक्ति होवे, फिर प्रेम ते मस्ती किवें न होवे, हो सुरत कंचन होवे।'

सुरत, यह क्या है?

सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है कि 'सुरत है अन्दर का ख़्याल यानि अपना प्रतिबिम्ब जो कि स्त्री भाव में नज़र आता है। यह सुरत महाराज जी के साथ बातें करती है। उनको कई तरीकों से रिझाती है, वहाँ शरीर का कोई सवाल नहीं।'

सुरत को कंचन कैसे करना है?

इस संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है कि 'जैसे-जैसे अपने स्वभावों को पकड़ते जावेंगे वैसे-वैसे सुरत कंचन होती जावेगी तब आपका घाटा पूरा होगा और आप

कामयाब हो सकेंगे। वरना यत्न करने पर भी आप कामयाब नहीं हो सकेंगे।' सुरत स्त्री है। वह महाराज जी के साथ मेल खा कर सब कुछ देख सकती है। जब आप महाराज जी के साथ मेल खा जावेंगे, तब फिर आप आकाशों आकाश, पातालों-पाताल देख सकेंगे। इस युक्ति पर चलने से आप पूरे कामयाब हो जावेंगे।

सुरत को कैसे देखना है?

पहले हम महाराज जी यानि परमेश्वर को देखने की कोशिश करें। जब हमने उनको देख लिया तो फिर देखें कि वह कौन है जो महाराज जी को देख रहा है, क्योंकि बाहर का शरीर तो सुन्न होता है। इस तरह से हमें अपनी सुरत नज़र आएगी।

सुरत को कौन सा श्रृंगार पहनना है?

संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म का।

सुरत कैसे श्रृंगारित होगी?

इस हेतु पहले देखें कि महाराज जी का श्रृंगार कैसे है, इस तरह हमारा घाटा पूरा होगा और हमारी सुरत दिन प्रतिदिन चमकती जाएगी। याद रखो संकल्प को सजन और संगी बनाने से सुरत संतोष रूपी दिव्य गुण से श्रृंगारित हो जाएगी। जैसे-जैसे हम अपने स्वभावों को पकड़ते जाएंगे, वैसे-वैसे हमारी सुरत कंचन हो चमकने लगेगी और धैर्य रूपी दिव्य गुण से श्रृंगारित हो जाएगी। इस संदर्भ में ग्रन्थ में कहा गया है 'स्वभावां वल्लों जित्त पा लवो सजनों,

स्वभावां वल्लों जित्त पाओ, फिर धैर्य दा पा लिया सिंगार, सुरत हो गई ओ कंचन'। इसी तरह जब सच जबान, सच ह्रदय यानि सत्य को धारण कर उसका वर्त्त-वर्त्ताव करने से शरीर रूपी मकान सचखंड बन जाएगा तब सुरत सच्चाई रूपी दिव्य गुण से श्रृंगारित हो जाएगी। फिर महाराज के नैनों के साथ नैन मिला कर जो मन मन्दिर सोई जग अन्दर, मुकम्मल एहो दृष्टि दिखाने से सुरत धर्म रूपी दिव्य गुण से श्रृंगारित हो जाएगी। बस फिर सम अवस्था से आत्मिक ज्ञान अनुसार आत्मीयता का वर्त्त-वर्त्ताव करते हुए निष्काम भाव से परउपकार में प्रवृत्त रहेगी।

सुरत के संदर्भ में सजनों सच्चेपातशाह जी कहते हैं कि सुरत एक छोटी नदी की तरह है। जैसे नदी को सागर से मिलने की चाह होती है तो वह अपने अन्दर सब कुछ बहाती हुई यानि किसी चीज़ की परवाह न करती हुई सागर की ओर बढ़ती है और दरिया का रूप धारण कर, हड़-तूफान की परवाह न करती हुई सागर से जा मिलती है, उसी तरह सुरत भी भक्ति करके संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म को धारण करते हुए, अन्दर प्रभु की ओर बढ़ती है। फिर सुरत महाराज जी के श्रृंगार में आ जाती है। फिर सर्गुण में हकूमत की कुर्सी तक पहुँच जाती है और महाराज जी के साथ रानी फिर महारानी बनके चालें पकड़ती हुई मेल खा जाती है और दासी भाव से दास भाव में आ जाती है। आप सब भी इस उत्तम अवस्था को प्राप्त कर सको इस हेतु सजनों कष्ट-क्लेशों से मत घबराओ न ही किसी अविचारी के पंजे में आओ। इस विषय में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में परमेश्वर कह रहे हैं कि 'जिन्हुं मेरे मिलने दी होइए चाह, स्वभावां वल्लों ख़्याल नूं लवे ओ हटा।' इस हेतु

यत्न करो कि कार्य व्यवहार करते हुए भी हमारा ख़्याल महाराज जी के साथ जुड़ा रहे अर्थात् अक्षर का अजपा जाप चलता रहे। इस तरह एक ख़्याल हो जाएगा। एक ख़्याल हो जावे फिर महाराज जी नाल मेल एहो खावे। इस के लिए सजनों मौन की वृत्ति अपनाओ क्योंकि मौन का नतीजा है विश्राम। तभी तो ग्रन्थ कह रहा है 'जिह्वा गल बात उल्टे, फिर ख़्याल नूं पलटा खवाओ, हम हैं सजन तुम हो सजन, एहो नवीन पोशाक सजनों पाओ'। इस तरह 'जिह्वा सजन ख़्याल सजन, सजन नज़रों में पहचान, हम हैं सजन तुम हो सजन, सजनों सजन सजन ही मान' अर्थात् सबको एक ही मानो और परस्पर सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव करते-करते हमारा ख़्याल पूर्ण रूपेण समभाव हो जाए। आओ अब जानें कि ख़्याल को स्वच्छ रखने के लिए क्या सावधानी लेनी आवश्यक है?

इस जगत में विचरते हुए अपने ख़्याल को स्वच्छ रखने के लिए क्या सावधानी लेनी आवश्यक है?

अपने ख़्याल को संकल्प कुसंगी से सदैव बचा कर रखना है। सतर्क रहना है कि ख़्याल में सदैव सकारात्मक भाव ही उपजें और उन्हीं को महत्त्व देना है। ऐसे भाव जो अन्दर नकारात्मकता या हीन भावना पैदा करें उन्हें उठने नहीं देना। इस हेतु अपने अन्दर उठने वाले प्रत्येक ख़्याल की विचार शब्द द्वारा परख करनी है और यह सुनिश्चित कर लेना है कि वह स्वार्थ पूर्त्ति की इच्छा से परे सबके लिए हितकारी हो। याद रखना 'पिछली जो गुज़री जो बीती विहाणी - ख़्याल विच न बात ओ लियाओ' अर्थात् हमें पिछली बातों को भूलना है

क्योंकि वे हमारे ख़्याल को कभी भी स्वच्छ नहीं होने देंगी और सदैव झुखाती रहेंगी। ख़्याल में किसी के बारे में बुरा नहीं सोचना, न ही व्यर्थ की सोच में समय बरबाद करके ख़्याल को इधर-उधर भटकने का अवसर प्रदान करना है अपितु यत्न यह करना है कि हर घड़ी, हर पल, ख़्याल शब्द के साथ जुड़ा रहे। तभी तो ग्रन्थ कह रहा हैः- 'साजन जी जिह्वा कर जावे उन्हां दी चुप, फिर ख़्याल न राहवे सोचां विच। इक आप इक सजन जाणी, इक इक सारा सजन पहचानी।' इस तरह सावधान रहना है कि हमारे अन्दर भूलकर भी 'वड छोट का ख़्याल न आवे, यह भी ख्याल न आवे कि मैं कोई चीज़ हूँ।' साथ ही सतर्क रहना है कि ख़्याल में कोई खेद न होवे। इस के लिए अपने हृदय को अर्जुन वाला पात्र बनाना है ताकि विचार शब्द हर परिस्थिति में अन्दर ठहरा रह सके और कोई चोट न लगे। इसके लिए हमें यह सुनिश्चित करना है कि हमारा ख़्याल सम अवस्था में हर पल ठहरा रहे और उस अवस्था से किंचित् मात्र भी डोलायमान न हो। यही तो सर्वोत्तम पुरुष की तरह, समभाव नज़रों में कर, समदृष्टि हो परस्पर सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव करने की बात है।

प्रतिक्षण अपने ख़्याल पर पहरा देना क्यों आवश्यक है?

ताकि वह भूल से भी मायावी दृश्यों के आकर्षणों में बंधनमान हो, काम-क्रोध-लोभ-मोह अहंकार के वश में न चला जाए यानि फुरनों में न जकड़ जाए। इस हेतु नित्य प्रति अपनी जाँचना-तुलना करनी है और तुल खड़ोना है। इस प्रयत्न से ख़्याल निरंतर स्वच्छ बना रहेगा। इस संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है कि एक-एक कदम पर अपनी तुलना

करनी है कि कोई ऐसा गलत कदम न उठे या कोई ऐसा ख़्याल जगह न कर जावे जिस में समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई का उल्लंघन हो जावे। इस हेतु विचार शब्द के महामन्त्र को हर समय सामने रखना है। ऐसा करने पर ही ख़्याल हर समय अफुरता से प्रकाश में ठहरा रहेगा।

ख़्याल के प्रकाश में ठहरे रहने से क्या होगा?

सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है कि 'ख़्याल आप का महाराज जी के साथ जुड़ जाये तो रोना मिट जायेगा' अर्थात् जो सजन ख़्याल को ध्यान वल और ध्यान को प्रकाश वल जोड़ कर अपने असलियत स्वरूप में आजीवन ठहरे रहते हैं वे संकल्प पर फ़तह पा कर रोने-झुखने से आज़ाद हो जाते हैं यानि दूसरे ख्यालों का नामो निशान नहीं रहता और वह सजन अपना जीवन बना कर जीवनमुक्त हो जाते हैं। साथ ही सजनों यह ग्रन्थ यह भी कह रहा है 'ख़्याल हर वक्त प्रकाश नाल जुड़िया ओ राहवे, आवे युवावस्था नाले ओ बल दी प्राप्ति, शक्ति वल्लों ताकतवर हो जावे' अर्थात् इस तरह सजन समभाव-समदृष्टि हो पूर्णतः ताकतवर हो जाएगा यानि 'एक ख़्याल, एक दृष्टि, एक दृष्टि, एक दर्शन हो जाएगा।' यानि ख़्याल ध्यान इस्थर हो अपने घर में चला जाएगा और जीव विश्राम पा जाएगा। याद रखो सजनों ' इन्सानों जैं जीवन बनाया अपना, आ-आ-आ-आ जैंदे छुट गये सारे ख़्याल सजनों। ओहदी जोत जगे निर्वाण दे अन्दर, ते जग रही जे ओ कमाल सजनों।' इसीलिए सजनों यत्न करके ख़्याल ध्यान वल ध्यान प्रकाश वल जोड़ो ताकि प्रकाश हो जाये। जहां ख़्याल है वहां दृष्टि रखो। इस तरह बातचीत करते समय ख़्याल उसी प्रकाश में ठहरा रहे। इस प्रकार बातचीत करने

से मुस्कराहट आएगी, बदन प्रफुल्लित होगा, हृदय खिड़ेगा और मुख चमकेगा। इस प्रकार आनन्दमय जीवन जीते हुए एकता, एक अवस्था में बने रहोगे। इस संन्दर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार सजनों याद रखोः-

सजनों एहो तरीका है जे मेल खावने दा,
फिर जीवन अपना बना लीजिए।
ज्योति स्वरूप और पारब्रह्म परमेश्वर,
फिर रौशन नाम अपना कीजिए।।

अभी हमने जाना कि ख़्याल को ध्यान वल रखने के प्रयत्न में कैसे कामयाब होना है आओ ख़्याल के पश्चात् अब ध्यान के विषय में जानते हैं, कि यह ध्यान क्या है-

यह तो सर्व विदित ही है कि हम अपने जीवन में ध्यान शब्द का प्रयोग आमतौर पर इस प्रकार से करते हैं कि ध्यान से देखें, ध्यान से कार्य करो, ध्यान से सुनो, ध्यान से बोलो। यह भी सबको पता ही है कि सबसे पहले देखने के कर्म से यह ब्रह्मांड हमारी दृष्टि को दिखता है और फिर जो दिखता है अगर उसको ध्यान से देखा जाए तो उसके सत्य-असत्य की यानि यथार्थ की समझ आती है। फिर इसी ध्यान अवस्था से धारण किया हुआ हमारे ख़्याल में बुलता है, ठहरता है और इस ग्रहण क्रिया के उपरान्त वह हमारी जिह्वा के प्रयोग से, मुख से बुलता है और हमारे जीवन कर्म में कार्यान्वित हो हमारी ध्यान क्रिया के संतुलन को बनाए रखता है। अन्यथा वह क्रिया टूट जाती है और हमारा मन, वचन, कर्म भ्रमित हो, अज्ञान रूप धार लेता है। यहाँ समझने की बात सजनों यह है कि ध्यान क्रिया के संतुलन का बने रहना जहाँ स्वनिर्माण का

सूचक होता है, वहीं इस क्रिया का भंग होना, आत्मंसहार करने के समान हानिकारक सिद्ध होता है क्योंकि अगर ग्रहण क्रिया के मध्य अवरोध उत्पन्न हो जाता है तो इंसान को उस बात व विषय की सत्यता समझ नहीं आती और उसके लिए उस परिस्थिति से उबरना कठिन हो जाता है।

इस संदर्भ में हर सजन अपने आप को देखे कि ईश्वर ने उसे यह ब्रह्मांड, देखने के लिए आँखे दी हैं और अन्दरूनी ब्रह्मांडों की अनुभूति के लिए अन्दरूनी वृत्ति, अन्दरूनी दृष्टि दी है। अब अपनी स्थिति को समझने का यत्न करना है कि क्यों कर हम बैहरूनी ब्रह्मांड को तो देख सकते हैं परन्तु अन्दरूनी ब्रह्मांड हम देख नहीं पाते?

ऐसा इसलिए होता है क्योंकि हमारी दृष्टि बैहरूनी वृत्ति में कुदरत के कुछ नियम पालन करती है पर अन्दरूनी वृत्ति में हमारी दृष्टि इन नियमों को जानते हुए भी नहीं अपनाती या उन का उल्लंघन किए रहती है। याद रखो ध्यान क्रिया देखने की क्रिया है। बैहरूनी वृत्ति में हमारी दृष्टि सूर्य यानि प्रकाश स्त्रोतों से प्रकाश ग्रहण कर देखती है और जिस प्रकाश में रहकर हमारी दृष्टि देख रही है, उस प्रकाश की गहनता के अनुसार हमारी देखने की क्रिया, देखने वाले ब्रह्मांड की स्पष्टता समझ पाती है। अगर हम अंधकार में बैठ जाएं तो बैहरूनी वृत्ति में भी कुछ दिखाई नहीं देता या फिर प्रकाश में बैठे हुए भी आँखें मूंदे रखें तो भी ब्रह्मांड दिखाई नहीं देता। यही स्थिति हमारी अन्दरूनी वृत्ति, अन्दरूनी दृष्टि की है।

अब देखना यह है कि अन्दरूनी वृत्ति में हमारी अन्दरूनी

दृष्टि के पास प्रकाश ग्रहण करने का स्रोत कहाँ है? वह स्रोत शरीर में ही अति सूक्ष्म, परन्तु अति तेजोमय, हमारी आत्मा को संजोए, हमारे शरीर के हर तंत्र को अपने प्रकाश द्वारा, हर अंग को उचित तापमान प्रदान करता हुआ, हर क्षण, हर पल सदा सूर्यों के सूर्य की तरह प्रकाशित रहता है। जो सजन मनुष्य जीवन के परम अर्थ को समझ लेता है, वह अपनी अन्दरूनी दृष्टि हर क्षण उस प्रकाश के दायरे में केन्द्रित रखता है और फिर अन्दरूनी दृष्टि की अन्दरूनी वृत्ति में प्रकाश ग्रहण क्रिया आरम्भ हो जाती है जिससे अन्दरूनी ब्रह्मांड दिखने लगते हैं।

ज्यों-ज्यों अन्दरूनी दृष्टि प्रकाश से प्रकाश स्रोत की ओर घूमती जाती है, त्यों-त्यों और उतनी-उतनी ही अन्दरूनी ब्रह्मांडों को देखते हुए, समझते हुए उनको पार कर, अंतिम चरम स्रोत पर ठहर जाती है। इस तरह सम्पूर्ण कुदरत प्रकाशित हो उठती है। यह क्रिया ठीक प्रकार से फलीभूत हो उसके लिए अन्दरूनी वृत्ति में ध्यान अवस्था की अत्यन्त आवश्यकता होती है क्योंकि जितना ध्यान से देखेंगे, उतना अपना सत्य, ब्रह्मांडों का सत्य, कुदरत और कुदरत के वाली का सत्य, स्पष्टता से समझ आएगा और हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ अर्थात् मन-वचन-कर्म सत्यमेव हो उठेंगे। यहाँ सजन अपने जन्म की बाज़ी को जीत लेता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

हरदम ध्यान मैं लावां तेरा,
हटी विसूचिका मिट गया अंधेरा
साथ ही यह भी कहा गया है कि

साजन जी जैं ध्यान साडे वल लाया,
उसने सब कुछ साडे कोलूं पाया
असां बिन सूरजों प्रकाश दिखाया,
फिर उस मेल साडे नाल खाया

याद रखो यह सब करने के लिए दृष्टि की कंचनता अति आवश्यक है क्योंकि कंचन दृष्टि ही प्रकाश स्रोत से ठीक प्रकार से प्रकाश ग्रहण कर सब स्पष्टता से देखने में सक्षम बनी रह सकती है। अतः सजनों 'नाम ध्यावो भैणां कीचड़ लहावो बिन दागों तुसीं चोला पावो' अर्थात् 'अत्यन्त नाम वल ध्यान धरो, जन्म अपना हुण आज़ाद करो, सतवस्तु दा सजनों साज करो, ओहदी ताकत अजब निराली है। इस सन्दर्भ में आओ अब प्रश्नोत्तर के माध्यम से जानते हैं कि ध्यान क्या है?

ध्यान शब्द को परिभषित कीजिए?

1. ध्यान किसी बात या कार्य में मन के लीन होने की क्रिया, दशा या भाव है यानि चंचल चित्त/मन के पूर्ण रूप से नियन्त्रित होने की स्थिति को ध्यान कहते हैं।

2. ध्यान चित्त की ग्रहण या विचार करने की वृत्ति या शक्ति है।

3. ध्यान बोध या ज्ञान कराने वाली वृत्ति या शक्ति है जो मन की स्थिरता और चित्त की अडौलता सुनिश्चित कर मानव की बुद्धिशुद्ध रखता है क्योंकि मन की अस्थिरता और चित्त का डॉवाडोल होना बुद्धिभ्रम दर्शाता है यानि किसी वस्तु को और का और समझना जो मिथ्या ज्ञान या धोखा कहलाता है।

4. ध्यान चेतना की वृत्ति चेत है। चेत द्वारा मानव सदा होश में रहता है और उसका ख्याल सदा परमेश्वर के साथ जुड़ा

रहता है, इधर-उधर नहीं भटकता। फलस्वरूप मानव अपने असलियत ज्योति स्वरूप में स्थित रह इस जगत में विचरता है। यहाँ यह जानना आवश्यक है कि मानव का शरीर अपने आप में जड़ है और उसके हृदय स्थित आत्मा चेतन है तथा ध्यानी चेतना यानि ज्ञानात्मक मनोवृत्ति द्वारा ही अपने विचारों को स्थिरता प्रदान कर सकता है और चित्त को एकाग्र रख सदा आनंदित रह सकता है।

5. ध्यान चित्त की एकाग्रता है यानि चित्त की एकाग्रता के साथ, किसी के स्वरूप के चिंतन से भी लिया जाता है अर्थात् जिस ध्येय वस्तु में लगाया जाय, उसी में उसका एकाग्र हो जाना एवं बीच में किसी अन्य वृत्ति का न उठना ध्यान कहलाता है। चित्त की एकाग्रता विचार की स्थिरता को दर्शाती है यानि ध्यान का जमना। इससे मानव विचारवान की तरह अति सावधानी से इस जगत में विचरता तो है पर जगत के विषयों या दृश्यों में फँसता नहीं।

6. ध्यान मानस अनुभूति या मानसिक प्रत्यक्ष है। हमारे ऋषि-मुनि ध्यान के माध्यम से बाह्य इन्द्रियों के बिना भी वस्तु को प्रत्यक्ष कर लेते थे। इस प्रकार ध्यान द्वारा मानव किसी वस्तु का सूक्ष्मतया ऐसा पूर्णज्ञान प्राप्त कर सकता है जिस पर भरोसा रख वह उसका न्यायसंगत इस्तेमाल कर सकता है। ऐसे मानव को किसी वस्तु का भेद जानने में अथवा अंतर का ज्ञान प्राप्त कर विशुद्ध अंतःकरण रखने में कोई कठिनाई या और यत्न की आवश्यकता नहीं रहती। याद रखें जिसका अंतःकरण विशुद्ध होता है उसकी दृष्टि अपने आप कंचन हो जाती है और जिह्वा स्वतः स्वतंत्र हो जाती है।

7. ध्यान अंतःकरण में उपस्थित करने की क्रिया या भाव है। अंतःकरण भीतर की वह इन्द्रिय है जो संकल्प-विकल्प, निश्चय, स्मरण तथा सुखदुखादि का अनुभव करती है। ध्यान मन में उठने वाले संकल्पों-विकल्पों और उन संकल्पों-विकल्पों पर बुद्धि द्वारा लिए हुए निश्चयों और बुद्धि द्वारा लिए गए निश्चयों के संदर्भ में चित्त के किसी देखी-सुनी अथवा बीती हुई बात की याद यानि स्मरण को तथा उस स्मरण से सृष्टि के पदार्थों या दृश्यों के साथ अपना संबंध देख/जोड़ कर, इन सब को अंतिम परिणाम सहित अंतःकरण में उपस्थित करने का कुदरती नियम है।

8. ध्यान, धारणा और समाधि के बीच की अवस्था है। ध्यान जब चरमअवस्था को पहुँच जाता है तब समाधि कहलाता है जिसमें ध्येय के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह जाता। याद रहे धारणा वह शक्ति है जिससे कोई बात मन में धारण की जाती है और समाधि प्राणियों की वह अवस्था है जिसमें उनकी संज्ञा तथा चेतना नष्ट हो जाती है और वे कोई शारीरिक क्रिया नहीं करते तथा सदा ईश्वर के ध्यान में मग्न रहते हैं। हम कह सकते हैं कि ध्यान करते-करते चित्त जब ध्येयाकार में परिणत हो जाता है, तब उसके अपने रूप/स्वरूप का अभाव सा हो जाता है यानि उसकी ध्येय से भिन्न स्थिति नहीं होती, उस समय ध्यान का नाम समाधि हो जाता है। सामान्य व्यवहार में ध्यान शब्द मनन, स्मृति, विमर्श, सोच, विचार इन अर्थों में प्रयुक्त मिलता है। ध्यान के लिए आवश्यक है कि इष्ट की चिन्तन प्रक्रिया में सातत्य बना रहे एवं चिंतन क्रिया के घातक तत्त्वों जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार का अभाव हो।

जैसा कि आपने कहा कि ध्यान शब्द से तात्पर्य चित्त की एकाग्रता के साथ, किसी के स्वरूप के चिंतन से भी लिया जाता है, इस संदर्भ में क्या सावधानी लेने की आवश्यकता होती है?

इस प्रति विचार शब्द के अनुसार ध्यानी को ध्येय अर्थात् लक्ष्य, जिसका ध्यान किया जाए, उसके ज्ञानरूप से पहले से ही भली-भांति, अपने आप को अवगत करा लेना चाहिए। कहने का अर्थ यह है कि ध्यान अवस्था आरम्भ करने से पहले अपने उद्देश्य के प्रति, विवेकपूर्ण चुनाव अर्थात् ध्येय चाहे वह स्वरूप हो, चाहे वह वस्तु विशेष हो या कोई शब्द हो, उसके गुणों से परिचित हो जाना चाहिए कि वह किस प्रकार हमारे जीवन को उन्नति, बल और शान्ति प्रदान कर सकता है। इस क्रिया से स्पष्टता बन जाती है कि ध्येय, ध्यान की स्थिरता बनाने में, साधे रखना उपयुक्त है या नहीं यानि हमारी ध्यान अवस्था का लक्ष्य किस कोटि का है यह समझना आवश्यक है। अतः हकीकत में ध्यान क्रिया से पहले निर्धारित ध्येय ध्याने योग्य है कि नहीं, इसको समझना है, जानना है। जो भी सजन इस प्रकार से ध्यान क्रिया को आरम्भ करता है उसके लिए यह क्रिया अति सरल और अत्यन्त लाभप्रद होती है। इस संदर्भ में सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है-

जेहड़ा है नाम ओही ध्यान लगावेगा,
ओ सजन इन्सान अपनी असलियत नूं पावेगा
रूप रंग न रेखा राहवे, ओ ज्योति स्वरूप हो जावेगा
आद अंत ओही प्रकाशे सर्व सर्व ओही ओ सुहावेगा,
ओही ओ सुहावेगा।

ध्यान किस का हो?

सच्चेपातशाह जी कहते हैं कि ध्यान उसी नाम को हो जो आपने लिया हुआ है यानि जो नाम वहीं ध्यान होवे।

उसी में स्थिर होकर अक्षर हृदय में चलाते रहें। अर्थात् ध्यान महाराज जी की तरफ़ हो, शब्द चलता रहे, फुरना न ठहरे। इस तरह घर का सब कार्यव्यवहार करते हुए हर समय ध्यान प्रभु के चरणों में जुड़ा रहे और टूटने न पावे। सच्चेपातशाह जी के वचनानुसार सब सजन ध्यान पक्का करें। महाराज जी को अंग-संग रखें। इस तरह ध्यान ज्यादा हो और जुड़ा रहे। याद रखो जो सजन श्री शहनशाह हनुमान जी के वचनों की पालन करते हुए नाम, ध्यान और निष्काम रास्ते को पकड़ लेते हैं उस सजन के संकट दूर हो जाते हैं। तभी तो सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है-

उस ईश्वर दे तूं गुण गा लै, उस ईश्वर दा ध्यान लगा लै?

इस संदर्भ में यह भी याद रखना कि किसी भी शरीरधारी का ध्यान लगाना मिथ्या है। अतः शरीरधारियों की ओर से दृष्टि एकदम हटानी है और महाराज जी के साथ दृष्टि जोड़नी है। शरीरधारियों का ध्यान लगा-लगा कर सागर के दरम्यान खड़े हो गए हो और दूसरे किनारे नहीं पहुँच सकते। अतः सतर्क रहें कि कोई भी शरीरधारी ध्यान में और निगाह में न लाएँ। इसी तरह तस्वीरों व मूर्तियों का ध्यान लगाकर उनकी पूजा व मानता भी नहीं करनी।

ध्यान जुड़ा रहा तो क्या होगा?

पति परमेश्वर प्रसन्न हो जावेंगे और रोता हुआ इन्सान हँस पड़ेगा।

ध्यान के लिए आवश्यक तत्व क्या हैं?

ध्यान के लिए मन/चित्त की एकाग्रता अत्यंत आवश्यक है, अर्थात् मन को जिस ध्येय वस्तु में लगाया जाये, उसी में उसे एकाग्र होना चाहिए। व्यावहारिक जीवन में भी, जीवन के हर क्षेत्र में और हर कार्य के लिए मन की एकाग्रता को स्वीकार किया गया है। जीवन का कोई भी कार्य जब तक पूर्ण मनोयोग से न किया जाये, उसकी सफ़लता संदिग्ध रहती है। समाज में चाहे डाक्टर हो, इंजीनियर हो, अध्यापक हो, सीमा पर तैनात सैनिक हो, कोई कार्यरत कर्मचारी हो अथवा किसी कार्य से जुड़ा हुआ कोई और व्यक्ति हो, जब तक उसका पूरा-पूरा ध्यान अपने कर्त्तव्य कर्म पर केन्द्रित नहीं रहता, उस कार्य के शुभ परिणाम प्राप्त नहीं हो सकते। कभी-कभी तो अपने कर्त्तव्य को ध्यान से निष्पादित न करने के परिणाम अनर्थकारी भी हो सकते हैं। अतः अपने कार्य पर पूरा ध्यान केन्द्रित करना अपने कार्य को पूरा सावधानी/संजीदगी से पूरा करना नैतिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय सभी दृष्टियों से अनिवार्य है।

ध्यान स्थिर करने के लिए अनिवार्य तत्त्व क्या है?

आत्म-नियंत्रण। इस हेतु चंचल मन को वश में करना महत्त्वपूर्ण है।

आत्म-नियंत्रण से क्या तात्पर्य है?

इसके लिए चंचल मन को हर स्थिति में वश में रखना है, क्योंकि मन यदि वश में नहीं है, तो ध्यान की स्थिति तक पहुचँना संभव नहीं है। इस संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-संसार दे वल मन जल्दी जावे, परमार्थ दे वल ध्यान न लावे' इस संदर्भ में गीता में अर्जुन ने श्री कृष्ण से इस सम्बन्ध में अपनी असमर्थता स्वीकारते हुए कहा कि मन बड़ा चंचल, क्षोभ उत्पन्न करने वाला, बलवान एवं दृढ़ होता है। इसे वश में रखना वायु को रोकने के समान अत्यंत दुष्कर कार्य है। इस पर अर्जुन को समझाते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं, यह सत्य है कि मन चंचल एवं कठिनाई में आने वाला है, किन्तु अभ्यास एवं वैराग्य भाव से वह वश में हो जाता है।

मन को नियंत्रित करने में बाधक तत्त्व कौन से हैं?

मन को नियंत्रण करने में बाधक तत्त्व हैं काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मत्सर। इनमें से मन को अनियन्त्रित करने के लिए एक काम तत्व ही पर्याप्त है, फिर इन सब की संगठित शक्ति का तो क्या कहना। वह तो कहर भी ढा सकती है। चंचल मन को वश में न करने के कारण ही विश्वामित्र जैसे महार्षि भी बार-बार फिसलते रहे। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है कि-

'ऋषि विश्वामित्र राजऋषि, श्रेष्ठऋषि, उत्तमऋषि और महाऋषि तो हो गए लेकिन ब्रह्मऋषि न हो सके, वह यत्न तो लड़ाते थे लेकिन फिर गिर जाते थे। आखिर में जब उन्होंने काम को जीता तो फिर वह ब्रह्म ऋषि की पदवी पर पहुँचे। इसलिए सजनों को चाहिए कि गृहस्थ आश्रम में रहते हुए आहिस्ता-आहिस्ता अपनी इन्द्रियों पर कन्ट्रोल करके काम

पर फतह पानी है।'अतः याद रखो कि ध्यान में क्रोध, लोभ, मत्सरादि ईश्वर भिन्न गुणों को दग्ध करने की क्षमता होती है।

ध्यान के निषेधक तत्त्व कौन से हैं?

तन-मन व चित्त की चंचलता, इन्द्रिय चपलता, हाँफती साँस, उच्छवास आदि इसके निषेधक तत्त्व हैं जबकि मौन ही इसका-इनके विपरीत-उत्तम सहचर है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है कि वृत्ति मौन की होनी चाहिए। मौन का नतीजा है विश्राम।

ध्यान की कसौटी क्या है ?

मन-चित्त की एकाग्रता। यदि मन-चित्त एकाग्र हैं तो ख़्याल इधर-उधर कहीं भटक नहीं सकता तथा विघातक तत्त्वों से विमुक्त रहता है। अतः ध्यान में अवरोध उत्पन्न हो ही नहीं सकता।

ध्यान की स्थिरता, सफलता प्राप्ति के लिए अनिवार्य है, स्पष्ट करो ?

याद रखो जीवन में किसी भी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ध्यान को हर स्थिति में एक निश्चित बिंदु यानि विषय विशेष पर केन्द्रित रखना आवश्यक है। इस प्रकार सांसारिक जीवन में किसी भी रूप में अपनी भूमिका का निर्वाह करते हुए मानव का मन-चित्त स्थिर हो जाता है और ख़्याल अफुर हो जाता है। यही उसके लिए जीवन के हर क्षेत्र में सफलता का मार्ग प्रशस्त करता है। अतः हम कह सकते हैं कि ध्यान की स्थिरता सफलता प्राप्ति के लिए अनिवार्य है।

स्पष्ट है सजनों कि ध्यान के अभ्यास से व्यक्ति का तन-मन संयमित होता है। तन-मन के संयम से वाणी और विचार भी गूढ़-गहन होते हैं। चंचलता, द्वैत, दुविधा, वैमनस्य सब चित्त-विकार दूर होकर चिंतन स्थिर और प्रगाढ़ बनता है और जो व्यक्ति आचार-विचार और चिंतन में संयमी होता है, वही ज्ञानवान, विद्वान और मनीषी बनता है। ज्ञान से विज्ञान और विज्ञान से आध्यात्मिक आनन्द मिलता है, जिसकी अभिलाषा सजन सत्पुरूष करते हैं। यही पराज्ञान कहलाता है। याद रखो सजनों जिस प्रकार शोधा हुआ स्वर्ण (संपूर्ण) मल को त्याग कर अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार मन ध्यान के द्वारा सत्व-रज-तम रूप मल को त्यागकर आत्म तत्त्व को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार स्थिर ध्यान मानव ही सदा जाग्रत या सचेतन अवस्था में अफुर बना रह विवेकबुद्धि द्वारा सदा निष्कामता से पुण्य कर्म कर सकता है।

ध्यान की मानव जीवन में इसी महानता को सतयुग के मानव भली-भांति जानते थे तभी तो वे उत्तम प्रकृति वाले, सत्वगुणी, सदाचारी व धर्मात्मा बने रह सके और अपनी भावी पीढ़ियों को भी ध्यान धरने की क्रिया में आत्मज्ञान द्वारा पारंगत बनाना उन्होंने अपना परम कर्त्तव्य समझा। यही कारण था कि तब सभी मानव अपने जीवन का संचालन, ध्यान द्वारा उचित दिशा में करने के योग्य बन सके और सत्यनिष्ठ व धर्मपरायण बने रह एक सुदृढ़ संस्कृति की स्थापना कर सके। तभी तो वे अंतर्मुखी मानव अंतःकरण में स्थित होकर प्रेरणा देने वाले सत्य को जान सत्कर्म करने वाले यानि सुकर्मी बन पाए।

अंततः सजनों हम तो सच्चेपातशाह जी कि यही बात

दोहराएंगे कि भगवान मिलते हैं विश्राम से और ध्यान से। अतः सब सजन नाम-अक्षर खूब चलावें और महाराज जी का ध्यान लगावें ताकि जिस खातिर नाम लिया है, महाराज जी का प्रकाश हो जावे और सब एक चमत्कार में खड़े हो जावें। इसलिए हे इन्सान-

इंसान है इंसानी दिखा,
इंसानी दिखा कुर्बानी दिखा,
कुर्बानी दिखा फिर नाम चला।
नाम चला फिर ध्यान लगा,
फिर कंचन हो के आ
फिर तूं साडे दर्शन पा,
ज्योति स्वरूप नाम कहलवा
बिन सूरजों अपने प्रकाश नूं तूं पा

आपको जानकारी के लिए परमपद प्राप्त करने हेतु हमें किस प्रकार अपनी जाँचना-तुलना करते हुए, कदम-कदम पर विचार पकड़ना है, इसके विषय में अगले सप्ताह बताया जाएगा।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 10 अप्रैल 2016 का सबक

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्म-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

विचार

सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ सजनों कह रहा है कि समय बीतता जा रहा है, विचार शब्द को पकड़ो और कलुकाल के अविचारी भाव-स्वभाव छोड़, सतवस्तु के स्वभाव अपना कर, इन्सानियत दिखाओ। इस तरह जीवन लक्ष्य प्राप्त कर ईश्वर के सपुत्र कहलाओ।

समय बीत गया, समय आ रिहा,
समय दे मुताबिक समय आसी, ओ आसी
बातचीत इन्सानां नूं समझन विच तां ओ आसी,
ओ आसी समय मुताबिक समय अनुसार

विचार शब्द जो पासी ओ पासी
जीवन उसने बना ही लिया,
ओ रौशन नाम कहासी ओ कहासी।

सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार, इन दो वर्षों के अन्तराल में, इस समभाव-समदृष्टि के स्कूल में अभी तक जो भी हमने सजन-भाव की पढ़ाई के बारे में जाना-समझा उससे हमें यह एहसास हुआ कि, विवेकशीलता से सम्पन्न, ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट कृति, मानव होने के नाते, हमारे लिए सदैव अपने पूर्ण ज्योति स्वरूप होने के सत्य को स्वीकारना व समझना अनिवार्य है क्योंकि हमारे नश्वर शरीर का रोम-रोम, रग-रग, हद-हद, पब-पब, परिपूर्णता से इस मूल तत्व यानि ब्रह्म सत्ता, से भरा हुआ है।

यही मूल तत्व हमारी मनुष्य अवस्था का आधार है। इस अवस्था में बने रह मनुष्य हर तरह से दोष रहित व निरपेक्ष नित्य भाव में बना रह पाता है। इसी मूल तत्व में ही हृदय को आनन्द-पूर्ण वातावरण प्रदान करने वाली प्रवाहित मानवीय विचारधारा प्रणव शब्द रूप में स्थित है व सर्वत्र गुंजायमान है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

ओ३म् रटे निष्कामी,
ओ३म् रटन ब्रह्मज्ञानी।
ओ३म् दा विचार जी,
जपो ओ३मकार शब्द ओ३मकार जी।

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार इस आद् प्रणव में रूप, रंग, रेखा से रहित 'परमात्मा विशेष भी है, निर्लेप भी है और चार-वेद, छः शास्त्रों का भी इसी शब्द रूप में प्रकाश है।

इसीलिए तो यह ग्रन्थ हमें कह रहा है-

हो हो हो गुरु ग्रन्थ गुरु वाणी गुरु शब्द हो हो हो विचार करो सजनों प्रबल।

अतः मानव-धर्म में सुदृढ़ बने रह जीवन उद्देश्य की सिद्धि करने हेतु एक मनुष्य के लिए इस जगत में रहते हुए, एकाग्रचित्तता यानि ध्यान-धारणा शक्ति द्वारा आत्मप्रकाश में स्थित रहते हुए, हृदय वेद-विदित इस यथेष्ट विचारधारा को ग्रहण करने का विधान है। इस संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

पवित्र वाणी किसे विरले ने पहचाणी, कीता जैं शब्द विचार।

याद रखो सजनों इस क्रिया द्वारा ही मन में सत्य विचार पनपते हैं और ख़्याल की स्वच्छता बनी रहती है। इससे मन नियन्त्रित रहता है, जिससे मनुष्य की वृत्ति, स्मृत्ति, बुद्धि व भाव-स्वभावों का ताना-बाणा निर्मलता को प्राप्त रहते हैं। इस क्रिया में प्रवीणता द्वारा मन रूपी घर पूर्ण वैभव से भर जाता है। यह अवस्था व्यक्ति के संतुष्ट व शांत होने की प्रतीक होती है।

तभी तो वह मनुष्य 'विचार ईश्वर आप नूं मान कर', ब्रह्म स्वरूप में स्थित बना रह निज को सर्वकला समर्थ पाता है और निज यथार्थता अनुरूप इस जगत में उत्तम ढंग से क्रीडा करने के योग्य बनता है। इसके बारे में सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें बता रहा है-

शब्द विचार नाल पकड़े ओ आप नूं,
मेल खांदा केहड़ा ओ केहड़ा।

अर्थात् शब्द विचार को पकड़ने वाले का ही ख़्याल जगत के

खेल को खेलते हुए सांसारिक प्रभावों से मुक्त बना रहता है और वह जीवन के हर क्षेत्र में विजयी होता है। याद रखो यह ख़्याल की कामनाओं से मुक्त यानि अफुर व स्वतन्त्र रूप से अपने सच्चे घर में स्थिति का प्रतीक होता है। इस अवस्था में निज के अमीरों का अमीर होने का अनुभव होता है और इस प्रकार जगत के आश्रय व किसी और बात की अपेक्षा नहीं रहती।

इससे इन्सान विशाल हृदय हो, निष्काम भाव से परोपकार कमाता है। यह विशुद्धता का प्रतीक भरपूरता व व्याप्तता का, ऐसा शक्तिशाली व निर्विकारी, श्रेष्ठ भाव होता है जिसमें आत्मा और परमात्मा का सदा संग-साथ बना रहता है। यह सर्व एकात्मा के दर्शन में बने रहने की बात है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

जेहड़ा शब्द विचार जाणे, अपना ओ आप पहचाणे।

अपना ओ आप पहचाणे, ओहियो ओ रंग माणे, कदे नहीं खांदा ओ हार, कदे नहीं खांदा ओ हार याद रखो ऐसा व्यक्ति पाँच तत्वों से बनी हुई भौतिक सृष्टि, शारीरिक विषय व परिवर्त्तनशील घटनाओं, जिनमें पदार्थ की भौतिक अवस्था बदल जाती है यानि संयोग-वियोग, दुःख-सुख, अमीरी-गरीबी के दुष्प्रभावों से सदा विरक्त सम अवस्था से प्रसन्नचित्त बना रहता है यानि उसकी बुद्धि जड़ता को प्राप्त हो भौतिक विचारों में नहीं उलझती। वह एकरस चेतन अवस्था में बना रहने वाला भूतकाल और भविष्य काल में नहीं उलझता व वर्तमान जो इस समय अस्तित्व में है उसी सत्य अनुसार परमानन्द का अनुभव करते हुए, जीने की कला से भली-भांति परिचित होता है। तभी तो सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है-

कई विरले इन्सानों ने विचार शब्द पकड़ लिया,

ओ जगत वल्लों मुख मोड़े।

इस कथन अनुसार कोई विरला इस अनुपम विचारधारा अनुसार जीवन जीने के ढंग को ही उचित समझता है और अपने परिवारजनों व समाज को भी किसी कारण या प्रभाव में आकर इस श्रेष्ठ विचारधारा के विपरीत सांसारिक विचारधारा यानि अविचार युक्त चलन अपनाने के प्रति सावधान करना अपना कर्त्तव्य समझता है। यह आध्यात्मिक सिद्धान्तों से भौतिक सिद्धान्तों को उत्तम मानने व उसी अनुसार ही सत्यनिष्ठा व धर्मपरायणता अनुरूप व्यावहारिकता अपनाने की बात है यानि नैतिक उन्नति द्वारा भौतिक उन्नति को प्राप्त करने की बात है। ऐसे सर्वहितकारी मनुष्य ही अकर्त्ता भाव से जगत से निर्लिप्त बने रह रौशन नाम कहाते हैं तथा ऐसे व्यक्तियों को ही आद् जुगाद ईश्वर का साथ प्राप्त रहता है। याद रखो ऐसे ही मनुष्य जो कष्ट-क्लेश आने पर भी धर्म नहीं छोड़ते वह युग-पुरुषों के नाम से जाने जाते हैं। सजनों इसीलिए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

विचार ईश्वर आप नूं मान,
अवविचार ईश्वर इक जान।।
विचार इक अपना आप ही मान,
अवविचार कुल दुनियां जान।।

विचार करो है ईश्वर अपना आप,
अवविचार ईश्वर है इक साथ।।
ईश्वर है अपना आप प्रकाश,
ईश्वर है जे अजपा जाप।।

अर्थात् जो कोई भी 'विचार ईश्वर आप नूं मान' के भाव को मानता है उस विचारक को 'ईश्वर है अपना आप', 'ईश्वर है

अपना आप प्रकाश' और 'ईश्वर है जे अजपा जाप' का बोध हो जाता है। अन्य शब्दों में वह अपने असलियत स्वरूप का ही सारे जगत में आभास करता है। यहाँ 'तूं-मैं' का भेद मिट जाता है और उस परमार्थी का ख्याल व भावना अपने सत्य धर्म से कभी नहीं डोलती यानि वह जगत में विचरते हुए भी निर्लिप्त व तृप्त रहता है। इस तरह उच्च बुद्धि, उच्च ख्याल हो उसका मानसिक संतुलन एकभाव में सहजता से सधा रहता है। इसीलिए तो सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें समझाता है कि-

ब्रह्म नाम ब्रह्म है ध्यान बेटा
हां हां हां ब्रह्म वचन करो प्रवान बेटा।
ब्रह्म विचार नूं फडन सजन,
फिर ब्रह्म है बड़ा महान बेटा।।

इसके विपरीत जो 'अविचार ईश्वर इक जान' के भाव को मानता है वह अविचारी अज्ञानी अनजानपने या थोड़ी बुद्धि होने के कारण 'ईश्वर है इक साथ' के भाव को मान उसका सुमिरन, भजन-बन्दगी आदि भिन्न-भिन्न प्रकार के बाल अवस्था के भक्ति-भावों में उलझ जाता है। इस तरह वह इस दुनियां को ही सब कुछ मानता है और जगत जंजाल में फँस केवल अपना स्वार्थ सिद्ध करने की भावना की पूर्त्ति के लिए कई आडम्बर रच, सांसारिक झगड़ों का कारण बनता है। इस तरह वह अविचारी 'मैं-तूं' का सवाल खड़ा कर अपने ख्याल व भावना को द्वि-द्वेष में फँसा बैठता है और अपने असलियत स्वरूप यानि ईश्वर की पहचान खो, आडम्बरी भक्ति-भाव अपना बैठता है। हमारे में से किसी के साथ भी ऐसा न हो इसीलिए सजनों विचार के विषय में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें समझाता है कि-

गुरु है बन्धन ते चेला है बन्धन,
ओ बन्धन है जे पख परिवार।
इस बन्धन तों छुटना चाहो,
सजनों शब्द पकड़ो ब्रह्म विचार।।

इस ब्रह्म विचार पर खड़ा करने के लिए सजनों यह कुदरती ग्रन्थ हमें विचार शब्द की स्पष्टता देते हुए इस प्रकार समझा रहा है, विचार और अवविचार दो शब्द है सजनों सुनो-

विचार- विचार महाराज जी के मुख की वाणी है और विचार ही सजनों जीत और फतह है और विचार ही कुदरती आई हुई है।

अविचार- अविचार कुसंग के कारण मनुराज ने रची है

अर्थात् विचार रूपी शक्ति हमारे अन्दर कुदरती निहित है यानि यह हमारी कभी न छूटने वाली विशेषता है। यह हमारी प्रधान प्रवृत्ति है अर्थात् हम में सदा बना रहने वाला वह मूल ईश्वरीय गुण है जिससे मानवता का भाव बलिष्ठ रहता है व इसके निरंतर प्रयोग से हमारे हृदय में निहित चार वेद-छः शास्त्रों का गुप्ट ज्ञान निरन्तर प्राप्त होता रहता है। इस के बारे में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

कुदरती विचार आई हृदय विच शांति पाई,
खुश हो रहे श्री राम रघुराई।
विचार नाल होन लगा कैसा ओ प्यार जी,
कैसा ओ प्यार जी।।

इसी अमोघ यानि निर्विघ्न लक्ष्य पर पहुँचाने वाली शक्ति के आधार पर हम हृदय में उठने वाले हर ख़्याल को ध्यान से देख उसका निरीक्षण कर सकते हैं और एक न्यायाधीश की तरह दूरदर्शिता और सतर्कता पूर्वक उसके अंतिम परिणाम का

यथार्थ बोध कर, उससे जुड़े विषय या वस्तु को अपनाना व छोड़ना सुनिश्चित कर सकते हैं।

इस तरह हर परिस्थिति व हर अवस्था में इस जगत में विचरते हुए अपना संकल्प स्वच्छ, जिह्वा स्वतन्त्र, दृष्टि कंचन, मन उपशम और ख़्याल अफुर रख अपने अंतःकरण की शुद्धता बनाए रख सकते हैं। यही विचारशक्ति ही हमारे मन-चित्त के सदा निरूद्ध व शांत अवस्था में बने रहने का रहस्य है।

इसी के द्वारा निरन्तर अफुर अवस्था में रह, हम अपनी ध्यान दृष्टि को भी एकाग्र करने में कुशल बन सकते है तथा हमारे लिए युवावस्था की भक्ति यानि समभाव-समदृष्टि की युक्ति के अनुरूप सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव करना सुगम हो सकता है। तभी तो सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

युक्ति जैं प्रवान कीती आ-आ-आ,
ओहदी भक्ति वी सावधान होई।
विचार शब्द जैं पकड़ लिया,
ओहदी दुनियां ते ऊच्ची शान होई।।

आइए विचार की इसी महत्ता को अब हम प्रश्नोत्तर के माध्यम से समझते हैं-

विचार शब्द का शाब्दिक अर्थ क्या है?

विचार किसी विषय पर भली-भांति मन में सोचकर निश्चय करने की क्रिया को कहते हैं। हम कह सकते हैं कि मनुष्य के अंतर्मन में जिन स्थायी भावों का उदय होता है और जिन पर चिंतन-मनन के द्वारा गंभीरता से तर्कसम्मत विवेकपूर्ण निर्णय लिया जाता है, उसे विचार कहते हैं।

अन्य शब्दों में इसके द्वारा व्यक्ति किसी बात या पक्ष के सब अंग देख कर व सोच-समझकर निर्णय लेता है। इस क्रिया द्वारा वह अपना परीक्षण यानि जाँचना व परख कर सकता है। यह परख करके वह मंदी बातों का संग छोड़ सकता है और अच्छी बाते धारण कर सकता है। याद रखो विचार करने की शक्ति केवल मनुष्य में हैं। अतः वह अपने विवेक मन से नाना प्रकार के विचारों को जन्म दे सकता है।

विचार कहाँ उठते हैं?

मनुष्य के अंतर्मन में प्रतिपल स्वतः विचारों का जन्म होता रहता है।

विचारक्षमता से क्या अभिप्राय है?

विचारक्षमता दो शब्दों के योग से बना है यथा विचारअक्षमता। अतः इसमें विचार तथा क्षमता दोनों का प्रभाव निहित मिलता है। ज्ञात हो कि विचार शब्द के अंतर्गत जो कुछ भी मन में सोचा जाय, उसके ऊँच-नीच पर विचार करते हुए निश्चय लेने की क्रिया सम्मिलित होती है, जबकि क्षमता शब्द सामर्थ्य व योग्यता का सूचक होता है। अतः विचारक्षमता का अर्थ हुआ, विचार को धारण कर उन विचारों को प्रकट करने की क्षमता या शक्ति।

विचार क्षमता विचार करने की उस पूरी क्रिया को बतलाती है जिसके फलस्वरूप महान विचार उत्पन्न होते हैं। वस्तुतः विचारों का अधिष्ठान मस्तिष्क है। सारे विचार तरंगों के रूप में मन-मस्तिष्क में उठते हैं। जब ये तरंगें व्यवस्थित होकर कोई रूप धारण करती हैं तो विचारों का जन्म होता है। ये विचार मस्तिष्क में संचित रहते हैं और प्रकट भी हो सकते हैं। इनका

प्राकट्य वाणी के रूप में होता है।

विचारशक्ति का होना, नए-नए विचारों का प्रकट होना, अच्छे-बुरे का निर्णय करना, दो विरोधी मतों के सम्बन्ध में न्यायसंगत निर्णय देना-ये सारी बातें विचारक्षमता को बताने वाली हैं। विचार क्षमता बुद्धिमत्ता को बताती है, सृजनात्मकता की सूचक होती है, समझने या तर्क करने की शक्ति को बताती है तथा जीवन्तता की प्रतीक होती है। याद रखो विचारक्षमता कभी भी कोरी कल्पना नहीं होती।

विचारक्षमता की कसौटी विवेकशक्ति होती है। यह मनुष्य की बौद्धिक स्तर को ऊपर उठाती है जिससे इन्सान सच्चाई-धर्म के निष्काम रास्ते पर बना रहता है। विचारक्षमता के बल पर उत्कृष्टता की चोटी तक पहुँचा जा सकता है। इस संदर्भ में सजनों कुदरती ग्रन्थ हमें कह रहा है-

सत्-असत् दा विचार जेहड़ा करदा,
सत् सत् बात इन्सान ओ फडदा।
सच्चाई धर्म दे विच ओ विचरदा,
श्री राम जी दे दर्शन ओ करदा।।

विचार का अनिवार्य तत्त्व क्या है?

चिंतन, मनन ही विचार का अनिवार्य तत्त्व है।

विचार के कितने भेद हैं?

सामान्यतया विचार के दो भेद हैं-सुविचार या परिष्कृत विचार और कुविचार यानि दुर्विचार या अविचार। इस आधार पर विचार, तर्कसम्मत, विवेकपूर्ण, न्यायसम्मत, विधिसम्मत होने के साथ-साथ, आधारहीन, असंगत और निर्मूल भी हुआ करते

हैं। वस्तुतः मनुष्य अपनी निर्णायिका शक्ति से विज्ञतापूर्ण तर्कसम्मत विचारों को न्याय संगत मानकर उन्हें ही श्रेष्ठता प्रदान करता है, जो विवेकपूर्ण और मान्य होते हैं।

ऐसे विचार विधिपरक कहे जाते हैं। किन्तु अपनी दुर्बल मानसिकता के कारण मनुष्य प्रायः संकीर्ण और अविवेकपूर्ण कुविचारों को तर्कसंगत मान बैठता है, जो असंगत, अमान्य और निषेधपरक हैं। इस संदर्भ में याद रखो सामान्यतः विचार का प्रयोग सुविचारों के लिए ही किया जाता हैं।

विचार की गहराई किस पर निर्भर करती है?

विचार की गहराई, विचार की मौलिकता मन-मस्तिष्क की पवित्रता पर निर्भर करती है यानि यदि मन शुद्ध है तो विचार भी शुद्ध होंगे।

विचारों का विकसित करने का साधन क्या है?

विचार के लिए बुद्धि, विवेक, तर्कशक्ति आदि साधन अपेक्षित हैं। इनके बिना विवेकवान् व्यक्ति राह भूल सकते हैं। सही दिशा पाने हेतु तथा मंजिल तक पहुँचने के लिए ये विकास के सोपान सदृश काम आते हैं।

विचार चिंतन से क्या लाभ होता है?

सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ सजनों कह रहा है 'विचार शब्द जेहड़ा सजन फड़े, सहनशक्ति ओ धारण करे' अर्थात् विचार द्वारा मनुष्य में धीरता से सम्पूर्ण परिस्थितियों, तथ्यों एवं तत्वों का विश्लेषण करके सर्वोत्तम विकल्प चुनने की क्षमता विकसित होती है। यही स्वतन्त्रतापूर्वक विचार निर्णय, विवेकशीलता की जन्मभूमि है। इस तरह विचारवान व्यक्ति विवेकशील बनता है

यानि उसे सत्य-असत्य, भले-बुरे का ज्ञान हो जाता है। इसीलिए वह सच्चाई-धर्म के निष्काम रास्ते पर, धीरता से बने रह, परोपकार कमा सकता है और धर्म पर डटे रहने के लिए तन-मन-धन वारने से भी नहीं सकुचाता। इस संन्दर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है-

जेहड़ा सजन विचार पकड़े एक,
उस सजन दी बुद्धि हो गई विवेक।
सत हो गया बोलचाल, सत हो गया बोलचाल,
ओ सूरज चढ़ पिया जे।।

एकता हो गई उस सजन दी कमाल,
फिर एक पकड़े ओ विचार।
फिर उच्च बुद्धि ते उच्च ख़्याल।।

इसी महत्त्व को समझते हुए ही सजनों ग्रन्थ हमें कह रहा है-

कदम कदम ते विचार, विचार नाल होवे प्यार,
दिव्य दृष्टि सजनों दिखाओ, जित्तो मृतलोक नूं ।

मनुष्य के व्यक्तिगत विचार क्या प्रदर्शित करते हैं?

मनुष्य के व्यक्तिगत विचार उसकी योग्यता और व्यक्तिगत क्षमता को प्रदर्शित करते हैं।

विचार की कसौटी क्या है?

आत्मिक उन्नति के साथ-साथ यदि विचार सामुदायिक उन्नति में पूर्ण सहायक हैं, तो वे सभी के लिए कल्याणकारी होंगे। ऐसे सार्वभौम शाश्वत विचारों को ही मान्यता प्राप्त हैं। अनुदार विचार संकीर्ण और एकपक्षीय होते हैं, अतः उनका कोई महत्त्व

नहीं। अतः उदारवादी दृष्टि वाले विचार ही सब जन हिताय होते हैं। ऐसे सार्वभौम विचार ही कसौटी पर खरे उतरते हैं। यह स्वार्थ से बचे रह परमार्थ के रास्ते पर बने रहने की बात है।

विचारवान व्यक्ति कैसा होता है?

बुद्धिमान व विवेकशील। ऐसा मानव निश्चित ही अपना व सबका हितकारी भी होता है यानि वह सबका होता है और सब उसके होते हैं।

विचारों की संकीर्णता तथा उदारता का मनुष्य के व्यक्तित्व पर क्या दुष्प्रभाव पड़ता है?

सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है 'जैंदे कोलों नहीं शब्द विचार, ओन्हां जीवां नूं पै गई मार, किस तरह पहचाणे, ओ किस तरह जाणे, शब्द वल्लों खाधी उस हार'। स्पष्ट है सजनों विचारों की संकीर्णता मनुष्य के व्यक्तित्व में अनुदारता और अविवेक उत्पन्न कर, उसे पतनोन्मुख बनाती है। साथ ही इससे उसमें हीन भावनाओं और कुंठाओं का विकास होता हैं, जिससे उसमें कुछ भी कर सकने की सामर्थ्य नहीं रहती।

इसके विपरीत विवेकपूर्ण दृष्टि यानि उचित-अनुचित को दृष्टिगत रखने वाले उदार, समुन्नत, निर्णीत, न्यायसंगत और सभी की हित कामना से परिपूरित परिष्कृत सुधारवादी विचार सभी को समान रूप से मान्य होते हैं। ऐसे महान विचार ही अंततः कार्यरूप में परिणत होकर सार्वभौम शाश्वत रूप ले लेते हैं।

याद रखो अच्छे विचार व्यक्ति को महान् बनाते हैं क्योंकि कोई व्यक्ति या वस्तु अच्छी या बुरी नहीं होती, बल्कि व्यक्ति का आचरण अथवा वस्तु का स्वरूप ही उसे अच्छा या बुरा बनाता

हैं। इसके अंतर्गत विचारों की पृष्ठभूमि ही सर्वदा महत्त्वपूर्ण हुआ करती है। अतः आचरण-रहित विचार कितने अच्छे क्यों न हों, उन्हें खोटे मोती की तरह समझकर त्याग देना चाहिए। इसके स्थान पर कुछ भी करने से पहले क्या उचित है और क्या अनुचित इसका निरंतर विचार करना चाहिए। याद रखो बिना विचारे जो करता है वह बाद में पछताता है। इसीलिए तो सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है-

पकड़ो शब्द विचार,
जे जीवन बनाना जे।
जैं जीवन बना लिया अपना,
फिर नहीं पछोताना जे,
फिर नहीं पछोताना जे।।

विचारों को उच्च कैसे बनाया जा सकता है?

सत्संगति से विचार उच्च बनते हैं। इसी तरह बाल्यावस्था से ही बच्चों को आत्मिक ज्ञान के रूप में अच्छे संस्कार प्रदान कर उनके विचारों को उच्च बनाया जा सकता है।

अविचार क्या है?

अविचार कुसंग के कारण मनुराज ने रची है। अविचार– विचारहीन यानि विचारशून्य व अविवेकशील होने का सूचक है। यह निर्जीव होने की निशानी है।ऐसा व्यक्ति अपने भले-बुरे का विचार नहीं कर पाता। परिणामस्वरूप जीवन-पथ में पग-पग पर अनेकानेक कठिनाओं का सामना कर उन्हें भोगता है।

अविचार/कुविचार किसका सूचक है?

मन की मलिनता व ईर्ष्या-द्वेष का।

अविचार यानि कुविचारों को पकड़ने वाले का क्या परिणाम निकलता है?

यदि मन में अविचार या कुविचार पनपे तब तो विपरीत दिशा यानि स्वार्थ का कामनायुक्त कुरस्ता पकड़कर गर्त में ही जाना पड़ता है।

इसी सन्दर्भ में सजनों विचार और अविचार पर चलने वाले सजनों के अंत परिणाम के विषय में भेद व्यक्त करते हुए सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है-

अविचार जेहडा चलदा है
सजन चार चुफेर हार ओ खांदा है।
विचार है जित तुम्हारी ओ सजनों,
हर पासियों ओ जितदा रैहंदा है।।
अविचार है जे कवलडा रस्ता,
हर पासियों ओ ठोकरां खांदा है।
विचार है जे सवलडा रस्ता,
सदा ही ओ जितदा रैहंदा है।।

अर्थात् विचारवान ही जीवन में सीधा और आसान निष्काम रास्ता अपनाकर आनन्दमय निरासक्त जीवन व्यतीत कर सकता है। विचार जगत पर विजय प्राप्त करने की बात है और अविचार हार। आओ अब जानें कि विचारवान किस प्रकार विजय को व अविचारी किस प्रकार हार को प्राप्त होता है?

सजन जी एक विचारवान किस प्रकार जगत पर विजय प्राप्त कर लेता है?

इस संदर्भ में सजन जी जानो कि किसी वस्तु/विषय/बात के सम्बन्ध में बुद्धि से सोच-समझ कर स्थिर की हुई धारणा निश्चयात्मक बोध कहलाता है। यही बुद्धि की विचारशील अवस्था होती है जिसमें मनुष्य सत्य-असत्य की सहजता से पहचान कर पाता है। ऐसा विचारवान मानव जीवन में जो भी करता है, वह विचार शब्द के महामन्त्र को हर समय अपने सामने रख कर करता है और एक-एक कदम पर अपनी तुलना करता है कि कोई ऐसा गलत कदम न उठे या कोई ऐसा ख़्याल हृदय में जगह न कर जाए जिससे समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई का उल्लंघन हो। इस तरह वह अपने आप को पकड़ते हुए ताकत में आ जाता है और सजन-भाव पर बना रहता है। परिणामस्वरूप उसका हर कर्म न्यायसंगत व दोष रहित होता है यानि वह किसी के बहकावे में आकर झूठ व छल-कपट के चलन में नहीं फँसता। हम कह सकते हैं कि इस यत्न द्वारा वह केवल सत्य ही अपनाता है और सत्य बल पर जगत पर विजय प्राप्त कर लेता है। ऐसे विजयी के लिए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

शब्द विचार जेहड़ा ओ करदा,
ओ तां किसे कोलों नहीं है डरदा।

सजन जी अविचारी कैसे जीवन पथ पर ठोकरें खाते हुए हार को प्राप्त होता है?

चूँकि अविचारी मन को वश में न रख पाने के कारण, उचित-अनुचित का विचार नहीं कर पाता इसलिए लापरवाही वश मनमत अनुसार जीवन जीने का चलन अपनाता है जो नकारात्मकता का प्रतीक होता है। इस प्रकार उसके लिए सत्यता अनुसार जीवन जीना असंभव हो जाता है और वह सत्य

से भटक भ्रमजाल में फँस जाता है। यही कारण है कि वह हर बात को सोच बना लेता है और खुद तुरन्त समाधान न ले पाने के कारण बुरा ही सोचता, बोलता व करता है। यह सब आत्मिक ज्ञान से वंचित रह, अज्ञान धारणा द्वारा संसारिक विषय विकारों में उलझने का कारण होता है।

यही नहीं वह अविचारयुक्त मानव यह भूल जाता है कि नश्वरता के कारण जगत व उसकी हर शै का रूप-रंग पल-पल बदलता रहता है। जहाँ बदलाव का सिलसिला चलता हो वहाँ किसी वस्तु या विषय विशेष का सत्य बोध कैसे किया जा सकता है? यह सम्भव ही नहीं होता। अतः अविचारी को जो भी, जैसे भी समझ में आता है वैसी ही सोच में ढल, बदलाव के यथार्थ को ख़्याल में नहीं उतार पाता और पहली परिस्थितियों को याद करता हुआ भौतिक उन्नति द्वारा भविष्य को रचने का यत्न करता है। इस तरह उसका ख़्याल भूत या भविष्य की सांसारिक कामनाओं में जकड़ा रहता है और इसी नासमझी के कारण नैतिकता का चलन उसकी पकड़ से छूट जाता है और उसका वर्तमान रोने-झुखने में व्यतीत होता है। यही उसकी हार का कारण होता है। इसीलिए तो सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है-

हनुमान जी दी युक्ति करो प्रवान,
नीतियाँ विरूद्ध न चलो इन्सान।
विचार शब्द जेहड़ा कर लवे,
फिर जित्त ओन्हां दी जान,
कोई विरला यत्न करे इन्सान।।

साथ ही यह भी कहा गया है-

सजनों पकड़ो शब्द विचार हां हां हां हां,

फिर कदे न खासो हार।
शब्द नाल सजनों करो प्यार,
सजनों पकड़ो शब्द विचार।।

अविचारी की इस हार का उसके शरीर व प्रारब्ध पर क्या प्रभाव पड़ता है?

अविचारी का ख़्याल विषयी होकर विकार वृत्तियों में फँस जाता है। इनके दुष्प्रभाव से उसका रोम-रोम विकृत हो जाता है। फलतः शारीरिक, मानसिक व आत्मिक स्वस्थता व बल क्षीण हो जाता है। यही नहीं इन्हीं दोषपूर्ण भाव-स्वभावो व दुष्कर्मों के परिणामस्वरूप उसे कड़वे फल के रूप में दुःख प्राप्त होता है।

अविचार से विचार में आने के लिए क्या करना होगा?

सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है-

'हुन शास्त्र लियां विचार हुन रस्ता लिया ए संवार'
अर्थात्
सत्-शास्त्र का विचार करो
यानि
'शास्त्र नूं विचार हुन दरख़त नूं सँवार,
हुन कदे न खासें हार,
जयकार सदा जयकार'।

सजनों इसी हेतु सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें कह रहा है कि 'जो बात किसी के साथ करो विचार से करो और विचार से ही उत्तर दो। जिस सजन ने विचार के साथ कुल दुनियां में और जनचर, बनचर, जड-चेतन में एक प्रकाश समझ लिया उस सजन की फतह ही फतह।' अर्थात् विचार के साथ सबमें भगवान निगाह आए यानि सर्वभगवानमय दृष्टि हो जाए।

जनचर-बनचर, जड़-चेतन सब में एक भगवान हो जाए। यह है सर्वव्यापी भगवान को मानना। इसी पर दृष्टि को खड़ा कर लो।

इस प्रकार एक दृष्टि-एक दर्शन हो जाएगा। जब ऐसा हो गया तो फिर क्रोध किस से करोगे? भगवान के साथ। निन्दया किस की करोगे किस की सुनोगे ? भगवान की। वैरी-दुश्मन किसको समझोगे ? भगवान को। झूठ किस से बोलोगे, चोरी किस की करोगे भगवान की। याद रखो सर्वव्यापी भगवान सब कुछ देख रहे हैं। इस तरह हौं-मैं मिट जाएगी और अफुर अवस्था आ जाएगी। इसीलिए तो सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है-

ओ दाता हनुमान जी आ-आ-आ,
जेहड़ा शब्द विचार बता रहे हो।
जैं शब्द विचार पकड़ लिया,
ओहदे सारे रोग हटा रहे हो।।

अंततः शब्द विचार द्वारा जीवन जीने की कला सीखो और वर्त्तमान में ही सुख व आनन्द का अनुभव करो क्योंकि सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें यही आदेश दे रहा है कि 'शब्द विचार पकड़ के ओहदी करो अराधना'। इससे ख़्याल निज सत्-चित्त-आनन्द स्वरूप में ठहरा रहेगा और बातचीत के दौरान चेहरे पर मुस्कराहट आएगी, बदन प्रफुल्लित होगा हृदय बहार की तरह खिड़ेगा, और मुख चमकेगा।

तभी तो सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है 'जो सजन विचार शब्द को पकड़ लेगा, वह बहार की तरह खिल उठेगा और उसकी सुगंधि सारे ब्रह्मांड में जाएगी और वह रोशन होकर चमकेगा। अतः हमें चाहिए कि इन वचनों को धारण करें और विचार शब्द को पकड़ कर पूरी समदृष्टि दिखाएं'। याद रखो यह मानव के सम्पूर्णतः प्रसन्नचित होने की अवस्था होती है

जो मनुष्य के मन-वचन-कर्म में स्पष्टता व शुद्धता का संचार करती है।

ऐसा होने पर जीवन का मज़ा आ जाएगा और इसी जीवन में मोक्ष प्राप्ति भी सहजता से हो जाएगी अर्थात् जीव जन्म-मरण की पीड़ा यानि चक्रव्यूह से छूट विश्राम अवस्था को प्राप्त होगा। अंततः हमारी सबसे यही प्रार्थना है कि इस शुभ कार्य सिद्धि के लिए दृढ़ संकल्प हो जाओ और सफल होकर अपना नाम रोशन करो। इस संदर्भ में सजनों घबराओ नहीं अपितु कुदरती ग्रन्थ के इन शब्दों को याद रखो-

समभाव समदृष्टि दा महाराज
स्कूल खोलने लगे आ आ आ आ
कोई विरला आके दाखिल होसी सजनों
विचार शब्द नाल जेहड़ा सजन पकड़े आप नूं,
खालस सोना होके ओ शामिल होसी सजनों
सावधान होके आप पढ़ना ते सजनां नूं
पढ़ावों सजनों आ आ आ आ
एहो मूल मन्त्र सब नूं समझाओ सजनों
सजन सच्चे पातशाहवां दे शाह दा,
एहो उपदेश सब नूं समझाओ सजनों
लोकी कैहंदे कलुकाल आके पसरिया जे आ आ आ आ
ओ पसरे किस तरह जित्थे है शब्द विचार सजनों
आप सजन ते सारा विस्तार सजन, ओथे हनुमान जी
होसन मददगार सजनों

अंततः सजनों जान लो कि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार अभी तक इस समभाव-समदृष्टि के स्कूल में प्रवेश पाने के पश्चात् आपने दो वर्ष जो भी सुना-पढ़ा-जाना व समझा,

उसके द्वारा आपको आत्मिक ज्ञान की पढ़ाई का सुबोध कराया गया।

इस पढ़ाई के द्वारा सजनों हमें संकल्प कुसंगी को सजन व संगी बनाकर संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म के सवाल हल करने का तरीका युक्तिसंगत ढंग से बताते हुए सम पर खड़े होने के लिए प्रेरित किया गया ताकि हम 'जेहड़ा मन-मन्दिर प्रकाश ओही असलियत ब्रह्म स्वरूप है अपना आप' यानि 'मैं ब्रह्म हूँ', इस एक शब्द पर पाँच साल गुढ़ कर, दिव्य दृष्टि प्राप्त कर, संकल्प रहित हो, तीनों कालों की पहचान कर सकें और इस तरह आवागमन के चक्कर से बच सकें।'

इस संदर्भ में सजनों इस पढ़ाई को भली-भांति पढ़ कर हम फ़र्स्ट का नतीजा दिखा सकें इस हेतु सजनों हमें इस स्कूल में दिनाँक 8 अप्रैल 2014 को पढ़ाए गए पहले पाठ के अंतर्गत ही युवा अवस्था की भक्ति अर्थात् समभाव-समदृष्टि की युक्ति का सूक्ष्मतः स्पष्टीकरण देते हुए, सजन-भाव यानि निज मानव-धर्म को अपनाने का संदेश देते हुए कहा गया कि पूर्ण सफलता हेतु यह क्रिया कदम-कदम पर विचार शब्द को पकड़ते हुए अत्यंत दक्षता और धीरता से सम्पन्न करनी है। आशय यह है कि इस तरह एक अच्छा व नेक इंसान बनने हेतु प्रतिदिन सबने अपना सत्यता से आत्मविश्लेषण करना था कि कहीं आपका व्यवहार, प्रवृत्तियाँ, योग्यताएँ-अयोग्यताएँ, अभिप्रेरणा आदि सज्जनता व मानवता के विपरीत तो नहीं। स्वयं को परखने के इस प्रयास द्वारा अपने गुण-दोषों की परख कर आत्मनिरीक्षण द्वारा अपने मन में उत्पन्न होने वाले भावों, वृत्तियों व गलतियों आदि को सही-सही जानने का प्रयास करना था।

इस प्रकार अपनी विकार-वृत्तियों पर आत्मनियंत्रण यानि

आत्मसंयम द्वारा फतह पानी थी और अंतर्निहित आत्मा का अनुभव करते हुए आत्मोद्धार हेतु निज का मानवता-धर्म अनुरुप सुधार करने का प्रयत्न करना था।

इस परिप्रेक्ष्य में सभी सजन स्वयं द्वारा अपनाए भाव-स्वभावों की जाँचना सही ढंग से कर सकें इस हेतु सबको दिनाँक 8 अप्रैल 2014 को (प्रथम कक्षा वाले दिन) आत्मनिरीक्षण से सम्बन्धित एक पर्चा दे कर, (जिसके अंतर्गत शैतानियत के प्रतीक दुर्गुणों व इंसानियत के प्रतीक सद्‌गुणों का वर्णन था) अपना अवलोकन करने के लिए कहा गया था। साथ ही यह भी कहा गया था कि सभी ने नियमित रूप से इस विषय में अपनी जाँचना करते रहनी है ताकि समभाव-समदृष्टि के स्कूल में प्रवेश पाने के पश्चात् हम में कितना सुधार आया है इसका हम समय-समय पर सही अर्थों में जायज़ा ले, इस पढ़ाई के दौरान ही पूर्ण आत्मसुधार कर, एक नेक व अच्छे इन्सान बन सकें।

हम आशा करते हैं कि आत्मोन्नति करने एवं पारिवारिक जीवन सुखमय व आनन्दमय बिताने हेतु सबने यह कार्य बताई युक्ति अनुसार कर लिया होगा और अपना घर सतयुग बना लिया होगा। ऐसे सजन जिन्होंने इस कार्य में पूर्ण सफलता हासिल की है उन सजनों के लिए खुशखबरी है कि वे अब दिनाँक 17 अप्रैल 2016 से समभाव-समदृष्टि के स्कूल यानि ध्यान-कक्ष में आरम्भ होने वाली इस पढ़ाई की गुढ़ाई प्रसन्नता से कर सकते हैं।

जिन सजनों की अभी इस संदर्भ में कुछ कमी रह गई है, वे यदि शीघ्रतया इस कार्य को सही तरीके से पूर्ण कर इंसानियत में आने का वायदा करते हैं तो ऐसे सजनों को सुझाव है कि वे इस यज्ञ के दौरान ही दृढ़ संकल्प व पूर्ण आत्मविश्वास से इस अधूरे

कार्य को सम्पन्न कर पढ़ाई की गुढ़ाई करने की योग्यता प्राप्त कर सकते हैं व जिन्होंने इस विषय में अभी तक कुछ भी नहीं किया है यानि आत्मसुधार नहीं चाहते हैं तो उन सजनों को सुझाव है कि वे घर बैठें। उन्हें अब सजन श्री शहनशाह हनुमान जी के वचनानुसार ध्यान-कक्ष में प्रति सप्ताह लगने वाली कक्षा के अंतर्गत सम्मिलित होने की आज्ञा नहीं होगी।

इस संदर्भ में सारे सजन अब ध्यान दो कि सजन श्री शहनशाह महाबीर जी के द्वारे पर अब से घरेलू बातों की कचहरी बंद हो गई है। घरेलू बाते अब नहीं सुनी जाएगी। अब कचहरी लगेगी सम, सन्तोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म की ताकि जो भी सजन यह सवाल नहीं हल कर पाए हैं वे सजन यह सवाल धारण कर हल कर सम पर खड़े हो जाएं। इस प्रकार वे भी 'जेहड़ा मन-मन्दिर प्रकाश ओही असलियत ब्रह्म स्वरूप है अपना आप' इस एक शब्द पर पाँच साल गुढ़ कर, दिव्य दृष्टि प्राप्त कर, तीनों कालों की पहचान कर परमपद प्राप्त कर सकें।

अंततः सजनों हम आपको यही कहेंगे कि परमपद की प्राप्ति हेतु 'समभाव-समदृष्टि के सबक' नामक पुस्तक से यह पढ़ाई अब आप पढ़ो और अपने बच्चों को भी पहले अध्याय से पढ़ाना शुरू कर दो ताकि घर-परिवार वाले सब इसी चाल को पकड़ते हुए, एकरस ढलते जाएं और यदि कहीं कोई कमी स्वयं में रह गई है तो वह भी युक्तिसंगत आत्मनिरीक्षण द्वारा दूर कर पूर्ण सफलता प्राप्त कर सको।

इन्हीं शुभकामनाओं के साथ सबको कह रहे हैं- विजयी भव, विजयी भव, विजयी भव।

निवेदन

इस पुस्तक को और अधिक जीवन उपयोगी बनाने हेतु आपके सुझाव सादर आमन्त्रित हैं।

SATYUG DARSHAN TRUST (REGD.)

ALLEVIATING PHYSICAL, MENTAL AND SPIRITUAL SUFFERINGS OF HUMAN BEINGS.

www.satyugdarshantrust.org

Institutions under the aegis of Satyug Darshan Trust (Regd.)

SATYUG DARSHAN CHARITABLE DISPENSARIES & LABORATORIES

Multidiscipline dispensaries, labs & diagnostic centres spread in 15 cities

www.satyugdarshandispensaries.org

SATYUG DARSHAN VIDYALAYA

Nursery-XII, Co-ed. English medium, residential & day boarding school. Affiliated to CBSE.

www.satyugdarshanvidyalaya.net

SATYUG DARSHAN INSTITUTE OF EDUCATION & RESEARCH

B.Ed. College for Girls. Affiliated to Maharishi Dayanand University, Rohtak.

www.sdier.org

SATYUG DARSHAN TECHNICAL CAMPUS

Engineering & Management College, offering B.Tech. BBA and BCA courses. Co-ed. with residential & day boarding facilities. Affiliated to Maharishi Dayanand University, Rohtak.

www.satyug.edu.in

DHYAN KAKSH

World's first School of Equanimity & Even-sightedness. It is open to all age and gender.

www.schoolofequanimity.com

SATYUG DARSHAN SANGEET KALA KENDRA

Imparting true teachings of music and dance, open to all age and gender. Present in 14 cities. Affiliated to Prayag Sangeet Samiti, Allahabad.

www.satyugdarshansangeet.org

Exam of Excellence in Humanity, Morality & Ethics

INTERNATIONAL EQUANIMITY OLYMPIAD

www.equanimityolympiad.in